आधुनिक विश्व में वैचारिक संघर्ष

लेखक
वी० कोर्तुनोव

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, (प्रा०) लि०
जयपुर

THE BATTLE OF IDEAS IN THE MODERN WORLD
का हिंदी अनुवाद

English Edition
Progress Publishers, Moscow
In arrangement with Mezhdunarodnaya Kniga, Moscow

संपादन :
मोहन श्रोत्रिय

अनुवाद :
याज्ञवल्क्य गुरू
गिरधारीलाल व्यास

चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड,
जयपुर-302 001

दिसंबर 1984 (RPPH-3)

मूल्य : 12.50

भारती प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित तथा रामपाल द्वारा
राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि०, जयपुर की ओर से प्रकाशित।

प्रकाशक की ओर से

यह पुस्तक कम्युनिस्ट विचारधारा एवं कम्युनिज्म विरोध के संघर्ष की समस्याओं के विस्तृत दायरे को अध्ययन-परिधि में ले आई है। डॉ० कोर्तुनोव ने एक-एक करके इस संघर्ष की विभिन्न अवस्थाओं की पड़ताल की है; बूर्ज्वा विचारधारा के विकास की विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है; कम्युनिस्ट विरोधी सिद्धांतों तथा मनगढ़ंत धारणाओं को खंडित किया है तथा कम्युनिस्ट दृष्टिकोण की व्याख्या को उभारा है। उनकी लेखन शैली तर्कपरक एवं स्पष्ट है।

यह पुस्तक सूचनापरक एवं तर्कपूर्ण होने के कारण पाठकों को रुचेगी।

अनुक्रम

पाठकों से दो शब्द

वैचारिक संघर्ष की गहनता और उत्कटता की दृष्टि से हमारे युग की तुलना किसी अन्य युग के साथ नही की जा सकती, भले ही वह अनेक राष्ट्रो के इतिहास के पुनर्जागरण एवं बोधोदय जैसे निर्णायक युग ही क्यों न रहे हों। वर्तमान वैचारिक सघर्ष की तीव्रता हमारे समय में हो रहे सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों की प्रतिच्छाया है, जो पूँजीवाद और समाजवाद के बीच ऐतिहासिक मुकाबले से उत्पन्न होती है और इसका विद्यमान स्तर सामाजिक और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्तियों की जटिल अन्तःक्रिया से पूर्णता प्राप्त करता है।

लेखक का लक्ष्य, इस पुस्तक को लिखते समय, मार्क्सवाद-लेनिनवाद के आधार पर पूँजीवाद और समाजवाद के बीच चल रहे वैचारिक संघर्षों की मुख्य मंजिल का पता लगाने और उनका मूल्यांकन करने का रहा है। यह कार्य स्वयं इस कृति को विवादास्पद बना देता है क्योंकि एक या दूसरे दृष्टिकोण का समर्थन करने के लिए लेखक को अनेक प्रचलित वैचारिक और राजनीतिक अवधारणाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करना पड़ा है।

पुस्तक में उठायी गयी समस्याओं का अधिक पूर्णता के साथ अध्ययन करने की दृष्टि से लेखक ने समस्याओं की, अतीत के ऐतिहासिक अभियान की सहायता से उनके विकास के आधार की, परीक्षा करने का प्रयास किया है। यह युद्ध और शान्ति की समस्या तथा कम्युनिस्ट और कम्युनिस्ट विरोधी विश्व दृष्टिकोणो के बीच संघर्ष के उदय की समस्या के सम्बन्ध में विशेष रूप से सही है। सभी मामलों में, लेखक ने उठायी गयी समस्याओं का बुद्धिमत्तापूर्ण विश्लेषण करने और उनके मध्य ऐतिहासिक रूप से सुसंगत और तर्कपूर्ण सम्बन्ध प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। सरचना के विचार से इस अध्ययन को खंडों में विभाजित करनेवाली रेखाएँ एक सीमा तक स्वैच्छिक है, किन्तु इन विभागों मे निश्चित तर्क संगतता है।

आरम्भ के प्रकरणों मे कम्युनिस्ट आन्दोलन के आदि से आज तक के युग के वैचारिक संघर्ष का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से विश्लेषण किया गया है। और इसी के सामानान्तर सामाजिक, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्तियों के विकास पर आधारित कम्युनिस्ट विरोधी सिद्धान्तों की परीक्षा की गयी है।

अनुवर्ती प्रकरणों में, अति प्रचलित वैचारिक सिद्धान्तों में पूंजीवादी विचारकों द्वारा हाल के वर्षों में उठायी गयी समस्याओं के वैकल्पिक उत्तर प्रस्तुत किये गये हैं। यह कार्य मार्क्सवाद के सिद्धान्तों तथा समाजवाद की आन्तरिक एवं वैदेशिक नीतियों के अनुभवो के निष्कर्षों के आधार पर किया गया है।

अन्त के प्रकरणों में, जो एक प्रकार से पूर्ववर्ती प्रकरणों का उपसंहार है, लेखक ने भविष्य के समाज पर दृष्टिपात किया है और सामाजिक विकास, भावी पथ के लिए मनुष्य की खोज और तीसरी सहस्राब्दी के आरम्भ काल मे सामने आने वाली समस्याओं की परीक्षा करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार, पुस्तक के पहले भाग में निकटवर्ती अतीत की, दूसरे भाग मे, वर्तमान की और तीसरे मे भविष्य की रूपरेखा प्रस्तुत की है। लेखक के विचार से पद्धति के अनुसार बीते कल, आज और आगामी कल की प्रक्रियाओं के द्वन्द्वात्मक अन्तःसम्बन्ध से जो कुछ वर्तमान मे घटित हो रहा है उसका पूर्ण चित्र प्राप्त करना सभव है।

हमारे समय मे सामाजिक-राजनीतिक विषय पर कोई भी कृति, यदि उसका उद्देश्य वास्तविकता को यथार्थ रूप से समझना है तो, कुछ सीमा तक लेखक के अपने अनुसधान और अपने साथियों के विचारों, विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना से प्राप्त परिणामो, अपने निरीक्षणों, सम्पर्कों और विचार-विनिमयों के निष्कर्षों का समन्वित रूप होगी।

वर्तमान पुस्तक भी लेखक के द्वारा सोवियत संघ और विदेशों में जनता के अनेक साक्षात्कारो का संक्षिप्त विवरण है।

इस सम्बन्ध में, लेखक उन सबके प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करना चाहता है जिन्होंने किसी भी प्रश्न पर हुई इन बहसो में उत्तरों को खोजने में सहायता की है, उससे विचार-विमर्श किया है या आलोचना की है।

निस्सन्देह, प्रस्तुत कृति किसी भी प्रकार, उठाये गये प्रश्नो का अन्तिम उत्तर देने का दावा नही करती। यह केवल वर्तमान प्रश्नो को सही ढंग से प्रस्तुत करने और उन पर विचार-विमर्श करने का प्रयास करती है। यह सम्भव है कि पाठक, विशेष रूप से पाश्चात्य पाठक इस पुस्तक की कुछ बातो पर बहस करें अथवा लेखक से अपनी असहमति व्यक्त करें अथवा उसके दृष्टिकोण के पूरी तरह नकार दें, तथापि यह पुस्तक अपना लक्ष्य पूरा करेगी, क्योंकि उनमें इसका यह भी एक लक्ष्य है कि यहां बहस की गयी समस्याओं में रुचि उत्पन्न करें। किसी भी प्रकार यह कोई सिद्ध मंत्र प्रस्तुत नही करती या लेखक द्वारा दूसरों पर अपने विचार थोपने का प्रयत्न नही करती अपितु यह वर्तमान पीढ़ी की विद्यमान समस्याओं पर बहस या विचार-विमर्श करने का आमत्रण है। इस भावना के साथ यह पाठकों को समर्पित है।

अप्रैल 1977

प्रस्तावना

प्रत्येक पीढ़ी इस बात के लिए कारण खोज लेती है कि उसका अपना काल सभ्यता के इतिहास मे एक विशेष काल है और उसका असाधारण और अनुपम रूपों मे वर्णन करती है। वर्तमान पीढ़ी के पास ऐसा करने के पर्याप्त से अधिक आधार विद्यमान है।

विद्वानो, लेखकों, समाजशास्त्रियों और राजनीति वैज्ञानिकों ने बीसवी शताब्दी के सारतत्व को परिभाषित करने का प्रयास करते हुए इसे वैज्ञानिक व्याख्या दी है, शक्तिशाली शब्दों और सुमधुर सूक्तियों का प्रचुर उपयोग किया है, बड़ी ऐतिहासिक समानताएँ दिखायी हैं और आश्चर्यजनक विरोधाभास और लक्षण खोज निकाले है। उनमें से कुछ का उल्लेख हम यहाँ करेंगे।

अमरीकी राजनीति वैज्ञानिक हांस मॉर्गेन थॉ का कथन है कि आणुविक युग ने इतिहास मे एक नये युग के द्वार का उद्घाटन किया है, वह पूर्ववर्ती युगों से इतना भिन्न है जितना कि विद्यमान युग मध्य युगों से अथवा मध्य युग प्राचीन युगों से भिन्न था।

फ्रांसीसी अर्थशास्त्री एवं रिपब्लिकन रैडिकल एट रैडिकल सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव जीन जेकयुइस सर्वन श्राइबर कहते है "···औद्योगिक विश्व के कुछ भागों में, दो हज़ारहवे वर्ष का समाज आज हमारे जाने हुए समाज से इतना भिन्न होगा जितना कि इस समय हमारा भाग मिस्र और नाइजीरिया से है।"[1]

पश्चिमी जर्मनी के पत्रकार और सनसनीखेज पुस्तक 'गाड्स् ग्रेन्स एंड स्कालर्स' के रचयिता सी० डब्ल्यू० सेरम का कहना है: "हम बीसवी शताब्दी में मानवता के पाँच सहस्राब्दियों तक विस्तृत युग का उपसंहार कर रहे हैं···स्पेंगुलर के अनुमान के अनुसार पाश्चात्य ईसाइयत के आरम्भ के रोम की स्थिति मे नही हैं अपितु ईसा पूर्व 3000 की स्थिति में हैं।"[2]

अमरीकी समाजशास्त्री आलविन टॉफ़लर कहते है: "अधिकांश विख्यात

---

1 जीन-जैक्युइस-सर्वन श्राइबर, ले डेफी अमेरिकन, पैरिस 1969, पृ० 44

2. आल्विन टाफलर, फ्यूचर शॉक, न्यूयार्क 1971, पृ० 15

अनुवर्ती प्रकरणो में, अति प्रचलित वैचारिक सिद्धान्तों में पूँजीवादी विचारकों द्वारा हाल के वर्षों में उठायी गयी समस्याओं के वैकल्पिक उत्तर प्रस्तुत किये गये हैं। यह कार्य मार्क्सवाद के सिद्धान्तों तथा समाजवाद की आन्तरिक एवं वैदेशिक नीतियो के अनुभवों के निष्कर्षों के आधार पर किया गया है।

अन्त के प्रकरणों में, जो एक प्रकार से पूर्ववर्ती प्रकरणों का उपसंहार है, लेखक ने भविष्य के समाज पर दृष्टिपात किया है और सामाजिक विकास, भावी पथ के लिए मनुष्य की खोज और तीसरी सहस्राब्दी के आरम्भ काल मे सामने आने वाली समस्याओं की परीक्षा करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार, पुस्तक के पहले भाग में निकटवर्ती अतीत की, दूसरे भाग में, वर्तमान की और तीसरे मे भविष्य की रूपरेखा प्रस्तुत की है। लेखक के विचार से पद्धति के अनुसार बीते कल, आज और आगामी कल की प्रक्रियाओं के द्वन्द्वात्मक अन्तःसम्बन्ध से जो कुछ वर्तमान मे घटित हो रहा है उसका पूर्ण चित्र प्राप्त करना संभव है।

हमारे समय मे सामाजिक-राजनीतिक विषय पर कोई भी कृति, यदि उसका उद्देश्य वास्तविकता को यथार्थ रूप से समझना है तो, कुछ सीमा तक लेखक के अपने अनुसंधान और अपने साथियों के विचारों, विभिन्न दृष्टिकोणो की तुलना से प्राप्त परिणामो, अपने निरीक्षणों, सम्पर्कों और विचार-विनिमयों के निष्कर्षों का समन्वित रूप होगी।

वर्तमान पुस्तक भी लेखक के द्वारा सोवियत संघ और विदेशों मे जनता के अनेक साक्षात्कारों का संक्षिप्त विवरण है।

इस सम्बन्ध मे, लेखक उन सबके प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करना चाहता है जिन्होंने किसी भी प्रश्न पर हुई इन बहसों में उत्तरों को खोजने में सहायता की है, उससे विचार-विमर्श किया है या आलोचना की है।

निस्सन्देह, प्रस्तुत कृति किसी भी प्रकार, उठाये गये प्रश्नों का अन्तिम उत्तर देने का दावा नही करती। यह केवल वर्तमान प्रश्नो को सही ढंग से प्रस्तुत करने और उन पर विचार-विमर्श करने का प्रयास करती है। यह सम्भव है कि पाठक, विशेष रूप से पाश्चात्य पाठक इस पुस्तक की कुछ बातों पर बहस करें अथवा लेखक से अपनी असहमति व्यक्त करें अथवा उसके दृष्टिकोण के पूरी तरह नकार दें, तथापि यह पुस्तक अपना लक्ष्य पूरा करेगी, क्योंकि उनमे इसका यह भी एक लक्ष्य है कि यहाँ बहस की गयी समस्याओं में रुचि उत्पन्न करें। किसी भी प्रकार यह कोई सिद्ध मंत्र प्रस्तुत नही करती या लेखक द्वारा दूसरो पर अपने विचार थोपने का प्रयत्न नही करती अपितु यह वर्तमान पीढ़ी की विद्यमान समस्याओं पर बहस या विचार-विमर्श करने का आमंत्रण है। इस भावना के साथ यह पाठको को समर्पित है।

अप्रैल 1977

प्रस्तावना

प्रत्येक पीढ़ी इस बात के लिए कारण खोज लेती है कि उसका अपना काल सभ्यता के इतिहास मे एक विशेष काल है और उसका असाधारण और अनुपम रूपो मे वर्णन करती है। वर्तमान पीढ़ी के पास ऐसा करने के पर्याप्त से अधिक आधार विद्यमान हैं।

विद्वानो, लेखकों, समाजशास्त्रियों और राजनीति वैज्ञानिकों ने बीसवीं शताब्दी के सारतत्व को परिभाषित करने का प्रयास करते हुए इसे वैज्ञानिक व्याख्या दी है, शक्तिशाली शब्दों और सुमधुर सूक्तियों का प्रचुर उपयोग किया है, बड़ी ऐतिहासिक समानताएँ दिखायी हैं और आश्चर्यजनक विरोधाभास और लक्षण खोज निकाले हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख हम यहाँ करेंगे।

अमरीकी राजनीति वैज्ञानिक हांस मॉर्गेन थॉ का कथन है कि आणुविक युग ने इतिहास मे एक नये युग के द्वार का उद्घाटन किया है, वह पूर्ववर्ती युगों से इतना भिन्न है जितना कि विद्यमान युग मध्य युगों से अथवा मध्य युग प्राचीन युगों से भिन्न था।

फ्रांसीसी अर्थशास्त्री एवं रिपब्लिकन रैडिकल एट रैडिकल सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव जीन जेकयुइस सर्वन श्राइबर कहते है "···औद्योगिक विश्व के कुछ भागों में, दो हज़ारहवें वर्ष का समाज आज हमारे जाने हुए समाज से इतना भिन्न होगा जितना कि इस समय हमारा भाग मिस्र और नाइजीरिया से है।"[1]

पश्चिमी जर्मनी के पत्रकार और सनसनीखेज पुस्तक 'गाड्स् ग्रेव्स एंड स्कालर्स' के रचयिता सी० डब्ल्यू० सेरम का कहना है: "हम बीसवीं शताब्दी मे मानवता के पाँच सहस्राब्दियों तक विस्तृत युग का उपसंहार कर रहे है···स्पेंगुलर के अनुमान के अनुसार पाश्चात्य ईसाइयत के आरम्भ के रोम की स्थिति मे नही हैं अपितु ईसा पूर्व 3000 की स्थिति में है।"[2]

अमरीकी समाजशास्त्री आलविन टॉफ़लर कहते है: "अधिकांश विख्यात

---

1. जीन-जैक्युइस-सर्वन श्राइबर, ले डेफी अमेरिकन, पेरिस 1969, पृ० 44
2. आल्विन टाफलर, फ्यूचर शॉक, न्यूयार्क 1971, पृ० 15

सम्मतियाँ कहती है कि वर्तमान युग मानव इतिहास के द्वितीय महाविभाजन मे किंचित् भी कम नही है, इसकी तुलना केवल ऐतिहासिक सातत्य मे सर्वप्रथम हुए महाविभाजन से—बर्बर युग से सभ्य युग में संक्रमण से—की जा सकती है।"[1]

पहली नजर मे, ये और इसी प्रकार के अन्य कथन कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण भले लगें, परन्तु किसी हद तक उनकी प्रामाणिकता सन्देह से परे हैं।

निस्सन्देह, बीसवी शताब्दी मानवता के इतिहास में सर्वाधिक क्रान्तिकारी शताब्दी है। इसका आरम्भ ही असाधारण गम्भीर सामाजिक परिवर्तनों से, विशाल सख्या में सामान्यजन के ऐतिहासिक विकास मे सक्रिय और अपूर्व योगदान से और बौद्धिक क्षेत्र मे व्यापक महत्व की प्रगति से लक्षित किया गया। इसी कारण इतिहास सामाजिक प्रगति के पथ पर इतनी तेज उड़ान भर सका जैसी पहले कभी नही भर सका था। इतिहास का एक नया युग आरम्भ हुआ जिसके सारतत्व को लेनिन ने इन शब्दों में प्रकट किया : "पूंजीवाद और उसके अवशेषों का उन्मूलन तथा कम्युनिस्ट व्यवस्था के आधारों की स्थापना।"[2] दूसरे शब्दों मे, इसके सारतत्व की शब्दावली मे, हमारा समय पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना से समाजवाद मे संक्रमण का युग है।

तथापि, वर्तमान युग को केवल दो संरचनाओं के मध्य विभाजक रेखा के रूप में बताना पर्याप्त नही है। केवल इस परिस्थिति को ही इसके असाधारण युग होने का कारण मानना पर्याप्त नही है। यदि संरचना के परिवर्तन को ही एकमात्र कसौटी माना जाय तो हमारी शताब्दी किसी भी प्रकार उन दूसरी शताब्दियो से भिन्न नही है जिनमे एक उत्पादन प्रणाली का स्थान दूसरी ने लिया था। तथापि हमारे मामले मे, यह गुणात्मक रूप से नयी संरचना में संक्रमण का प्रश्न है एक ऐसी संरचना मे जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देती है। इसी कारण हमारा युग, जैसाकि एंगेल्स का पूर्वानुमान था, केवल एक संरचना के स्थान पर दूसरी की स्थापना का ही प्रतिनिधित्व नही करता अपितु "आवश्यकता के राज्य से स्वतंत्रता के राज्य पर मनुष्य के आरोहण[3] का भी प्रतिनिधित्व करता है।"

बहुत से पश्चिमी लेखक क्रान्तिकारी संक्रमण का वर्तमान युग की प्रकृति के रूप में उल्लेख करते हुए और उस पर बल देते हुए, कहते है कि यह जो पुरानी व्यवस्था का स्थान ले रहा है समाजवाद नही है, अपितु पूंजीवाद का ही नया

---

1. आल्विन टाफलर, फ्यूचर शॉक, न्यूयार्क 1917, पृ० 14
2. वी० आई० लेनिन "इटली की समाजवादी पार्टी के आन्तरिक सघर्ष के सम्बन्ध मे" सकलित रचनाएं, खण्ड 31, पृ० 392
3. एफ० एंगेल्स, एंटीड्यूरिंग, मास्को, 1975, पृ० 336.

रूपान्तरण है जो 'औद्योगिक' और 'औद्योगिकोत्तर' समाज मे वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के प्रभाव के अन्तर्गत सक्रान्त हुआ है। वे दावा करते है कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति पूंजीवाद और समाजवाद के बीच और मजदूर वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच विरोधों को स्वयमेव हटा देती है। नये के उनके वर्णन मे, **औद्योगिकोत्तर** युग जिसे कि वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति कथित रूप से लगभग स्वतः ही उत्पन्न करती है, सामान्यतया एक पहलू (यद्यपि वह बहुत महत्वपूर्ण है)—भौतिक सम्पदा का उत्पादन का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है जबकि समाज की सामाजिक-राजनीतिक संरचना की आवश्यक रूप से उपेक्षा की गयी है। जबकि नयी सामाजिक-आर्थिक संरचना—कम्युनिस्ट समाज—का उदय और विकास केवल भौतिक सपदा में वृद्धि तक ही सीमित नही : इसका अर्थ है जनगण के समस्त सामाजिक-राजनीतिक सास्कृतिक और बौद्धिक जीवन में मूलभूत परिवर्तन। यह 'मानव समाज की प्रागैतिहासिकता की समाप्ति' को और उसके 'वास्तविक इतिहास'[1] के आरम्भ को लक्षित करता है।

अपनी सार्थकता मे, इतिहास में इस महान और विश्व-व्यापी परिवर्तन की तुलना वास्तविक रूप में केवल बर्बर युग से वास्तविक सभ्यता मे सक्रमण के साथ ही की जा सकती है। जहाँ तक आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति की बात है वह एक प्रकार का विस्फोट (निस्सन्देह तात्कालिक नही, अपितु दीर्घकालिक) तथा उत्पादक शक्तियों के उभार के रूप मे है जो उत्पादन सम्बन्धों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। निस्सन्देह, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगतियो का स्वयं मे एक स्थायी मूल्य है। साथ-ही-साथ, वे सामाजिक प्रक्रियाओ को उत्प्रेरित करती हैं, उनको निरन्तर नया वेग प्रदान करती है, सामाजिक क्रान्ति के कदम को तेज करती हैं। यह वह महत्वपूर्ण पहलू है जिसे पूंजीवादी देशो के शोधकर्मी प्रायः विस्मृत कर देते है।

वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति का तथा वर्तमान की सामाजिक क्रान्तियों का उद्गम इस शताब्दी के आरम्भ तक पहुँचता है। पूरे विज्ञान को अपने सैद्धान्तिक शास्त्रीय आधारो की फिर से परीक्षा करनी पड़ी। इसे बहुत-सी पिछली अवधारणाएँ छोड़नी पड़ी और इससे भी आगे बढ़कर विश्व के सम्बन्धी वर्तमान समझ तक पहुँचने के लिए चिन्तन के समग्र ढांचे को संशोधित करना पड़ा। जैसाकि हमें ज्ञात है, यह वैज्ञानिक क्रान्ति पिछली 19वी शताब्दी और बीसवी शताब्दी के आरम्भ में सिद्धान्त में और प्रयोग मे प्राप्त उपलब्धियों से प्रवर्तित हुई थी जिनमें से कुछ दो हैं :—क्वान्टम सिद्धान्त का और सापेक्षवाद के सिद्धान्त का निर्माण,

1. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, कलेक्टेड वर्क्स तीन खण्डो मे खड 1, मास्को, 1973 पृ० 504-505

परमाणु के प्रतिमान का परिष्कार, और रेडियोधर्मिता के परिघटन की खोज। संक्षेप मे, ये उपलब्धियाँ विज्ञान के इतिहास मे 'भौतिकी मे क्रान्ति' के रूप मे दिखायी गयी, जिनके द्वारा अन्ततः श्रम के उपकरणों मे क्रान्ति हुई—अर्थात् वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति (STR) का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जैसे-जैसे वैज्ञानिक-प्राविधिक क्रान्ति तेज़ रफ़्तार से आगे बढ़ी, उसने पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति पर आधारित समाज की अतिपक्वता के रूप में परिभाषित प्रकृति का पर्दाफ़ाश कर दिया। जैसाकि व्यवहार से ज्ञात होता है, विज्ञान एवं प्राविधिकी की बहुत-सी उपलब्धियाँ साधारणतया अपने उग्र तरीक़ों से एकरूपता लाने वाली शैया के नीचे दबाकर नही रखी जा सकती, राज्य-इजारेदारी आर्थिक व्यवस्थाके ढांचे में भी उनको नही बैठाया जा सकता। ऐसा करने के प्रयास गुलीवर के बूटो पर लिलीपुटियों के प्रयासो का स्मरण कराते हैं।

दूसरी ओर, वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति की उपलब्धियों की प्रकृति ही विशाल उत्पादक शक्तियो के विकास के साथ सम्पृक्त होकर उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियो के स्वामित्व के सिद्धान्तों के साथ तथा पूंजीवाद की इजारेदारी मञ्जिल के अन्तर्निहित कानूनों के साथ सुस्पष्ट विरोधों के क्षेत्र मे प्रविष्ट हो जाती है। राजा आयटेस (Actes) के बीजों[1] की तरह वैज्ञानिक और प्राविधिक विचारों के आविष्कार, पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की अस्वास्थ्यकर भूमि मे बोये जाकर अन्ततः स्वयं बोने वाले के ही विरुद्ध हो जाते हैं, और प्रतिभा की शक्तिशाली उपलब्धियाँ मानव समाज के विरुद्ध हो जाती हैं। उत्पादन की अराजक पूंजीवादी पद्धति की स्थितियों मे वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति की उपलब्धियाँ अनिवार्यतया भ्रष्ट और कभी-कभी उच्छृंखल हो जाती है। इजारेदार पूंजी की संपत्ति बनकर वे इसके द्वारा उसके निजी हितो के लिए काम मे लाई जाती हैं और अव्याख्येय भ्रान्तियों तथा इससे भी बुरे आत्मविनाश के ख़तरे मानवता के सामने लाती है।

इस प्रकार वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति पूंजीवाद के उन्मूलन को न केवल आगे प्रगति की पूर्वावश्यकता ही बनाती है, अपितु स्वयं सभ्यता की रक्षा करने की शर्त भी बनाती है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति का सामाजिक क्रान्ति को तीव्र करने वाले कारकके रूप मे तथा इसके आदर्शों के जनक के रूप मे भी यही लक्ष्य है। इसमें दो प्रक्रियाओ की परस्पर क्रिया अभिव्यक्त होती है, जो यद्यपि स्वभावतः भिन्न है,

---

1. यूनानी मिथक के अनुसार कालचिस् के राजा आयटेस ने जैसन के कौशल और साहस की परीक्षा ली जिसके लिए उसने उसे विषधर के दांतो को बोने के लिए दिया। जब जैसन ने दांतो को बोया, सशस्त्र मनुष्यो की एक फ़सल उग आयी और उसके विरुद्ध खड़ी हो गयी।

पर ऐतिहासिक रूप से सम्बद्ध है और दोनों साथ मिलकर हमारे युग की संक्रमण की प्रकृति को सुनिश्चित करते है।

एक सामाजिक-आर्थिक संरचना से दूसरी में संक्रमण बिना संघर्ष और पीड़ा के नहीं हो सकता क्योंकि यह केवल उत्पादन की आर्थिक पद्धति के स्थान पर दूसरी का स्थापित होना नही है अपितु एक महान् सामाजिक और आत्मिक क्रान्ति भी है। इस प्रकार, पुरातन और नवीन के बीच, मरणासन्न और उदीयमान के बीच मुकाबला अपरिहार्य है। और यही है जो अपने क्रम में वैचारिक संघर्ष की उत्तेजना को—विरोधी विश्व दृष्टिकोणों के बीच, दार्शनिक दृष्टियों के बीच और आत्मिक मूल्यों की व्यवस्थाओं के बीच प्रतिस्पर्धा को—तीव्र करता है। इसीलिए वर्तमान युग अन्य किसी भी संक्रमणकालीन युग से भी अधिक वैचारिक संघर्ष मे भरा-पूरा है क्योंकि मौलिक सामाजिक उद्‌भेद होने को है, न केवल पुरानी पूंजीवादी राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है अपितु इसकी मानसिकता के प्रतिमान भी नष्ट हो रहे हैं। जनगण के मस्तिष्कों में एक क्रान्ति, विचारों का संघर्ष, प्रगति पर है। बड़े परिश्रम के साथ नया समाज जन्म ले रहा है; जैसाकि लेनिन ने इसके सम्बन्ध में कहा था—"यह आश्चर्य की बात नही है कि यह विश्व तैयार शुदा माल की तरह अस्तित्व मे नही आता। जुपिटर के सिर से जैसे मिनर्वा निकला था उस प्रकार नही आता।"[1]

इतिहास में इस प्रकार का कोई दूसरा युग नही देखने मे आया जिसमे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संकटों का ऐसा सकेन्द्रण हो, इतनी अधिक संख्या मे जटिल कार्यभार सामने आये हो और उनका इस प्रकार की अन्तर्विरोधी उलझनो से भर दिया गया हो जैसाकि बीसवी शताब्दी मे। सामाजिक न्याय और समान अधिकार के लिए शोषित वर्गो के युगो से चले आ रहे संघर्ष मे बहुत-सी 'शाश्वत' समस्याओं का समाधान अब राष्ट्रो के व्यवहार में प्राप्त हो गया है जिन्होने समाजवादी रूपान्तरण का मार्ग स्वीकार किया है।

प्रतिदिन जीवन निरन्तर नयी माँगें सामने लाता है। पहले कभी भी मानव समाज के समक्ष उसके अपने अस्तित्व की समस्या इतने निकट रूप से उपस्थित नही हुई उदाहरण के लिए, यदि पहले कभी जनगण किसी अलौकिक शक्ति के हाथों विश्व के अन्तर्भासिक विनाश की कल्पना करते थे तो अब पृथ्वी पर विद्यमान प्रत्येक जीवित वस्तु का विनाश स्वयं उनके अपने ही कार्यो के फलस्वरूप आत्मघाती आणविक सर्वनाश के रूप मे सामने आ सकता है। मानववंश के सदस्यो ने पहले कभी भी इतने स्पष्ट रूप से अनुभव नहीं किया होगा कि वे सब उसी नाव में

1. वी० आई० लेनिन :'अमरीका के मजदूरो के नाम पत्र' संकलित रचनाएं खण्ड 28 पृ० 74

सवार हैं जिसे कि पृथ्वी कहा जाता है। पहले कभी भी विभिन्न सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के बीच सहयोग इतना आवश्यक नहीं हुआ।.और अन्ततः, पहले कभी भी मानवता के भविष्य के दौर का चुनाव इतना कठिन रहा।

विश्व शान्ति अथवा आणविक युद्ध, सामाजिक प्रगति के लिए व्यापक क्रियाशीलता अथवा इजारेदारियों द्वारा किया जाने वाला प्रबल उत्पीडन, प्रकृति पर मानव की शक्ति का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग अथवा उसके संसाधनों का बर्बरतापूर्ण निश्शेषी करण—ये और इसी प्रकार के अत्यधिक महत्वपूर्ण विकल्प अपूर्व तात्कालिकता प्राप्त करते जा रहे हैं; बिना किसी अतिशयोक्ति के, करोड़ों लोगों के लिए वे जीवन और मृत्यु के प्रश्न बनते जा रहे हैं। एक शब्द में, मानव समाज अपने इतिहास में एक ऐसे बिन्दु पर आ पहुंचा है जिसके परे असाधारण छलांग लगानी पड सकती है जहां या तो स्वर्ग का नन्दन कानन मिलेगा या अपना सर्वनाश।

बीसवी शताब्दी ने अभी अपना सम्पूर्ण पथ पूरा नही किया और अभी से अगली शताब्दी इसके समक्ष अपनी पर्यावरण, ऊर्जा, जनसांख्यिकी आदि विश्वव्यापी समस्याओं की चुनौती प्रस्तुत कर रही है। इस प्रकार हमारी शताब्दी के कार्यभार की जटिल ग्रन्थि नये समाजवादी विश्व के उदय और विकास, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के विविध परिणामों और सामाजिक क्रान्ति तथा इसकी जटिल अन्तःक्रिया के साथ जुड़ी है।

अतीत मे पूंजीवादी व्यवस्था के उदय के आरम्भ मे प्रबोध का युग भी संक्रान्ति युग था जिसमे कठोर वैचारिक संघर्ष चल रहा था, जिसमे एक ओर सामंती नौकरशाही-राजशाही गिरोहो के दूसरी ओर तीसरी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे जो समानता, स्वतंत्रता और कल्याण और न्याय के आदर्शों की मांग करते थे।

कम्युनिज्म और कम्युनिज्म विरोधियों के बीच आधुनिक वैचारिक संघर्ष में विशेष रूप से उन आदर्शों को उपलब्ध करने के प्रश्न पर आज परस्पर तलवारें टकरा रही हैं, लेकिन पूर्णतया भिन्न परिस्थिति मे। पूंजीवादी समाज के शासक वर्ग के हितो की रक्षा करने वाली पूंजीवादी विचारधारा समानता और मानववाद के आदर्शों की घोषणा के सम्बन्ध मे अपेक्षाकृत अस्पष्ट और निराकार स्थापनाओ को आधार बनाकर चलती है जैसेकि वह उनके सम्बन्ध में कहती है 'पवित्र' स्वतंत्रता, 'पवित्र' जनतंत्र, 'सार्वभौम' मानव अधिकार और इसी प्रकार की बाते, भलाई और बुराई के इस प्रकार की अमूर्त विचारो और उनसे उत्पन्न असंख्य भ्रमो के विरुद्ध कम्युनिस्ट विचारधारा ऐतिहासिक प्रक्रिया के वस्तुगत नियमों को प्रस्तुत करती है। उसने सन्तोषप्रद तरीके से दिखा दिया है कि सामाजिक परिघटनाओं के अध्ययन के लिए केवल वर्गीय दृष्टिकोण ही सार्वभौम मानवीय श्रेणियो को उनके उपयुक्त स्थान मे रखता है और उनको यथार्थ सारतत्व को पूर्ण करता है। यदि संदर्भ का यह बिन्दु छूट जाता है तो स्वतंत्रता, जनतंत्र, समानता, मानव

अधिकार आदि शब्द अर्थ खोकर खोखले हो जाते है।

हमारा विश्वास है कि सार्वभौम मानवीय आदर्शों की व्यावहारिक उपलब्धि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति की उपलब्धियो बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग से जुडी है, सर्वोपरि वह सामाजिक क्रान्ति के उच्च पथ से तथा पूंजीवाद से कम्युनिस्ट निर्माण के संक्रमण के साथ जुडी है। कम्युनिस्ट अनुभव करते है कि आधुनिक विश्व अपने सम्मुख उपस्थित समस्याओं और भविष्य की विशाल चुनौतियो का सामना कर सकता है। हमारी विचारधारा ऐतिहासिक आशावाद की विचारधारा है।

अध्याय : 1

कम्युनिज्म के विरुद्ध धर्म युद्ध

"तोपों से भी अधिक उच्चस्वर से विश्व मे विचारों का गर्जन हो रहा है।"
पैक्सटन[1]

विचारों के विरुद्ध बन्दूकें

सौ से अधिक वर्ष हो गये, कम्युनिस्ट आन्दोलन और इसके सैद्धान्तिक आधार, मार्क्सवाद-लेनिनवाद, करोड़ों लोगों के भाग्य को अधिकाधिक प्रभावित करते हुए, समस्त विश्व के वैचारिक जीवन के प्रधान केन्द्र बन गये हैं।

इस काल मे, वर्ग-शक्तियों के सन्तुलन में होने वाले परिवर्तनों को आधार बनाते हुए, कम्युनिज्म और कम्युनिज्म-विरोधियों के बीच वैचारिक संघर्ष तीन प्रमुख मंजिलो से गुज़रा है, जिनमें से प्रत्येक मानव समाज के वैचारिक और राजनीतिक जीवन में हुए मूलभूत परिवर्तनों से समानता रखती है।

इसकी पहली मंजिल, मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के उदय के साथ अथवा अधिक स्पष्टता से कहे तो, जब मज़दूर वर्ग के राजनीतिक अनुभव की मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन की शिक्षाओं मे व्याख्या की गयी और उसका सामान्यीकरण किया गया, जिसने कि श्रमिक जनता को पूँजी के विरुद्ध अपने मुक्ति-संघर्ष में हथियार बन्द किया, तब से आरम्भ हुई।

दूसरी मंजिल, 1917 मे रूस में हुई अक्तूबर क्रान्ति की विजय से जानी जाती है, जो विश्व समाजवादी क्रान्ति की पहली विजय थी।

तीसरी मंजिल के आरम्भ के लिए दूसरे विश्वयुद्ध तक जाना होगा, जब फ़ासिज़्म पर जनवादी शक्तियों की विजय से समाजवादी समुदाय के निर्माण के

1 डिक्शनरी ऑफ अमेरिकन मैक्जिम्स, डेविड किन द्वारा सपादित, न्यूयार्क 1959 पृष्ठ 249.

लिए, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट एवं श्रमिक-वर्ग-आन्दोलन के नये शक्तिशाली उभार के लिए और साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था के उन्मूलन के लिए अनुकूल पूर्वस्थितियों का निर्माण हुआ।

प्रत्येक नयी मंजिल मे वैज्ञानिक कम्युनिज्म की स्थिति विस्तृत और सुदृढ होती गयी और इसके शत्रुओ को अपनी कार्यनीति मे संशोधन करने के लिए तथा नयी रक्षात्मक स्थितियों पर पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा। क्योंकि मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी अवधारणाओ के विरुद्ध उस समय संघर्ष करना, जबकि वे केवल सिद्धान्त के रूप मे थी, एक अलग बात थी। और तब यह भिन्न बात बन गयी जबकि अक्तूबर क्रान्ति की विजय से वे अवधारणाएँ समाजवाद के निर्माण में व्यावहारिक रूप से मूर्त होने लगी। और फिर हमारे समय मे यह एक पूर्णतया भिन्न बात है, जबकि समाजवादी देशों का समुदाय अन्तर्राष्ट्रीय विकास की निर्णायक शक्ति बन गया, जबकि श्रमिक वर्ग के मुक्ति संघर्ष ने विश्वव्यापी रूप धारण कर लिया, और जबकि पूँजीवाद के सामान्य संकट की गहनता ने इसके सभी अन्तर्विरोधों को पहले कभी की अपेक्षा अधिक तीव्रता से खुलकर सामने ला दिया।

कम्युनिज्म विरोध को निरन्तर अपने पहलू बदलने को विवश होना पड़ा है। इसलिए अब यह मार्क्सवाद-विरोधी, बोल्शेविज्म-विरोधी रूप मे, सोवियतवाद विरोधी के रूप मे और कभी इन सबके मिलेजुले रूप मे और अन्य रूपों मे सामने आता है। एक प्रकार से, कम्युनिज्म विरोध का यह विकास मेहनतकश जनता के मुक्ति संघर्ष के समस्त पथ को प्रतिबिम्बित करता है और यह आधुनिक युग में सामाजिक-राजनीतिक विकास के सामान्य लक्षणों की दृष्टि से बहुत शिक्षाप्रद हो सकता है।

सर्वप्रथम, जब संगठित मज़दूर आन्दोलन अभी उदय होने लगा था और मार्क्सवाद ने प्रगतिशील मजदूरों के मस्तिष्कों को प्रभावित करना आरम्भ ही किया था, तब कम्युनिज्म-विरोध की अनिवार्य कार्यनीति थी, स्पष्ट रूप से वैज्ञानिक कम्युनिज्म की प्रामाणिकता को नकारना। कम्युनिज्म विरोध सामान्यतया एकदम आरम्भिक रूपो में था, इसके प्रचारक अधिसंख्य मजदूर जनता की सैद्धान्तिक अनुभवहीनता पर ध्यान देते थे, जो राजनीतिक जीवन मे अपने को सम्मिलित करने के लिए केवल शुरुआत कर रही थी। पूंजीवादी पंडित या तो मार्क्सवाद की उपेक्षा करते थे या इसे हानिकारक और मानव-विरोधी दृष्टिकोण समझते थे जो ऐतिहासिक विकास के तर्क का विरोधी और स्वयं मानव स्वभाव के ही विपरीत है।

1848 मे 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र' के प्रकाशन के तुरन्त बाद पूंजीवादी प्रेक्षको ने कहना आरम्भ किया कि कम्युनिज्म एक मिथ्याविश्वास है और किसी भी समाज का विरोधी है। उस काल मे पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थकों को

यह भी आवश्यक नही प्रतीत होता था वे अपने लिए उचित शब्दों के चुनाव के लिए श्रम करें। इसके विपरीत, वे कम्युनिस्टों के विरुद्ध कठोर और अपशब्दों से भरी भाषा का प्रयोग करते थे, उस समय जनता को कम्युनिस्टों के 'घातक' प्रभाव से बचाने का यह सर्वोत्तम उपाय समझा जाता था। कम्युनिस्टों को षड्यंत्रकारियो के छोटे गुट और अशान्ति उत्पन्न करने वालों, समाज का नाश करने वालों, आचार भ्रष्ट और सभ्यता के आधारों के जडे खोदने वालो के रूप में चित्रित किया जाता था।

दूसरे शब्दों मे, उस मंजिल मे कम्युनिज्म-विरोध अनिवार्यतया मार्क्सवाद को मिटा देने का यत्न कर रहा था, पूँजीवादी व्यवस्था के अतिरिक्त किसी अन्य विकल्प को प्रस्तुत किये बिना वह कम्युनिस्ट शिक्षाओं को नकार रहा था। मुक्त उद्योग को ही प्रगति की एकमात्र प्रेरक शक्ति माना जाता था। सभ्यता को अभिव्यक्त करने का निजी सम्पत्ति के पवित्र सिद्धान्त के आधार के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। पूंजीपतियो की उदारवादी संस्थाएँ सामाजिक विकास की सर्वोच्च उपलब्धि घोषित की जाती थी।

मजदूर वर्ग के आन्दोलन के उषाकाल मे पूँजीपति कम्युनिस्ट 'षड्यंत्रकारियों' और 'उपद्रवियो' के विरुद्ध संघर्ष के हिंसक उपायों के प्रयोग को स्पष्ट रूप से वरीयता देते थे। इसलिए अभिजात पूँजीवादी शासक, कम्युनिस्ट विचारो की वकालत करने वालों को 'विद्रोही अपराधी' घोषित कर उनका चालान करने, कारावास भेजने, आतंकित करने, निर्वासन आदि, दंड जो उस समय कम्युनिस्टों को दिये जाते थे, को न्यायसंगत समझते थे। कम्युनिस्टों की असहमति को प्रत्यक्ष दमन द्वारा कुचलने की नीति मजदूर वर्ग के समग्र आन्दोलन के विरुद्ध संघर्ष मे पूँजीपतियों द्वारा अनुसरण की गयी आम नीति के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। सर्वहारा वर्ग के पहले आन्दोलनों को—फ्रांस मे 1831 का लिओन्सका और 1934 का विद्रोह जर्मनी में 1844 में साइलेशिया के बुनकरो के उपद्रव—खून मे डुबो दिया गया तथा 1871 के पैरिस कम्यून की वस्तुतः हत्या कर दी गयी।

पैरिस कम्यून के बाद हुए यूरोपीय पूँजीवाद के अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण विकास के दौर में, प्रतिगामियों ने यह भ्रम पाल लिया कि केवल पुलिस दमन के द्वारा ही मजदूर-आन्दोलन को समाप्त किया जा सकता है। यह समझ लिया गया कि किसी कम्युनिज्म का वैचारिक प्रतिरोध करने के लिए किसी वैचारिक प्रत्युत्तर की आवश्यकता नही है। यह भ्रम बहुत जल्दी टूट गया।

जैसे ही मुक्त प्रतियोगिता का पूँजीवाद इजारेदार पूँजीवाद के रूप में विकसित हुआ, इसके सभी अन्तर्विरोध एकत्र और तीव्र हो गये। सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी कार्रवाइयों ने अधिकाधिक बढ़ता क्षेत्र, सघनता और राजनीतिक महत्व प्राप्त कर लिया। मजदूर वर्ग आन्दोलन में मार्क्सवादी विचार अधिकाधिक फैलते गये।

शताब्दी के बदलने के साथ, वर्ग-संघर्ष पूरी तेज़ी पकड़ चुका था। सत्ताधारी अभिजात वर्ग ने अपना आधिपत्य सुरक्षित रखने के लिए नये मार्ग खोजना आरम्भ कर दिया था। वे मार्क्सवाद के विरुद्ध वैचारिक सुरक्षा के लिए अधिकाधिक सहारा ढूंढने के लिए विवश हो गये।

सर्वहारा जन-आन्दोलन के विकास और मार्क्सवाद के विस्तार ने यूरोप मे वैचारिक मोर्चों पर स्थितियों को पूरी तरह बदल दिया। संभवतः मुख्य परिवर्तन यह हुआ कि समस्त पूंजीवादी सामाजिक-राजनीतिक सिद्धान्तों को उन्ही समस्याओं पर आवश्यक रूप से ध्यान केन्द्रित करना पड़ा जिन्हे वैज्ञानिक कम्युनिज्म ने सामने रखा था। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, वैचारिक शत्रु ने वैज्ञानिक कम्युनिज्म के निष्कर्षों को ध्यान मे रखा और उनके खण्डन के लिए उसे अपने अन्तहीन प्रयासों से नये तरीक़े खोजने पडे। यह महत्वपूर्ण है कि प्रबोध युग के पूंजीवादी विचारकों के मानववाद की तुलना मे इजारेदार पूंजीपति वर्ग के विचारकों ने मनुष्य की उपेक्षा की अपनी नयी स्वरलहरी चुनी : विवेक हेय समझा जाने लगा, और विवेकहीन, नैसर्गिक वृत्ति की पूजा की जाने लगी। दूसरे शब्दों में, ऐतिहासिक पहल को खोते हुए पूंजीपति वर्ग ने वैचारिक आक्रमण की अपनी स्थितियां भी खो दी। पूंजीवादी सामाजिक-राजनीतिक विचार अब अधिकाधिक मार्क्सवाद-विरोध के रूप में प्रवाहित होने लगा क्योंकि उसने मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं को विशेष रूप से सामाजिक प्रक्रिया के वैज्ञानिक संज्ञान को और समाजवादी आदर्शों के मूल्य को कलंकित एवं खण्डित करने का निश्चय कर लिया था।

पूंजीवादियों के समर्थकों और अवसरवादियों की मैत्री

इसे केवल संयोग की बात नही समझा जा सकता कि आर्थर शोपेन हावर का विनाश के आदर्शवादी दर्शन[1], जो नियम शासित प्रकृति और मानव अस्तित्व की सार्थकता को ही नकारता है और जिसे लगभग विस्मृत किया जा चुका था, ने उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में पुनः जीवन प्राप्त कर लिया। वस्तुगत प्रक्रिया के रूप मे ऐतिहासिक प्रक्रिया के मार्क्सवादी विचार के प्रति भार के रूप में कार्य करने के लिए अविवेकवाद के उपदेश तैयार किये गये। शोपेन हावर का अनुयायी ऐडुअर्ड वोन हर्टमान ने और आगे बढ़ कर अचेतन का अपना दर्शन सामने रखा।[2] वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धांत की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया के रूप में अस्तित्व मे आकर

1. आर्थर शोपेन हावर, 'डाइवैल्ट एल्स विल अडवोर्स्टेलंग' बी. डो. I बर्लिन, एण्ड विएन, 1924, SS 5-9
2 एडुअर्ड वोन हर्टमान 'फिलासोफी डैस अन विवुस्टन' बी. डी. II 'मैटाफिजिक डैस अनविबुस्टन', बर्लिन, 1876, SS416-22, 446

इसने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के समानांतर विश्व की दु:खवादी और स्वेच्छावादी अवधारणा प्रस्तुत की जिसकी अटल नियति मानवीय प्रभाव के समक्ष नहीं झुकती।

पूँजीवादी दार्शनिक भी उदारवादियों से लेकर घोर प्रतिक्रियावादियो तक, समाज की सामाजिक-राजनीतिक संरचना की समस्याओ को अज्ञेयवाद और अविवेकवाद की दृष्टि से देखते है, उदाहरणार्थ, ये ऐसे विचार थे जो अपने काल में अपेक्षाकृत अधिक प्रचारित हुए इनमे प्रमुख थे 'अंग्रेजी व्यवहारवाद के प्रसिद्ध प्रवक्ता हर्बर्ट स्पेंसर जो अपने विकासमूलक संतुलन के सूत्र के आधार पर किसी प्रकार के क्रातिकारी रूपांतरण का आवश्यक रूप से विरोध करते थे और कम्युनिज्म को प्रतिगामी मानते थे।[1]

जर्मन दार्शनिक नीत्शे की सामाजिक-राजनीतिक शिक्षाएँ, नवजात इजारेदार पूँजीपति वर्ग के लिए, इसकी प्रतिक्रियावादी नीति और सैन्यवाद के लिए प्रत्यक्ष, नग्न और पागलपन भरा समर्थन थी। यह शोपेन हावर के निष्क्रिय निराशावाद से ऊपर उठने के लिए और विश्व के नये स्वामियों, स्वामीवंश की ऐक्यबद्धता के लिए, श्रमिक आंदोलन और समाजवाद के विरुद्ध निर्णायक और निर्मम संघर्ष के लिए आह्वान था।[2] यह अकारण नहीं था कि कुछ दशकों के बाद हत्यारे फ़ासिस्ट नीत्शे को आदर्श मानते हुए आये और उनका दर्शन उनके विश्व आधिपत्य के दावे को नैतिक न्यायसंगतता प्रदान करता था।

इसी समय, उन्नीसवी शती के उत्तरार्ध मे, मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी सिद्धांत के अवसरवादी विरूपण द्वारा पूँजीवाद को खुला समर्थन देकर पहले ही सुरक्षित कर दिया गया था। लेनिन ने लिखा : "इतिहास की द्वन्द्वात्मकता इस प्रकार की है कि मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक विजय ने इसके शत्रुओ को अपने को मार्क्सवादियों के रूप में छिपाने के लिए विवश किया था, भीतर-ही-भीतर सड़ चुका उदारतावाद समाजवादी अवसरवाद के रूप में स्वयं को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कर रहा था।[3] तभी से, मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी शिक्षाओं के विरुद्ध संघर्ष में अवसरवाद पूँजीवाद का मुख्य आरक्षित-दल है। इजारेदार पूँजीवाद ने अवसरवाद के साथ गुपचुप मैत्री कर ली, इस पर विश्वास किया और इसकी सहायता की। अवसरवाद भी, अपनी बारी में चूका नही। उसने स्वयं श्रमिक आन्दोलन की पाँतों मे मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विरुद्ध एक प्रकार का 'दूसरा मोर्चा' खोल दिया।

जर्मन सामाजिक जनवादी एडुअर्ड बर्न्सटीन का कुख्यात नारा 'आन्दोलन ही

---

1. देखें हर्बर्ट स्पेन्सर, 'फर्स्ट प्रिंसिपिल्स', न्यूयार्क, एस. डी. पृ० 314
2. फ्रेडरिक नीत्शे बियोंड गुड एंड ईविल, न्यूयार्क, एस डी.
3. वी. आई. लेनिन 'द हिस्टोरिकल डेस्टिनी ऑफ द डॉक्ट्रिन ऑफ कार्ल मार्क्स', संकलित रचनाएँ, खंड 18, पृ० 584

सब कुछ है, अन्तिम लक्ष्य कुछ नहीं' सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के समाजवादी उद्देश्य का सीधा विरोध था। यह संशोधनवाद और अवसरवाद का एक प्रकार का सैद्धान्तिक ध्वज बन गया, जो उन्नीसवी शती के अन्त तक एक अन्तर्राष्ट्रीय घटना बन गया।

सैद्धांतिक स्तर पर, अवसरवाद अनिवार्य रूप से मार्क्सवादी शिक्षा की समस्त मौलिक प्रस्थापनाओ के विरुद्ध खड़ा हुआ। उसने मार्क्स द्वारा की गयी पूंजीवाद की आलोचना सर्वहारा एकाधिपत्य के और मजदूर वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका के विचारों तथा साम्राज्यवाद और समाजवादी क्रान्ति के सम्बन्ध में लेनिन की शिक्षाओं को अपने आक्रमण का लक्ष्य बनाया। यह सिद्ध करने का यत्न किया गया कि पूँजीवाद ने अभी तक अपनी सम्भावनाएँ समाप्त नही की और फलस्वरूप समाजवादी क्रान्ति की पूर्वावश्यकताएं अभी परिपक्व नही हुई। दक्षिणपंथी सामाजिक जनवादी नेताओ ने अपनी मिथ्या-वैज्ञानिकअवधारणाओं को विभिन्न नामपट्टों के अन्तर्गत विज्ञापित किया : 'प्रगतिशील पूंजीवाद' (बर्न्सटीन), 'वित्तीय पूंजी का नया आर्थिक युग' (कुनो), 'अतिसाम्राज्यवाद' (कौट्स्की), 'संगठित पूंजीवाद' (हिल्फर्डिंग)। निस्सदेह, ये सभी 'रूपांतरित पूंजीवाद' के उपयोग में सम्मिलित थे और पूंजीवादी जनतंत्र की रक्षा के लिए आवरण के रूप में 'वर्ग शान्ति' का उपदेश देते थे और सर्वहारा वर्ग को पूंजीपति वर्ग के साथ 'सामाजिक सामंजस्य' के लिए प्रेरित करते थे।

उनके काल मे ये विचार यूरोप मे मजदूर वर्ग में व्यापक रूप से प्रचारित हुए। बाद में बड़ी कटुता एवं रोष के साथ जिसे कोई भी क्रांतिकारी और मार्क्सवादी भली-भांति समझता है. फ्रेंज मेहरिंग ने लिखा : "पहले का जर्मनी का सामाजिक जनवाद अपने पुराने परीक्षित दाव-पेचो के बावजूद छिन्न-भिन्न हो चुका है और साम्राज्यवाद की विजयिनी कार के पहियो के नीचे दबा पड़ा है।"[1] यह पूर्ण निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि उन्नीसवी शती की अन्तिम तिहाई मे वर्ग-सम्बन्धों के अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण विकास के प्रमुख कारणों मे मजदूर आंदोलन मे संशोधनवाद और अवसरवाद भी एक कारण रहा।

इस तथ्य के लिए 'द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय' के नेता सबसे अधिक जिम्मेदार है, कि जब पूंजीवादी विश्व अपने गहनतम और सर्वाधिक नाटकीय संकट मे. प्रविष्ट हो गया था और राष्ट्र एक साम्राज्यवादी युद्ध की आग में झौंक दिये गये थे, तब मजदूर वर्ग को वैचारिक रूप से और संगठनात्मक रूप से निहत्था कर दिया गया

---

1. ऑफेनेस श्रेइबेन फ्रेंज मेहरिंग्स एन डाइबोल्शेविकी, 3 जून, 1918, इन : फ्रेंज मेहरिंग, गेसम्मेल्ट श्राइटन बी डी. 15, पोलिटिश पब्लिजिस्टिक् 1905 बिस् 1918, बर्लिन 1966, एस 775

था जिसके कारण वह समय पर क्रांतिकारी कार्रवाई मे असमर्थ रहा। एक ओर तो 'श्रमिक अभिजात वर्ग' पर भरोसा रखते हुए गैर-सर्वहारा स्तर से मजदूर वर्ग मे लोग आ रहे थे, दूसरी ओर सामाजिक जनवादी पार्टियों के शीर्ष नेता मज़दूर आदोलन को मार्क्सवाद से विमुख करने मे सफल हो गये थे और इसे पूंजीपतियो के साथ वर्ग सहयोग के पथ पर ठेल रहे थे।

इस प्रकार, वर्तमान शताब्दी के क्रांतिकारी विस्फोटों के आरम्भ के समय, सम्भवत: पहले से ही प्रत्यक्ष अपनी आरम्भिकता में, लेकिन सर्वथा भिन्न रूप से, विश्व प्रतिक्रियावाद ने मज़दूर वर्ग की विचारधारा के विरुद्ध सामान्य नीति स्वीकार की थी : 'कम्युनिस्ट विद्रोह' को शक्ति के साथ कुचलने की दिशा मे, और वैचारिक और राजनीतिक स्तर पर, पूंजीवाद के समर्थकों और संशोधनवादियों के गँठजोड़ के रूप में, जो मार्क्सवाद को उसके क्रातिकारी सारतत्व से रिक्त करने के प्रयास थे।

इन दो दिशाओं के कारण संशोधनवाद मुक्ति आंदोलनों के लिए अधिक खतरनाक था (और आज भी है)। परजीवी रोग की तरह, इसने आदोलन की पाँतों को दूषित कर दिया और मज़दूर जनता को सच्चे समाजवादी लक्ष्य से पृथक् करने के लिए और 'सरलतर' तथा 'अधिक पीड़ाहीन' मार्गों की खोज के लिए समाजवादी शब्दावली का उपयोग किया। उस समय के बहुत से मार्क्सवादी जैसे ज्योर्जी प्लेखानोव, दिमित्र ब्लेगोयेव्, फ्रेज़ मेहरिंग, पॉल लाफार्जे, आन्टुरो लेब्रिओला, रोजा लक्सम्बर्ग और कार्ल लीब्नेख्त, ने स्पष्ट रूप से संशोधनवाद के ख़तरे को देखा और उन्होने बर्न्सटीन तथा बर्न्सटीनवाद के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष किया।

लेनिन ने अवसरवाद की सामाजिक जड़ो और पूंजीवाद की इजारेदारी की मंजिल के विशिष्ट रूपों के साथ इनके सम्बन्धो को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है। उन्होंने मार्क्स और एंगेल्स की शिक्षाओ के आधार पर मजदूर वर्ग के लिए समाजवाद के एकमात्र सही मार्ग की रूपरेखा निर्धारित की। मार्क्सवाद की रक्षा तथा विकास करते हुए उन्होने अवसरवादियो की विश्वासघाती भूमिका को सुस्पष्ट किया है।

अवसरवाद को निरावरण करना और क्रांतिकारी मार्क्सवाद की रक्षा करना यह सब बड़ा प्रभावशाली रहा क्योंकि ये केवल काल्पनिक युक्तिवाद पर आधारित नही थे, अपितु तीन रूसी क्रांतिकारियो के ठोस अनुभवों पर आधारित थे जो बीसवी शताब्दी के क्रांतिकारी परिवर्तनों के अग्रदूत थे। लेनिन ने लिखा है : "रूस ने आधी सदी तक पीड़ाओ मे से गुजरकर, अतुलनीय यातना झेलकर और अनुपम त्याग, क्रान्तिकारी शौर्य, अविश्वसनीय ऊर्जा, आस्थापूर्ण खोज, अध्ययन, व्यावहारिक परीक्षण, निराशा, सत्यापन और यूरोपीय अनुभवो के साथ तुलना के द्वारा

मार्क्सवाद को एकमात्र सही क्रांतिकारी सिद्धात के रूप मे प्राप्त किया ?"[1]

बीसवी शताब्दी का आरम्भ मुक्तिसंघर्ष के इतिहास मे ऐसे युग के रूप मे समाया हुआ है जिसने पूंजीवाद के आम सकट को तेज़ी से बढ़ते हुए देखा और श्रमिक आदोलन के उस शक्तिशाली क्रातिकारी उभार को भी देखा जो महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय मे परिपक्व हुआ। उस क्रांति ने रूस में समाज की व्यवस्था को लाखों लोगों के जीवन और मनोवृत्ति को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया। और विश्व के लाखों लोगों को स्वाधीनता, राष्ट्रीय मुक्ति और समाजवाद के लिए सक्रिय संघर्ष के लिए खडा कर दिया, इसने मानव समाज के इतिहास में नये युग का द्वार खोला, समाजवाद के युग का। समाजवादी क्रांति के युग मे विश्वव्यापी वर्ग-संघर्ष ने अपना सर्वोच्च रूप-समाजवादी क्रांति का रूप-ग्रहण कर लिया।

सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के बीच वर्ग-संघर्ष ने अब वैचारिक सघर्षों के साथ-साथ अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भी प्रवेश किया है और अब उसका अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र हो गया है। अक्तूबर क्रांति ने इस प्रकार के विभिन्न आंदोलनों को—जैसे शांति के लिए आम लोकतांत्रिक संघर्ष, भूमि के लिए किसानों का संघर्ष, उत्पीडित जनगण का राष्ट्रीय समानता के लिए संघर्ष, निस्सन्देह सर्वहारा का पूंजीवाद के उन्मूलन के लिए संघर्ष भी—साथ-साथ एक ही क्रांतिकारी धारा में एकत्र कर दिया है। इन आंदोलनों को एकजुट करके अक्तूबर क्राति ने विश्वव्यापी स्तर पर उनके विकास के लिए शक्तिशाली आवेग प्रदान किया है।

सोवियत संघ का विरोध बनाम ऐतिहासिक प्रगति

रूस में समाजवादी क्राति की विजय ने कम्युनिज्म विरोध पर सांघातिक प्रहार किया। अब पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थकों को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था। एक ओर तो उनका सामना वस्तुत: विद्यमान सर्वहारा राज्य से था, दूसरी ओर, वास्तव में सभी पूंजीवादी देशो मे मजदूर वर्ग का आन्दोलन अद्वितीय रूप से अधिक परिपक्व, संगठित और सैद्धांतिक रूप से इस्पाती बन गया था।

मार्क्सवाद को 'खंडित करने का' पुराना तरीका निरर्थक हो गया था। पहले, जहाँ कि कम्युनिस्ट-विरोधी कुछ सत्याभासी युक्तियो के साथ सामने आ सकते थे यह कहते हुए कि पूंजीवाद ही एकमात्र संभव सामाजिक व्यवस्था थी, किन्तु अब इस तथ्य ने कि समाजवादी राज्य अस्तित्व मे आ गया है, बड़ी हद तक उनके नीचे से जमीन खिसका दी।

---

1. वी. आई. लेनिन, वामपंथी कम्युनिज्म—एक बचकाना मर्ज़, सकलित रचनाए, खंड 31, पृ. 25-26

उस समय से कम्युनिज़म विरोध का मुख्य सार तत्व सोवियत संघ के विरोध का सिद्धान्त बन गया। रूसी क्रान्ति के सम्बन्ध में कुछ भी जाने बिना, समाजवादी राज्य के विषय में पूँजीवादी राजनीतिज्ञों की पहली प्रतिक्रिया केवल उनकी वर्ग-स्थिति को ही प्रदर्शित करती थी। उन्होंने उद्दण्डतापूर्ण दुराग्रह के साथ इसे ताकत से कुचलने की कोशिश की और इस प्रकार, अनुदारवादी अंग्रेज़ विन्स्टन चर्चिल ने सोवियत गणतंत्र के विरुद्ध 14 राज्यों के युद्ध की घोषणा की। जर्मन सेनापति ऐरिक वॉनलुडेनडोर्फ ने जो हिण्डेनवर्ग का दायाँ हाथ था और बाद में म्यूनिख में नाजियों के विद्रोह में सक्रिय भागीदार रहा, एक लाख लोगों को हथियारवन्द और प्रशिक्षित करने का आह्वान दिया। उसने कहा, फ़ौज़ उनकी कमान हाथ मे ले, और दो महीने में मास्को या सोवियत रूस का नामोनिशान भी नही मिलेगा।

जैसे ही उन्होंने सोवियत राज्य के भीतरी मामलो में सीधा हस्तक्षेप सगठित किया, पश्चिमी शक्तियों के अधिकृत प्रतिनिधियों ने पहले-पहल रूस में पूँजीवादी व्यवस्था को पुनः स्थापित करने की अपनी इच्छा को छिपाना आवश्यक नही समझा। नवम्बर 1917 के अन्त में, पैरिस में, एक सम्मेलन में, सयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली ने रूस के साथ समझौता वार्ता शुरू करने की पूर्व शर्त के रूप में धृष्टतापूर्वक सोवियत सत्ता के उखाड फेंकने की माँग रखी थी।

बाद में, पराजित देशों के साथ शान्ति संधि की रूपरेखा तैयार करने के लिए 1919 में वर्साई सम्मेलन किया गया, 'चार बड़े' विल्सन, क्लीमेंश्यू, लायड जॉर्ज और ऑर्लेण्डो उन कुछ देशों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उन्होंने 'रूस के प्रश्न को' सर्वप्रथम उठाया, जो वस्तुतः सारी बहसों में प्रधान प्रश्न के रूप में छाया रहा। तथापि, सोवियत गणतंत्र को किसी भी प्रकार पराजित राष्ट्रों मे नही गिना गया। और स्वभावतः ही इस प्रश्न पर अनौपचारिक स्तर पर भी बहस करने पर सहमति नही हो सकी। वर्साई के 'शान्ति-स्थापनकर्ताओं' का सोवियत रूस के विषय में रवैया 25 फरवरी 1919 को लिये गये निर्णय मे स्पष्ट दिखायी दिया। शान्ति सम्मेलन मे भाग लेने वालों की परिषद् ने मार्शल फौश के इस प्रस्ताव का समर्थन किया था कि पूर्वीय यूरोप के देशों को इसमे सम्मिलित करके सोवियत विरोधी हस्तक्षेप को विस्तृत किया जाए।[1] यद्यपि 'रूसी प्रश्न' औपचारिक रूप से सम्मेलन की विषय सूची मे नही था, लेकिन यह उसमे भाग ले रहे सभी दिमागों पर छाया रहा, जो 18 जुलाई 1919 को वर्साई प्रासाद की डेस ग्लेसिस् दीर्घा मे, ठीक उसी हाल मे जहाँ 48 वर्ष पूर्व 18 जनवरी 1871 को प्रशिया के साथ युद्ध में फ्रास की पराजय के पश्चात् जर्मन साम्राज्य के निर्माण की घोषणा की गयी थी,

---

1 विश्व इतिहास, मास्को, 1961, खंड 8, पृ० 105-106

वही वर्साई सम्मेलन और शान्ति समझौता किया गया। दोनों ही पुरानी साम्राज्यवादी नीति की अभिव्यक्ति थे जिसने कि युद्ध को उभारा था तथा जो सोवियत रूस की क्रान्तिकारी चुनौती का सामना करने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों का एक प्रयास था।

निस्सन्देह वर्साई समझौता, एक साम्राज्यवादी, अन्यायपूर्ण और परभक्षी संधि थी। इसने केवल शोषकों की सामान्य व्यवहार पद्धति का ही अनुसरण किया जिसमे विजेता पराजितों को लूटता है और जनता के हितों की चिन्ता किये बिना अपनी इच्छा पराजितों पर लाद देता है। वही पुराना रास्ता यहां भी अपनाया गया था।

सैडान मे फ्रांसीसी सेना के पराजय के पश्चात् 1871 मे हस्ताक्षरित शान्ति संधि के अन्तर्गत यह पूरी तरह समझ में आने योग्य बात है कि बिस्मार्क ने फ्रांस से अल्सास और लौरेन को अलग करने के लोभ का प्रतिरोध नही किया। और अब जर्मनी की हार के बाद फ्रास ने न केवल अल्सास और लौरेन को वापस ले लिया बल्कि सार के बेसिन में-कोयले की खानों को भी अपने हाथों में ले लिया।

आक्रामक जर्मनी पर एक शान्ति थोप दी गयी। जर्मनी, जैसाकि हम जानते है, अपने क्षेत्र का आठवां भाग, अपनी आबादी का बारहवां भाग और अपने सभी उपनिवेश खो चुका है। समझौता करने वाले देशों ने जर्मनी के साथ ऐसा व्यवहार किया जैसा कि परभक्षी पशु अपने शिकारगाह मे अपने प्रतिद्वंद्वी का पीछा करते हुए करता है।

वर्साई का एक और अन्तर्निहित उद्देश्य भी था। जब अक्तूबर क्रान्ति पूंजीवादी विश्व-व्यवस्था में पहली दरार डाल रही थी और क्रान्तिकारी ज्योति जला रही थी उसी समय विश्व का साम्राज्यवादी पुनर्विभाजन हो रहा था। ऑस्ट्रो-हंगेरियायी और जर्मन राजतंत्र उस ज्वाला में भस्म हो गये, जबकि शेष यूरोप, एशिया और अमरीका मे मजदूरों का जन-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। उन स्थितियो मे, राजनीतिज्ञो ने विश्व के साम्राज्यवादी पुनर्विभाजन की अपेक्षा वर्साई मे और अधिक देखा। वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे जो सोवियत रूस की विरोधी होती।

यद्यपि सैनिक कार्रवाई के रंगमंच पर रूसी सेनाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया और अक्तूबर क्रान्ति ने साम्राज्यवादियों को युद्ध बन्द करने को बाध्य कर दिया, सोवियत गणतंत्र को सम्मेलन में प्रवेश नही दिया गया, उसके बिना ही वर्साई संधि सम्पन्न हो गयी। यद्यपि संधि मे सोवियत राज्य के विरुद्ध कोई ठोस कार्रवाई का उल्लेख न था, इससे कोई भ्रम में नही पड सकता। अपने सार-तत्व मे यह घोषित रूप से सोवियत विरोधी चरित्र रखती थी। स्पष्ट रूप से इन्ही उद्देश्यों ने विलसन और लायड जार्ज को जर्मनी के विभाजन के पायोनियर के

प्रस्ताव को नकारने को प्रेरित किया था। पश्चिमी राष्ट्रों को पूरी तरह सुदृढ़ जर्मनी की आवश्यकता थी—केवल फ्रांस का प्रतिरोध करने वाले की नहीं बल्कि सबसे पहले वे उसे सोवियत नीति-विरोधी उपकरण के रूप में चाहते थे। जर्मनी की सीमाओं के प्रश्न का निपटारा भी पश्चिमी देशों की सोवियत विरोधी योजनाओं को ध्यान में रखकर किया गया। "यह माना गया कि उनका विनाश अवांछनीय है···क्योंकि वे बोल्शेविकवाद के विरुद्ध रक्षा के रूप में काम कर सकते है।" पैरिस सम्मेलन में यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया था।[1] जर्मनी को असमान और अपमानजनक स्थिति में डालते हुए वर्साई संधि ने जर्मन जनगण में असन्तोष भड़काया और उसमें प्रतिशोध की भावना के बीज बो दिये। बाद में जिसकी फ़सल हिटलर ने काटी।

इस प्रकार एक नया ठोस तत्व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में जोड़ दिया गया। यह था पश्चिमी शक्तियों के प्रतिगामी समुदाय का सोवियत विरोध का सिद्धान्त, जो अपना मुख्य कर्तव्य समझता था विश्व बोल्शेविकवाद का उन्मूलन और इसके प्रधान केन्द्र रूसी सोवियत गणतंत्र का विध्वंस।[2]

सशस्त्र हस्तक्षेप, घेराबन्दी, आर्थिक नाकेबन्दी, तोड़फोड़, सोवियत गणतंत्र के विरुद्ध उत्तेजना फैलाना—ये सब कार्रवाइयाँ अखंडनीय प्रमाण हैं कि साम्राज्यवाद ने नयी समाज व्यवस्था के विरुद्ध सबसे बढ़कर, विश्व ऐतिहासिक प्रगति के हिरावल दस्ते के खिलाफ़, निर्मम वर्ग संघर्ष आरम्भ कर दिया था। साम्राज्यवाद ने इन संघर्षों के लिए अपने सभी ससाधनों को एकत्र किया। उस समय समाजवादी समाज के विरुद्ध हथियारबन्द लड़ाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी।

अनेक वर्षों के बाद, 1960 के मध्य में, प्रोफ़ेसर जॉन एम० थाम्पसन ने हस्तक्षेप के दिनों के सोवियत विरोध के सिद्धान्त और शीत युद्ध के बीच 'आश्चर्यजनक समानता' का उल्लेख किया था। उन्होंने लिखा था : "रक्षात्मक युद्ध के समर्थक 1919 में फोख़ की स्थिति को समझ में आने योग्य और सहानुभूति योग्य पायेंगे, विरोध नीति के प्रवक्ताओं को क्लेमेंश्यू और दूसरों के विचार सुपरिचित और स्वीकारणीय लगेंगे जो 1919 में बोल्शेविकों के इर्द-गिर्द सैनिकों की घेराबन्दी में 'शक्ति के क्षेत्र' निर्माण करने के पक्ष में थे। वे जो कुछ वर्ष पूर्व कम्युनिस्ट आक्रमण को पीछे धकेलने की माँग करते थे, वे 1919 में चर्चिल और दूसरों की ओर देखते थे और जो यह मानते थे कि बोल्शेविज्म को पीछे हटाया जा सकता

---

1. संयुक्त राज्य अमरीका के विदेश सम्बन्धों से सम्बद्ध दस्तावेज, पैरिस, शान्ति सम्मेलन, 1919, खंड IV, वाशिंगटन, 1943, पृ० 300
2. वी. आई. लेनिन : 'छठी असाधारण अखिल रूसी मजदूर, किसान, कज्जाक और लाल सेना के डिपुटियों की कांग्रेस', खंड 28, पृ० 160-61

है और अन्ततः वह उनके द्वारा पराजित होगा जो राष्ट्रवादी राज्य और बोल्शेविज्म के विरोध का झण्डा उठाये हुए हैं।[1] वस्तुतः, इस विश्व में हर चीज परिवर्तित होने वाली है किन्तु प्रतिक्रियावाद की सामाजिक प्रगति को रोकने की इच्छा कभी नही परिवर्तित होती।

कम्युनिज्म विरोध की नयी व्याख्या : क्रान्ति 'विलम्बित सुधार' है

और इस प्रकार, यह शस्त्र बल से समाजवाद को नष्ट करने की, 'कम्युनिज्म के भूत को' भगाने की और वर्तमान से, शायद, भावी पीढियों तक की भी, प्रथम उपलब्धियों को ध्वस्त करने की कार्यविधि थी। वर्षों से साम्राज्यवाद की विदेश नीति, और आज तक भी, इस सामान्य रणनीति के अनुरूप रही है।

पूंजीपतियों की वैचारिक सेवाएँ मुख्य रूप से इन प्रयासों पर केन्द्रित रही और अब भी हैं :

(क) सामाजिक व्यवस्था के रूप में समाजवाद की साख गिराने के लिए (सर्वोपरि यह प्रमाणित करके कि समाजवादी समाज युक्तिसंगत रूप से सामान्य विकास नही अपितु कृत्रिम, अप्राकृतिक और चलती चीज है।)

(ख) पूंजीवाद को पुनः स्थापित करने के लिए, सर्वोपरि यह दिखाने का प्रयत्न करके कि पूंजीवादी सम्बन्धों के आधुनिकीकरण से पूंजीवादी समाज की वर्ग-विभाजित शत्रुतापूर्ण प्रकृति बदल जाती है।

(ग) सोवियत संघ की विदेश नीति को मिथ्या सिद्ध करने के लिए, सोवियत राज्य को आक्रामक के रूप मे चित्रित करके इसे अन्तर्राष्ट्रीय रूप से अलगाव मे डालने के लिए और इस प्रकार समाजवादी सोवियत संघ के विरुद्ध युद्ध के लिए जनता को तैयार करना।

सोवियत सत्ता के पहले वर्षों मे पूंजीपति वर्ग के विचारकों ने कुछ समय तक निष्क्रियता से काम किया। वे समाजवादी विकास की विधि शासित प्रकृति को ही निरन्तर नकारते रहे, इसे अवैध और इतिहास की पूर्णतया आकस्मिक कुटिल घटना बताते रहे जिसने सोवियत संघ को सभ्य राष्ट्रों के दायरे से परे डाल दिया। वह प्रत्येक को यह विश्वास दिलाने का प्रयास करते थे कि अक्तूबर क्रान्ति जनता पर बोल्शेविकों ने अपनी मर्जी से थोप दी थी, और इससे जो समाजवादी व्यवस्था उदित हुई वह 'आकस्मिक' थी, स्वयं क्रान्ति भी आकस्मिक थी और इतिहास के आधार से उसके लिए कोई सम्भावना नही है। अमरीकी राजनयिक और इतिहासज्ञ

---

1. जॉन एम. थाम्पसन, रूस, बोल्शेविज्म एंड वर्साई पीस, शान्ति, प्रिन्सटन, न्यूजर्सी 1966, पृ० 398

जार्ज एफ़० केनन ने कहा : "उदाहरण के लिए, बोल्शेविकों ने शीतप्रासाद पर कब्जा कर लिया, यह इसलिए सम्भव हुआ कि उसके रक्षकों मे बड़ी फूट और अस्थिरता थी और किसी ने असावधानी से पिछला दरवाज़ा खुला छोड़ दिया था।"[1] दिन-ब-दिन पूँजीवादी समाचार पत्र सोवियतों के अनिवार्य विनाश की भविष्यवाणी करते रहे।

तथापि, जब सबके सामने यह स्पष्ट हो गया कि ये भविष्यवाणियाँ निराधार हैं, उन्होने यह कहना आरम्भ कर दिया : सोवियत गणतन्त्र जो रूस की विशिष्ट स्थितियों में उत्पन्न हुआ 'शुद्ध रूप से रूसी' परिघटना है, जो दूसरे देशों मे दुहरायी नही जा सकती। तथ्यतः उन्होंने इसमें जोड़ दिया, कि रूस में भी यह आवश्यकता के कारण नही आयी, क्योकि जो सुधार पहले से लागू किये जा चुके थे उन्होने 'बोल्शेविक प्रयोग' को पूर्णतया निरर्थक कर दिया। उदाहरणार्थ, जैसाकि उस समय के ड्यूमा (रूसी संसद) के प्रख्यात सदस्य वी० एस० मैकलाकोव् ने जो बाद मे प्रवासी हो गये थे, लिखा था—"प्रत्येक क्रांति विलम्बित सुधारों के अतिरिक्त कुछ नही होती जो, क्योकि विलम्बित होती है, इसलिए अपनी गति मे इतनी तूफ़ानी होती है कि अपने लक्ष्य से भी आगे बढ जाती है।"[2]

अक्तूबर क्रान्ति भी अपने लक्ष्य से आगे बढ गयी, यह कम्युनिज्म विरोधी विचारकों की स्थापना है। इस प्रकार, उनका कथन था, कि यह मज़दूर वर्ग के हिरावल दस्ते के रचनात्मक, क्रियाशील और वैज्ञानिक रूप से सुचिन्तित क्रिया-कलाप का परिणाम होने की अपेक्षा समस्त सामाजिक और उत्पादन सम्बन्धों का उप्पलव विध्वंस और विभेदन बन गयी।

उन्होंने बोल्शेविक पार्टी की भूमिका को, इसके संघर्ष में सैद्धान्तिक और संगठनात्मक एकता के क्षेत्रों में और अक्तूबर क्रान्ति में इसके नेतृत्व के ऐतिहासिक महत्व को कम करके उसे मिथ्या प्रमाणित किया। बोल्शेविकों को षड्यन्त्रकारियों के एक छोटे गुट के रूप में चित्रित किया जिन्होंने अधिकांश जनगण को अपनी मनोवांछित योजनाओं का अन्धविश्वासी उपकरण बना लिया। यह वक्तव्य यहाँ तक कहता है कि पार्टी ने रूसी समाज की 'मानसिक उदासीनता' का और रूसी जनता की 'निष्क्रियता' का लाभ उठाया जिसने अभी तक पश्चिमी संसदीय प्रणाली की पाठशाला में शिक्षा प्राप्त नही की थी। ब्रिटिश सोवियत विज्ञापन की पत्रिका 'स्लोवानिक रिव्यू' के पृष्ठों में निम्नलिखित प्रकार के वक्तव्य पढ़े जा सकते है : न तो अपनी शिक्षाओं मे और न अपने दावपेंच मे बोल्शेविज्म मार्क्सवादी बोल्शेविज्म था, निश्चित रूप से इसमें मार्क्सवाद के कुछ तत्व थे,- लेकिन इसके बजाय यह

---

1. जॉर्ज एफ० केनान, 'रशालीज द बार' प्रिन्सटन, न्यूजर्सी 1956, पृ० 6
2. दि स्लेवोनिक रिव्यू, खण्ड 11, अंक 5, दिसम्बर 1923 पृ० 225

ब्लाकीवाद, श्रमिक संघवाद और अराजकतावाद, का मिश्रण है : यह मार्क्स से भी अधिक बाकूनिन के निकट है। यह रूसी नास्तिवाद (निहिलिज्म) का ही नैरन्तर्य है···। यह उत्पाद शुद्ध रूप से रूसी घटना है, जो रूसी चर्च द्वारा इतने लम्बे समय तक स्वीकृत विश्व सम्बन्धी स्थिर दृष्टिकोण पर पश्चिम के अत्यधिक उग्रवादी विचारों के प्रभाव के कारण हुए अव्यवस्थित विकास का परिणाम है। वोल्शेविक फ़ायरबाख के भौतिकवाद और नास्तिकवाद के कारण उत्तेजित और उद्भ्रान्त रूसी साधु है।" (!?)[1]

और अन्ततः, उन वर्षों में सोवियत विरोधवाद के विचारकों के बीच यह फैशन बन गया था कि वे क्रान्ति विरोध के काम में नही आयी क्षमता के सम्बन्ध मे खूब गर्मा गर्म बातें किया करते थे। इस सम्बन्ध मे, उनका ध्यान अक्तूबर क्रान्ति के वास्तविक नेता वोल्शेविकों की ओर इतना अधिक न था जितना कि उससे भागे हुए और इसके प्रत्यक्ष शत्रुओ पर। बाद में, हार्वर्ड में सरकार के प्रोफेसर तथा उसके रूसी अनुसधान केन्द्र के शोध सहायक अदम उलान से अलंकृत भाषा मे पूछा गया कि कोई मेन्शेविकों को नापसन्द कैसे कर सकता है अथवा उनके इतिहास के कूडेदान की ओर अभियान में इस या उस अवसर पर यह या वह करो की चेतावनी देने का लोभ कैसे संवरण कर सकता है···। हम कैडेट्स को प्रेम *करने और उनके साथ चलने को आतुर हैं···। उस बहुरूपी समूह—सामाजिक* जनवादियों ने भी अपने भाव प्रवण इतिहासकारों को खोज निकाला है। उनके साथ सेविनकोव के वीरतापूर्ण कृत्यों तथा चेर्नोव के अनिर्णय के की पुनरावृत्ति का आनंद ले सकते हैं।[2]

तथापि, यह कोई बात नही कि पूंजीवादी विचारको ने भले ही बोल्शेविकों की खूब निन्दा की और मेन्शेविकों तथा सामाजिक क्रान्तिकारियों की प्रशंसा की, ज़िन्दगी अपने रास्ते बढती गयी। प्रत्येक क्षेत्र मे सोवियत सफलताएँ अधिकाधिक विशिष्ट एवं अतुलनीय होती गयी। इन तथ्यो के समक्ष, यह वक्तव्य कि समाजवाद, ऐतिहासिक विकास की 'स्वाभाविक' गतिविधि मे कम्युनिस्टों के द्वारा बलपूर्वक थोपी गयी घटना है. प्रभावहीन हीन होता चला गया। किन्तु फिर भी, कम्युनिज्म विरोधी आज तक उसका उपयोग कर रहे हैं। उन्हे अतिकुत्सित और आदिम प्रस्थापनाओ को त्यागना पडा किन्तु स्वयं यह विचार धीरे-धीरे मुख्य रूप से दो दिशाओ मे रूपान्तरित हो गया।

- प्रथम, सोवियत गणतन्त्र की सफलताओ की स्वीकृति के साथ प्रायः कहा जाने

---

1. द स्लेवोनिक रिव्यू खंड 1, न० 1 जनवरी 1922 पृ० 12
2. द स्टेट ऑफ सोवियत स्टडीज, सपा० वाल्टर जेड, लाम्वेवर, और लियोपोल्ड् लावेज, केम्ब्रिज, मास, 1965, पृ० 16

लगा कि जहाँ तक इन सफलताओं का सवाल है, अक्तूबर क्रान्ति का इनसे कोई लेना-देना नहीं है, यह उन मानवीय और भौतिक संसाधनों मे अन्तर्निहित थी जो रूस क्रान्ति के बाद की किसी भी सरकार को दे सकता था।"[1]

दूसरे, इन उपलब्धियों के सम्बन्ध में मुख्य स्पष्टीकरण यह दिया गया कि पहले तो यह दावा आविष्कृत किया गया कि सोवियत समाज 'एकतन्त्रात्मक' था और बाद में, समान रूप से बेतुका व्यंग्योक्ति भरा कि यह 'सर्वसत्तावादी' था, इसका अर्थ था कि समाज कृषि का औद्योगीकरण और सामूहिकीकरण कर रहा है और सामान्य रूप से कहा जाय तो पूरी तरह दमन के साधनों के द्वारा अधिसंख्य जनता अपेक्षाओं और आकाँक्षाओं के विरुद्ध यह प्रगति की जा रही है।

इन प्रस्थापनाओं से यह नतीजा निकलता था जैसे कि स्थिति का ऐसा ही तर्क था कि इस 'मिट्टी के पैरों वाले भीमकाय देव' के विरुद्ध प्रतिरोधात्मक युद्ध किया जाय। यह कहा जाता था कि आवश्यकता इस बात की है कि पश्चिमी जनतन्त्र के विरुद्ध बोल्शेविकों की 'विस्तारवादी योजनाओं' को रोका जाय और 'रूस की गुलाम जनता को मुक्त किया जाय'। यह सोचा गया कि इससे मानव समाज के ऐतिहासिक विकास को वापिस इसके 'प्राकृतिक' और उपयुक्त पथ पर लाया जा सकेगा।

पूँजीवाद की आर्थिक चिकित्सा

1924-1929 के काल मे पूँजीवाद की आंशिक स्थिरता के कारण इसके विचारकों की रणनीति मे कुछ नये तत्वों का समावेश किया गया। एक ओर, स्वयं इस तथ्य ने ही पूँजीवादी विश्व की भावी सभानाओं के सम्बन्ध में कुछ भ्रम—जो उस समय अति काल्पनिक थे—उत्पन्न कर दिये। दूसरी ओर, समाजवाद की ओर कठोरता से नकारात्मक रवैये की सुभेद्यता को समझते हुए पूँजीवादी राजनीति विज्ञानी स्थिति को अधिकाधिक चित्रित करने का प्रयास इस प्रकार करते रहे कि अन्ततः पूँजीवादी विकल्प का ही चुनाव किया जायगा। उन्होने जनता के दिमागों में यह विचार बैठाने का प्रयास किया कि वास्तविक सामाजिक क्रान्ति पूँजीवादी *समाज मे हो रही है, और वही, समाजवाद नहीं, ऐसे बीज बो रही है जिसके फल* मज़दूर वर्ग को मिलेंगे।

फिर एक बार, केन्द्रीय समस्या संपत्ति के वितरण की थी, जो डेविड रिकार्डो और आदम स्मिथ के समय से ही पूँजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के मार्ग में बड़ी बाधा बनी हुई थी।

---

1. राबर्ट, वी॰ डैनियल्स, "रैड अक्तूबर, बोल्शेविक रेवोल्यूशन ऑफ़ 1917" न्यूयार्क, 1967, पृ॰ 226-27.

उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री जीन लेव तिस्त ने इस समस्या को एक अशिष्ट (किन्तु पूंजीवादी दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत शिष्ट) अर्थ प्रदान किया। उसने उत्पादन के तीन तत्वों को 'प्राकृतिक शक्तियाँ' नाम देकर अलग-अलग कर दिया—श्रम, पूंजी और भूमि तथा संपदा के वितरण को भी उसी प्रकार बाँट दिया—वेतन, मुनाफ़ा और किराया। मार्क्सवाद द्वारा संपदा के वितरण के वर्ग चरित्र प्रकट करने के बाद, पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने नये सिद्धान्त की खोज ईमानदारी से आरम्भ कर दी, पुन: सावधानी के साथ मुख्य मुद्दे की ओर इस गहन वर्ग समस्या के सामाजिक पहलू की ओर आकर्षित किया।

हर्वर्ट विश्वविद्यालय मे राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्राध्यापक (और अमरीकी अर्थशास्त्री जॉन क्लार्क के सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त के प्रवक्ता)[1], थामस कार्वर ने अपनी भारी-भरकम नाम वाली पुस्तक "द प्रेजेण्ट इकोनॉमिक रेवोल्यूशन इन दि यूनाइटेड स्टेट (1926)" में इस क्रान्ति को उत्पादन के और अधिक केन्द्रीकरण में तथा पूंजी के अंशपत्रों के विस्तार के रूप मे देखा। 'सामूहिक संगठन' (कार्पोरेट ऑर्गनाइज़ेशन) कारवर के अनुसार बुनियादी रूप से पूंजीवाद के सारतत्व को परिवर्तित कर देते हैं, इस प्रकार मालिकों का मालिक होना तथा मजदूरों का मजदूर होना बंद हो जाता है। उसने लिखा कि सामूहिक कार्पोरेट सगठन का आधुनिक रूप हजारो लोगों का उद्योग के स्वामित्व में भाग लेना सभव बनाता है, बन्ध पत्रधारियो अथवा स्टाकधारियो के रूप मे।[2]

निस्सन्देह कारवर की "खोज" नयी नही थी, उन्नीसवी शताब्दी के अन्त से ही स्वामित्व के अंश पत्रो के सम्बन्ध मे लोग सुपरिचित हैं, और प्लेखानोव तथा लेनिन ने पहले ही बर्नस्टीन और अन्य यूरोपीय संशोधनवादियों के प्रयासों की कड़ी आलोचना की जो मजदूर जनता को 'पूंजी के जनतन्त्रीकरण' को उदाहरण के रूप में बताकर मजदूर जनता को थोड़ा बदले हुए वेश मे मूंडने के इस अतिरिक्त साधन का उपयोग करते थे।

जैसाकि विलियम ज़ेड० फ़ोस्टर सर्वथा उचित रूप से लिखा था कि पूंजीवादी अमरीका की वास्तविकताओं ने 'सामूहिक पूंजीवाद' के मिथक का भण्डाफोड़ कर दिया। उदाहरण के लिए, 1920 के दशक मे अमरीकी राज्य की 3 प्रतिशत आबादी स्टाक धारक थी, इसमे मजदूर भी जो इस समूह का एक महत्वहीन भाग थे, सम्मिलित थे। वस्तुत: वे देश के सामाजिक और उत्पादन-जीवन पर कोई

---

1 अपोलोजेटिक सिद्धान्त बीसवी शताब्दी के पूर्व भाग मे प्रस्थापित किया गया। बाद मे बहुत से पूंजीवादी अर्थशास्त्री इसके अनुयायी बने।

2. थामस निक्सन कारवर, द प्रेजेण्ट इकोनॉमिक रेवोल्यूशन इन दि यूनाइटेड स्टेट्स, बोस्टन, 1926, पृ० 115

प्रभाव नही डाल सकते थे और, यह कहना आवश्यक नही, वे पूँजीवादी , सम्बन्धो की प्रकृति को किसी भी प्रकार परिवर्तित नही कर सकते थे । तथापि, पास में कुछ अधिक अच्छा न होते हुए भी साम्राज्यवादी विचारकों ने इस वक्तव्य को विज्ञापित करने में कोई प्रयास नही उठा रखा और इसे समाजवाद के विकल्प के रूप में चलाते रहे। यह (सामूहिक सगठन), क्रांति है, कारवर ने घोषणा की ' कि मजदूरों और पूँजीपतियों के बीच विद्यमान किसी भी प्रकार के भेद को, मजदूरो को पूँजीपति वनाकर और अधिकांश पूँजीपतियों को मजदूर बनने के लिए मजबूर करके समाप्त कर देगा।" क्योंकि उनमें से बहुत से केवल पूँजी के बदले मिलने वाले लाभ पर जीवित नही रह सकते थे। यह विश्व के इतिहास मे कुछ नयी बात है।[1]

तथापि, अमरीकी प्राध्यापक के इस उत्साह में एक बड़ी कमी रह गयी है : किसी भी प्रकार यह वास्तविक जीवन से जुड़ा नही है। कारवर ने भले ही कठिन श्रम करके यह दिखाया हो कि संयुक्त राज्य अमरीका में 'आर्थिक क्रान्ति' अमरीकी समाज के समग्र ढाँचे को बदल रही है, पर वास्तव में हर चीज पहले की तरह ही चल रही है, मजदूर अब भी मजदूर ही है केवल पहले से भी बुरी हालत मे, और पूँजीपति पूँजीपति ही रहे, अपने शोषण से और अधिक धनी बन गये।

कारवर का यह सैद्धान्तिक रूप से निराधार सिद्धान्त समय के साथ कुछ कदम चला— किन्तु केवल इस अर्थ मे कि इसने अपने ढग से अमरीकी जनता की इजारेदारी विरोधी मानसिकता को अभिव्यक्त किया। यह कोई संयोग की बात न थी कि 1920 के दशक मे ही पूँजीवाद के समर्थकों ने संपदा और आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण के प्रश्नों को उठाया और उनके अपने उत्तर ढूँढ़कर उबरने की कोशिश की। क्योंकि तब उन्हे यह स्पष्ट रूप से आवश्यक प्रतीत हुआ कि उनके लिए निजी उद्योगों के संस्थानों की प्रतिष्ठा को बनाये रखना तत्काल आवश्यक हो गया था, सोवियत राज्य के अनुभव ने जिनकी जड़ें काट दी थी। साथ ही वे इजारेदारियों के हाथों में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के अधिकाधिक केन्द्रीकरण के राष्ट्रव्यापी विरोध को कमजोर करना चाहते थे। पूँजी के 'सामूहिक' रूप की अवधारणा ने इस प्रकार का प्रयास किया।

साथ ही 1920 और 1930 के दशकों में पूँजीवादी सिद्धान्तों के द्वारा पूँजीवाद के प्रत्यक्ष समर्थन को पूरा किया गया, वे छिछली आलोचना करते थे और बड़ी स्वच्छन्दतापूर्वक सुधारवाद की बात करते थे। यह पूँजीवाद की उसकी कुछ कमियों की आलोचना करते हुए फिर से जमाने का प्रयास था। 1920 के दशक मे, यह धारा दिखायी दी, विशेष रूप से, तथाकथित संस्थानिकतावाद (इन्स्टीट्यूशनलिज्म) मे। इस धारा के प्रवर्तक थे अमरीकी अर्थशास्त्री और समाज-

1. टी० एन० कारवर पूर्वोद्धृत पृ० 9-10,

शास्त्री थोर्स्टेन वेब्लेन जो 20वीं शताब्दी के 'प्रूधों' थे। वेब्लेन को उनकी कृति 'न्यू वर्ड' से बडी लोकप्रियता मिली, पूंजीवादियों के परम्परागत जैसे जड़सूत्रों 'सामाजिक सतुलन' और 'हितों की समानता' के स्थान पर उन्होंने सामाजिक समूहों के व्यवहार और चिन्तन का अध्ययन करने और आधुनिक पूंजीवाद की रचना का विश्लेषण करने के तथा इसके प्राविधिक-आर्थिक और सामाजिक-राजनीतिक रूपों या सस्थाओं के विकास के प्रश्न को उठाया (इसीलिए उसका नाम सांस्थानिकतावाद रखा गया)।[1]

इस विकासक्रम मे, सांस्थानिकतावाद के प्रवक्ताओ ने कतिपय अन्तर्विरोधों को स्वीकार किया और उनको अनिवार्य माना—उदाहरणार्थ, उत्पादनऔर व्यापार के बीच। तथापि, उन्हे इसका कारण पूंजीपतियो और सर्वहारा के विरोध मे नही दिखायी दिया, अपितु 'हितों के विवाद मे' जिसमे एक ओर लोग दोनों ही प्रकार के, उद्यमी और मजदूर जो प्रविधि से और उत्पादन के सगठन से सम्बद्ध थे, तथा दूसरी ओर ये वित्तीय व्यापारी जो पूंजी के संचालन के क्षेत्र में कार्यरत थे। सांस्थानिकतावादियो ने इस 'विवाद' का समाधान स्वामियो से अभियन्ताओं के हाथ में सत्ता के हस्तान्तरण मे, और तथाकथित 'अभियन्ताओ की और प्राविधिको की क्रान्ति में देखा जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का प्रबन्ध चला सकते थे। यह किस अर्थ मे प्रूधों के 'निर्मित मूल्य' (कांस्टिट्यूटिड वैल्यू) से भिन्न है जिसके वास्तविक सार का कार्ल मार्क्स ने अपनी कृति 'दर्शन की दरिद्रता' मे पर्दाफ़ाश किया था।

पूंजीवाद के अन्य समर्थकों की तरह ही जिन्होंने कि उसके कुछ पहलुओ की आलोचना के बहाने पूंजीवादी व्यवस्था को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया, वेब्लेन ने भी पूंजीवाद के मुख्य अन्तर्विरोधों को गौण अन्तर्विरोधों का स्थान देने का प्रयास किया। इसी कारण उन्होंने यथार्थ की सही तस्वीर प्रस्तुत करने के स्थान पर एक विकृत योजना निर्मित की।

लेकिन जैसे ही वेब्लेन ने अपना सांस्थानिकतावाद का सिद्धान्त तैयार किया और कारवर ने पूंजी के 'सामूहिक' रूपो की प्रशंसा की, कुछ समय बाद ही 1929-1933 का विश्व आर्थिक संकट आरम्भ हो गया। अभूतपूर्व तीव्रता के साथ इसने उत्पादन की मात्रा की दृष्टि से अनेक पूंजीवादी देशों को उन्नीसवी शताब्दी के अन्त की तथा बीसवी शताब्दी के आरंभ की स्थिति में पहुँचा दिया, विशाल संख्या मे मजदूर जनगण को विनाश और बर्बादी मे ला पटका—और तीन करोड़ लोगों को पूरी तरह बेरोजगार कर दिया। अब वेब्लेन की संस्था और कारवर की सामूहिक पूंजी का क्या अर्थ रह गया था? इन सिद्धान्तों मे बताये नुस्खे बेरोजगारो, बर्बाद

---

1. उदाहरण के लिए देखें थोर्स्टेन वेब्लेन, एजीनियर्स एड दि प्राइस सिस्टम, न्यूयार्क, 1936

और निर्धन लोगो के लिए स्पष्ट रूप से अनुपयुक्त सिद्ध हुए। 1929-1933 के सकट द्वारा प्रवर्तित उथल-पुथल ने पहले से कही बड़ी सख्या मे विभिन्न सामाजिक स्तरों के मेहनतकश लोगो को पूंजीवाद का सही रूप जो आर्थिक अस्थिरता, बेरोज़गारी और असुरक्षा का प्रतीक था दिखा दिया।

साम्राज्यवाद के विचारक इन विभीषिकाओं को अनदेखा करना चाहते थे लेकिन कर नही सके। जहां 19वी शताब्दी के अन्त मे और 20वी शताब्दी के आरंभ मे वे यह स्वीकार करके चले कि पूंजीवादी व्यवस्था अपरिवर्तनीय और 'स्व-नियन्त्रित' है, वहां अब उनके प्रचार की आधारशिला थी यह सिद्धान्त कि राज्य के नियमन द्वारा पूंजीवाद का आधुनिकीकरण किया जा रहा है।

पूंजीवादी समाज को पूर्ण बनाने के लिए अपरिष्कृत समर्थनो के स्थान पर सुधरे हुए सिद्धान्त सामने आये।

संभवतः इस सम्बन्ध मे अत्यधिक प्रचलित विचार थे अंग्रेज अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स के जिनकी पुस्तक द जनरल थियरी ऑफ़ एम्प्लायमेण्ट इण्ट्रेस्ट एंड मनी'[1] 1936 मे प्रकाशित हुई थी। इसने सनसनी उत्पन्न कर दी और लेखक को पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सुधारक और पैगम्बर की प्रतिष्ठा प्रदान की। आर्थिक संकट के कुछ ही समय पश्चात् और उस समय जबकि सोवियत संघ योजनाबद्ध समाजवादी व्यवस्था लाभ प्रदर्शित कर रहा था यह कृति सामने आयी। कीन्स के सिद्धान्त में दूसरी चीज़ों के साथ, इन परिस्थितियो को भी ध्यान मे रखा गया था। वास्तव में इसने विकृत पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के कुछ पुराने जड़ सूत्रो को ही, सीमान्त उत्पादकता के उपर्युक्त सिद्धान्त सहित, अपना आधार बनाया था। इससे भी आगे, कीन्स का सिद्धान्त इस तथ्य को मानकर चलता है कि पूंजीवाद में ऐसे अन्तर्विरोध रहते है जिनका समाधान नही हो सकता और बाजार की शक्तियों का 'खुला खेल' उसे संकट से नही बचा सकता। दूसरे शब्दों मे, कीन्स की मान्यता है कि स्वय भू सतुलन की यांत्रिकता और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का स्व-नियत्रित व्यवस्था के रूप में स्थिरीकरण—जिससे कि प्राचीन पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था का आरंभ हुआ—अब अधिक समय तक काम नही दे सकता।

तथापि, कीन्स, यदि वह इस तथ्य से उचित निष्कर्ष निकालना चाहते अथवा निकालने योग्य होते तो पूंजीवादी अर्थशास्त्री नही होते। उनके लिए मानना केवल इसलिए अनिवार्य था कि अस्वीकार करना नितान्त असंभव था। उन्होंने यह प्रमाणितकरने का प्रयास किया कि पूंजीवादी समाज की संस्थाओं को सुधार करके इस

---

1. जॉन मेनॉर्ड कैन्स, दि जनरल थ्यूरी ऑफ एम्प्लायमेंट, इण्ट्रेस्ट एण्ड मनी, न्यूयार्क, 1936

दुःखद स्थिति से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। विशेष रूप से, यह धन के संचलन तथा ऋणों के राज्य इजारेदारी और सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त सार्वजनिक संस्थानों द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। अन्य सभी पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों की कीन्स ने भी समस्त पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों की तरह कुछ मौलिक मनोवैज्ञानिक नियमों की बात करते हुए पूंजीवाद के आर्थिक नियमों के वर्गीय सारतत्व की उपेक्षा करने का प्रयास किया।

पूंजीवादी राज्य की आर्थिक नीति के सम्बन्ध में कीन्स की व्यावहारिक सिफ़ारिशें थी—बजट, व्यापारियों को ऋण एवं वित्तीय सहायता का विस्तार, अर्थव्यवस्था मे निजी पूंजी निवेशन को प्रोत्साहन, 'नियन्त्रित' मुद्रा प्रसार, वेतनों को व्यवस्थित करने के लिए, और कुछ अन्य प्रक्रियाओं का उपयोग तथा कुछ अन्य उपाय जिनको कि व्यापक रूप से लागू किया गया है, उदाहरणार्थ, फ्रेंकलिन रूज़वेल्ट का 'न्यू डील', यह उपाय मेहनतकश जनता की क़ीमत पर राज्य इजारेदारी पूंजीवाद को सुदृढ करने के लक्ष्य से किये गये थे। इसलिए, इस तथ्य मे कुछ भी आश्चर्यजनक नही है कि कीन्सियनवाद (और बाद मे नव कीन्सियनवाद, जिसके कि प्रवक्ता आर० हैरोड, जॉन राबिन्सन, आल्विन हैसन और अन्य लोग थे) पूंजीवादी देशों में बहुत प्रशंसित हुआ और आज भी वह पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की एक मुख्य धारा है।

कीन्सियनवाद के उदाहरण से ज्ञात होता है कि 1920 और 1930 के दशको के पूंजीवादी सामाजिक विचार ने कुछ नयी महत्वपूर्ण विशेषताएँ प्राप्त कर ली थी। इसने विश्व मे हो रहे वास्तविक परिवर्तनो पर ध्यान देना आरम्भ किया और जहाँ भी संभव हुआ वास्तविकता के आवरण में सामने आना आरम्भ कर दिया। पहले, बिना किसी विशेष प्रमाण अथवा साक्ष्य के, प्रत्यक्ष बुराई मानकर समाजवाद को सर्वथा नकार दिया गया था, जबकि पूंजीवाद को पवित्र, एवं बिना किसी सुधार के, सभी सुचिन्तित एव अचिन्तनीय गुणो के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया था। किन्तु, अब पूंजीवादी सिद्धान्तकारों को समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के अनुभव मे कतिपय सकारात्मक पहलुओं को—जैसे उत्पादन की दरो का तेज़ी से विकास एवं योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की तथा सामाजिक नीति की सफलताएँ स्वीकार करने के लिए अनिच्छापूर्वक ही सही, विवश होना पड़ा। उन्हे यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि पूंजीवाद की भावोद्दीप्त प्रशंसा का स्वर कुछ धीमा किया जाय।

यह कहने की आवश्यकता नही, कि तथ्यो के साथ यह समझौता सिर्फ इसलिए सहन किया गया कि तथ्यो ने पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थको के सामने और कोई विकल्प नही छोड़ा था। लेकिन अन्य तरीके खोजने का प्रयास जारी रहा, कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार मे अधिक लचीला रवैया, ये तथ्य के विविध साक्ष्य थे कि जनता की राय मे समाजवाद के पक्ष इतनी ठोस और स्पष्ट थी कि उसकी उपेक्षा

करना असभव था।

इस ढाँचे मे, जिसमे द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ काल मे समाजवाद और पूँजीवाद के बीच शक्तियों के परस्पर सम्बन्ध प्रदर्शित होते हैं, वर्तमान कम्युनिज्म-विरोधी बुनियादी दिशाए देखी जा सकती थी : समाजवाद को सार्वभौम 'मानवीय मूल्यों' की कथित वास्तविक स्थितियो से गिराने के प्रयास, पूँजीवाद की इसके 'रूपान्तरणों' के आधार पर रक्षा, 'वर्ग-भागीदारी' के जनोत्तेजक आह्वान के साथ वर्ग संघर्ष को मन्द करने के प्रयास, समाजवाद और पूंजीवाद के बीच बुनियादी विभाजक रेखा को आँखों से ओझल करने के प्रयास। तथापि यह विशिष्ट दिशाएं पर्याप्त समय बाद पूरी तरह विकसित हुईं, जबकि समाजवाद के पक्ष मे नये ऐतिहासिक परिवर्तन हुए और 'आणविक गतिरोध' ने सैनिक साधनों से समाजवाद को मिटाने सभी आशाओं को समाप्त कर दिया। अन्ततः पश्चिम के अत्यधिक वास्तविकता से सोचने वाले राजनयिकों की दृष्टि भी परिवर्तित हो गयी। तथापि विचाराधीन समय में, इस समय भी, साम्राज्यवाद की आमरण नीति में सैनिक साधनों से समाजवाद को छिन्न-भिन्न करने पर जोर था और सभी वैचारिक साधनो को सर्वप्रथम और पूरी तरह इस कार्य में लगा दिया गया था।

कम्युनिज्म-विरोध का वास्तविक रूप

समाजवाद के प्रति सम्पूर्ण घृणा और इसका भय फ़ासिज्म मे केन्द्रित हो गये। वह साम्राज्यवादी प्रतिक्रिया का खूनी लक्ष्य था, जो मानव-समाज के विकास को रोकने और उसे पीछे फेंकने के लिए ऐतिहासिक मंच से विदा होने वाले का निराशापूर्ण प्रयास था। विश्व के दृश्यपट पर फ़ासिज्म के आने के साथ, कम्युनिज्म-विरोध ने नया रूप धारण किया, वह अत्यधिक प्रतिक्रियावादी, अत्यधिक अंधराष्ट्रवादी, और वित्तीय पूंजी के अत्यधिक साम्राज्यवादी तत्वों की एक खुली आतंकभरी तानाशाही थी।[1] हिटलर की विदेश नीति का कार्यक्रम का अर्थ था 'जीवित अन्तरिक्ष' जिसे जर्मनी अपने फ़ासिस्ट सहयोगियों के साथ मिलकर जीतना चाहता था, पूर्व में अर्थात् जिसे वह सोवियत यूनियन से लेना चाहता था। पश्चिमी शक्तियों—संयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ने हर तरीके से इस दुस्साहस को प्रोत्साहित किया, और वास्तव मे समर्थन दिया। व्यवस्था को बड़ी स्पष्टता के साथ परिभाषित किया गया था : नाजी जर्मनी ने समाजवाद के विरुद्ध युद्ध मे 'आक्रमणकारी टुकड़ी' की भूमिका ग्रहण की। पश्चिमी शक्तियाँ पृष्ठभूमि मे उसकी रक्षा कर रही थी। हिटलर के सत्ता मे आने के बाद, साम्राज्यवाद की समस्त यूरोपीय नीति अनिवार्य रूप से इन लक्ष्यों के अधीन हो गयी। इस प्रकार

---

1. द रोड टु कम्युनिज्म, मास्को, 1962, पृ० 499

समाजवादी सोवियत संघ के विरुद्ध फ़ासिज्म का युद्ध पहले से ही तय कर दिया गया। साथ-ही-साथ पश्चिमी शक्तियों ने इसे कई दिशाओं में तेज़ कर दिया।

युद्ध की तैयारी आर्थिक योजनानुसार की गयी, इसका अर्थ था जर्मनी में रुहर के लोहा और इस्पात तथा युद्ध-उद्योग पुनः स्थापित और विकसित किये जाए। यह कार्य, मरम्मत के लिए डास योजना की स्वीकृति के अनन्तर, अमरीका और ब्रिटेन की इजारेदारियों से प्राप्त शक्तिशाली सहायता से किया गया, इस प्रकार जर्मन उद्योगों में विदेशी पूँजी के, सर्वोपरि अमरीकी पूँजी के, तीव्र प्रवाह के लिए मार्ग खुल गया। अमरीकी डालरों की स्वर्णिम वर्षा ने हिटलरी जर्मनी के भारी उद्योगों को, विशेष रूप से युद्ध उद्योगों को पुनर्जीवित कर दिया। ये अरबों-खरबों अमरीकी डालर समुद्रपारीय इजारेदारियों ने युद्ध स्तरी जर्मनी की सैनिक अर्थव्यवस्था व जर्मनी की युद्धक्षमता के नवीनीकरण के लिए और आक्रमण की तैयारी के लिए आवश्यक शस्त्रास्त्र हिटलर के शासन के हाथों मे दे दिये।[1]

युद्ध की तैयारी राजनीतिक रूप से भी की गयी। यह आवश्यक था कि वर्साई सन्धि में जर्मनी की सशस्त्र सेनाओं के विकास पर लगायी गयी सीमाओ की व्यवस्था को समाप्त किया जाय, यूरोप में सामूहिक सुरक्षा के समर्थको की पाँतो में फूट डाली जाय, और आक्रमण को रोकने के उपायों को महत्वहीन बना दिया जाय। और यह कार्य भी ब्रिटेन और फ्रास के शासक हल्कों ने कर दिया, जो आक्रमणकारी को 'तुष्ट करने की' नीति का अनुसरण कर रहे थे। स्पष्ट रूप से, आग्ल और फ्रासीसी शासक हल्कों की यह नीति सामूहिक सुरक्षा को अस्वीकार करने, जर्मन आक्रामकता को पीछे हटाने से इन्कार करने, और हिटलरी जर्मनी की आक्रामक भागो मे रुचि लेने मे अभिव्यक्त हुई जो द्वितीय महायुद्ध की ओर दुनिया को ले गयी।[2] तुष्ट करने की नीति की परिणति, जैसाकि हम जानते हैं, म्यूनिख सन्धि, जिसने न केवल चेकोस्लोवाकिया के सूडेटन्लेण्ड को ही हिटलर के चरणो मे डाल दिया, मे हुई अपितु समकालीन लोगो ने सही निर्धारित किया कि इससे हिटलर को मास्को पर आक्रमण के लिए हरी झंडी दिखा दी गयी। वास्तव में, म्यूनिखवादियो ने इस बात को छिपाया भी नही। फ्रांसीसी समाचारपत्र—**'ले जुआर, ईको दि पैरिस'** ने लिखा : "म्यूनिख बैठक का सर्वोपरि प्राथमिक लाभ यह हुआ कि रूस को इससे अलग कर दिया गया। रूस को यूरोप से बाहर रखने के लिए हर उपाय किया जाना चाहिए, उसे उसके एशिया में पीछे खदेड़ देना चाहिए। जैसाकि बूढ़ा क्लेमेंश्यू सपने लिया करता था कँटीले तारो के पीछे उसे घेरने के लिए, वह

---

1. देखें : फाल्सीफायर्स ऑफ हिस्ट्री, एन हिस्टोरिकल रैफरेंस बुक, मास्को, 1952 पृ० 12 (रूसी मे)
2 वही, पृ० 13

सदा तैयार है। इसका उपयोग किया जाय।"[1] इस प्रकार युद्ध की राजनीतिक तैयारियों में न केवल तेजी लायी गयी अपितु उसने सोवियत-विरोधी आन्दोलन के प्रत्यक्ष संगठन का रूप ले लिया।

अन्ततः, युद्ध की तैयारी विचारधारात्मक रूप से भी की गयी, यह आवश्यक था कि शान्ति की शक्तियों को छिन्न-भिन्न करने के लिए और सोवियत संघ को अलगाव मे डालने के लिए उपयुक्त मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार किया जाय। पश्चिम के तथाकथित जनतन्त्रो ने नाजीवाद की कम सेवा नही की। हिटलर सोवियत संघ को पश्चिम के विरुद्ध 'विध्वसक कार्रवाई' करने, एव 'क्रान्ति का निर्यात करने के लिए' 'विश्व कम्युनिस्ट षड्यन्त्र सगठित' करने आदि के लिए दोषी ठहराने वाला पहला व्यक्ति नही था। हिटलर को प्रचार के ये सुविधाजनक औजार विरासत मे मिले थे। इसके अतिरिक्त, बेशक, फासिज़्म ने सोवियत विरोध और समाजवाद विरोध को अपनी सरकारी नीति बनाया तथा समाजवादी सोवियत सघ के विरुद्ध युद्ध को अपना लक्ष्य घोषित किया। फिर हिटलर अन्य पश्चिमी शक्तियों की सहायता के बिना जनोन्माद की सीमा तक 'कम्युनिस्ट खतरे' के मिथक को प्रचारित नही कर सकता था। वास्तव में, यह जनगण के विरुद्ध इजारेदारियों के अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र के लिए जन-उत्तेजना का एक झीना आवरण था। बाद में, नूरेम्बर्ग केस में संयुक्तराज्य अमरीका के एक प्रतिनिधि डा० रॉबर्ट कैम्पनर ने कहा था कि 'यह कम्युनिस्ट खतरा मात्र बहाना था और उन कारणों में एक था जो द्वितीय युद्ध की ओर ले जा रहे थे।'[2]

फासिज़्म इसका प्रत्यक्ष परिणाम था और साथ ही यह पूँजीवादी समाज के गम्भीर सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक सकट की अभिव्यक्ति था, उसका जन्म तनावपूर्ण वातावरण मे हुआ और वह निरन्तर तनाव को बढाता रहा। इसीसे हिन्सा, सैन्यवाद और विस्तारवाद की सनक को प्रस्थापित करने मे सहायता मिली। उन्मादपूर्ण प्रतिक्रिया और आतंक सम्मिलित रूप से नाजीवाद के सार है। लेकिन चेकोस्लावाक पत्रकार जूलियस फ्यूचिक जो स्वयं नाज़ियों का शिकार था, यह कहते हुए हज़ार बार सही था: "फ़ासिज़्म केवल, कारागार, यातना शिविर और फ़ांसियाँ ही नही है, और न सिर्फ खूनी आतक, और जनता का शारीरिक उत्पीडन भर नही है। यह विचारों का, दृष्टिकोणों का, धारणाओं का भी उत्पीड़न है जो फासिस्ट शासन के लिए खतरा पैदा करते है।" और आगे "केवल हिंसा बहुसंख्या पर अल्प-संख्या के शासन को बनाये रखने में कभी सफल नही हो सकती, इसके लिए, अधि-

---

1. जीन बोमायर, डी हिटलर ए ट्रूमैन, पैरिस 1950 पृ० 21
2. ट्रायल ऑफ द मेजरवार क्रिमिनल्स बिफोर दि इण्टर्नेशनल मिलिटरी ट्रिब्यूनल, खड 5, नूरेम्बर्ग, 1947, पृ० 357

संख्य लोगों को भ्रष्ट करना आवश्यक है, उन्हे वैचारिक रूप से पतित बनाना और इस प्रकार कमजोर करना आवश्यक है जिससे कि वह महत्व-हीन अल्प मत की विचारधारा से प्रभावित होकर उसकी सेवा करने लगे।"[1]

नाजीवाद की विचारधारा ने व्यक्ति मे हर मानवीय चीज को ध्वस्त कर दिया, इसमे निम्नतम वृत्तियो को उभारा और उसे एक बिना विचार किये हत्या करने वाले परपीड़क के रूप में बदल दिया। नस्लवाद, अन्धराष्ट्रवाद, सैन्यवाद और फ्यूहरर की झक जर्मनी में नागरिक के आदर्श घोषित कर दिये गये। सामाजिक संस्थाएँ—परिवार, स्कूल, जनसंस्कृति—पूर्णतया राज्य के नियंत्रण मे आ गयी जिससे कि उनको नाजीवाद की बर्बर योजनाओ के अधीन कर दिया गया। मानव समाज के पूरे इतिहास को 'मालिक नस्ल' स्थितियो के अनुरूप पुनः परीक्षित किया जाय जिससे '1000 वर्ष की राइश' को समस्त सामाजिक विकास के पूर्ण होने के चरमबिन्दु के रूप मे चित्रित किया जा सके। सशस्त्र सेनाओं की ओर तोपों को समस्त विश्व मे 'नया शासन' स्थापन करने का आह्वान दिया गया।

जर्मनी मे नाजियो के सत्ता पर आने के बाद, यूरोप अदम्य गति से युद्ध की चल पड़ा। सोवियत सघ और अन्य जनतांत्रिक शक्तियो के पास अभी तक इतने पर्याप्त साधन नही थे कि वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया द्वारा चलाए जा रहे आक्रमण के इजिन को रोक सके। लेकिन दूसरा विश्व युद्ध शुरू हुआ और चल पड़ा तब यह नही कहा जा सकता कि यह कैसे समाप्त होगा। यह वैसा नही था जैसाकि बर्लिन, वाशिंगटन, लन्दन और पैरिस मे बैठे बैंक मालिकों, सैनिक-औद्योगिक धुरंधरों, जनरलों और राजनयिकों ने योजना बनायी थी, हिटलर और उसके अनुयायियों ने उनके सर्वथा भिन्न दृश्य तैयार किया था जिस पर अमल किया गया। उन्होने सोवियत विरोधवाद और कम्युनिस्ट विरोध के आन्दोलन के नारे युद्ध आरम्भ करने और चलाने का विचार किया जो कि पश्चिमी देशो के सभी प्रतिक्रियावादियो को संयुक्त कर सके अथवा कम-से-कम विश्व जनता के एक भाग को जैसाकि एक इतिहासकार ई० एन० दुजेलेपी ने लिखा : "घटनाओ के तर्क के अनुसार द्वितीय विश्वयुद्ध लालरूस के विरुद्ध हिटलर के नेतृत्व मे पश्चिमी शक्तियो की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता या भागीदारी सहित पश्चिमी सभ्यता का सच्चा धर्मयुद्ध था। इसके रणनीति निर्धारको के अनुसार यह धर्मयुद्ध समाजवादी सोवियत सघ की विनाशक पराजय के साथ समाप्त होगा और सम्पूर्ण विश्व में पूंजीवादी इजारेदारियो की पुनः स्थापना करेगा। यह था वह परिदृश्य जिसकी रूपरेखा हिटलर और फ़ासिज़म पर भरोसा रखनेवाली ताकतो ने मानवता की सामाजिक प्रगति को तथा समाजवाद की ओर उसकी गति को रोकने के लिए,

1. इनोस्तनाया लिट्रेचरा, 1974, नं० 11, पृ० 210 (रूसी भाषा मे)

बनायी थी।

फासिज्म के विरुद्ध विश्व-जनगण

लेकिन घटनाओं ने दूसरा रूप ले लिया। फ़ासिज़्म के विरुद्ध सोवियत संघ के संघर्ष ने सारी दुनिया की प्रगतिशील शक्तियों को संयुक्त कर दिया। इससे हिटलर विरोधी मोर्चा बना, हिटलरी जर्मनी और उसके साथियों को कठोर पराजय का मुंह देखना पड़ा। अन्तिम विश्लेषण में, इसकी परिणति पूंजीवाद के आम संकट के गम्भीर रूप से गहरा होने और समाजवाद के और सुदृढ़ होने के रूप में हुई। सामाजिक प्रगति की ऐतिहासिक विजय के विविध साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए फ़ासिज़्म पर महान् विजय ने मज़दूर वर्ग के संघर्ष को सामाजिक मुक्ति के संघर्ष तक उठा दिया, जनगण के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के स्तर तक, और साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनता का लोकतान्त्रिक संघर्ष गुणात्मक रूप में नये स्तरों को छूने लगा।

घटनाओं में यह परिवर्तन किस प्रकार सम्भव हुआ? निस्सन्देह, इसमें निर्णायक भूमिका सोवियत संघ की शक्ति ने अदा की। सोवियत जनगण के अतुलनीय कदमों ने, जिन्होंने फ़ासिज़्म के विरुद्ध संघर्ष का मुख्य भार वहन किया, और सोवियत कूटनीति की कुशलता ने जो साम्राज्यवादी शक्तियों के सोवियत विरोधी मोर्चे में फूट डालने में सफल हुई।

लेकिन दूसरी ओर, फासिज़्म की पराजय विश्व में सामाजिक-राजनीतिक शक्तियों के नये विभाजन के कारण जो, युद्ध-पूर्व के वर्षों में ही दीखने लगा था और युद्ध की समाप्ति तक पूरी तरहपरि भाषित हो गया, प्रतिबन्धित हो गयी। यहाँ संदर्भ है समस्त जनवादी शक्तियों के-किसानों, दस्तकारों और बुद्धिजीवियों के-मजदूर वर्ग के चारों ओर साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के झण्डे के नीचे एकजुट होने का। जर्मनी में फ़ासिज़्म के बलपूर्वक सत्ता में आने से और नये विश्व युद्ध के खतरे ने इस प्रक्रिया को केवल तीव्र कर दिया।

कम्युनिस्टों ने जनवादी शक्तियों को एकताबद्ध करने के आन्दोलन का नेतृत्व किया। *इस लक्ष्य में विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट संघ की (जुलाई-अगस्त* 1935 में) सातवीं कांग्रेस ने अपना योगदान किया जिसने कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए फासिज्म की बढ़त के विरुद्ध और नये विश्व युद्ध की तैयारियों के विरुद्ध संघर्ष के लिए कार्यनीति एवं रणनीति की स्पष्ट रूपरेखा निर्धारित की। यह विश्व इतिहास के अत्यधिक जटिल और संकटपूर्ण समय मजदूर वर्ग का, मेहनतकश अवाम का, और समस्त जनवादियों का हथियार बन गया और इसने अनेक प्रकार से शक्तियों के इस संयुक्त मोर्चे को बल प्रदान किया और अन्त में फासिज़्म पर विजय तक पहुँचाया।

कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की सातवीं कांग्रेस ने संकेत किया कि जर्मनी में इजारेदार पूंजीवाद की खुली आतंकभरी तानाशाही के आगे बढ़ने और विश्व युद्ध के खतरे के समक्ष मुक्ति संघर्ष में भाग लेने वाले समाजवादियों और जनवादियों के नये अन्योन्याश्रय के रूप मे मजदूर वर्ग का कार्य-भार मूर्त रूप ले चुका था। जबकि 1917 और 1923 के बीच क्रान्तिकारी उभार के युग मे मजदूर वर्ग के सामने पूंजीवादी जनतन्त्र और समाजवाद के बीच चुनाव का प्रश्न था, 1930 के राजनीतिक संकट के काल मे प्रश्न सामने आया, या तो फ़ासिज्म अथवा पूंजीवादी जनतन्त्र। इस विकल्प के प्रकाश में कांग्रेस मजदूरों और लोकप्रिय शक्तियों के संयुक्त मोर्चे की कार्यनीति प्रस्तुत करती है। कार्यकाल एकता के लिए "सिवाय एक के कोई शर्त नही है, और आरम्भिक शर्त होगी जो सभी मजदूरों को स्वीकार करनी होगी'''कार्यगत एकता फ़ासिज्म के विरुद्ध निर्देशित होगी, पूंजी के हमले के विरुद्ध, युद्ध के खतरे के विरुद्ध।"[1]

लोकप्रिय संयुक्त मोर्चे की रणनीति का अर्थ है गृहनीति के रूप में मजदूर वर्ग के आस-पास लाखों मेहनतकश जनता का और मध्य वर्ग के लोगों का इजारेदार प्रतिक्रिया के आक्रमण को रोकने तथा पीछे हटाने के लिए और मेहनतकश जनता की जनवादी उपलब्धियों की अधिकाधिक रक्षा के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय रूप में इसका अर्थ है साम्राज्यवादी युद्ध को रोकने के लिए समस्त जनवादी शान्ति प्रेमी शक्तियों का सर्वोपरि सोवियत संघ जोकि स्वाधीनता और जनतन्त्र का सुदृढ़ गढ है, के इर्द-गिर्द एकजुट होना।

इसमे सर्वहारा वर्ग के अपनी वर्ग स्थितियों से और अन्तिम लक्ष्य से पीछे न हटने की रणनीति अन्तर्निहित थी। नयी वास्तविकताओ के प्रत्युत्तर मे कार्य करते हुए अपने समक्ष तात्कालिक समस्याओ के समाधान का लक्ष्य रखा और साथ-ही-साथ मजदूर वर्ग के और इसके कम्युनिस्ट हिरावल दस्ते के इर्द-गिर्द विशाल साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चा बनाने का लक्ष्य रखा।

इसी के साथ-साथ किसी भी प्रकार यह रणनीति केवल तात्कालिक हितों के अर्थात् फासिज्म के आगे बढने के तथा युद्ध के खतरे के विरुद्ध थोपी नही गयी थी। यह लेनिन की जनवाद के लिए संघर्ष एवं समाजवाद के लिए संघर्ष के मध्य अन्तः-सम्बन्धों की धारणा से और जनतान्त्रिक एव समाजवादी लक्ष्यों की अभिमुखता एवं अन्तर्ग्रथितता की धारणा से चल रही थी। इस प्रकार इसने लोकप्रिय संयुक्त मोर्चा बनाने की सम्भावनाओं का मार्ग खोल दिया अथवा संघर्ष की समाजवादी स्थिति के लिए फासिस्ट विरोधी जनतान्त्रिक राज्यों के सक्रमणकालीन संयुक्त मोर्चे का मार्ग खोल दिया।

---

1. जी० दिमित्रोव् सकलित रचनाएँ खण्ड 2, सोफिया प्रेस, 1972, पृ० 28

कमिण्टर्न की सातवी कांग्रेस द्वारा तैयार की गयी विश्व कम्युनिस्ट और मजदूर आन्दोलन की कार्यनीति सम्बन्धी मार्गदर्शक नीतियो ने बाद मे होने वाली घटनाओं को अनेक प्रकार के पूर्व निर्धारित कर दिया। युद्ध पूर्व के वर्षों मे, यूरोप में कई देशों में और कुछ अन्यत्र भी सयुक्त मोर्चे की विजय ने न केवल फ़ासिज़्म को पीछे हटाया अपितु वहाँ कतिपय प्रगतिशील सुधार लागू करना भी सम्भव बनाया। दूसरे विश्व युद्ध के दिनों मे सातवी कांग्रेस के विचारो ने प्रतिरोध आन्दोलन को व्यापक क्षेत्र प्रदान करने मे सहायता दी जोकि अपने सार रूप में पहले से ही दुतरफा सघर्ष था। फ़ासिस्ट हमलावरो से राष्ट्र की मुक्ति का और समाजवाद की ओर उन्मुख जनवादी शासनो की स्थापना का संघर्ष था। इन उच्च आदर्शो के नाम पर संघर्ष कर रहे थे ग्रीस और यूगोस्लाविया के साथी, फ्रांसीसी माक्विस और पोलिश देशभक्त, स्लोवाक राष्ट्रीय विद्रोह तथा प्राग के विद्रोह के सूरमा, डेन्मार्क और नार्वे में मुक्ति संघर्ष के योद्धा, और स्वयं जर्मनी मे फ़ासिस्ट विरोधी योद्धा।

फ़ासिस्ट विरोधी प्रतिरोध ने नाज़ीवाद के विरुद्ध प्रत्येक देश मे देशभक्ति पूर्ण और साथ-ही-साथ अन्तर्राष्ट्रीय रूप मे जनगण का सघर्ष छेड दिया। इसने फ़ासिस्ट लुटेरो के विरुद्ध नेतृत्व किया और साथ-ही-साथ जनवादी रूपान्तरण और सामाजिक प्रगति के लिए भी सघर्ष किया। उपनिवेशो और पराधीन देशो मे साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से मुक्ति के लिए सघर्ष का आन्दोलन चल रहा था। सोवियत सघ के महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के आरम्भ के साथ ही प्रतिरोध आन्दोलनों की साम्राज्यवाद विरोधी दिशा और उसका सामयिक सारतत्व व्यापक बन गया। अनेक देशो मे, जैसाकि हमें ज्ञात है, यह अन्ततः लोकप्रिय जनतान्त्रिक क्रान्तियो के रूप मे विकसित हुआ।

युद्धोत्तर वर्षो मे, लोकप्रिय सयुक्त मोर्चे के विचार, उन देशों मे जहाँ कि पूँजीवादी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी जनता के जनतन्त्र की स्थापना का साधन बने। वे नीतियाँ आज भी क्रान्ति, जनतन्त्र और समाजवाद के लिए उनके संघर्ष में मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए मार्गदर्शक बनी हुई है।

अध्याय : 2

विचारों के संघर्ष की नयी अवस्था

फ़ासिज्म की पराजय : शिक्षाएँ और चेतावनियाँ

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद समाजवाद के पक्ष में हुए विश्वव्यापी परिवर्तनों के साथ कम्युनिज्म और कम्युनिज्म विरोध के बीच संघर्ष की नयी अवस्था आरंभ हुई।

फासिज्म पर विजय ने दिखा दिया कि संसार की कोई भी शक्ति अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति द्वारा आरम्भ किये गये क्रान्तिकारी रूपान्तरण की शक्तिशाली धारा को पीछे नहीं हटा सकती। साम्राज्यवाद के गढ़ फ़ासिस्ट जर्मनी की पराजय ने अनेक प्रकार से विश्व के युद्धोत्तर विकास को पूर्व निर्धारित कर दिया। यह विजय नये क्रान्तिकारी उभार के लिए प्रस्थान बिन्दु बन गयी, जिसने पश्चिम एवं पूर्व के बहुसख्यक देशों में पूंजीवाद के विनाश का नेतृत्व किया। इस विजय से विश्व की राजनीति, अर्थव्यवस्था, विचारधारा और लोगों की मानसिकता में गंभीर परिवर्तन लक्षित किये गये।[1]

युद्ध के बाद के दशकों में कई ऐतिहासिक घटनाएँ लक्षित की गयी। विश्व समाजवादी व्यवस्था का जन्म, मजदूरों और कम्युनिस्टों के आन्दोलनों में वृद्धि, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का विस्तार और शांति के लिए और विश्व तापनाभिकीय युद्ध के विरुद्ध विश्वव्यापी आंदोलन।

फ़ासिज्म के साथ घातक मुठभेड़ ने लोगों के दिमागों पर गहरी छाप छोड़ी। युद्ध ने करोड़ों लोगों के जीवन को सीधे तौर से प्रभावित किया और वह संपूर्ण मानव समाज के लिए भयानक विपदा बना। इसने राजनीतिक पार्टियों के वास्तविक रूप को उजागर कर दिया और उनके नारों और कार्यक्रम का पर्दाफाश कर दिया, इसने विश्व राजनीति के छिपे स्रोतों को प्रकट कर दिया और संघर्ष में भाग लेने

---

1. एल० आई० ब्रेझनेव, 'फालोइंग लेनिन्स कोर्स' खंड 1, मास्को, 1970 पृष्ठ 144 (रूसी भाषा में)

वाली शक्तियों के वास्तविक उद्देश्यो को सामने ला दिया। युद्ध ने सारी दुनिया को प्रकंपित कर दिया, और वैचारिक और राजनीतिक जीवन को ऊर्जा से भर दिया तथा जनवादी आन्दोलन को नया वेग प्रदान किया।

हिटलरी जर्मनी पर विजय ने समाजवाद की अभेद्य शक्ति को स्पष्ट रूप से दिखा दिया, इसके फलस्वरूप बहुत से कम्युनिस्ट विरोधी सिद्धान्त जो तब तक बड़े ठोस माने जाते थे, नितान्त निरुपयोगी हो गये।

वर्षों तक पूंजीवादी प्रचारतंत्र दुहराता रहा कि समाजवाद एक 'ऐतिहासिक संयोग' के अतिरिक्त कुछ नही है और नये समाज का निर्माण 'बोलशेविकों के प्रयोग' के अतिरिक्त कुछ नही है, जिसका कि असफल होना अनिवार्य है। तथापि, युद्ध ने दिखा दिया कि सोवियत सघ अजेय शक्ति थी और जो अकेला हो विश्व की फ़ासिस्ट बर्बरता से रक्षा के लिए समग्र जनवादी आदोलन का नेतृत्व कर सकता था। इसी प्रकार उसने यह भी दिखा दिया कि इस शक्ति का स्रोत समाजवाद था। सोवियत संघ ने फ़ासिज्म का सामना केवल अपनी शक्तिशाली सेना और औद्योगिक क्षमता से ही नही किया अपितु अपने क्रान्तिकारी एवं वास्तविक मानवीय विश्व दृष्टिकोण और उच्च सामाजिक आदर्शों से एकताबद्ध जनगण की शक्ति के कारण भी वह यह कर सका।

युद्ध ने फ़ासिज्म को इजारेदार पूंजी के सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी पक्ष के वैचारिक और राजनीतिक सिद्धान्त के रूप सामने लाकर नैतिक रूप से नंगा कर दिया। मानवता के विरुद्ध नाज़ियों द्वारा किये गये भीषण अपराधों ने विश्व को रसातल की वह गहराई दिखा दी जिसमे साम्राज्यवाद उसे धकेल रहा था। सामान्य जनता ने यूरोप के बहुत से देशों पर 'नये शासन' के लम्बे और कटु अनुभव से बहुत कुछ सीखा। उन्होंने देखा कि पूंजीवादी समाज उदार जनवादी सस्थाओं को किस प्रकार खुले रूप से और तुरन्त अलग फेंक दिया गया इस प्रकार इजारेदार पूंजी के दक्षिणपन्थी तत्वों के प्रभुत्व के सार को स्पष्ट रूप से दिखा दिया।

फासिज्म के अधकारपूर्ण वर्षो ने वित्तीय अल्पतंत्र के हितो के लिए समस्त विश्व को यातना शिविर बनाने एव समस्त राष्ट्रों को मिटा डालने के लिए तत्पर कम्युनिज्म-विरोध के सारतत्व को पूरी तरह दिखा दिया। फ़ासिज्म के वैचारिक *और राजनीतिक सिद्धान्तों और अपराधपूर्ण कृत्यों ने साम्राज्यवाद की विश्व-आधि*पत्य की, जनतंत्र मे कटौतियाँ करने की, हर प्रकार से प्रतिक्रिया को पुष्ट करने की आम प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया। हिटलर इन कार्यों में पहले के लोगो की अपेक्षा और आगे बढ गया, अपितु उसने ऐसा करते हुए अनुपम वैचारिक और राजनीतिक मार्ग दर्शक नीति का अनुसरण नही किया, बल्कि उसी का इजारेदारी प्रतिक्रियावाद ने समस्त विश्व मे उपयोग किया।

फ़ासिस्ट विचारधारा की आधार-शिला है कम्युनिज्म विरोध। समकालीन

कम्युनिस्ट विरोधियों ने कोई भी परिधान पहन रखे हों, हिटलर के बाद उन्होंने कोई भी मुखौटा लगा रखा हो, अंतिम विश्लेषण मे, अनुभव ने यह दिखा दिया है कि वे दुनिया को कहाँ ले जाने में समर्थ हैं। तथापि, उन्हे यह नही भूलना चाहिए, कि उनके पीछे नूरेम्बर्ग के 'वीरो' की दानवी छायाएँ निरन्तर मँडरा रही हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध मे सोवियत संघ और उसके सहयोगियों की विजय का अर्थ साम्राज्यवाद के हिरावल दस्ते की केवल सैनिक और राजनीतिक पराजय ही नही थी अपितु सामान्य रूप से पूँजीपति वर्ग के अत्यधिक प्रतिक्रियावादी और अतिवादी पक्ष की विचारधारा की विश्वव्यापी हार थी।

बूर्ज्वा 'मूल्यों' की रक्षार्थ खड़े होने में जनवादी संस्थाओं की हिचकिचाहट, उनकी नपुंसकता तथा प्रतिक्रिया की हत्यारी टुकड़ी द्वारा उनके विध्वंस के कारण बूर्ज्वा उदारवाद के परंपरागत अनुयायियों की दृष्टि में इन संस्थाओं ने प्रतिक्रिया से गंभीरता के साथ समझौते किये। इससे पूँजीपति वर्ग की दोमुँही नीति का वैचारिक और राजनीतिक आधार सर्वथा नष्ट हो गया जिसका कि वह मजदूर वर्ग के साथ सदा पालन करता था : प्रत्यक्ष दमन और आतंक की कठोर नीति, जिसका गठजोड उदारवाद के आवरण मे युक्तिपूर्वक काम निकालने की नीति के साथ था।

स्वभावतः इन समस्त कारकों ने विचारधारात्मक एवं राजनीतिक मोर्चे पर शक्तियों के समीकरण व समजन को बदल दिया तथा कम्युनिस्ट विरोधियों के लिए पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा करने के कार्य को और अधिक जटिल बना दिया।

पोट्सडम से शीत युद्ध तक

द्वितीय विश्व युद्ध के दौर मे और इसके तत्काल बाद हुए फ़ासिज्म के पतन और यूरोप तथा एशिया मे समाजवादी क्रान्तियो के विकास ने पूँजीवाद के आम सकट की पहली मजिल को समीप ला दिया। यदि हम उस काल की मुख्य वैचारिक और राजनीतिक धाराओ के आम विवरण देने का प्रयास करें तो चित्र कुछ इस तरह का होगा। विदा होने वाले वर्ग सदा जो भूलें किया करते हैं उसी प्रकार की परिस्थितियो मे उन्ही भूलो को दुहराते हुए साम्राज्यवाद के रणनीति निर्माता समाजवाद की जीवन्तता का अथवा अक्तूबर क्रान्ति के फलस्वरूप विश्वव्यापी पैमाने पर हो रहे गंभीर सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों का सही अनुमान लगाने में असमर्थ रहे। पश्चिम के अत्यधिक परिष्कृत राजनीतिक, वर्साई के निर्माताओ से लेकर, विल्सन, लॉयड जार्ज, और क्ली मेश्यू से म्यूनिख के शान्ति निर्माता चेम्बरलेन, दलादियर और उनके समुद्रपारीय सहयोगी तक, सभी सोवियत राज्य की वास्तविक शान्ति और क्षमता का मूल्याकन करने तथा उससे सम्बन्धित किसी भी बात को सही रूप में समझने मे असहाय रूप से दिवालिया प्रमाणित हुए।

इसका कारण यह था कि वे सब नये समाज को नापने के लिए पुराने पैमाने

काम में ले रहे थे। बूर्ज्वा राजनीतिज्ञ सोवियत गणतंत्र के भौतिक संसाधनों की सटीक गणना में, इसका सैनिक और आर्थिक क्षमता निर्धारित करने में, और बहुत से मात्रात्मक सूचकों की सही तुलना करने मे कमोवेश सक्षम थे लेकिन वे सदा ही मुख्य चीज को—समाजवादी व्यवस्था की मौलिक रूप से नयी प्रकृति, इसके जीवन को, और इसकी विचारधारा में निहित गुणात्मक रूप से भिन्न नियमों को—दृष्टि परिधि के बाहर छोड़ जाते थे। इस प्रकार, उनके निष्कर्षों की आधारहीनता और त्रुटिपूर्ण गणनाओं के कारण अनेक बार पूंजीवादी नेताओं को कटु पराजय का मुंह देखना पड़ा।

साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार समाजवाद पर आसान विजय की मृग-मरीचिका से निरन्तर स्तब्ध होते रहे, इसने उनको चीज़ों को उनके सही रूप में देखने से रोक दिया। उन वर्षों में कम्युनिज्म विरोध की वैचारिक और राजनीतिक अवधारणाएं प्रारंभिक, कुण्ठित, युयुत्सु थी जो स्पष्टतया इस विचार से ही उत्पन्न हुई थी। नये समाज के पूंजीवादी राष्ट्रों से घिरे होने का लाभ उठाते हुए, पश्चिमी देशों के नेताओं ने समाजवादी राज्य को, अलगाव में डालने के लिए हर सभव प्रयास किया। वैचारिक स्तर पर, साम्राज्यवाद ने तथाकथित 'लौह आवरण' लगाने के लिए बहुत कठिन श्रम किया ताकि शेष विश्व की मेहनतकश जनता से समाजवाद से दूर रखा जाय और समाजवादी सोवियत सघ के विषय में सच्ची जानकारी से उन्हें वचित रखा जाय। साम्राज्यवादी सिद्धान्तकारों ने कम्युनिस्टों के साथ वाद-विवाद में उलझने के बजाय समाजवाद को ही विश्व से काट देने को प्राथमिकता दी, जिससे कि जहाँ तक संभव हो बोल्शेविक 'प्रयोग' को स्थानीय बना दिया जाय और यही कारण था कि पश्चिमी देशो को डराने के लिए समाजवाद के सम्बन्ध में सभी तरह की काल्पनिक कहानियाँ प्रचारित की गयी।

अनिवार्यतया बहिष्कार की यही नीति सोवियत विदेश नीति के सम्बन्ध मे भी व्यवहार में लायी गयी। सोवियत संघ के अन्तर्राष्ट्रीय क्रिया-कलाप के विषय में आमतौर से मौन साधा गया, इसके शान्तिप्रस्ताव बिना विचार किये अस्वीकार कर दिये गये, और इसके अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की जनवादी व्यवस्था स्थापित करने के कार्यक्रम को गंभीरता से नही लिया गया।

निर्वासन की यही नीति सामाजिक जनोत्तेजन का मुलम्मा चढाकर स्वयं पूंजीवादी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए काम मे लायी गयी। कम्युनिस्टों को 'मास्को के दलाल' के रूप में अलग कर जनवादी शक्तियों के साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे को नेतृत्वविहीन और निरस्त्र कर दिया जाय—यह थी मुख्य राजनीतिक नीति जो उन वर्षों मे प्रतिक्रिया ने ग्रहण कर रखी थी। और जब, समाजवादी सोवियत संघ की उपलब्धियों के समक्ष, पूरी दुनिया मे मुक्ति आंदोलनों की सफलता और पूंजीवाद के आम संकट के गहरे होने

के साथ-साथ यह राजनीतिक रणनीति अविश्वसनीय बन गयी, तब प्रतिक्रियावाद ने फ़ासिज़्म को राजनीतिक जीवन में खुलकर खेलने को छोड़ दिया।

इसी बिन्दु से जो कि साम्राज्यवाद की नीति का लक्ष्य था अब वह खुले रूप से समाजवादी समाज के सेना द्वारा विध्वंस पर आ गयी और सिद्धान्तकारों को यह कार्यभार सौंप दिया गया कि वे इस नीति को 'न्यायसंगत' ठहराये। सिद्धान्तकारों ने यह कार्य दो प्रकार से किया : मास्को से उभरने वाले सैनिक खतरे का बार-बार उल्लेख करके उन्माद भड़काकर तथा सोवियत संघ पर अशिष्टतापूर्वक यह आरोप लगाकर कि उसने लोगों को गुलाम बना रखा है तथा वे मुक्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं---उसे लाछित करके।

इस प्रकार, उस काल में—जबकि पूँजीवाद के आम सकट की पहली मंजिल ही चल रही थी—समाजवादी समाज के विरुद्ध संघर्ष मे प्राथमिक रूप से शक्तिशाली सैनिक साधनों का उपयोग किया गया था; विचारधारा को, कुछ समय के लिए मात्र सहायक हथियार ही माना गया।

इसी प्रकार की कट्टर रणनीति—जैसी कि रोम की सीनेट में कैटो दि ऐल्डर ने अपना रखी थी, जो अपने हर भाषण की समाप्ति इन शब्दों के साथ किया करता था कि 'कार्थेज को निश्चय ही ध्वस्त कर दिया जाना चाहिए'—लड़ाकू कम्युनिस्ट विरोधियों ने युद्धोत्तर वर्षों में अपना रखी थी। पश्चिम के साम्राज्यवादी चक्रों ने प्राविधिक और वैचारिक रूप से नये विश्वयुद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दी। सर्वोपरि इसके कारण विज्ञान और अर्थव्यवस्था का अभूतपूर्व रूप से सैन्यीकरण विकसित किया गया, जनता को 'लाल खतरे का' हौवा दिखाकर अन्तर्राष्ट्रीय तनाव बढाया जाने लगा—संक्षेप में, ये तमाम चीजें शीतयुद्ध के रूप में जानी जाने लगी।

विश्व के विनाश के लिए नये युद्ध का उपक्रम किसा भी अर्थ मे कम्युनिज़्म विरोध की रणनीति में आकस्मिक घटना न थी। अन्ततः, पश्चिम के साम्राज्यवादी क्षेत्र द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम से प्रसन्न नही थे, क्योंकि अनिवार्य रूप से यह जनवादी, साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों की विजय जानी जाती थी और साथ ही इसे साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद की रणनीति का दिवालियापन माना गया। पश्चिमी शक्तियाँ, जो परिस्थितियों के कारण हिटलरी जर्मनी के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष केलिए समाजवादी सोवियत संघ के साथ एकता करने के लिए विवश हुई थी, अब उस संयुक्त मोर्चे को ध्वस्त करने की दिशा मे बढने लगी।

युद्ध के उपरान्त, हिटलर विरोधी संयुक्त मोर्चे के भीतर स्वयं नवीकृत शक्तियों के साथ अन्तर्विरोध दिखायी देने लगे। उस संयुक्त मोर्चे मे सोवियत संघ को आक्रमणकारी को पीछे हटाने के सामूहिक विचारों के व्यावहारिक मूर्त रूप दिखाई दिया जिसके लिए सोवियत कूटनीति ने युद्ध के आरंभ मे इतना कठोर श्रम

किया था। शान्ति की रक्षा के लिए उस नीति को जारी रखना अत्यधिक महत्वपूर्ण अनुभव किया गया। पश्चिमी शक्तियों को भी इसी नीति को संयुक्त सम्मेलनों मे और इस प्रकार के समझौतो मे जैसे याल्टा और पोट्स्डम समझौते और संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणापत्र मे, सरकारी मान्यता देते हुए देखा गया। जैसा कि हम जानते है, अन्तर्राष्ट्रीय सबंधो की युद्धोत्तर व्यवस्था के ये और इस काल के अन्य दस्तावेज और सामान्य मानचित्र इसी समय रेखांकित किये गये थे।

किन्तु, जल्दी ही यह स्पष्ट होने लगा कि हिटलर विरोधी मोर्चे हाल के सहयोगी विश्व के युद्धोत्तर संगठन के सम्बन्ध मे भिन्न अवधारणाएँ रखते है। सोवियत संघ के लिए याल्टा, पोट्स्डम और सन्फ्रासिस्को में संयुक्त राष्ट्रसंघ के संगठन का निर्माण, उसकी सामूहिक सुरक्षा की नीति की निरन्तरता थी और स्वभावतः ही इस नीति को अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो मे सम्मिलित करने का प्रयास किया गया जो विश्व के युद्धोत्तर संगठनों को निर्धारित करती थी। किन्तु, पश्चिमी शक्तियों लिए ये अन्तर्राष्ट्रीय समझौते उनकी समग्र पूर्ववर्ती नीति के विपरीत समाजवाद की दिशा में जाते थे। इसलिए विश्व को फ़ासिज़्म की पराजय के पश्चात् किस मार्ग का अनुसरण करना है, यह प्रश्न अधर मे झूल रहा था। या तो महान् फ़ासिस्ट विरोधी युद्ध के सकारात्मक परिणामो को प्रगतिशील शक्तियाँ सुदृढ़ करने मे समर्थ हों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद घटनाओ के विकास की दिशा बदल देगा।

साम्राज्यवादी अमरीका इस समय प्रत्यक्ष रूप मे सोवियत-विरोधी राजनीति की अगली पंक्ति में आ गया। विश्व प्रतिक्रियावाद के हिरावल दस्ते द्वारा रिक्त स्थान को ग्रहण करते हुए और अनेक प्रकार से उसके अन्तर्निहित नारों को लेते हुए, अमरीकी साम्राज्यवाद ने द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रगति की शक्तियों की विजय को समाप्त करने का और मानव समाज पर अपने आदेश लागू करने का प्रयास आरम्भ किया। मुश्किल से ही दुनिया नाज़ियों की गुलामी के ख़तरे से अपने को मुक्त अनुभव करने लगी थी कि तभी इसके सामने वालस्ट्रीट के वैंकपतियों के पैरों तले झुक जाने का ख़तरा उपस्थित हो गया।

यह वह समय था जब, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद अब भी समाजवादी सोवियत संघ के और मुक्ति आंदोलनों के सम्बन्ध मे 'शक्ति की स्थिति से' नीति का अनुसरण करने का भ्रम पाले हुए था। अमरीका की इजारेदार पूँजी ने स्वयं विश्व-पुलिस की भूमिका ग्रहण करली और कम्युनिज़्म विरोध का ध्वज धारण कर लिया। इसने पूँजीवादी देशों को अपनी ढाल के अन्तर्गत संयुक्त करने का प्रयास किया, सोवियत संघ को अलग करने का, तथा इस पर यह दबाव डालने का कि यह रियायतें दे, आत्मसमर्पण करे, समाजवादी समुदाय के उत्थान को रोके और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को ख़तम कर दे। दूसरे शब्दो मे, मानव समाज ने जो प्रगति की

थी उसे शून्य में परिवर्तित कर दे।

शक्ति के बल पर : योजनाएँ और दिवालियापन

शीत युद्ध का आरम्भ कब हुआ, इस सम्बन्ध में अमरीकी इतिहासज्ञों मे विभिन्न दृष्टिकोण पाये जाते है। कुछ इतिहासकार इसका आरम्भ 1947 से मानते है, जबकि ट्रूमैन के सिद्धान्त और मार्शल योजना की घोषणा की गयी थी; दूसरे कहते है कि इसका आरम्भ 1946 के मार्च मे फुल्टन मे चर्चिल के भाषण से हुआ था। अब भी कुछ दूसरे अनुभव करते है कि इसका आरम्भ अप्रैल 1945 में ठीक फ्रैंकलिन रूजवेल्ट की मृत्यु के बाद हुआ था। लेकिन सभी कम्युनिज्म विरोध के अनुयायी इतिहासकार इस शीत युद्ध की जिम्मेदारी अमरीकी साम्राज्यवाद और यूरोप से उसके सहयोगियो पर न डालकर इसके लिए सोवियत संघ को उत्तरदायी प्रमाणित करने का प्रयास करते है। वे दावा करते है कि सोवियत संघ ने युद्धोत्तर समझौतो से सम्बन्धित प्रतिबद्धताओ का उल्लघन किया और 'मुक्त विश्व' के देशों के विरुद्ध कम्युनिस्ट आक्रमण की योजना बनायी। किन्तु अपने आरोपो को सिद्ध करने के लिए वह कोई तथ्य प्रस्तुत नही करते। कम्युनिज्म के 'आक्रामक सार' के बारे मे उनका सामान्य तर्क यह है कि वह अपने स्वभाव से ही 'स्वतंत्र विश्व' के लिए सम्भावित खतरा है।

तथापि, तथ्य सभी के लिए सुपरिचित है। फ्रैंकलिन रूजवेल्ट की मृत्यु के चन्द महीने बाद, संयुक्त राज्य अमरीका के नये राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन ने जापानी नगरों हीरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम डालने की स्वीकृति दी। आज भी हीरोशिमा स्मारक संग्रहालय की घड़ी उस समय को दिखा रही है जो विस्फोट के समय रुका था—6 अगस्त 1945 प्रात.8.15। क्या वह शोकपूर्ण घड़ी इतिहास से खुरचकर मिटायी जा सकती है![1] बहरहाल, अनुवर्ती घटनाक्रम ने के आलोक मे,

---

1. प्रख्यात अमरीकी वैज्ञानिक हर्बर्ट यार्क की पुस्तक 'रेस् टू ऑब्लिवियन' मे उक्त घटना का निम्नलिखित विवरण दिया गया है—लेखक स्वय आयुधो की नयी प्रणाली जिसमे आणविक बम भी सम्मिलित है विकसित करने मे भाग ले चुका है और निस्सन्देह अपनी पुस्तक को यह उप शीर्षक देने का पूर्ण अधिकारी है 'हथियारो की दौड मे भागीदार का दृष्टिकोण' विवरण आगे दिया जा रहा है—पहला परमाणु बम जापान नगर हीरोशिमा पर 6 अगस्त 1945 को डाला गया था। कम-से-कम 66,000 लोग विस्फोट होते ही तुरन्त मारे गये और बाद में आये ज्वालाओ भरे तूफान के कारण दसियो हज़ार और मारे गये। हीरोशिमा के 80 प्रतिशत मकान और भवन धराशायी हो गये और जो शेष बचे थे वह भी टूट-फूट गये। बम का वज़न नौ हज़ार पाउण्ड था, वह 10 फुट लम्बा 28 इंच व्यास का था। इससे जो विस्फोटक रखा था वह यूरेनियम धातु था जो यू 235 के कठिनता से उपलब्ध होने वाले आईसोटोप से परिपक्व किया गया था।

जापानी नगरों का बर्बर विध्वंस, जिसे किसी भी सैनिक अथवा अन्य आवश्यकता से प्रेरित नही कहा जा सकता, शीत युद्ध की प्रत्यक्ष क्रिया-कलाप का पहला कारनामा दिखायी देता है। यह अमरीकी सम्राज्यवाद का विश्व को भयभीत करने का एक प्रयास था, आणविक हथियार द्वारा डराने-धमकाने का और विश्व में अपनी श्रेष्ठता घोषित करने का।

6 मास से कुछ अधिक समय बीतने के बाद, राष्ट्रपति की एक विशेष गाडी से हैरी ट्रूमेन और ब्रिटेन के पूर्व प्रधान मन्त्री विंस्टन चर्चिल अमरीका के छोटे से नगर फुल्टन मे पहुँचे। वही चर्चिल ने भावी 'उत्तरी अटलांटिक संधि' (नार्थ एटलाटिक एलाइन्स) की स्पष्ट रूप से सोवियत विरोधी योजना की रूपरेखा तैयार की। 5 मार्च 1946 को दिये गये उस भाषण में, एक अमरीकी नगर में राष्ट्रपति की उपस्थिति में चर्चिल ने कहा —बाल्टिक के स्टेटिन से लेकर एड्रियाटिक के ट्रीस्ट तक महाद्वीप को चीरता हुआ एक लौह आवरण अवतीर्ण हो चुका है।"[1] उस भाषण का सार संक्षेप एक अमरीकी लेखक ने निम्न प्रकार दिया है : "विश्व अब पूंजीवादी और समाजवादी खेमो मे विभक्त हो गया है। कम्युनिस्ट खेमे के विस्तार को रोकने के लिए अंग्रेजी बोलने वाली जनता को, पिछले समय तक जो 'प्रभु वंश' था, शीघ्र ही एक संघ बनाना चाहिए। उन्हें तुरन्त एक सैनिक संगठन के रूप में सम्पर्क स्थापित करना चाहिए और अपने सैनिक संस्थानो को परस्पर जोड़ना चाहिए। उन्हे क्रिश्चियन सभ्यता को कम्युनिस्ट विरोधी धर्म-युद्ध मे नेतृत्व देना चाहिए।[2]

इसमे एक और चीज जो जोडी जानी चाहिए वह है कि पूर्ववर्ती ब्रिटिश प्रधान मन्त्री की सोवियत सघ के विरुद्ध धर्म-युद्ध का उन्मत्त आह्वान केवल उस नीति को सूत्रित करता है जो वस्तुतः उस समय पहले से ही व्यवहार में लायी जा

आणविक विस्फोट की भौतिक क्रियाएं एक सैकिण्ड के दस लाखवें से भी कम समय मे हो गयी और ऊर्जा की जो मात्रा विस्फोट से मुक्त हुई वह उस मात्रा मे भी जितनी कि चौदह हजार टन टी० एन० टी० के विस्फोट के बराबर थी। बम बी० 29 एयरक्राफ्ट से मेरियानास के टिनायन द्वीप से भेजा गया था जो लक्ष्य से लगभग 1500 मील दूर था। यह जमीन से हजार फुट ऊपर विस्फोटित किया गया जिससे कि अधिकाधिक क्षेत्र अपने उच्च दाब वाले विस्फोट की तरगो के और सघन ताप तथा रेडियेशन से घेर सके" (हर्बर्ट यार्क, 'रेस टू ओब्लीवियन' ए पार्टिसिपेण्ट्स व्यू ऑफ दि आर्म्स रेस न्यूयार्क 1971, पृ० 27)

1. विंस्टन एस० चर्चिल, हिज कम्प्लीट स्पीचिज 1897 से 1963; राबर्ट रोड्स द्वारा सम्पादित, खण्ड VII 1943-1949, चैल्सी हाउस पब्लिशर्स इन एसोसिएशन आर० आर० बोकर कम्पनी सहित, न्यूयार्क और लण्डन 1974, पृ० 7290
2 जेम्स पी० वारबर्ग, द यूनाइटेड स्टेट्स इन ए चेंजिंग वर्ल्ड, एन हिस्टारिकल एनेलसिस ऑफ अमेरिकन फौरेन पॉलिसी, जी०पी० पुटनेम सस न्यूयार्क, 1954, पृ० 416

रही थी। यह कोई संयोग नही था कि तुरन्त ही चर्चिल का समर्थन उस समय राज्य के सचिव डेमोक्रेट जेम्स बायरन्स ने और संयुक्त राष्ट्र संघ में अमरीका के राजदूत (बाद के काल में स्टेट सेक्रेटरी) रिपब्लिकन जॉन फ़ास्टर डलेस ने किया। इस प्रकार शीत-युद्ध को वाशिंगटन की सरकारी विदेश नीति के अनुरूप साररूप में दोनो मुख्य पार्टियों द्वारा स्वीकृत किया गया था।

निर्विवाद रूप से, उस समय अमरीकी विदेश नीति के इन निर्माताओं की दलीय सम्बद्धता मे इस बात का अत्यधिक महत्व है कि उनका सम्बन्ध बड़े व्यवसायियो, विशेष रूप मे उन समुदायों के साथ था जिनके युद्ध उद्योग से घनिष्ठ सम्पर्क थे। इनमें से कुछ व्यक्तियों के परम्परागत सम्बन्ध जर्मनी की युद्ध का सामान बनाने वाली फर्मों से था। उदाहरण के लिए जॉन फ़ास्टर डलेस, जिसने अपने को शीत-युद्ध का जोशीला समर्थक प्रमाणित किया, एक समय, सुलिवान और क्रामवेल की कानूनी फ़र्म का जो श्रौडरफ़ जर्मन बैंक घराने के जरिये नाजी पार्टी को वित्तीय सहायता देती थी, सहयोगी स्वामी था। दूसरे शब्दों में, वह उन अमरीकी व्यक्तियो में था जिन्होंने स्वयं कम्युनिस्ट विरोधी धर्म-युद्ध के संगठनकर्त्ता के रूप मे हाल ही में कार्य किया था।

चर्चिल की फ़ुल्टन की कार्रवाई एक प्रकार से शीत-युद्ध की सरकारी घोषणा के लिए सैद्धान्तिक तैयारी थी जो एक वर्ष बाद वाशिंगटन में अमरीकी सरकार की ओर से की गयी। वह 12 मार्च 1947 को कांग्रेस के लिए ट्रूमैन का सन्देश था जिसमें उसने ग्रीस और टर्की को 'सहायता' के कार्यक्रम की रूपरेखा दी थी और घोषणा की थी कि अमरीका की राष्ट्रीय सुरक्षा इसमे निहित थी। अमरीकी विदेश नीति का मुख्य कार्य, यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया, कम्युनिस्ट 'खतरे' को जहाँ कही भी वह उठे समाप्त करना है।[1] इस सन्देश में अमरीकी साम्राज्यवाद की दीर्घकालीन विदेश नीति के कार्यक्रम को सूत्रित किया गया था जिसमें कम्युनिस्ट विरोध के झीने आवरण मे उसकी विश्व आधिपत्य की आकांक्षा छिपी थी।

बर्कले में, केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र एवं इतिहास के प्राध्यापक फ्रेंज श्वर्मन इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि सर्वोपरि स्पष्ट रूप से ये विस्तारवादी आकाँक्षाएँ अशक्त ग्रेट ब्रिटेन के कन्धों से साम्राज्य का जामा खिसकने के बाद देखी गयी। अपनी इस प्रस्थापना को विकसित करते हुए वह आगे लिखते हैं: "भले ही रूस विस्तारवादी था या नही था यह जानना महत्वपूर्ण नही, यह जानना महत्वपूर्ण है कि नये सारतत्व की धारा वाली विदेश-नीति की आवश्यकता क्यों हुई। जॉर्ज केनन जैसे प्रख्यात विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत

1. ए डिकेड ऑफ अमेरिकन फॉरेन पॉलिसी, बेसिक डॉक्यूमेण्टस् 1941-49, यूनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेंट प्रिंटिंग ऑफिस, वाशिंगटन, 1950, पृ० 1253 और 1254

तथ्यों ने जो पहले से ही वाशिंगटन की विद्यमान आवश्यकता की पूर्ति कर रहे थे··· उभरती हुई राष्ट्रीय सुरक्षा की अफ़सरशाही, जो ह्वाइट-हाउस के इर्द-गिर्द जमा है, को एक ऐसी विश्व दृष्टि की आवश्यकता है जो उनके द्वारा आरम्भ की जा रही नीतियों के अनुकूल हो।"[1]

मार्शल योजना द्वारा शीघ्र ही ट्रूमैन सिद्धान्त को व्यवहार में लाया गया, जो पश्चिमी यूरोप के देशों की अर्थव्यवस्था में अमरीकी पूँजी को निवेशन के उद्देश्य से तैयार की गयी थी। इसका उद्देश्य, उस काल के अमरीका के स्टेट सेक्रेटरी जॉर्ज मार्शल के कथनानुसार, था: विश्व में कार्यशील अर्थव्यवस्था को इस प्रकार पुनर्जीवित करना कि वह ऐसी राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों को उत्पन्न करे जिसमें स्वतन्त्र संस्थाएँ कार्य कर सकें।[2] सैन्य क्षेत्र में इसे 'कम्युनिज़्म को रोकने' या 'पीछे हटाने' की नीति के द्वारा पूर्ण बनाया गया।

ट्रूमैन सिद्धान्त, मार्शल योजना, और कम्युनिज़्म को 'रोकने' या 'पीछे हटाने' की नीति साम्राज्यवाद की शीत-युद्ध की नीति के मुख्य उपकरण थे। ट्रूमैन सिद्धान्त घोषणा करता है कि अमरीकी साम्राज्यवाद को किसी भी देश के, जहाँ पूँजीवाद की कथित अर्थव्यवस्था के लिए ख़तरा उत्पन्न होता है, भीतरी मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। मार्शल योजना भी अमरीका के नियन्त्रण में पश्चिमी यूरोप की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से और वहाँ सामाजिक संघर्ष को कमज़ोर करने के उद्देश्य से चलायी गयी। कम्युनिज़्म को रोकने का सिद्धान्त सीधे-सीधे सोवियत विरोधी था।

शीत-युद्ध की नीति का दूसरा पहलू यह था कि इसे अमरीका की समस्त आर्थिक समस्याओं के समाधान के रूप में देखा गया। सरकारी योजना निर्माता अनुभव करने लगे कि उनको अनन्त काल के लिए एक आश्चर्यजनक जीवन सूत्र उपलब्ध हो गया। उनको आश्चर्य होने लगा कि अन्ततः निरन्तर गतिशील यंत्र की तरह यह पहले से ही विद्यमान था। शीत-युद्ध उत्प्रेरक था, और एक स्वयं चालित आर्थिक सहायता। हैंडिल पकड़कर घुमाइये और जनता युद्ध के लिए नये खर्च की माँग करने लगती है। दूसरे को बघुमाओ माँग समाप्त हो जाती है। ट्रूमैन का आत्मविश्वास, उसकी आत्म-संतुष्टि इस ट्रूमैन सिद्धान्त सूत्र पर निर्भर थी।

इस प्रकार शीत-युद्ध को एक चमत्कारी औषधि के रूप में देखा गया जो साथ-ही साथ अमरीकी अर्थव्यवस्था की रक्षा करती थी, देश में आन्तरिक व्यवस्था को सुदृढ़ करती थी और विदेश नीति की समस्याओं को सुलझाती थी। और यह सब

---

1. फ्रेंज श्वर्मन, द लॉजिक ऑफ वर्ल्ड पावर, एन इन्क्वायरी इनटू दि ओरिजिन्स, करेंट्स एण्ड कॉन्ट्राडिक्शन्स ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स", न्यूयार्क 1974, पृ० 92
2. द न्यूयार्क टाइम्स, जून 6, 1947.

आश्चर्यजनक रूप से बडा सीधा लगता था, लगभग स्वयंचालित। यदि वाल्तेयर जीवित होता तो वह अपनी प्रसिद्ध सूक्ति को फिर से लिखता : "यदि शीत-युद्ध विद्यमान न रहता तो उसे खोजकर लाना पड़ता" इसलिए इजारेदारियों के पादरी इस आदर्श की पूजा करते हैं और इसके लिए असीम बलिदानों के लिए तत्पर रहते हैं।

अमरीका के नेता जैसे-जैसे अत्यधिक स्वीकरणीय प्रस्थापनाओं की खोज कर रहे थे जिनसे कि उनकी विश्व-आधिपत्य की नीति को बल मिले, अमरीकी विचारक इसे सैद्धान्तिक आधार देने के प्रयासों मे संलग्न थे। उदाहरण के लिए, प्रो० जेम्स बर्नहेम ने अपनी पुस्तक 'द स्ट्रगल फॉर द वर्ल्ड' में इस दृष्टिकोण की व्याख्या की है कि आणविक युग में अन्तर्राष्ट्रीय विधि के ऐसे सिद्धान्त, जैसे सम्प्रभुता, हस्तक्षेप न करना, राष्ट्रों के समान अधिकार, आदि स्वत: ही त्याग दिये जाते हैं। और व्यावहारिक रूप से, "जहाँ तक कि विश्व के राजनीतिक सम्बन्धों को प्रभावित करने का मामला सम्बन्धित है तो कार्य-विधि शीघ्र, सुदृढ़, पर्याप्त हस्तक्षेपयुक्त होनी चाहिए न कि अहस्तक्षेप की।"[1]

इन प्रश्नो पर कि यह हस्तक्षेप क्या-क्या रूप ले सकता है और विश्व मे किस प्रकार बाद की घटनाएँ घट सकती है, यदि पैंटागोन आणविक आयुधों की इजारेदारी को कब्जे मे रखता है, दूसरे अमरीकी प्राध्यापक, रसायन शास्त्र मे नोबेल पुरस्कार विजेता डा० हैरॉल्ड सी० यूरी बड़ी स्पष्टतापूर्वक इसका उत्तर देते है— "या तो अमरीका विश्व के समस्त देशों को आणविक आयुधो के उत्पादन से रोकने के लिए उपयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण सुरक्षित कर लेता है और जिससे युद्ध पर पूर्ण नियन्त्रण हो सके अथवा हम तुरन्त तीसरे विश्व युद्ध के आरम्भ करने की तैयारी करें जिसमे कि आणविक बमो का उपयोग किया जाय।"[2]

बेशक, इस प्रकार के दृष्टिकोण के समर्थन के लिए सदा एक 'ठोस' तर्क अवश्य तैयार मिलेगा और इसे कम्युनिज्म की ओर से हमले के उसी पुराने ख़तरे के सन्दर्भ के रूप मे शीघ्र उत्पन्न कर लिया गया। यह उस नये वक्तव्य से जो अतिरिक्त 'प्रमाणों' के साथ अब प्रस्तुत किया गया है बहुत भिन्न है।

सोवियत संघ के अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव में वृद्धि, विकास के समाजवादी मार्ग को चुनने में अनेक देशों के जनगण की रुचि, कम्युनिस्ट पार्टियों की बढ़ती हुई भूमिका, कुल मिलाकर विश्व जनवादी आन्दोलन का दृढ होना, युद्धोत्तर वर्षों मे होने वाले समस्त प्रगतिशील परिवर्तनों को साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकारो ने मास्को के 'षड्यन्त्रों' के रूप मे चित्रित किया जिन्हे कि अमरीका और उसके

1. जेम्स बर्नहेम, द स्ट्रगल फार द वर्ल्ड, न्यूयार्क, 1947, पृ० 177.
2. दि यूनाइटेड स्टेट्स न्यूज, अगस्त 30, 1946, पृ० 52

साथियों को, जहाँ कहीं भी वे 'स्वतन्त्र विश्व के लिए' खतरा पैदा कर रहे हों, रोकना था।

कम्युनिज़्म को 'सर्वाधिपत्यवादी' और 'आक्रामक' फासिज़्म के साथ एक ही थैले में डाल दिया गया। इस पर हथियारों की दौड़ को बढ़ावा देने का आरोप लगाया गया। सड़कों पर घूमने वाले व्यक्तियों को 'सोवियत विस्तारवाद' की कहानियों से निरन्तर आतंकित किया गया। जार्ज केनन ने लिखा कि समाजवादी सोवियत सघ कथित रूप से दृढ़तापूर्वक विश्वास करता है कि अमरीका के साथ जीवन बिताना सम्भव नहीं है उसके लिए यह वाँछनीय और आवश्यक है कि हमारे समाज की आन्तरिक समस्वरता छिन्न-भिन्न हो जाय, हमारी परम्परागत जीवन पद्धति नष्ट हो जाय, और हमारे राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार टूट जाय'''।"[1]

कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार का ढोल पीटने के लिए साम्राज्यवाद ने द्वितीय विश्व-युद्ध मे सोवियत जनता के महान कदमों की निन्दा करने के पागलपन भरे प्रयास किये। पाश्चात्य इतिहास लेखन नाज़ियों के उस वक्तव्य पर जा पहुँचा कि समाजवादी सोवियत सघ के विरुद्ध जर्मनी का युद्ध रक्षात्मक युद्ध था।"[2] 'सोवियत खतरे' के मिथक को पुनर्जीवित करते हुए साम्राज्यवादी प्रचार ने घटनाओं के वास्तविक क्रम को ही गड्ड-मड्ड कर दिया। वास्तव में युद्ध उभारने वालों को साफ़ बरी करके सोवियत संघ पर बार-बार 'आक्रामक आकांक्षाओं' के आरोप लगाये गये।

शीत-युद्ध की नीति मानव समाज को बहुत महँगी पड़ी। अमरीका मे यह मेकार्थीवाद के रूप मे परिवर्तित हो गयी। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे इसने अपना काला झण्डा क्रान्तिकारियों और जनवादी आन्दोलनों के विरुद्ध लड़ने वालों को थमा दिया। इसका प्रत्यक्ष परिणाम आक्रामक कार्रवाइयों की शृंखला के रूप में सामने आया। स्थानीय युद्ध, लगभग हर महाद्वीप मे, कोरिया से बर्लिन तक क्यूबा से वियतनाम तक, कांगो से मध्यपूर्व तक सैनिक षड्यंत्र और भड़काने वाली कार्रवाइयाँ, और आक्रामक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की पूर्ण व्यवस्था का निर्माण किया गया। और निस्सन्देह, इस सबका परिणाम था अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का वातावरण, अविश्वास का, और युद्धोन्माद का वातावरण। शीत-युद्ध उन विशाल भौतिक और सांस्कृतिक संसाधनों को चट कर गया जो हथियारों की होड़ और विध्वंसक कार्रवाइयों पर व्यय किये गये थे। नैतिक रूप से यह एक ज़हर बन गया, जिसने जनगण की आत्मा को खा डाला, किन्तु[3] अन्तिम गणना मे, यह नीति भी

---

1. जॉर्ज केनन मैमायर्स' 1925-1950, बोस्टन, 1967, पृ० 557
2. जॉर्ज केनन, 'मैमायर्स' 1925-1950, बोस्टन, 1967, पृ० 55
3. इस देशभक्त का व्यापक उपयोग नाज़ी प्रचार द्वारा सोवियत सघ पर हमला करने के लिए तैयारी के रूप मे किया जा रहा था और पूरे युद्ध के दौरान किया जाता रहा है

असफल हो गयी।

सर्वप्रथम, इसका अपने मुख्य उद्देश्य में असफल होना निश्चित था, वह उद्देश्य था समाजवाद के विरुद्ध रणनीतिक प्रत्याक्रमण करना। युद्ध के बाद, समाजवाद की पूंजीवाद के मुकाबले ऐसी श्रेष्ठता सिद्ध हुई कि कोई इससे इन्कार नहीं कर सकता था। सोवियत संघ को रणक्षेत्र में दूसरे देशों की अपेक्षा कहीं अधिक हानि पहुँची थी, पर उसने स्वतन्त्र रूप से और तेजी के साथ अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण कर लिया और आर्थिक विकास में, विज्ञान और प्रविधि के विकास में भारी छलांग लगायी, सैनिक प्रविधि भी इसमें सम्मिलित थी। इस अकेले तथ्य ने ही शीत-युद्ध के संगठनकर्ताओं की सारी रणनीति को और 'कम्युनिज्म को पीछे फेंकने' की उनकी योजनाओं को अस्त-व्यस्त कर दिया। सोवियत संघ की बढ़ती हुई आर्थिक और सैनिक शक्ति ही वह अतिमहत्वपूर्ण तत्व था जो, यूरोप और एशिया के बहुत से देशों के जनगण द्वारा विकास के समाजवादी मार्ग का चुनाव किये जाने का और साथ ही समाजवादी समुदाय के आविर्भाव और सशक्त होने का भी कारण बना। इसके साथ-ही-साथ औपनिवेशिक व्यवस्था के विनाश ने और इस तथ्य ने कि बहुत से देशों ने स्वतन्त्रता एवं प्रगति का मार्ग अपना लिया है, इससे साम्राज्यवाद की कमर टूट गयी।

जहाँ तक समाजवादी सोवियत संघ और विश्व मुक्ति आन्दोलन के विषय में 'शक्ति की स्थिति से' की नीति के अनुसरण की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में पाले गये भ्रमों की बात है वह धीरे-धीरे टूटते चले गये। उनके कम्युनिज्म को 'रोकने' 'मुक्त करने' या 'पीछे हटाने' के सिद्धान्तों पर पर्दा उठा दिया गया। अन्ततः साम्राज्यवाद के अभिजात शासक वर्ग को उन्हें ताक में रख देना पड़ा।

पाँचवें दशक के अन्त में और छठे दशक के आरम्भ में ये परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखायी दिये। राजनीतिक स्तर पर यह परिवर्तन हंगरी में प्रतिक्रान्ति की असफलता मिस्र में स्वेज की दुस्साहसिकता के अन्त और क्यूबा में क्रान्ति की विजय और पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट पार्टियों की बढ़ती हुई भूमिका में दिखायी दिये। 1960 में कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के प्रतिनिधियों की बैठक की घोषणा में उल्लेख किया गया : "इन वर्षों के मुख्य परिणाम हैं : विश्व समाजवादी व्यवस्था की तेजी से वृद्धि और उसकी शक्ति तथा अन्त-

---

फिरशे, गोएबल्स के मंत्रिमंडल में एक उच्च अधिकारी था, उसने नूरेम्बर्ग ट्रायल में यह स्वीकार किया था कि, सोवियत संघ पर हमले के बाद, जर्मन प्रचार का यह मुख्य काम था कि इस आक्रमण की आवश्यकता को न्यायसंगत सिद्ध किया जाय। अतः हमें इस बात पर बार-बार जोर देना पड़ता था कि हमें सोवियत आक्रमण की रोक-थाम करनी है।" (अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य ट्रिब्यूनल के सामने बड़े युद्ध अपराधियों की जाँच खंड XVII, नूरेम्बर्ग, 1948, पृ० 226)

राष्ट्रीय प्रभाव मे वृद्धि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के प्रभाव के कारण औपनिवेशिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने की शक्तिशाली प्रक्रिया, पूंजीवादी विश्व मे वर्ग-संघर्ष का विस्तार, और विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का पतन और ह्रास। साम्राज्यवादी शक्तियों से समाजवादी शक्तियों की श्रेष्ठता, जंगखोर ताक़तो से शान्ति की शक्तियों की श्रेष्ठता विश्व-व्यापी पैमाने पर लक्षित की गयी।[1] बाद के वर्षों मे समाजवाद के पक्ष मे शक्तियों के सन्तुलन मे यह सामान्य धारा तेजी से विकसित हुई और साम्राज्यवाद की ओर से कोई प्रत्याक्रम नही हुआ। मुक्ति संघर्षों में कोई भूलें या पराजय नही हुई, चीनी नेताओं के सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद के उद्देश्य के साथ दुखद विच्छेद और विश्वासघात भी इसको नही बदल सके।

विदेशनीति के 'चतुर्थ क्षेत्र' की सक्रियता

जैसे-जैसे 'शक्ति के बल पर' कार्य करने की नीति का संकट गहराने लगा पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियां समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष के गुरुत्व का केन्द्र वैचारिक क्षेत्र में स्थानान्तरित करने के लिए विवश हो गये। धीरे-धीरे वैचारिक संघर्ष कूटनीतिक, आर्थिक और सामरिक क्षेत्रों के अतिरिक्त विदेश नीति के 'चतुर्थ स्तर' तक पहुंचा दिया गया। जबकि वैचारिक क्षेत्र पहले ही महत्वपूर्ण था, अब से इसे वस्तुतः विस्तृत कार्य-क्षेत्र उपलब्ध होगा।

जब अक्तूबर 1957 को अमरीका के शीत-युद्ध की रणनीति के निर्माताओं के सिर पर सोवियत अन्तरिक्ष उपग्रह घूमने लगा तब 'शक्ति के बल पर' कार्य करने की नीति की असफलता जगजाहिर हो गयी। अमरीका की वायुसेना के राज्य सचिव थोमस फिनलेटर ने इस घटना को अमरीका के लिए संभावित परिणामों की दृष्टि से निम्न प्रकार लक्षित किया—"तब प्रायः रातो-रात ही घटनाओं की एक ऐसी स्थिति से जिसमे कि अमरीका के लिए सामान्य युद्ध कोई खतरा नही प्रतीत होता एक अतिभीषण विनाश की, जिसमें लाखों अमरीकियो के मरने से और लाखों अमरीकियों के घायल होने से नागरिक विनाश की स्थिति मे पहुँच गये।"

"1917 की रूसी क्रान्ति के अतिरिक्त मैं ऐसी किसी घटना को नही जानता, जिसने ऐसा परिवर्तन किया हो जो हमारे देश की सुरक्षा एव सत्ता के लिए इतना बुरा हो।"[2]

यह कहना अनावश्यक होगा कि इसके कारण अमरीकी विदेशनीति में कुछ सुधार करने पड़े। यही कारण था कि 1950 के अन्त में, अमरीकी राजनयिकों की भाषा मे, अमरीकी-सोवियत सम्बन्धों के विकास की संभावनाओं पर चर्चा

1. दि स्ट्रगल फ़ार पीस, डेमोक्रेसी एंड सोशलिज़्म, पृ० 37-38.

2 थोमस के० फिनलेटर, 'फॉरेन पॉलिसी : द नैक्स्ट फ़ेज़', न्यूयार्क, 1958, पृ० 23

करते समय 'मुकाबलों के युग से बातचीत के युग तक' की शब्दावली प्रयुक्त होने लगी। इन प्रयासों की बुनियादी दिशा को लक्षित करते हुए रिचर्ड एम० निक्सन ने जो उस समय तक अमरीका के राष्ट्रपति नही बने थे, अपनी पुस्तक 'सिक्स क्राइसिस्' (प्रथम संस्करण, 1960) मे लिखा था : "सैनिक शक्ति अनिवार्य है— बशर्तें कि इसे आर्थिक, राजनीतिक और प्रचारात्मक कार्यक्रमो मे इसे पूर्ण किया जाय।"[1] कुछ वर्षों बाद, रिचर्ड निक्सन पहले अमरीकी राष्ट्रपति बने जिन्होंने मास्को की सरकारी यात्रा की।

वे कायल हो गये कि समाजवादी सोवियत संघ, समाजवादी समुदाय और मुक्ति आन्दोलनो के सम्बन्ध मे पुरानी कठोर नीति न केवल निरर्थक अपितु खतरनाक भी थी, साम्राज्यवाद के रणनीति निर्माताओं ने अब यथार्थवादी विकल्प के विषय मे विचार करना आरम्भ कर दिया 'प्रभावशाली प्रतिकार' के धमकी भरे सिद्धान्त से 'लचकीला प्रत्युत्तर' के सिद्धान्त पर आ पहुँचे।" समाजवादी देशों के विरुद्ध आर्थिक और राजनीतिक भेदभाव की नीति से 'पुल बनाने की' रणनीति की ओर मुक्ति आन्दोलनो और मजदूर वर्ग के जनवादी संघर्षों के प्रत्यक्ष दमन के स्थान पर संशोधित सामाजिक और राजनीतिक कूटनीति तक पहुँच गये।

इस नीति के आधार पर, साम्राज्यवाद ने प्रचार की प्रवृत्तियो की नयी योजना बनाना आरम्भ किया इसके लिए उस काल की अनेक मुख्य समस्याओं के साथ समाजवाद और पूँजीवाद के बीच शक्ति संतुलन से परिवर्तन को ध्यान मे रखना पडा। दूसरे शब्दो में, उनको अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर कुल मिलाकर मजदूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच संतुलन के विकास को और इसी प्रकार प्रत्येक पूँजीवादी देश के विकास को और साथ ही पूँजीवाद के राज्य इजारेदार रूपो के विकास द्वारा उपलब्ध कुछ नयी घटनाओं को भी और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के विकास को भी ध्यान मे रखना था।

यह वह काल था, पाँचवें और छठे दशक का संधिकाल, जबकि पूँजीवादी देशों के नेताओं, राजनयिको और सिद्धान्त निर्माताओं ने, संभवतः पहली बार समाजवाद के साथ ऐतिहासिक प्रतियोगिता का पूर्ण महत्व आत्मसात् किया। इससे साम्राज्यवादी वैचारिक सेवाओ का ठोस रूप मे पुनः सगठन आवश्यक हो गया, अथवा अधिक स्पष्टता से कहें तो शब्द के व्यापक अर्थ मे इसकी वैचारिक सुरक्षा की पूरी व्यवस्था का पुनर्गठन आवश्यक हो गया। इसमे नया तत्व था कि कम्युनिज्म के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष में पूँजीपति वर्ग द्वारा प्रयुक्त साधनों की आपूर्ति के लिए आर्थिक, राजनीतिक एवं सैनिक क्षेत्रों के क्रिया कलाप, मौलिक महत्व के स्वतंत्र मोर्चे बन गये।

---

1. रिचर्ड एम० निक्सन, 'सिक्स क्राइसिस', न्यूयार्क, 1962, पृ० 289

अब पूरे विश्व में, समाजवाद और जनवादी आन्दोलन के विरुद्ध 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' साम्राज्यवादी शक्तियो की नीति का अभिन्न अंग बन गया।

इन समस्याओं के एक अध्येता विलसन डिज़ार्ड ने जो पहले अमरीकी सूचना एजेन्सी से सम्बद्ध था, 1960 के आरम्भ मे यह टिप्पणी की थी : "जब तक आत्मघाती आणविक युद्ध न हो तब तक कम्युनिस्टों और हमारे बीच शक्ति-संतुलन अधिकांश मे विश्व जनमत के क्षेत्र में निर्धारित होगा।"[1]

ठीक इसी प्रकार की स्पष्ट सम्मति अमरीकी राजनयिक ज्यार्ज वी० एलेन ने ड्यूक विश्व यूनिवर्सिटी में भाषण देते हुए प्रकट की थी। उन्होंने कहा : यह प्रचार व्यापक रूप में बना रहेगा और प्राविधिक प्रगति ने इसको कूटनीति के लिए इतना आवश्यक बना दिया है जितना कि सेना के लिए बारूद थी।[2]

यह मस्तिष्क मे रखकर, साम्राज्यवादी शिविर, सर्वोपरि अमरीका ने अपने विदेश नीति के प्रचार को अभूतपूर्व क्षेत्र प्रदान किया है, वैचारिक संघर्ष के लिए एक शक्तिशाली मशीनरी तैयार की है, प्रचार सम्बन्धी क्रिया-कलाप के लिए अधिक प्रभावशाली सगठनात्मक रूपों की जोरो के साथ खोज की है, और इसके तरीक़ों को अधिक परिष्कृत करने पर अधिकाधिक ध्यान दिया है। फलस्वरूप, छठे और सातवें दशकों में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे वैचारिक सघर्ष में नयी मंजिल आ गयी इसे इस प्रकार लक्षित करने का हमारे पास आधार है। इसे साम्राज्यवाद की विदेश नीति के प्रचार के संगठन मे महत्वपूर्ण परिवर्तनों से लक्षित किया गया—दोनों क्षेत्रों मे ये प्रयोग किये जा रहे है, कार्यनीतिक तरीको के प्रयोग में और कुछ वैचारिक अवधारणाओ के सारतत्व मे।

वैचारिक प्रचार सेवाओं का पुनर्गठन

जब एक बार यह पूँजीवादी देशों की सर्वोच्च राज्य इजारेदारियो की चिन्ता का विषय बन गया, इस क्षेत्र ने नये महत्वपूर्ण संगठनात्मक रूप ले लिये। पूँजीवादी राज्य के विशिष्ट क्रिया कलाप के रूप मे, वैचारिक संघर्ष का निर्देशन पूँजीवाद की वर्तमान मंजिल के विशिष्ट रूपो को पृथक्-पृथक् प्रतिबिम्बित करता है। विशेष रूप से, यह राज्य इजारेदारी ढांचों की वृद्धि का, अन्तर्राष्ट्रीय समेकीकरण और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति की उपलब्धियों के एकीकरण का उपयोग करता है। यह सारी प्रक्रिया पूरी मात्रा मे 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' तक विस्तृत कर दी जाती है। और भी, इजारेदारी के समक्ष पूँजीवादी राज्य की और अधिक अधीनता,

1. विल्सन, पी० डिज़ार्ड; द स्ट्रेटेजी आफ ट्रुथ, द स्टोरी ऑफ यू एस इन्फर्मेशन सर्विस वाशिंगटन, 1961, पृ० 186
2. जान डब्ल्यू हैंडरसन, द यूनाइटेड स्टेट्स इन्फार्मेशन एजेंसी, न्यूयार्क, वाशिंगटन-लन्दन 1966, पृ० 14 से उद्धृत।

समाजवाद के विरुद्ध बहुराष्ट्रिक इजारेदारियों के संयुक्त मोर्चे की ओर प्रवृत्ति और विज्ञान एवं प्रविधि की उपलब्धियों का साम्राज्यवाद के हित में उपयोग करने के प्रयास इस क्षेत्र में सम्भवतः पहले से कहीं अधिक स्पष्टता के साथ देखे जा सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक युद्ध के साम्राज्यवादी शक्तियों के राज्यीय क्रिया-कलाप के रूप में नियमीकरण का परिणाम सर्वोपरि साम्राज्यवाद की वैचारिक सेवाओं के कठोर केन्द्रीकरण के रूप मे हुआ। इसने शासक अभिजात वर्ग को इस क्रिया-कलाप को अपूर्व व्यापकता प्रदान करने का अवसर मिल गया, इसमें प्रचार की संस्थाओं के साथ सरकारी संस्थानों जैसे सेना, गुप्तचर सेवा और विदेशो में उनकी शाखाओं को भी सम्मिलित कर लिया गया। हाल के वर्षों में एवं विदेशी प्रचार की पूरी व्यवस्था, संगठन और केन्द्र साम्राज्यवादी देशों में निर्मित किये गये हैं। इसके अन्तर्गत कई परस्पर अन्तःक्रिया युक्त 'चक्र' है।

'वैचारिक पर्वत' के शिखर पर बैठा सिद्धान्त कारों का छोटा-सा गुट अपने आपको समकालीन मानव समाज का आध्यात्मिक मार्ग-दर्शक मानता है। उसका काम है 'नये' विचार देना, आधुनिक अवधारणाओं की रचना करना, घिसी-पिटी युक्तियों को नया रूप देना और वैचारिक क्षेत्र मे स्वर निर्धारित करना।

"मध्यवर्ती चक्र में ये विचार इस प्रकार पिरो दिये जाते हैं (सामान्यतया बडे परिष्कृत ढंग से) कि ये विभिन्न प्रकार के दर्शकों, हितों और माँगों के अनुरूप हो सकें। यहाँ सामान्य प्रस्थापनाएँ लोकप्रिय रूपों में सुसज्जित की जाती हैं और उनको विशेष रूप से चुने हुए तथ्यों से चित्रांकित किया जाता है, उपयुक्त स्थानो पर आवश्यक ध्यान के साथ।

और अन्ततः, जनप्रचार है। चक्रों की इस बहुशाखीय व्यवस्था में, सभी कड़ियाँ सरकारी पद-सोपान-परम्परा व विभागों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हैं।

कम्युनिज्म के विरुद्ध प्रचार के इस क्रिया कलाप में समस्त पूँजीवादी देश भाग लेते हैं। किंतु संयुक्त राज्य नेतृत्वकारी भूमिका अदा करता है, वहाँ इन उद्देश्यों के लिए भारी धन-राशि व्यय की जाती है जहाँ अत्यधिक शक्तिशाली विदेश नीति की प्रचार मशीनरी निर्मित की जाती हैं, जहाँ इस क्षेत्र में अधिकतम संख्या में संगठन कार्यरत हैं, मुख्य प्रचार संघों से लेकर सभी प्रकार के संगठन केन्द्र और ग्रुप वैज्ञानिक संघर्ष के नवविरचित रूपों, पद्धतियों और साधनों से कार्य कर रहे हैं। वहाँ भारी मात्रा में कम्युनिस्ट विरोधी सामग्री तैयार की जाती है और कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार के 'सामूहिक गान की' तान-लय तय की जाती है।

अमरीका की प्रचार मशीनरी अधिकतम केन्द्रीकरण और कठोर पद सोपान तंत्र की अधीनता के सिद्धान्त पर कार्य करती है। मुख्य चालक यंत्र ह्वाइट हाउस

के स्टेट विभाग के, और केन्द्रीय गुप्तचर अभिकरण (सी० आई० ए०) के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करते हैं। विचारधारा और प्रचार में राज्य इजारेदारी केन्द्रीकरण की दिशा में प्रवृत्ति विशेष रूप से अमरीका और अन्य साम्राज्यवादी देशों में राजनीतिक जीवन में देखी जाती है और उससे कुछ बड़े ठोस परिणाम निकलते है। यह, सर्वप्रथम, वस्तुतः किसी भी सरकारी अभिकरण के क्रियाकलाप को कम्युनिज्म विरोध के कार्य के अधीन कर देती है, दूसरे, व्ययसाध्य विदेशी प्रचार मशीनरी का व्यय राज्य की कीमत पर चलाती है अर्थात करदाताओं के धन पर और तीसरे, इस क्षेत्र में अन्तःसरकारी स्तर पर अपने प्रयासों के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को सुनिश्चित करती है।

इस समय, वैचारिक संघर्ष के मुख्य क्रियाकलाप अतीत की भाँति विशिष्ट प्रचार संस्थानों द्वारा नही मापे जाते, जैसे प्रत्यक्ष रूप से सरकारी एजेन्सियों द्वारा राज्य मशीनरी, वैज्ञानिक सस्थान और प्रचार मशीनरी के सभी सम्पर्कों के बीच घनिष्ट अन्तःक्रिया सहित, और ये अब असम्बद्ध क्रियाएँ नही रही अपितु निर्विवाद रूप से, सावधानी से निर्मित, पृथक्-पृथक् व्यवस्थित, सोद्देश्य वैचारिक आन्दोलन बन गये है जो विश्वव्यापी पैमाने पर स्वतंत्रतापूर्वक चलाये जा रहे हैं।

व्यापक रूप से वित्तीय नियमन के चालकों सहित राज्य सत्ता के साधनों का उपयोग करते हुए, पूंजीवादी देशों की सरकारें अपनी विविध प्रचार-प्रवृत्तियों की अन्तःक्रिया को सावधानी के साथ संयुक्त करते हैं और उसका सारतत्व निर्धारित करते हैं।

हाल के वर्षों में एक आवश्यक रूप से नया बहुविभागीय उद्योग दुनिया मे स्थापित किया गया है—जनमाध्यम (मासमीडिया) इस पर लाखों-लाख डालर व्यय किये गये और किये जा रहे है। पूंजीवाद ने जहाँ अति भारी वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति उपलब्ध की है, यह क्षेत्र जन-संहार के अस्त्रों के क्षेत्र को छोड़कर किसी से पीछे नही है।

सूचना इस समय एक सामाजिक रूप से आवश्यक वस्तु बन गयी है और बड़े व्यापार की एक मद बन गयी है। इजारेदार तथा प्रेस, रेडियो और टेलिविजन के राजा उनसे भारी मुनाफा कमा रहे है। दूसरी ओर, बहुत से प्रचार के कार्य विशेष रूप से बाहर विदेश में बहुत व्ययसाध्य है उनको किसी प्रकार का लाभ-नही मिलता। इजारेदारियाँ इन क्षेत्रो मे राज्य का हाथ रहने को वरीयता देती है, जनता पर वैचारिक प्रभाव की अधिक व्ययसाध्य शाखाओं को व्यापक बनाने और पूर्ण बनाने का कार्य वे सरकार पर छोड़ देती हैं तथा निस्सन्देह इसके लिए सारा व्यय करदाताओं की जेब से आता है। इस प्रकार, वहाँ पूंजीवादी इजारेदारियों और पूंजीवादी राज्य के बीच या अधिक स्पष्टता से कहे तो इजारेदारियो के हित मे

सरकारी सेवाओं की ओर अधिक अधीनता हो जाती है।

विदेशनीति सम्बन्धी प्रचार पर संकेन्द्रण साम्राज्यवादियों को अन्तर्राज्यीय सम्बन्धो के सन्दर्भ में इन प्रश्नों पर अपने बीच नयी समझ पर पहुँचने मे समर्थ बनाता है। ठीक उसी तरह जैसे पश्चिमी शक्तियों की सरकारें समाजवाद के विरुद्ध सैन्य योजना के क्षेत्र मे संयुक्त हुई और घनिष्ठ आर्थिक समुदाय बनाने के लिए साथ आयी, इसी प्रकार वे कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार के क्षेत्र में भी अपने प्रयासो को संयुक्त करके एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारात्मक निकाय स्थापित कर सकती है।

उदाहरण के लिए, नाटो के ढांचे के अन्तर्गत बड़ा सक्रिय सहकारी प्रचार केन्द्र है, सरकारी तौर पर इसका नाम हैं अन्तर्राष्ट्रीय सूचना और सास्कृतिक विषयों का कार्यालय लेकिन यह मनोवैज्ञानिक क्रियाकलाप की सशोधन समिति के रूप में सुपरिचित हैं। औपचारिक रूप से, नाटो के प्रधान कार्यालय एवरे में सूचना सेवा उत्तरी अतलान्तिक संधि संगठन (नाटो) के 'सुरक्षा' उद्देश्यों एवं 'सास्कृतिक' क्रियाकलाप के स्पष्टीकरण का कार्य अंजाम देती है। वास्तव मे यह युद्ध के मनोवेगों को भड़काती है और कम्युनिज्म विरोध के ध्वज के अन्तर्गत हथियारबन्दी की दौड़ को न्यायोचित ठहराने का प्रयास करती है। नाटो की प्रचार सेवाएँ अपने उपविभागों के द्वारा सदस्य देशों में वैचारिक मस्तिष्क शुद्धि की योजनाएँ बनाती है और समस्त खंडों के भागीदारों के प्रचार-तंत्र का उपयोग करती हैं और इस प्रकार अपने क्रियाकलाप को ब्लॉक की सीमाओं के बाहर पहुँचा दी हैं।

इसी प्रकार की प्रचार-इकाइयाँ पाश्चात्य देशों के सैनिक-राजनीतिक और अन्य आर्थिक संगठनों के अन्तर्गत भी अन्तःसरकारी स्तर पर कार्य करती है। अन्तर्राज्यीय सहयोग की नीति के साथ अपने नियमित संयोजित क्रियाकलाप को बढ़ाते हुए वे साम्राज्यवाद की सामान्य विदेश नीति की प्रचार-व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण अंग हैं। प्रत्येक देश मे इसकी मशीनरी कम-अधिक मात्रा मे निम्न सम्पर्क रखती है : विशेषीकृत सरकारी सेवाएँ, निजी स्वामित्व वाले जन-सम्पर्क माध्यम, और विभिन्न प्रकार के मिश्रित केन्द्र। प्रत्येक संपर्क के अपने विशिष्ट कार्य होते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि कतिपय कारणों से शासक वर्ग के लिए यह सुविधाजनक हो एक सरकारी एजेन्सी निजी आवरण के अन्तर्गत या निजी सरकारी आवरण में कार्य कर सकती है। यह नही, यहाँ प्रत्येक विभाजन सापेक्ष होता है, यह प्रायः साम्राज्यवाद के आन्तरिक और विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार की व्यवस्था की एक या दूसरी सेवाओं के लिए केवल पर्दे का काम करती हैं।

उदाहरणार्थ, अमरीका में, मुख्य सरकारी विदेश नीति प्रचार एजेन्सी 'यूनाइटेड स्टेट्स इन्फर्मेशन एजेन्सी' (यू० एस० आई० ए०) थी, अपने तरह का विश्व का वृहत्तम संस्थान। इसका मुख्य सिद्धान्त था विदेश नीति प्रचार की समस्त

मुख्य प्रवृत्तियों का केन्द्रीकरण। जिससे कि, इसकी सम्पूर्ण विशाल प्रचार मशीनरी जनमाध्यमों और जनता पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने वाले अन्य साधनों सहित, कुशलतापूर्वक काम में लायी जा सके।

सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के राज्यों में, जो अमरीकी आकाशवाणी के अति महत्व पूर्ण लक्ष्य है में वैचारिक प्रवेश पाने के उद्देश्य से अमरीका ने यू० एस० आई० ए० के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय संचार सेवा और अमरीकी स्टेट विभाग का सांस्कृतिक ब्यूरो स्थापित किया। निश्चित रूप से, जीवन की अमरीकी पद्धति व्यापक का प्रचार का विषय रहती है। पेण्टागन की बहुमुखी प्रचार मशीनरी, जिसकी रेडियो स्टेशनों की प्रकाशन-गृहों आदि की विदेशों में अपनी व्यवस्था है, इसी प्रकार के कार्य करती है। सी० आई० ए० और दूसरे बहुत से संगठनों के भी सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों के विरुद्ध कार्यों के लिए विशिष्ट विभाग है।

ब्रिटेन में यह कार्य (बी० बी० सी०) ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन करता है जो विदेशों मे रेडियो और टी० वी० पर प्रचार के साथ प्रकाशन का कार्य भी करता है। ब्रिटिश कौसिल भी इन कार्यो मे सलग्न है, जिसके प्रतिनिधि दुनिया-भर के बहुत से देशो मे है, जो वहाँ पुस्तकालयों के संचालन, प्रचार और प्रदर्शनियाँ, फिल्म प्रदर्शन और अंग्रेजी अध्यापन आदि का कार्य करते है।

संघीय जर्मन गणतंत्र मे सब कार्य फ़ेडरल प्रेस और सूचना विभाग द्वारा पूरे किये जाते है जिसके अन्तर्गत सरकारी रेडियो स्टेशन, **ड्यूट्शलेंड-फ़ेक** और सोवियत विरोधी **ड्यूट्शेवल्ले** प्रसारण करते है। विकासशील देशो में कार्य के लिए वहाँ **गोइथे ड्यूटेशज** कुल्लूर इंस्टीट्यूट है और वैचारिक विध्वंस के लिए सुप्रसिद्ध **ओस्टफ़ोरशुग** है।

फ्रांस में प्रचार कार्य 'लिबरल' एजेन्सी फ्रासीसी प्रेस (AFP) द्वारा किया जाता है, फ्रासीसी रेडियो और टेलिविजन सेवाओं के माध्यम इसके साथ हैं (ऑफिस डी रेडियो डिफ्यूजन एट टेलिविजन फ्रेंकाइज)।

इस प्रकार पूंजीवादी राज्यों की वैचारिक सेवाएँ समाजवाद विरोधी, सोवियत विरोधी प्रचार व्यापक उत्पादन की नीति पर चलाती है।

निजी जन-माध्यम : छद्म वस्तुनिष्ठता और वास्तविक उद्देश्य

कम्युनिज़्म के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष की चाहे जितनी बड़ी सरकारी मशीनरी हो, यह वैचारिक मोर्चे पर संघर्षरत शक्तियों का केवल एक शस्त्र है। दूसरा, जो इससे कम शक्तिशाली नही, निजी स्वामित्व वाला जनमाध्यम जो सीधे सीधे इजारेदारियों के अधिकार में है। ये हैं अतिविशाल विश्वव्यापी टेलीग्राफ़

एजेन्सियाँ, समाचार-पत्रो के ट्रस्ट, चल चित्र कम्पनियाँ, रेडियो का विस्तृत जाल आदि। आधुनिक पूँजीवादी राज्यों के वैचारिक क्रियाकलापों का विस्तार किसी प्रकार भी इनके लिए बाधक नही है अपितु उलटे जन माध्यमों को इजारेदारियों के हाथों मे केन्द्रित करने की सुविधाएँ प्रदान करता है।

इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान मे रखें कि साम्राज्यवादी क्षेत्र अपनी 'झूठी' स्वतन्त्रता से जनता को सम्मोहित करने के लिए 'निजी प्रेस' की स्थिति का भी उपयोग करते है मे और इस बहाने वास्तव में झूठी सूचनाएँ देने में संलग्न रहते हैं।

पूँजीवादी देशों मे स्थिति समाजवादी देशो से बुनियादी रूप से भिन्न है, जहाँ समस्त सूचना माध्यम राज्य के हैं, पार्टी या जन संगठनों के हैं जिसके सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार यह नही कहा जा सकता कि समाचारपत्र अथवा रेडियो स्टेशन ऐसी सूचना प्रसारित करते हैं जिसके लिए जनता के सामने कोई उत्तरदायी नही होता। न केवल पूँजीवादी राज्यो की सरकारो के पास बल्कि पूँजीवादी पार्टियों के पास भी प्रायः अपना आधिकारिक समाचारपत्र नही होता। इसके स्थान पर, वे निजी फर्मों के निजी व्यक्तियो के पत्रों का उपयोग करते है, तथाकथित 'स्वतंत्र' पर व्यवहार मे यह अत्यधिक भ्रष्ट और लोलुप प्रेस होता है जिसके लिए कोई नैतिक ज़िम्मेदारी भी नही लेता।

'स्वतंत्र' सूचना केन्द्रों की स्थिति का दुरुपयोग व्यवहार मे जनता की राय को मनमाने ढंग से विकृत करता है, जैसे-जैसे इसका क्षेत्र बढता है यह अधिकाधिक खतरनाक होता जाता है। इसलिए पूँजीवादी समाज मे, शासक वर्ग द्वारा सूचना प्रसारण के स्रोतो और साधनों के केन्द्रीकरण के प्रयासों को प्रेस, आकाशवाणी और टेलिविजन के पर्दों तक उन सबकी पहुँच को रोकने का प्रयास समझना चाहिए जो 'विपरीत' मत रखते हैं। स्वतंत्र जनमाध्यम की इजारेदारियाँ सूचना के अन्य सभी स्रोतों को समाप्त करने का और सूचना पर पूर्ण इजारेदारी प्राप्त करने का प्रयास करती है जिससे कि अपनी इच्छानुसार वे उसे दे सकें।

उदाहरण के लिए, अमरीका मे, व्यवस्था मोटे तौर पर निम्न प्रकार होती है : तैयार सामग्री से देश मे और विदेश मे समस्त अमरीकी सूचनाओं को जो उपयुक्त भावनाओं मे पहले से संसाधित होती है प्रवाहित करने वाली मुख्य धमनियाँ है : दो अति विशाल टेलिग्राफ़ एजेन्सियाँ, एसोशिएटिड प्रेस, और यूनाइटेड प्रेस इंटर्नेशनल, स्वदेशी और अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों के उनके दैनिक सार संक्षेप समस्त अमरीकी प्रचार संगठनो के लिए मार्ग दर्शक का कार्य करते हैं।

संभवतः इस प्रकार के कार्य के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है **द न्यूयार्क टाइम्स** जो अपने सिण्डिकेट एवं अन्य प्रणालियो से अति महत्वपूर्ण विवरणों की दैनिक संक्षिप्तियाँ और अग्रिम पृष्ठ के लिए दिये गये लेखों की सूची प्रेषित करता है। रेडियो और टेलीविजन में, यह भूमिका **कोलम्बिया ब्राडकास्टिंग सिस्टम** अमेरिकन

ब्राडकास्टिंग कम्पनी और नेशनल ब्राडकास्टिंग कम्पनी द्वारा अदा की जाती है। इन समाचारपत्रों और रेडियो और टेलीविजन कम्पनियों का प्रभाव अमरीका के वास्तविक शासकों से उनकी घनिष्ठता द्वारा प्रदर्शित होता है। और तथ्य यह है कि वे पूरी स्पष्टता के साथ राज्य इजारेदारी सत्ता पर बैठे अभिजात वर्ग के हितों को प्रकट करते हैं।

पूंजीवादी विश्व के अन्य भागों मे, यह भूमिका इसी प्रकार के पूंजीवादी प्रचार के स्तम्भों द्वारा जैसे लन्दन के टाइम्स पैरिस के ले मॉण्डे और पश्चिम जर्मनी मे स्प्रिंगर के विशाल प्रेस सिण्डिकेट द्वारा अदा की जाती है।

ये सभी शक्तिशाली प्रचार ट्रस्ट उसी पद्धति का अनुसरण करते है। प्रकट रूप मे 'मुक्त', 'स्वतंत्र' 'गैर पार्टीज़न' प्रेस के प्रतिनिधित्व का दिखावा करते है वे सदा सत्ताधारी वर्ग द्वारा दिये सामाजिक आदेशों को पूरा करते हैं और उसके हितों की रक्षा करते हैं। वस्तुतः कुछ तो घोर प्रतिक्रियावाद के पक्षपाती होते हैं, अपनी सरकार की आधिकारिक स्थिति से भी अधिक दक्षिणपन्थी।

सोवियत संघ और समाजवादी देशो के विरुद्ध क्रियाकलाप के लिए विशेष रूप से निर्देशित सगठन भी आमतौर से 'गैर सरकारी' सूचना केन्द्रो के आवरण के अन्तर्गत कार्य करते हैं। रेडियो स्टेशन 'लिबर्टी' और 'फ्री यूरोप' इसके उदाहरण हैं। जे० विलियम फुलब्राइट ने जो एक समय सीनेट की विदेश सम्बन्धों की समिति के अध्यक्ष रहे थे ज्ञात रूप मे उसके क्रियाकलाप के विषय मे लिखा था : "कई वर्षो तक 'फ्री यूरोप' और 'लिबर्टी' रेडियो के बारे में अमरीकी जनता को बताया जाता रहा कि ये निजी चन्दों पर आधारित निजी संगठन है और पूर्वी यूरोप की जनता के सम्बन्ध में 'सचाई' प्रसारित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। वास्तव मे, ये दोनों प्रसारण केन्द्र सी० आई० ए० से लाखों डालर प्राप्त करते है•••।"[1]

निरन्तर पर्दाफाश होने के बाद इस बात से इन्कार करना कि रेडियो लिबर्टी और रेडियो फ्री यूरोप सी० आई० ए० के प्रत्यक्ष निर्देशन मे काम करते है असम्भव हो गया। और इसका अर्थ था कि सोवियत सघ और यूरोप के समाजवादी देशों के विरुद्ध प्रचार उन्ही संगठनो द्वारा निर्देशित था जिन्होने क्यूबा के प्रधानमंत्री फिडेल कास्ट्रो और अरब गणतंत्र मिस्र के राष्ट्रपति गमाल अब्दुल नासर की हत्या के प्रयत्नों मे भाग लिया था और कागो की सरकार के प्रथम अध्यक्ष पैट्रिक लुमुम्बा की हत्या में और चिली की वैध लोकप्रिय संयुक्त सरकार को, जिसके नेता सल्वाडोर अलेन्दे थे, उखाड़ने के कार्यों में भूमिका निबाही थी जब इनको अधिक समय तक छिपाया नहीं जा सका, तो ये तथ्य सयोगवश अमरीकी कांग्रेस की कमेटी द्वारा सार्वजनिक रूप

---

1. जे० डब्ल्यू० फुलब्राइट, द क्रिपल्ड जायण्ट अमेरिकन फॉरेन पालिसी एड इट्स डॉमेस्टिक कॉन्सिक्वेंसिज, विण्टेज बुक्स, न्यूयार्क, 1·72 पृ० 24

से प्रकट कर दिये गये। इसके बाद शीत-युद्ध के प्रचार के इन विध्वंसक केन्द्रों के सम्बन्ध में मुश्किल से ही किसी गवाही की आवश्यकता रह जाती है।

साथ ही रेडियो लिबर्टी और रेडियो फ्री यूरोप के भण्डाफोड़ के क्रम में मनोवैज्ञानिक युद्ध—गुप्तचरी और प्रचार के मुख्य स्रोत, सरकार और इजारेदारियों की अन्तःक्रियाएँ जग-जाहिर हो गयी। इनके पीछे एक और चीज थी जिससे इन्कार नही किया जा सकता था वह भी प्रकट हो गयी। वह थी कि सी. आई. ए. के अतिरिक्त मुख्य अमरीकी कम्पनियाँ (जनरल मोटर्स, वैस्टिंग हाउस, फ़ोर्ड और अन्य) भी जो हथियारों की दौड मे और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में भारी रुचि रखती थी इन गतिविधियो के पीछे थी। कम्युनिज्म विरोध के स्पष्ट रूप से विध्वसक केन्द्रों के लाछनापूर्ण मामले स्पष्ट रूप से और आधिकारिक रूप से खुलकर सामने आ गये। समाजवाद के विरुद्ध विध्वसक प्रचार संगठित करने मे साम्राज्यवादी राज्य और इजारेदारियों के मध्य परस्पर साहचर्य की प्रणाली का भी भण्डाफोड़ हो गया।

कम्युनिज्म विरोध के 'ज्ञान केन्द्र' के रूप मे 'सोवियत विद्या' के अनेक अनुसन्धान केन्द्रों के निर्देशन मे राज्य-इजारेदारियों का साहचर्य कुछ अधिक रहस्य से आवृत्त है। केवल अमरीका मे ही इस व्यवस्था के अन्तर्गत कई दर्जन बड़े विशिष्ट केन्द्र है (युद्ध, क्रान्ति और शान्ति का हूवर सस्थान, केलिफोर्निया, न्यूयार्क में कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में रूसी भाषा का संस्थान, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी मे रूसी अनुसन्धान केन्द्र, वाशिंगटन मे 1976 में स्थापित जार्ज केनन इन्स्टीटयूट और अन्य) और बहुत से विश्वविद्यालयों के विभाग और पाठ्य क्रम, कम्युनिस्ट विरोधी प्रकाशन गृह आदि। जैसाकि अमरीकी प्रोफ़ेसर हैंस मौर्गेन्थो ने स्पष्ट रूप से देखा था, अमरीका में सैनिक औद्योगिक समुच्चय के अतिरिक्त, राजनीतिक समस्याओं पर अकादमिक समुच्चय भी है जो देश के बहुत से अनुसन्धान केन्द्रों पर अपने प्रभाव का विकास करते रहते हैं।

कम्युनिस्ट विरोधी हठधर्मी की 'सामाजिक व्यवस्था'

इस प्रकार, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् और विशेष रूप से 1950, 1960 और 1970 के दशकों में साम्राज्यवादी देशो के शासक हल्को ने समाजवाद और विश्व मुक्ति आन्दोलन द्वारा अर्जित नयी सफलताओं के समक्ष, अपनी शक्तिशाली प्रचार मशीनरी को पूर्ण बनाया। जनता की मस्तिष्क शुद्धि की इस जटिल व्यवस्था मे अनेक प्रकार से पूंजीवादी व्यवस्था को न्यायोचित ठहराने वाली बहुत-सी इकाइयाँ समाविष्ट हैं।

यह व्यवस्था बडी विचित्र है। यह समाजवाद, कम्युनिस्ट आन्दोलन और जनवादी ताक़तों के विरुद्ध राजनीतिक कार्यों के लिए साधन जुटाती है। समाजवादी समाज की विचारधारा और नैतिकता का विरोध करने के उद्देश्य से 'जन संस्कृति'

का विज्ञापन करते हुए पूंजीवादी विश्व के जन प्रचार के विस्तृत क्षेत्रों मे कार्य करती है। यह पूंजीवादी सिद्धान्तकारो की आकाक्षा को—जो जितनी पुरानी है उतनी ही निरर्थक भी—सामाजिक प्रक्रिया के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के सामाजिक दार्शनिक विकल्प की खोज या फैशन को प्रतिबिम्बित करती है।

इससे पूर्व कभी भी पूंजीपति वर्ग ने वैचारिक सुरक्षा की ओर इतना अधिक ध्यान नही दिया था या इस मोर्चे का निर्देशन नही किया था। विदेश नीति के 'चतुर्थ क्षेत्र' पर इतने प्रयास नही किये थे जितना हमारे समय मे किये जा रहे है। यह सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के बीच, दो सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाओ के बीच, पूंजीवाद के आम संकट की तीसरी मजिल की स्थितियाँ जब परिपक्व हो रही हैं, ऐतिहासिक सघर्ष मे वर्तमान दौर के कुछ अति महत्वपूर्ण रूपो को प्रतिबिम्बित करता है। यह मंज़िल किसी विश्व युद्ध के सम्बन्ध मे आरम्भ नही हुई जैसा कि पूर्व-वर्ती दो मंज़िलों मे हुआ था बल्कि शान्ति की स्थितियो मे (अर्थात् एक ठोस ऐतिहासिक परिस्थिति मे जिसमें कि साम्राज्यवाद अपने अन्तर्विरोधो को सुलझाने के लिए नये विश्व युद्ध का ख़तरा नही उठाना चाहता) और यह तीनों में सर्वाधिक गहन और व्यापक रूप मे विकसित हो रही है।

साम्राज्यवाद विश्व के विकास मे समाजवाद को निर्णायक शक्ति बनने से रोक नही सकता। यह औपनिवेशिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न होने से नही रोक सकता और आर्थिक एव पूंजीवादी देशों मे आर्थिक एव राजनीतिक अस्थिरता को और बढने से नही रोक सकता।

साम्राज्यवाद सोवियत सघ और दूसरे समाजवादी देशो के शान्ति-अभियान को विफल करने मे असमर्थ है। समग्र विश्व राजनीतिक स्थिति के दृष्टिकोण से यह अभियान अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करेगा और विश्व के क्षेत्र मे वर्ग-सघर्ष के विकास की शब्दावली में मेहनतकश जनता के जनवादी और मुक्तिकामी लक्ष्यो को और आगे बढाने मे सफल होगा। आणविक गतिरोध के उदय से, जिसने कि नये विश्व-युद्ध को निरी मूर्खता सिद्ध कर दिया, इन ऐतिहासिक परिवर्तनो को और अधिक कम करके आंका।

इन परिवर्तनो ने साम्राज्यवाद को कम्युनिज्म के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष की अपनी रणनीति को सुधारने के लिए विवश किया। मार्क्सवाद के उदय ने पूंजी-वादी विचारधारा की वैज्ञानिक आधारहीनता प्रकट कर दी; अक्तूबर क्रान्ति की विजय और समाजवादी सोवियत संघ मे समाजवादी व्यवस्था के निर्माण ने पूंजीवाद की ऐतिहासिक पहलकदमी को पस्त कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध में सोवियत जनता और विश्व की जनता की शक्तियों की विजय ने, फ़ासिज्म के उन्मूलन और इसकी नैतिक एवं राजनीतिक पराजय ने, और तत्पश्चात् समाजवाद के पक्ष मे विश्व शक्तियो के सतुलन में परिवर्तन ने साम्राज्यवाद को फिर एक बार

अपनी वैचारिक सुरक्षा की समग्र व्यवस्था को वस्तुत: पुन: सज्जित करने के लिए बाध्य कर दिया।

कुल मिलाकर, इस पुनर्गठन में भी साम्राज्यवाद की रणनीति में समाजवादी सोवियत संघ और समाजवादी समुदाय के सम्बन्ध में अनुगामी परिवर्तन प्रतिबिम्बित हुए और यह मुठभेड के युग से बातचीत के युग में संक्रमित हो गयी।

यह संक्रमण वेदनाहीन या अन्तर्विरोधों से रहित नही था। ठीक उसी तरह जैसे कि साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद वर्षों तक अक्तूबर क्रान्ति के पश्चात् *विश्व में मूर्त हो रही नयी स्थिति के साथ अपना सामजस्य बैठाने को तैयार नही* हुआ था और उसने हठपूर्वक सोवियत राज्य का बहिष्कार किया था, इसी प्रकार अब द्वितीय विश्व युद्ध मे इसकी पराजय से उचित निष्कर्ष निकालने से क़तरा रहा था। वर्ष-पर-वर्ष बीतते गये और समाजवाद की शक्ति मे वृद्धि के अकाट्य प्रमाण पूँजीवादी विश्व के शासक वर्ग के समक्ष प्रकाशित होते गये और अन्तत: उसने हो रहे अपरिवर्त्य परिवर्तन को स्वीकारा, लेकिन ऐसा होने से पूर्व एक निरन्तर और लम्बी खोज ऐसी वैचारिक धारणाओं की चलती रही जो शीतयुद्ध की बर्फ़ में— 'अवरोधात्मक युद्ध' (1945-1948) 'निरोध' या कम्युनिज़म 'पीछे धकेलने' का, (1975 से आरम्भ) 'सीमित युद्ध' (1957-1960) सैनिक रणनीति के सिद्धांतों की शृंखला के रूप मे उत्पन्न हुई थी।

वर्तमान मे कार्यरत साम्राज्यवाद की वैचारिक प्रचार की व्यवस्था शीत युद्ध के समय उत्पन्न हुई है। निरन्तर इसकी स्मृतियाँ आती रहती हैं क्योंकि यह दो दुनियाओं के बीच तीक्ष्ण टकराव के विषाक्त वातावरण में तैयार की गयी थी, इसकी सांगठनिक संरचना, कार्यविधि और वैचारिक अवधारणाएँ 'शीत' विचारों की भावना से परिपूर्ण हैं।

इसी के साथ-साथ, कम्युनिज़्म विरोध के दावपेंचो को चाहे जितना सुधारा गया हो तथापि इसकी वैचारिक प्रस्थापनाओं का सारतत्व अपरिवर्तित ही रहा। आजकल जनता का दिमाग साफ करने के तरीके और साधन अत्यन्त भिन्न प्रकार के हैं: सावधानी के साथ तैयार किये गये वैचारिक अभियान एक दिन की सनसनीखेज घटनाओं से मिला दिये जाते हैं, तथ्यपूर्ण सूचना विभ्रान्त चालबाज़ियों से और प्रत्यक्ष ग़लत सूचनाओं से बदल दी जाती है। वैचारिक प्रचार विविध प्रकार के रूपो में किया जाता है: मिथ्या वैज्ञानिक कृतियो से लेकर हलकी-फुलकी चित्र कथाओं तक, विश्वविद्यालय के भाषणो से सस्ती विज्ञापनबाज़ी तक, पार्श्व मच से जासूसी उपन्यासो तक।

लेकिन प्रवृत्तियो के रूपों और पद्धतियों की इन सब भिन्नताओं के साथ कम्युनिज़्म विरोध की विचारधारा और राजनीति तथा इसका सोवियत-विरोध का सारतत्व एक सामाजिक व्यवस्था को भरने के लिए और समाजवाद की उन्नति

को रोकने के लिए और समय की क्रांतिकारी शक्तियों के सप्रवाह को एक विश्व-धारा में परिवर्तित होने से रोकने के लिए—उनके राजनीतिक क्रियाकलाप को कम करने के लिए और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष को निष्प्राण करने के लिए तैयार की गयी थी।

पूंजीवादी देशों में सर्वत्र, राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन के क्षेत्रों में, समाजवादी देशों में, साम्राज्यवाद की प्रचार सेवाएँ प्रत्येक सुलभ साधन से निराशावाद की भावनाओं के बीज बोने, सामाजिक प्रगति की सभावनाओं में विश्वास को समाप्त करने और अविश्वास पैदा करने, मेहनतकश वर्ग के लोगों की मनोवृत्ति को सामाजिक, राष्ट्रवादी, नस्लवादी, उपभोक्ता और अन्य पूर्वाग्रहों की संकीर्ण दुनिया में सीमित करने का प्रयास करता है।

पश्चिमी देशों में, सामान्य जनता में, घटनाओं के सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार की समझ, एक वैचारिक प्रतिबंधित प्रतिच्छाया, घिसी-पिटी मानसिकता विकसित करने की ओर ध्यान देना विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है जिससे कि लोगों को कम्युनिज्म से बचाया जा सके। निरन्तरतापूर्वक, दिन-प्रतिदिन प्रेस, रेडियो, टी० वी०, सिनेमा और तथाकथित जन-संस्कृति के समस्त साधनों से सामान्य व्यक्ति पर यह प्रभाव डाला जाता है कि : कम्युनिज्म हर प्रकार की बुराई का संपिंडित रूप है। इसकी 'ईश्वरविहीन' 'सर्वाधिपत्यवादी' विचारधारा मानव प्रकृति के विरुद्ध है। कम्युनिस्ट कथित रूप से लोगों को उनकी सम्पत्ति से वंचित करना चाहते है, स्वतंत्रताओं और अधिकारों को अपनी 'आक्रामक' योजनाओं के साधन के रूप मे बदलना चाहते है। वे फूट के बीज बोते है और असन्तोष की आग भड़काते है। यदि कम्युनिज्म ने कुछ परिणाम आर्थिक और राजनीतिक विकास मे दिखाये भी है, वह जनता के जीवन-स्तर की क़ीमत पर पैदा किये गये है। नये कार्य-भार जो मानव समाज के समक्ष उत्पादन के विकास के, विज्ञान और प्रविधि के विकास के आधुनिक स्तर पर है उनका समाजवाद से कोई सामंजस्य नही है इसलिए जल्दी या देर से कम्युनिस्ट अपने मतान्धतापूर्ण सिद्धान्तों को त्यागने के लिए विवश हो जायेंगे।

'मुक्त' निजी उद्यमों की दुनिया ही सम्मानित रूप से 'समान अवसरों' का समाज है। इसकी आर्थिक व्यवस्था और राजनीतिक संस्थान अधिकतम व्यावसायिक क्रियाकलाप की, जनतंत्र की, वैयक्तिक पहलकदमी और अन्तिम विश्लेषण में—व्यक्ति की स्वतंत्रता की गारण्टी है। प्रत्येक व्यक्ति को सम्भावित रूप से सफलता का अवसर प्राप्त होता है (जैसे कि गरीब एलिस की कहानी में कला-मर्मज्ञ नायिका अपने परिश्रम से मितव्ययता के कारण राजकुमारी बन गयी)। वे कहते है कि हर चीज स्वयं आप पर निर्भर है। और यदि आप अब तक लखपति नही बने तो यह केवल आपका अपना दोष है। आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति ने

अपनी वैचारिक सुरक्षा की समग्र व्यवस्था को वस्तुतः पुनः सज्जित करने के लिए वाध्य कर दिया।

कुल मिलाकर, इस पुनर्गठन में भी साम्राज्यवाद की रणनीति मे समाजवादी सोवियत सघ और समाजवादी समुदाय के सम्बन्ध मे अनुगामी परिवर्तन प्रतिबिम्वित हुए और यह मुठभेड के युग से बातचीत के युग में संक्रमित हो गयी।

यह संक्रमण वेदनाहीन या अन्तर्विरोधों से रहित नही था। ठीक उसी तरह जैसे कि साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद वर्षों तक अक्तूबर क्रान्ति के पश्चात् विश्व में मूर्त हो रही नयी स्थिति के साथ अपना सामजस्य वैठाने को तैयार नही हुआ था और उसने हठपूर्वक सोवियत राज्य का बहिष्कार किया था, इसी प्रकार अब द्वितीय विश्व युद्ध मे इसकी पराजय से उचित निष्कर्ष निकालने से क़तरा रहा था। वर्ष-पर-वर्ष बीतते गये और समाजवाद की शक्ति मे वृद्धि के अकाट्य प्रमाण पूँजीवादी विश्व के शासक वर्ग के समक्ष प्रकाशित होते गये और अन्ततः उसने हो रहे अपरिवर्त्य परिवर्तन को स्वीकारा, लेकिन ऐसा होने से पूर्व एक निरन्तर और लम्बी खोज ऐसी वैचारिक धारणाओ की चलती रही जो शीतयुद्ध की वर्फ़ में—'अवरोधात्मक युद्ध' (1945-1948) 'निरोध' या कम्युनिज्म 'पीछे धकेलने' का, (1975 से आरम्भ) 'सीमित युद्ध' (1957-1960) सैनिक रणनीति के सिद्धांतों की शृंखला के रूप मे उत्पन्न हुई थीं।

वर्तमान में कार्यरत साम्राज्यवाद की वैचारिक प्रचार की व्यवस्था शीत युद्ध के समय उत्पन्न हुई है। निरन्तर इसकी स्मृतियाँ आती रहती हैं क्योंकि यह दो दुनियाओं के बीच तीक्ष्ण टकराव के विषाक्त वातावरण मे तैयार की गयी थी, इसकी सांगठनिक सरचना, कार्यविधि और वैचारिक अवधारणाएँ 'शीत' विचारों की भावना से परिपूर्ण है।

इसी के साथ-साथ, कम्युनिज्म विरोध के दावपेचों को चाहे जितना सुधारा गया हो तथापि इसकी वैचारिक प्रस्थापनाओ का सारतत्व अपरिवर्तित ही रहा। आजकल जनता का दिमाग साफ करने के तरीके और साधन अत्यन्त भिन्न प्रकार के हैं : सावधानी के साथ तैयार किये गये वैचारिक अभियान एक दिन की सनसनीखेज घटनाओं से मिला दिये जाते हैं, तथ्यपूर्ण सूचना विभ्रान्त चालवाजियों से और प्रत्यक्ष ग़लत सूचनाओं से बदल दी जाती है। वैचारिक प्रचार विविध प्रकार के रूपों में किया जाता है : मिथ्या वैज्ञानिक कृतियो से लेकर हलकी-फुलकी चित्र कथाओं तक, विश्वविद्यालय के भाषणो से सस्ती विज्ञापनबाज़ी तक, पार्श्व मच से जासूसी उपन्यासों तक।

लेकिन प्रवृत्तियो के रूपों और पद्धतियों की इन सब भिन्नताओं के साथ कम्युनिज्म विरोध की विचारधारा और राजनीति तथा इसका सोवियत-विरोध का सारतत्व एक सामाजिक व्यवस्था को भरने के लिए और समाजवाद की उन्नति

को रोकने के लिए और समय की क्रांतिकारी शक्तियों के संप्रवाह को एक विच-धारा में परिवर्तित होने से रोकने के लिए—उनके राजनीतिक क्रियाकलाप को कम करने के लिए और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष को निष्प्राण करने के लिए तैयार की गयी थी।

पूंजीवादी देशों में सर्वत्र, राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन के क्षेत्रों में, समाजवादी देशों में, साम्राज्यवाद की प्रचार सेवाएँ प्रत्येक सुलभ साधन से निराशावाद की भावनाओं के बीज बोने, सामाजिक प्रगति की संभावनाओं में विश्वास को समाप्त करने और अविश्वास पैदा करने, मेहनतकश वर्ग के लोगों की मनोवृत्ति को [illegible], राष्ट्रवादी, नस्लवादी, उपभोक्ता और अन्य पूर्वाग्रहों की संकीर्ण दुनिया में सीमित करने का प्रयास करता है।

पश्चिमी देशों में, सामान्य जनता में, घटनाओं के सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार की समझ, एक वैचारिक प्रतिबंधित प्रतिच्छाया, [illegible] निर्मित करने की ओर ध्यान देना विशेष महत्वपूर्ण माना जाता है जिससे कि लोगों को कम्युनिज्म से बचाया जा सके। निरन्तरतापूर्वक, [illegible] प्रेस, रेडियो, टी॰ वी॰, सिनेमा और तथाकथित जन-संस्कृति के [illegible] पर यह प्रभाव डाला जाता है कि : कम्युनिज्म [illegible] है। इसकी 'ईश्वरविहीन' 'सर्वाधिपत्यवादी' [illegible] है। कम्युनिस्ट कथित रूप से लोगों को [illegible] स्वतन्त्रताओं और अधिकारों को अपनी '[illegible]' [illegible] बदलना चाहते हैं। वे फूट के बीज बोते हैं और [illegible] की आग भड़काते हैं। यदि कम्युनिज्म ने कुछ परिणाम आर्थिक और [illegible] हैं, वह जनता के जीवन-स्तर को [illegible] है। [illegible] मानव समाज के समस्त उत्पादन के [illegible] और [illegible] के आधुनिक स्तर पर है उनका [illegible] या देर से कम्युनिस्ट अपने [illegible] जायेंगे।

'मुक्त' निजी उद्यमों की [illegible] समाज है। इसकी आर्थिक [illegible] सायिक क्रियाकलाप की, [illegible] में—व्यक्ति की स्वतंत्रता [illegible] सफलता का अवसर [illegible] नायिका अपने परिश्रम [illegible] कि हर चीज [illegible] तो यह केवल [illegible]

'स्वतंत्र विश्व' के लिए लुभावनी सम्भावनाओं के द्वार खोल दिये हैं जिन्हें लेकर बिना किसी वर्ग-संघर्ष के, सब स्वयं को जन-उपभोग और सार्वभौम समृद्धि के आश्चर्यप्रद युग में पा सकते हैं।

—मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण, वर्ग-संघर्ष, इजारेदारियों का आधिपत्य—ये सब निस्सन्देह कम्युनिस्टों की कूट रचनाएँ हैं। यदि अतीत में इन अवधारणाओं के लिए कोई आधार था, वह अधिक समय तक नही रहा। अन्ततः, पूँजीपति भी आज एक श्रमिक (कामगार) है (!), और कोई मजदूर जो स्टॉक खरीदता है, उद्यमी है। 'गोरे लोग' हर जगह अनिवार्यतया 'काले लोगों' का स्थान ले लेंगे। वर्ग समाप्त हो रहे है, सामान्यतया वर्ग-संघर्ष निरर्थक और हानिकारिक है क्योंकि यह औद्योगिक समाज की समृद्धि की ओर स्वयं भू-गति के मार्ग में केवल बाधा डालता है;

—आधुनिक विश्व की सब बुराइयाँ और इसके भविष्य के ख़तरे या तो कम्युनिस्टों के दुष्ट षड्यंत्रों से अथवा मानव प्रकृति की अपूर्णताओं जैसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के कारण और इसके अंधकारपूर्ण संस्कारों की तर्कहीनता के कारण होते है। इसी प्रकार ये जनसंख्या विस्फोट के, अत्यधिक शहरीकरण के, पर्यावरणिक प्रदूषण के और दुर्भाग्यो के परिणाम है जो अकस्मात् मानव-समाज पर आ पड़ते हैं। निस्सन्देह, इनके लिए पूँजीवाद उत्तरदायी नही है और फिर इन विपदाओं पर विजय पाने के लिए हमे वर्ग-संघर्ष को भूल जाना चाहिए और इन सार्वभौम समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

ये और इसी प्रकार के विचार प्रचारित करने के अपने प्रयासों मे साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार एक ओर तो जनता पर भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के विभिन्न तरीके अपनाते है। वे सामान्यतया लोगों की तर्क-बुद्धि को सम्बोधित नही करते वल्कि वे उसकी भावनाओं को और पूँजीवादी समाज को परम्परागत जीवन-पद्धति से उत्पन्न आदतों को या जब यह समाजवादी देशो की ओर आते हैं, लोगो की मनों मे अतीत के अवशेषों को आधार बनाते है। दूसरी ओर, आधुनिक पूँजीवाद के सिद्धांतकार कम्युनिज्म का विरोध करने के लिए सैद्धांतिक युक्तियाँ देने का प्रयास करते हैं जिससे पूँजीपति वर्ग की स्थितियो से जीवन मे उठाये गये प्रश्नो का उत्तर दे सकें। लेकिन जीवन स्वयं इन सब प्रयासो की निरर्थकता दिखा देता है।

अध्याय : 3

मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन

नये वैचारिक मिथकों की खोज

जब साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद समाजवाद के दुर्ग को आक्रमण द्वारा नहीं ले सका और विश्व की क्रान्तिकारी प्रक्रिया को पीछे नही धकेल सका तो इसने समाजवादी देशों की सुदीर्घ घेराबन्दी की तरफ़ पाँव बढाये और किसी उपयुक्त कोण से उसे घेरने के प्रयास आरम्भ किये। उसका उद्देश्य उन्हें सोवियत संघ से अलग फोड देना और मुक्ति आंदोलनो की पाँतो मे घुसपैठ करके भीतर से तोड़ देना था।

राजनीतिक रूप से, इसकी अभिव्यक्ति 'सेतुबध' की कार्य नीतियो के रूप मे हुई। इसके पीछे समाजवादी देशो में नयी समाज संरचना के उद्भव और विकास की जटिल प्रक्रिया से उत्पन्न कुछ कठिनाइयों का लाभ उठाने का दृष्टिकोण था।

बौद्धिक क्षेत्र मे, कम्युनिस्ट विरोधियों के प्रयासो ने वैचारिक संघर्ष के वर्गीय सार को धुंधला करने के लिए इस राजनयिक नीति को पूरा किया गया। वे वस्तुओं को इस प्रकार चित्रित करते थे कि यह दिखायी दे कि समाजवादी देशो मे वैचारिक जिज्ञासा उनके सर्वसत्तावादी अलोकतांत्रिक शासन के अधीन है जबकि उसके विपरीत पूंजीवादी समाज की वस्तुपरकता 'वैचारिक अंधविश्वास' से मुक्त है। और उसने समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया है।

काफी समय पहले, अक्तूबर क्रान्ति के आरंभ मे, लेनिन ने लिखा था: समाजवाद के समस्त मौलिक सिद्धान्तो के विरुद्ध खुला, सिद्धान्तपरक और सीधा संघर्ष करने के स्थान पर यूरोप और अमरीका के पूंजीपति और उनके प्रतिनिधि सिद्धान्तकार और राजनीतिक नेता निजी संपत्ति की पूर्ण अनुल्लंघनीयता की और प्रतियोगिता की स्वतंत्रता की रक्षा मे, अधिकाधिक आगे आते गये समाजवादी क्रांति के विचार का विरोध करने के लिए तथाकथित सामाजिक

'स्वतंत्र विश्व' के लिए लुभावनी सम्भावनाओं के द्वार खोल दिये हैं जिन्हें लेकर बिना किसी वर्ग-संघर्ष के, सब स्वय को जन-उपभोग और सार्वभौम समृद्धि के आश्चर्यप्रद युग में पा सकते है।

—मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण, वर्ग-संघर्ष, इजारेदारियों का आधिपत्य—ये सब निस्सन्देह कम्युनिस्टों की कूट रचनाएँ हैं। यदि अतीत में इन अवधारणाओं के लिए कोई आधार था, वह अधिक समय तक नही रहा। अन्ततः, पूँजीपति भी आज एक श्रमिक (कामगार) है (!), और कोई मजदूर जो स्टॉक खरीदता है, उद्यमी है। 'गोरे लोग' हर जगह अनिवार्यतया 'काले लोगों' का स्थान ले लेंगे। वर्ग समाप्त हो रहे हैं, सामान्यतया वर्ग-संघर्ष निरर्थक और हानिकारिक है क्योंकि यह औद्योगिक समाज की समृद्धि की ओर स्वय भू-गति के मार्ग मे केवल बाधा डालता है;

—आधुनिक विश्व की सब बुराइयाँ और इसके भविष्य के खतरे या तो कम्युनिस्टो के दुष्ट षड्यंत्रों से अथवा मानव प्रकृति की अपूर्णताओं जैसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के कारण और इसके अंधकारपूर्ण संस्कारों की तर्कहीनता के कारण होते है। इसी प्रकार ये जनसंख्या विस्फोट के, अत्यधिक शहरीकरण के, पर्यावरणिक प्रदूषण के और दुर्भाग्यो के परिणाम हैं जो अकस्मात् मानव-समाज पर आ पडते हैं। निस्सन्देह, इनके लिए पूँजीवाद उत्तरदायी नही है और फिर इन विपदाओ पर विजय पाने के लिए हमे वर्ग-सघर्ष को भूल जाना चाहिए और इन सार्वभौम समस्याओ पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

ये और इसी प्रकार के विचार प्रचारित करने के अपने प्रयासों मे साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार एक ओर तो जनता पर भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के विभिन्न तरीके अपनाते हैं। वे सामान्यतया लोगों की तर्क-बुद्धि को सम्बोधित नही करते बल्कि वे उसकी भावनाओं को और पूँजीवादी समाज को परम्परागत जीवन-पद्धति से उत्पन्न आदतों को या जब यह समाजवादी देशों की ओर आते हैं, लोगो की मनो मे अतीत के अवशेषों को आधार बनाते हैं। दूसरी ओर, आधुनिक पूँजीवाद के सिद्धांतकार कम्युनिज्म का विरोध करने के लिए सैद्धातिक युक्तियाँ देने का प्रयास करते हैं जिससे पूँजीपति वर्ग की स्थितियो से जीवन मे उठाये गये प्रश्नों का उत्तर दे सकें। लेकिन जीवन स्वयं इन सब प्रयासों की निरर्थकता दिखा देता है।

अध्याय : 3

मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन

नये वैचारिक मिथकों की खोज

जब साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद समाजवाद के दुर्ग को आक्रमण द्वारा नहीं ले सका और विश्व की क्रान्तिकारी प्रक्रिया को पीछे नही धकेल सका तो इसने समाजवादी देशो की सुदीर्घ घेराबन्दी की तरफ पाँव बढाये और किसी उपयुक्त कोण से उसे घेरने के प्रयास आरम्भ किये। उसका उद्देश्य उन्हे सोवियत सघ से अलग फोड देना और मुक्ति आदोलनो की पाँती मे घुसपैठ करके भीतर से तोड़ देना था।

राजनीतिक रूप से, इसकी अभिव्यक्ति 'सेतुबध' की कार्य नीतियो के रूप मे हुई। इसके पीछे समाजवादी देशों मे नयी समाज सरचना के उद्भव और विकास की जटिल प्रक्रिया से उत्पन्न कुछ कठिनाइयों का लाभ उठाने का दृष्टिकोण था।

बौद्धिक क्षेत्र मे, कम्युनिस्ट विरोधियों के प्रयासों ने वैचारिक संघर्ष के वर्गीय सार को धुँधला करने के लिए इस राजनयिक नीति को पूरा किया गया। वे वस्तुओं को इस प्रकार चित्रित करते थे कि यह दिखायी दे कि समाजवादी देशों मे वैचारिक जिज्ञासा उनके सर्वसत्तावादी अलोकतांत्रिक शासन के अधीन है जबकि उसके विपरीत पूँजीवादी समाज की **वस्तुपरकता** 'वैचारिक अंधविश्वास' से मुक्त है। और उसने समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया है।

काफी समय पहले, अक्तूबर क्रान्ति के आरंभ मे, लेनिन ने लिखा था: समाजवाद के समस्त मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध खुला, सिद्धान्तपरक और सीधा संघर्ष करने के स्थान पर यूरोप और अमरीका के पूंजीपति और उनके प्रतिनिधि सिद्धान्तकार और राजनीतिक नेता निजी संपत्ति की पूर्ण अनुल्लंघनीयता की और प्रतियोगिता की स्वतंत्रता की रक्षा मे, अधिकाधिक आगे आते गये समाजवादी क्रांति के विचार का विरोध करने के लिए तथाकथित सामाजिक

सुधारों की रक्षा मे। उदारवाद बनाम समाजवाद नही, बल्कि सुधारवाद बनाम समाजवादी क्रांति यह है फार्मूला आधुनिक, 'अग्रगामी' शिक्षित पूंजीपति वर्ग का।[1]

1960 और 1970 के दशकों मे इस निष्कर्ष की पुष्टि हो गयी, सर्वोपरि 'विसिद्धान्तीकरण' के सिद्धान्त के रूप मे, अथवा विचारधारा की समाप्ति के रूप मे। इस सिद्धान्त के, जिसकी जड़ें पीछे पूंजीपतियों के यथार्थवाद मे पहुँचती हैं, अब अनेक रूप है।

यथासंभव अधिक-से-अधिक जनता को प्रभावित करने के लिए साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार आबादी की विभिन्न श्रेणियों से अपील करने के लिए विभिन्न धारणाओं का उपयोग करते है। कुछ निम्न पूंजीपति वर्ग को लक्ष्य करके जो कुल मिलाकर इजारेदारी विरोधी स्थितियाँ ग्रहण किये होते है, प्रतिक्रियावादी भ्रमों का उपयोग करते हैं स्वतन्त्र प्रतियोगिता दिनो के लौटने की संभावना के विषय मे। दूसरों का लक्ष्य होता है शिक्षित अकादमीशियन, और विद्यार्थी समुदाय जो वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति द्वारा सक्रिय सार्वजनिक जीवन से खीच लिये गये है और वस्तुगत रूप से इजारेदारी पूंजी का विरोध करते है लेकिन अभी तक साम्राज्यवाद विरोधी सघर्ष में अपना स्थान नही बना पाये है, और कुछ गुटो को मिला करके भी जो मजदूर वर्ग के अन्दर है जो अभी तक अवसरवादी भ्रमो से विपाक्त है। कुछ विभिन्न लोग हैं विशेष रूप से नव स्वाधीन देशों की ओर निर्देशित, जो साम्राज्यवादी प्रभुत्व को नकारते हैं लेकिन सदा यह नही पहचान पाते कि कौन उनके मित्र है कौन शत्रु, उनके स्थायी ग्रुपों की ओर ध्यान दिया जाता है—समाजवादी देशों के भीतर जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हितों के विरोध की ओर झुकाव रखते हैं।

इस परस्पर विरोधी शक्तियो को दिशा परिवर्तन के लिए उनको, मार्क्सवाद लेनिनवाद से अलग करने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद से उनका ध्यान दूसरी तरफ ले जाने के लिए साम्राज्यवाद हर तरह के कम्युनिस्ट विरोधी—दक्षिणपन्थी अवसरवादी से उग्र वामपंथी आदोलन का उपयोग करता है तथा मजदूर वर्ग की विचारधारा मार्क्सवाद-लेनिनवाद का विरोध करने वाली किसी भी धारणा का उपयोग करता है। सबसे बढकर, प्रतिक्रियावादी सभी धाराओं के मुक्ति आदोलनो मे संयुक्त होने से डरते हैं। इस प्रकार वे इस आदोलन के विभिन्न सभागों के पिछड़ेपन, कमजोरी और विसगतियों को कायम रखने का हर समय प्रयास करते हैं।

---

1. वी० आई० लेनिन, रूसी सामाजिक जनवादी आदोलन मे सुधारवाद, सकलित रचनाएँ भाग 17 पृ० 229

प्रतिगामी साम्राज्यवाद समाजवादी देशो के विरुद्ध अपने सघर्ष मे उन कतिपय अल्पसंख्य दलों पर निर्भर रहता है जिनकी सामाजिक चेतना उनके सामाजिक जीवन से अत्यधिक पिछडी होती है। तथा वह पूंजीवाद के उत्तराधिकार के रूप में छोडे गये राष्ट्रवादी अवशेषो का उपयोग करता है। वह उन विभिन्न देशों की आर्थिक विकास की भिन्नताओं का लाभ उठाने की कोशिश करता है जिन्होने समाजवादी मार्ग को स्वीकार किया है, राष्ट्रवाद को उभारने का व इस प्रकार सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद सिद्धान्तों और समाजवादी समुदाय की एकता के सम्बन्ध मे पूर्वाग्रह उत्पन्न करने का प्रयास करता है।

पूंजीवादी सिद्धान्तकार विकसित पूंजीवादी देशों मे 1960 के दशक मे हुए आर्थिक विकास का और पूंजीवाद की सामाजिक संरचना से वैज्ञानिक तकनीकी क्रांति से सम्बद्ध नयी घटना का, राज्य एकाधिकारिता की प्रवृत्तियो के विस्तार का और पूंजीवादी उत्पादन तथा पूंजीवादी बाजार की एकता का व्यापक रूप से उपयोग करते हैं। इसके पीछे उनका उद्देश्य यह प्रचारित करना होता है कि पूंजीवादी समाज बदल चुका है, उसने अपने सामाजिक वैर-भावों पर काबू पा लिया है, तथा वर्ग-संघर्ष और मजदूर-आन्दोलन अपनी मौत मर चुके है। साम्राज्यवाद के देवदूत जनता के जनतांत्रिक आंदोलनो की मिश्रित वर्ग सरचना को जानते है, जो स्वतः ही निम्न पूंजीवादी लोगो को आकर्षित करता है (सिद्धान्तहीन समझौतों की ओर उनकी प्रवृत्ति या वामपंथी उग्रवादी दुस्साहसिकता की ओर उनकी प्रवृत्तियो सहित) जिससे कि मजदूर वर्ग की हरावल दलो की भूमिका को कमजोर किया जा सके।

राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन को ध्वस्त करने के लिए किये जा रहे प्रयासो मे राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की अस्थिरता का, स्थानीय आर्थिक और सास्कृतिक विकास के मार्ग मे आनेवाली विभिन्न बाधाओं का जातीय एवं जनजातीय पूर्वाग्रहों का, नये स्वाधीन राज्यो की पूंजीवादी विश्व-अर्थव्यवस्था पर निर्भरता का और पुराने महानगरों वाले देशों के साथ उनके आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्धो का लाभ उठाया जाता है। इसके पीछे उद्देश्य यही रहता है कि राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की प्रक्रिया जहां कहीं ऐतिहासिक अनिवार्यता के कारण साम्राज्यवाद विरोधी आदोलन का रूप ले रही हो, उसे रोका जाय।

साम्राज्यवादी देशों मे, 1950 के दशक के मध्य एवं 1960 के दशक के पूर्वार्ध से आर्थिक विकास एवं वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के क्षेत्रों मे राज्यीय प्रोत्साहन, इतनी बड़ी मात्रा मे देखा गया जितना कि पूंजीवादी समाज मे पहले कभी नही देखा गया था। इन उपायों मे आधुनिक पूंजीवाद की अपने को नयी विश्व-स्थिति के अनुकूल बनाने की, समाजवाद की चुनौती का सामना करने की और साथ-ही-साथ पूंजीवादी देशो में आर्थिक और सामाजिक उथल-पुथल को रोकने की

इच्छा प्रतिविम्बित थी। निस्सदेह, मिलते-जुलते वैचारिक समर्थन ने इस लाइन की पुष्टि कर दी।

सभवतः इस तथ्य को उद्धृत करके कि साम्राज्यवाद ने वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति की सहायता से कुछ समय के लिए सामाजिक उत्पादन की कुशलता को उठाने की व्यवस्था कर ली, किसी को धोखा नही दिया जा सकता। तथापि, पूंजीवादी सिद्धांतवेत्ताओ ने निष्कर्ष निकाला कि पूंजीवाद एक नये समाज के रूप में रूपान्तरित हो गया है जो अपने अन्तर्विरोधों को बिना संघर्षों के और शुद्ध व्यावहारिक रूप से सुलझाना सीख चुका है। इसी आधार पर उन्होने मार्क्सवादी 'मताग्रहो' को धो डालने के लिए शीघ्रता की।

इसी उद्देश्य से विसिद्धान्तीकरण (सिद्धान्तविहीनता) की अवधारणा सामने लायी गयी। 1960 में पूंजीवादी प्रचार द्वारा फ़ैशन के रूप मे चल रहे अन्य सिद्धान्तों के साथ घनिष्ठ रूप में संयुक्त करके इसका उपयोग किया जाता था। वे थे 'औद्योगिक समाज' और दो प्रणालियो की 'समरूपता' के सिद्धान्त। वे सब एक ही भूमि से उत्पन्न होते है और एक वृक्ष की शाखाओं की तरह परस्पर जुडे रहते है। एक ही काम करने के लिए उन्हे तैयार किया जाता है—राज्य इजारेदारी पूंजीवाद की जीवन्तता प्रमाणित करने और उसकी रक्षा करने के लिए वे कभी एक-दूसरे की पुष्टि करते हैं और एक-दूसरे की पूर्ति करते है।

दूसरी सैद्धान्तिक संरचनाओं के लिए 'दार्शनिक आधार' होने का दावा करने वाले 'विसिद्धान्तीकरण' या 'विचारधारा की समाप्ति' का सिद्धान्त केवल सैद्धान्तिक अवधारणा ही नही अपितु पूंजीवादी चिन्तन की प्रणाली है। इसे वास्तविकता के मार्क्सवादी-लेनिनवादी वर्ग विश्लेषण के मुकाबले घटनाओ एव विकास के मूल्याकन के लिए वर्गविहीन (विसिद्धान्तीकृत) दृष्टिकोण के रूप मे तैयार किया गया है।

यह सामान्य प्रवृत्ति पूंजीवादी और सामाजिक सुधारवादी प्रचार के रूपों और पद्धतियों के व्यापक कार्यक्रम मे प्रसारित की गयी जिसमे सामाजिक जीवन के विसिद्धान्तीकरण की धारणा भी रूप से सम्मिलित थी।

साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार यह प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं कि जैसे-जैसे आधुनिक विश्व वैज्ञानिक प्राविधिक क्रांति के ढांचे मे औद्योगिक रूप मे विकसित होता है, विचारधारा विभिन्न वर्गों और सामाजिक समूहों के अन्तिम सामाजिक आदर्शों को निर्धारित करने वाले विचारो की प्रणाली के उनके विश्व दृष्टिकोण और राजनीतिक क्रिया-कलाप के रूप मे अपनी भूमिका खोती जाती है और अन्ततः विलुप्त होती जाती है।

बूर्ज्वा व्यवहारवादी अपरिपक्व समुदायो के वैचारिक आवेगों के संघर्ष को छोड़ देते हैं जिसके बारे में वे कहते हैं कि अपने आर्थिक पिछड़ेपन और राजनीतिक

अधूरेपन के कारण वे 'कानूनी तरीके से समय-समय पर उभरने वाले विवादों को सुलझाने में असफल रहते हैं। लेकिन यह तर्क यहीं नहीं रुकता, और आगे जाता है। औद्योगिक देशों में वैचारिक संघर्ष की आवश्यकता एक स्थाई सामाजिक और राजनीतिक ढांचे के कारण स्वयं लुप्त हो जाती है। वे तात्कालिक समस्याओं का सामान्य 'जनतांत्रिक' तरीके से समाधान कर सकते हैं। यहाँ व्यायवहारिक अनुभव सैद्धान्तिक मतवाद का स्थान ले लेता है। ऐच्छिक क्रिया-कलाप का स्थान विज्ञान पर आधारित जिज्ञासा ले लेती है। सिद्धान्तकार की अपेक्षा प्रबन्धक मुख्य व्यक्ति बन जाता है और सिद्धान्त स्वय व्यवहार को मार्ग दे देता है।

सामाजिक जीवन की घटनाओं के प्रति यह रवैया इजारेदार पूँजी के सिद्धान्तकारों के लिए अत्यधिक आकर्षक होता है। उनकी दृष्टि मे सिद्धान्तहीनता के सिद्धान्त मे कुछ इस प्रकार के लाभ विद्यमान रहते हैं जिसके अन्तर्गत सर्वग्राही कम्युनिस्ट विरोधी धारणाएँ आ जाती हैं। राजनैतिक कार्यनीति में किसी भी परिवर्तन के लिए और कम्युनिस्ट विरोधी कार्यनीति मे सुधारों के लिए यह रास्ता साफ कर देती है। पूर्वाग्रह जो उतने ही पुराने हैं जितना कि स्वयं पूँजीवादी समाज, कहना चाहिए कि राष्ट्रवाद से लेकर आज तक की विविधताओं जैसे कि 'सेतु निर्माण' आदि का उपयोग किया जाता है। मेहनतकश जनता के संघर्षों की वर्गीय व्याख्या के मुकाबले किसी को भी उचित ठहराने और मक्खन लगाने के उद्देश्य से सिद्धान्तहीनता का निर्माण किया गया है।

'स्वतंत्र विश्व' के घोषित सिद्धांत के रूप में विसैद्धातिकरण साम्राज्यवाद के सिद्धातकारों की समस्त कम्युनिस्ट विरोधी अस्त्रागार का उपयोग करने की आकांक्षा का मूर्तरूप है, साथ ही पूँजीवाद के आध्यात्मिक संकट के निर्विवाद गहराते जाने का भी। क्योंकि वह इसी संकट से उत्पन्न होता है, विसैद्धान्तिकीकरण स्वभावतः अपने अनिवार्य लक्षणों को प्रदर्शित करता है, सर्वोपरि पूँजीवादी विचार और आधुनिक युग की वास्तविकताओं के बीच विद्यमान खाई को दिखाता है।

विचारधारा का अस्तित्व है, भले ही उसे कोई स्वीकार करे या न करे। विचारधारा का विरोध पूँजीवाद के समर्थकों की केवल आत्मगत आकांक्षा है जिससे कि जनता पर कम्युनिस्ट विचारों के प्रभाव के साथ भीतरघात कर सकें। विसैद्धान्तिकरण की लहर का लक्ष्य था मार्क्सवाद लेनिनवाद का उन्मूलन और साथ-ही-साथ पूँजीवादी प्रणाली की रक्षा।

आज पूँजीवादी जगत मे प्रत्येक संकेत ऐसा मिलता है कि जनता को सिद्धान्त-शून्य बनाने की शासक वर्ग की इच्छा का परिणाम यह हो रहा है कि उसे फिर से विचारधारा दी जा रही है अर्थात् अपने अधिकारों के सम्बन्ध मे उसकी विचारधारा को फिर से पुनर्स्थापित किया जा रहा है। इसका प्रमाण यह है कि नित नयी वैचारिक धारणाओं का गहराई से विस्तार किया जा रहा है और जनता के दिमागों

मे उनको बैठाया जा रहा है, तथा प्रचार की सुविधाओं को अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य मे अधिकाधिक चल रहे वैचारिक संघर्ष की दृष्टि से आधुनिक किया जा रहा है।

लेकिन पश्चिमी देशों मे सिद्धान्तशून्यता की धारणाओं को उठाकर ताक मे नहीं रख दिया गया है और वे समाजवादी देशों के विरुद्ध अपने प्रचार में व्यापक रूप से सलग्न है।

वर्तमान स्थितियो मे सिद्धान्तशून्यता वस्तुतः पश्चिमी देशों की वैज्ञानिक समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष की अपनी कार्य नीति को सुधारने का ही एक प्रयास है। विचारधारा को अस्वीकार करना और फिर नयी विचारधारा को स्थापित करना परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ नही है; वे कम्युनिस्ट विचारो के खिलाफ संघर्ष में केवल भिन्न-भिन्न पद्धतियों के रूप मे प्रयुक्त किये गये हैं।

पाश्चात्य सिद्धान्तकारो के प्रयत्नों का एक विशिष्ट उदाहरण है 'मानव अधिकारों की रक्षा' के लिए प्रचार अभियान जो फिर से विचारधारा को स्थापित करने के नारे के अन्तर्गत समाजवाद के विरुद्ध प्रत्याक्रमण है।

समाजवाद पर अपने हमलों मे उसके विरोधी अब जनतंत्र स्वतंत्रता और मानव अधिकारो जैसी शब्दावली के प्रयोग को तरजीह देने लगे हैं। वास्तव में उनका विश्वास है कि इन शब्दावलियो से उन्हें अपने प्रचार कार्यों में कुछ लाभ मिलता है क्योंकि इनमे तथ्यो और आँकड़ों की आवश्यकता नही पड़ती लेकिन यह निश्चित रूप से भ्रान्त धारणा है। वास्तव में स्वतंत्रता, जनतंत्र और मानव अधिकार सामाजिक जीवन की अन्य घटनाओं की तरह ही ठोस घटनाएँ हैं।

तथापि पश्चिम में मानव अधिकारों के सम्बन्ध मे जितना अधिक शोर मचाया जा रहा है उससे यह और भी स्पष्ट हो गया है कि पूँजीवादी जगत इस समस्या पर ठोस और गम्भीर विचार-विमर्श करने के लिए तैयार नही है। समय बीतने के साथ-साथ ऐसे अभियान का वास्तविक उद्देश्य स्वयं दिखाई देने लगता है। मानव अधिकारो के सम्बन्ध मे चल रही बहस को ओछी राजनीतिक सौदेबाजी के रूप मे मोड़ देने के लिए उठाया गया है अथवा स्पष्ट रूप से कहा जाय तो फूहड सोवियत-विरोध की स्थिति तक पहुँचाना इसका उद्देश्य रहा है। यह बात स्पष्ट हो गयी है कि पश्चिमी राजनीतिज्ञ जब उन देशों के सम्बन्ध मे बात करते हैं जहाँ कि वे स्वतत्रता और जनतत्र की 'रक्षा करना' आवश्यक समझते हैं तब उनके दिमाग में केवल समाजवादी सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देश होते हैं। समाजवादी दुनिया में लाखों लोग रहते हैं लेकिन ये राजनीतिज्ञ केवल मुट्ठी भर असतुष्टों मे ही रुचि रखते हैं और जहाँ तक स्वाधीनताओं का सम्बन्ध है वे केवल समाजवाद-विरोधी कार्यों के लिए स्वतंत्रता की रक्षा का ही ध्यान रखते है।

पश्चिम मे कुछ लोगो का यह विश्वास है कि इस प्रकार का रवैया राजनीतिक

रूप से लाभप्रद है। पहली नजर मे उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि इससे कुछ दुखदायी सवालों से छुटकारा मिलेगा, पूंजीवादी जगत मे प्राथमिक मानवीय अधिकारों के पागलपन-भरे दबाव के तथ्यो के सम्बन्ध मे चुप रहना होगा और समाजवाद आदमी को क्या देता है और पूंजीवाद आदमी से क्या लेता है के बीच तुलना की उपेक्षा की जा सकेगी, लेकिन यह स्थिति मानने योग्य नही है क्योंकि सबसे बढ़कर इसे अपना करके वे महत्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने के लिए कदम उठाने के बजाय निरर्थक शब्दावली का सहारा लेते हैं।

दूसरी ओर समाजवादी सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशो मे मानव अधिकार दैनिक जीवन के अविभाज्य अंग है। सोवियत जनता का दृढ विश्वास है कि स्वाधीनता जनतंत्र और मानव अधिकारो पर अत्यधिक भाव-भरे भाषण निरर्थक बातचीत के अलावा कुछ नही है जब तक कि उनके व्यवहार को पूर्णतया सुनिश्चित न बना दिया जाय। जैसा कि हम पूर्णतया जानते है कि मानव अधिकार प्राथमिक रूप से एक सामाजिक अवधारणा है जिसके अन्तर्गत सुनिश्चितताओ का एक व्यापक क्षेत्र आ जाता है जिसमे उत्पादन एव राजनीतिक क्रिया-कलाप मे मनुष्य के स्थान को परिभाषित करना होता है और भौतिक तथा सास्कृतिक लाभों का आनन्द उठाने के वास्तविक अवसरो को और सार्वजनिक ,समस्याओं मे भाग लेने के अधिकार को परिभाषित करना होता है। इस सम्बन्ध मे सबसे अधिक महत्व-पूर्ण बात समाज के पास भौतिक और आध्यात्मिक मूल्य कितनी मात्रा मे और कितने विशिष्ट है।,कौन इन मूल्यों का निर्माण करता है और कैसे ? तथा समाज के सदस्यो के बीच इनका वितरण किस प्रकार होता है ? और नि.सन्देह यह वितरण किस प्रकार व्यक्ति के विकास मे योग देता है और उसकी स्वतंत्रता और नागरिक प्रतिष्ठा को सुनिश्चित करता है ?

देखना यह है कि आज विश्व मे विद्यमान दो प्रणालियों मे से कौन इन कठिन समस्याओं के समाधान की कठिन कसौटी पर कितनी मात्रा में खरी उतरती है ?

पूंजीवाद ने अपने सदियों के शासन मे मानव समाज की उत्पादक शक्तियों को यद्यपि समुचित मात्रा मे विकसित किया है तथापि इसका इतिहास निर्विवाद रूप से प्रमाणित करता है कि पूंजीवादी समाज चाहे जितना भी सम्पन्न क्यो न हो जाय यह अनिवार्य रूप से शोषण की, सामाजिक असमानता की और अपरिहार्य वर्ग-संघर्षों की व्यवस्था रहेगी। पूंजीवादी देशों में लाखो बेरोजगार और शिक्षा से वंचित जनगण, और गृहविहीन, चिकित्सा की सुविधाओं से वंचित लोग यही अनुभव कर रहे है और करोडों मेहनतकश लोग जो कि अपनी रंगीन चमडी के कारण अपनी राष्ट्रीयता या राजनैतिक आस्थाओं के कारण सयुक्त राज्य अमरीका और पश्चिमी यूरोप, चिली और निकारागुआ में, लेबनान और दक्षिणी अफ्रीका में यही अनुभव कर रहे हैं।

मानव अधिकारो के सम्बन्ध में बात करने का अधिकार केवल उसी समाज को है जिसने मात्र घोषणा नही की बल्कि जनता की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से व्यावहारिक कदम उठाये हैं। समाजवाद ही इस प्रकार का समाज है। अल्पविकसित उत्पादक शक्तियो को विरासत मे प्राप्त कर अविश्वसनीय रूप से कठिन ऐतिहासिक परिस्थितियो मे आगे बढने वाला सोवियत संघ भी वर्षों तक, और आज तक भी, सोवियत जनता की सभी आवश्यकताओं को पूरा नही कर सका यद्यपि वह ऐसा करने का प्रयत्न करता रहा है, किंतु यह निर्विवाद है कि वह इस दिशा मे लबे डग भर रहा है।

सोवियत सघ ने सदा के लिए बेरोजगारी को समाप्त कर दिया है और इस प्रकार भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे, जो मानवीय क्रियाशीलता का मुख्य क्षेत्र है, प्रत्येक नागरिक का भाग लेना सुनिश्चित कर दिया है। समान कार्य के लिए समान वेतन सुनिश्चित कर दिया गया है। सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय असमानताओ को और अन्य अधिकारो की कमी को समाप्त करते हुए सोवियत संघ ने अपने सभी नागरिको के लिए सभी स्तरों पर सार्वजनिक और राजकीय मामलों में भाग लेना सम्भव बना दिया है। सोवियत जनता के स्वास्थ्य के लिए, उसकी शिक्षा और राजनीतिक क्रियाशीलता के प्रोत्साहन के लिए तथा सास्कृतिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए चिन्ता देश मे सभी राजकीय और सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की क्रियाशीलता की आधारशिला है। इतिहास मे पहली बार जनता के भौतिक और सास्कृतिक स्तर का निरतर उन्नयन और परिणामस्वरूप वास्तविक मानव अधिकारों का विस्तार पूरे समाज के भौतिक और सांस्कृतिक सामर्थ्य के विकास पर प्रत्यक्ष रूप से आधारित हो गया है।

'विचारधारा का अंत' : सामाजिक आधार एवं छद्म-वैज्ञानिक चरित्र

वर्तमान युग मे दोनों जगह विश्व पैमाने पर और प्रत्येक पूंजीवादी देश के भीतर वर्ग विचारधारा के विवादों की अभूतपूर्व तीव्रता के प्रकाश मे यह देखा जा सकता है कि यह सुझाव देना कि सिद्धान्त का युग पतनोन्मुख है, स्पष्ट रूप से बेतुकी बात है, लेकिन विसिद्धान्तीकरण के सिद्धान्तकारों को इसकी जरा भी चिन्ता है। तथ्यों की परवाह न करके वे अपने छद्म वैज्ञानिक तर्कों को बिना सामने लाये ही सहमति योग्य दिखाने के लिए दम्भपूर्ण ... से ... सामने आते हैं।

अन्य प्रचारात्मक सिद्धान्तों की ... सामने सामने आता है तो ऊपरी तौर पर ... जब

हो रहे परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करता है। यहाँ विशेष रूप से संकेत बड़े पैमाने के औद्योगिक उत्पादन की प्रबन्ध व्यवस्था की बनावट में परिवर्तनों की ओर है जिन्हें बूर्ज्वा अध्येता समूचे सामाजिक जीवन मे स्थानान्तरित करना पसन्द करेंगे जिसमें कि सामाजिक समस्याओं का क्षेत्र भी सम्मिलित है। आमतौर पर वे इस सिद्धान्त को आगे बढाते हैं कि किसी औद्योगिक समाज के प्रबन्ध की जटिल रचना—सामाजिक प्रकृति के विचार के बिना—वैचारिक आदर्शो से निकलने वाले राजनीतिक निर्णयों की अपेक्षा नही रखती लेकिन सावधानी से संयोजित सामग्री पर आधारित तकनीकी गणनाओ की अपेक्षा रखती है।

नये औद्योगिक राज्य मे अमरीकी पूंजीपति वर्ग के उदार समुदाय मे सामान्य रूप से स्वीकृत प्राधिकारी प्रख्यात अर्थशास्त्री जॉन कैनेथ गॉलब्रेथ की पुस्तक मे हम पढते हैं, तकनीकी और सगठन के अनिवार्यताएँ न कि विचारधारा की प्रतिभा, आर्थिक समाज के रूप को निर्धारित करती है।"

—(जोर लेखक का)[1]

यह निश्चित है कि जैसे-जैसे वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति तीव्र होती जाती है वैसे-वैसे पूंजीवादी और समाजवादी दोनो ही देशों में विज्ञान द्वारा प्रदत्त अवसरो का व्यवहार मे व्यापक रूप से निरन्तर प्रयोग बढ़ता जाता है तथापि तथ्यों के इस सही वक्तव्य से आरम्भ करते हुए विसिद्धान्तीकरण के सिद्धान्त के समर्थक अपने राजनीतिक उद्देश्यों से इसकी संगति बैठाने के लिए स्पष्ट रूप से वाग्जाल लेकर आगे आते है।

उत्पादन मे वस्तुतः सामाजिक सम्बन्धों सहित सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रबन्धकों के कार्य के कुछ विशिष्ट पहलुओं का विस्तार करते हुए, व 'औद्योगिक समाज' के किसी लाक्षणिक चरित्र की समस्या का समाधान करते हुए उसे सार्वभौम मापदण्ड बना लेते है।

अमरीकी विद्वान डेनियल बैल की दृष्टि से उत्पादन के संगठन के लिए प्रबन्ध का सामाजिक कार्य निर्णायक होता जाता है। औद्योगिक समाज प्रकृत्ति और मानव कार्यों के प्रति तकनीकी रुझान से पहचाना जा सकता है।

सामान्य रूप से ज्ञात तथ्यों के विपरीत, वैचारिक तथा परिणामस्वरूप वर्गीय आदर्श प्रश्न के इस सूत्रण मे उपेक्षित रहे है। पूंजीवादी राज्य कल्याणकारी एवं निष्पक्ष 'परिवार का अभिभावक' दिखाई देता है जो सब तरह की राजनीतिक सहानुभूति से मुक्त होता है और प्रत्येक मामले मे पूरे समाज के हित में अत्यधिक तर्कसंगत निर्णय उपलब्ध करता है।

पूंजीवादी राज्य की प्रकृति एवं क्रिया-कलाप के प्रति तकनीकी रुझान का

---

1. जॉन कनेथ गालब्रेथ, द न्यू इन्डस्ट्रियल स्टेट, बोस्टन, 1967, पृ० 7

मानव अधिकारों के सम्बन्ध में बात करने का अधिकार केवल उसी समाज को है जिसने मात्र घोषणा नही की बल्कि जनता की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से व्यावहारिक कदम उठाये हैं। समाजवाद ही इस प्रकार का समाज है। अल्पविकसित उत्पादक शक्तियों को विरासत में प्राप्त कर अविश्वसनीय रूप से कठिन ऐतिहासिक परिस्थितियों मे आगे बढने वाला सोवियत संघ भी वर्षों तक, और आज तक भी, सोवियत जनता की सभी आवश्यकताओं को पूरा नही कर सका यद्यपि वह ऐसा करने का प्रयत्न करता रहा है, किंतु यह निर्विवाद है कि वह इस दिशा में लंबे डग भर रहा है।

सोवियत संघ ने सदा के लिए बेरोजगारी को समाप्त कर दिया है और इस प्रकार भौतिक उत्पादन के क्षेत्र में, जो मानवीय क्रियाशीलता का मुख्य क्षेत्र है, प्रत्येक नागरिक का भाग लेना सुनिश्चित कर दिया है। समान कार्य के लिए समान वेतन सुनिश्चित कर दिया गया है। सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय असमानताओं को और अन्य अधिकारों की कमी को समाप्त करते हुए सोवियत संघ ने अपने सभी नागरिकों के लिए सभी स्तरों पर सार्वजनिक और राजकीय मामलों में भाग लेना सम्भव बना दिया है। सोवियत जनता के स्वास्थ्य के लिए, उसकी शिक्षा और राजनीतिक क्रियाशीलता के प्रोत्साहन के लिए तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए चिन्ता देश में सभी राजकीय और सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की क्रियाशीलता की आधारशिला है। इतिहास मे पहली बार जनता के भौतिक और सास्कृतिक स्तर का निरतर उन्नयन और परिणामस्वरूप वास्तविक मानव अधिकारों का विस्तार पूरे समाज के भौतिक और सांस्कृतिक सामर्थ्य के विकास पर प्रत्यक्ष रूप से आधारित हो गया है।

'विचारधारा का अंत' : सामाजिक आधार एवं छद्म-वैज्ञानिक चरित्र

वर्तमान युग में दोनों जगह विश्व पैमाने पर और प्रत्येक पूंजीवादी देश के भीतर वर्ग विचारधारा के विवादो की अभूतपूर्व तीव्रता के प्रकाश मे यह देखा जा सकता है कि यह सुझाव देना कि सिद्धान्त का युग पतनोन्मुख है, स्पष्ट रूप से बेतुकी बात है, लेकिन विसिद्धान्तीकरण के सिद्धान्तकारों को इसकी जरा भी चिन्ता है। तथ्यों की परवाह न करके वे अपने छद्म वैज्ञानिक तर्कों को बिना सामने लाये ही सहमति योग्य दिखाने के लिए दम्भपूर्ण चालबाजियो से भरा थैला लेकर सामने आते हैं।

अन्य प्रचारात्मक सिद्धान्तो की तरह विसिद्धान्तिकरण का सिद्धान्त भी जब सामने आता है तो ऊपरी तौर पर यह आधुनिक विश्व मे वास्तविक रूप से घटित

हो रहे परिवर्तनो को प्रतिबिंबित करता है। यहाँ विशेष रूप से संकेत बड़े पैमाने के औद्योगिक उत्पादन की प्रबन्ध व्यवस्था की बनावट में परिवर्तनों की ओर है जिन्हें बूर्ज्वा अध्येता समूचे सामाजिक जीवन में स्थानान्तरित करना पसन्द करेंगे जिसमें कि सामाजिक समस्याओं का क्षेत्र भी सम्मिलित है। आमतौर पर वे इस सिद्धान्त को आगे बढाते है कि किसी औद्योगिक समाज के प्रबन्ध की जटिल रचना—सामाजिक प्रकृति के विचार के बिना—वैचारिक आदर्शों से निकलने वाले राज-नीतिक निर्णयों की अपेक्षा नही रखती लेकिन सावधानी से सयोजित सामग्री पर आधारित तकनीकी गणनाओं की अपेक्षा रखती है।

नये औद्योगिक राज्य मे अमरीकी पूंजीपति वर्ग के उदार समुदाय मे सामान्य रूप से स्वीकृत प्राधिकारी प्रख्यात अर्थशास्त्री जॉन कैनेथ गॉलब्रेथ की पुस्तक में हम पढते है, तकनीकी और सगठन के अनिवार्यताएँ न कि विचारधारा की प्रतिभा, आर्थिक समाज के रूप को निर्धारित करती है।"

—(ज़ोर लेखक का)[1]

यह निश्चित है कि जैसे-जैसे वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति तीव्र होती जाती है वैसे-वैसे पूंजीवादी और समाजवादी दोनो ही देशों मे विज्ञान द्वारा प्रदत्त अवसरों का व्यवहार मे व्यापक रूप से निरन्तर प्रयोग बढता जाता है तथापि तथ्यों के इस सही वक्तव्य से आरम्भ करते हुए विसिद्धान्तीकरण के सिद्धान्त के समर्थक अपने राजनीतिक उद्देश्यों से इसकी संगति बैठाने के लिए स्पष्ट रूप से वाग्जाल लेकर आगे आते है।

उत्पादन मे वस्तुतः सामाजिक सम्बन्धो सहित मामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवन्धकों के कार्य के कुछ विशिष्ट पहलुओं का विस्तार करते हुए, व 'औद्योगिक ममाज' के किसी लाक्षणिक चरित्र की समस्या का समाधान करते हुए उसे सार्वभौम मापदण्ड बना लेते है।

अमरीकी विद्वान डेनियल बैल की दृष्टि से उत्पादन के संगठन के लिए प्रबन्ध का सामाजिक कार्य निर्णायक होता जाता है। औद्योगिक समाज प्रकृत्ति और मानव कार्यों के प्रति तकनीकी रुझान से पहचाना जा सकता है।

सामान्य रूप से ज्ञात तथ्यों के विपरीत, वैचारिक तथा परिणामस्वरूप वर्गीय आदर्श प्रश्न के इस सूत्रण में उपेक्षित रहे है। पूंजीवादी राज्य कल्याणकारी एवं निष्पक्ष 'परिवार का अभिभावक' दिखाई देता है जो सब तरह की राजनीतिक सहानुभूति से मुक्त होता है और प्रत्येक मामले में पूरे समाज के हित में अत्यधिक तर्कसंगत निर्णय उपलब्ध करता है।

पूंजीवादी राज्य की प्रकृति एवं क्रिया-कलाप के प्रति तकनीकी रुझान का

1. जॉन कनेथ गालब्रेथ, द न्यू इन्डस्ट्रियल स्टेट, बोस्टन, 1967, पृ० 7

उद्देश्य सम्पत्ति के स्वामित्व के रूपों के ठोस विश्लेषण का स्थान लेना है और उत्पादन के संगठन व प्रबन्ध के लिए आधार प्रस्तुत करना है; सामाजिक विधि के क्षेत्र मे उपायों को क्रियान्वित करना तथा राज्य के नियन्त्रण की पद्धतियो का प्रयोग करना है। उनकी क्रियाशीलता की व्याख्या राजनीतिक सघर्ष से उत्पन्न होने वाले आर्थिक एव सामाजिक अन्तर्विरोधों के माध्यम से न करके प्राविधिक प्रगति के सामान्य सन्दर्भों के माध्यम से की जाती है। और यह माना जाता है कि यह स्वय सामाजिक सम्बन्धो के नये रूपों को उत्पन्न करती है। प्रत्येक धारणा का निर्माण व्यावहारिक तार्किकता के अति प्राचीन विचार के आधार पर किया जाता है तथा यह मान लिया जाता है कि वह व्यावहारिक अनुभव से अपना मार्ग बनाएगी।

इससे भी वे काल्पनिक लाभ का निष्कर्ष निकालते है कि पूँजीवादी समाज में अनुभवो के तथ्यों की सीमा के परे होने वाली बड़ी सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में सूत्रण नही हो सकते (समाधान की बात तो दूर)। तथापि समूची सामाजिक प्रक्रिया के विश्लेषण की माँग निरन्तर बनी रहती है।

यह पहचानना कठिन नही है कि पूँजीवादी समाजवैज्ञानिकों की मंशा क्या है। वे उत्पीड़क और उत्पीड़ित के बीच पूँजीवाद और समाजवाद के बीच विवाद को विसर्जित करना पसन्द करेंगे, व्यावहारिक सवालों को अलग करने में और इस प्रकार मेहनतकश जनता को मार्क्सवाद-लेनिनवाद से और वर्ग-संघर्ष की बुनियादी समस्याओं से दूर हटाना पसन्द करेंगे। शोषकों का सदा से यही सपना रहा है कि जहाँ तक बन सके जनता को समाजवादी क्रान्ति के विचार से दूर रखा जाय। बूर्जा विद्वान मेहनतकश जनता से पूछते हैं जिस समाज मे आप रह रहे हैं वही यदि तात्कालिक समस्याओं का विशुद्ध व्यावहारिक रूप से आशाजनक हल प्रस्तुत कर दे तो किसे क्रान्ति की आवश्यकता होगी?

उनका तर्क है कि अतीत मे सामाजिक विवाद वर्ग-संघर्ष के रूप में विकसित हो सकते थे, उदाहरण के लिए जैसे 20वीं शताब्दी के आरम्भ मे रूस की विशिष्ट परिस्थितियों में। उस समय सिद्धान्त का होना आवश्यक था लेकिन अब पूँजीवादी समाज के लाभ के लिए इनको उठा रखा जा सकता है। वे इसका कारण बताते हैं कि आधुनिक पूँजीवादी राज्य ने अपने प्रतिष्ठानो की क्रमिक पूर्णता के ज़रिये वहाँ उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान का मार्ग प्राप्त कर लिया है।

वे कहते हैं वास्तव मे इन समस्याओं की प्रकृति ही मूल रूप से परिवर्तित हो गई है। गालब्रेथ लिखते है जब पूँजी आर्थिक सफलता की कुंजी थी—अमीर और ग़रीब के बीच सामाजिक विवाद था···लेकिन हाल के समय मे शिक्षा के कारण भिन्नता उत्पन्न हो गयी है जो इनको अलग करती है···राजनीति भी नये विभाजन को प्रतिबिंबित करती है। संयुक्त राज्य अमरीका में अब सन्देह या

असन्तोष पूंजीपतियों या सिर्फ धनिकों के खिलाफ नहीं है। मात्र बुद्धिजीवियों को सन्देह एवं ख़तरे की दृष्टि से देखा जाता है।[1]

इस प्रकार, वर्ग-संघर्ष के सम्बन्ध मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षा को चलताऊ काट दिया जाता है।

साम्राज्यवाद के समर्थक मेहनतकश जनता के मन में यह बैठाने की कोशिश करते है कि अब वर्ग-सघर्ष और सैद्धान्तिक सघर्ष के दिन लद चुके है और अब 'तकनीशियनों के युग' मे (सर्वोपरि संयुक्त राज्य अमरीका मे) वर्ग और विचारधाराए अनावश्यक वस्तु होने के कारण लुप्त होती जा रही है।

पूंजीवादी प्रचार मजदूर वर्ग और उसकी विचारधारा की क्रान्तिकारी भूमिका को समाप्त करने के प्रयासों मे स्वयं मार्क्स की शिक्षाओ के ही विसिद्धान्तीकरण की कोशिश करता है। न्यूयार्क विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के आचार्य सिडनी हुक लिखते है, "भविष्य के बुद्धिमान इतिहासकार को 20वी शती के उत्तरार्ध में एक आश्चर्यजनक घटना की चुनौती का सामना करना होगा—कार्ल मार्क्स के पुनरागमन का। अपने इस पुनः अवतरण में वह 'कैपिटल' के लेखक धूल-धूसरित कोट पहने किसी अर्थशास्त्री के रूप मे, कम्युनिस्ट घोषणापत्र के जोशीले प्रचार-पुस्तिका के लेखक के रूप मे नही होगा। इस समय वह आयेगा दार्शनिक या नैतिक उपदेशक के वेष मे : वर्ग, पार्टी या गुट के सकीर्ण क्षेत्रों से ऊपर उठा हुआ, मानवीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में प्रसन्न उद्‌गारो से पूर्ण गाड़ी मे उसके सहयात्री विश्व के औद्योगिक मजदूर नही होंगे अपितु साहित्यिक बुद्धिजीवी होगे···सर्वहारा नही अपितु विद्वान प्रोफेसर, सामाजिक, दृष्टि से उपेक्षित लोग नही, अपितु मनोवैज्ञानिक रूप से विरक्त और लेखकों तथा कलाकारो का विविध समुच्चय।[2]

प्रथम तो यह तीखी उत्तेजक व्यंग्योक्ति हर्बर्ट मार्क्युस की सुप्रसिद्ध धारणा की ही व्याख्या है, साथ ही मार्क्स की शिक्षाओ का व्यंग्य चित्र भी है। दूसरे अपनी अक्षमता के कारण अथवा अधिक सम्भव है कि जान-बूझकर, हुक हर चीज को उलटा घुमाता है और ऐसा दिखाने का प्रयास करता है मानो हमारे समय में मार्क्स की शिक्षा पुरानी पड गयी हो, अपना क्रान्तिकारी महत्व खो चुकी हो और किसी भी पुराने तरीके मे उसकी व्याख्या की जा सकती है। इसके अलावा इस प्रकार के दोषदर्शियों की वह प्रिय चाल होती है जिससे वह मार्क्सवाद के सम्बन्ध मे अपने अज्ञान को छिपाते है।

वैज्ञानिक कम्युनिज्म में मिलावट करने के प्रयासों के लिए यह बड़ी सुविधाजनक स्थिति है; हमारे समय में स्वीकृत मार्क्स के विचारो के अभिप्राय को स्पष्ट-

---

1. जॉन कैनेथ गालब्रेथ, द न्यू इन्डस्ट्रियल स्टेट, पृ० 244-45

2 द न्यूयार्क टाइम्स बुक रिव्यू, मई 22, 1966 पृ० 2

रूप से अस्वीकृत किये बिना ही यह उसके मुख्य सारतत्व की वर्ग संघर्ष और सामाजिक क्रान्ति सम्बन्धी शिक्षा को अस्वीकृत करता है।

सामाजिक क्रान्ति की धारणा पूरी तरह ठुकरायी नहीं गयी अपितु उसे सामान्य व्यवहारवाद के रूप में भ्रष्ट कर दिया जाता है। सामाजिक जीवन के हर पहलू को शब्दशः प्रभावित करने वाले मुख्य रूपान्तरणों के सम्पूर्ण समुच्चय को ही परिवर्तित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, आर्थिक पिछड़ेपन को समाप्त करने के अर्थात् विशुद्ध रूप से आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के द्वारा। प्रत्येक क्रान्ति—पूँजीवादी हो या समाजवादी—की व्याख्या समाज के औद्योगीकरण के पथ पर चलते हुए सुधारों की व्यापक प्रक्रिया के 'विशेष मामलों' के रूप में व्याख्या की जाती है।

कम्युनिस्टों के विरोधी इन 'सैद्धान्तिक' स्थापनाओं से अनेक निष्कर्ष निकालते है जिनका उद्देश्य मार्क्सवाद लेनिनवाद की शिक्षाओं का तथा समाजवाद के निर्माण का विरोध करना होता है। वे दावा करते हैं कि समाजवाद इसके सिद्धान्त और व्यवहार आर्थिक रूप से पिछड़े देशों के लिए सामाजिक विकास के कतिपय सम्भव विविध रूपों में से केवल एक है। कम्युनिस्ट पार्टियों को केवल पूँजीवादी व्यवस्था के आरम्भिक काल में मजदूर वर्ग के हितो के लिए आवाज उठाने वाली के रूप मे चित्रित किया जाता है। जैसे ही आधुनिकीकरण को सामाजिक विकास की प्रक्रिया का मुख्य प्रेरक घोषित किया जाता है वैसे ही सामाजिक रूपान्तरण के लक्ष्यों का स्थान प्राथमिक रूप से, उचित समय मे, वैज्ञानिक और प्राविधिक परिवर्तनो को देखने व उनसे प्रतिक्रिया करने मे समर्थ आर्थिक व्यवस्था को 'अनुकूल' करने का कार्य ले लेता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीवाद के समर्थक सर्वोपरि 'विचारधारा की समाप्ति' की आड़ मे वैज्ञानिक कम्युनिज्म की विचारधारा को अभिशापित करने के लिए ही विसिद्धांतीकरण को आवश्यक बताते हैं।

वास्तव में दर्शन न होना भी एक दर्शन है, वैसे ही जैसे कि अवसरवाद केवल सिद्धान्तों की कमी नही, बल्कि अवसरवादी सिद्धान्तों की प्रभुसत्ता होता है। इसी प्रकार विसिद्धान्तीकरण भी एक सैद्धान्तिक हथियार है। इसे हम मार्क्सवाद-लेनिनवाद को नष्ट करने के लिए आधिकारिक पूँजीवादी विज्ञान का एक और प्रयत्न समझते हैं।

वैचारिक संघर्ष के विध्वंस के सम्बन्ध में चलायी जा रही बात-चीत के पीछे पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थकों की वर्गीय स्थिति स्पष्ट दिखायी देती है क्योंकि वैचारिक संघर्ष में किसी प्रकार की कमी होने का लाभ केवल पूँजीपतियों को ही मिलता है जैसा कि लेनिन ने लिखा था : एक मात्र विकल्प है या तो पूँजीवादी या समाजवादी सिद्धान्त। इसके बीच मे कोई मध्यम मार्ग नही है (मानवता के

लिए कोई 'तीसरी' विचारधारा नहीं बनायी गयी) और इससे भी आगे, वर्ग विरोधों द्वारा भग्न समाज में विचारधारा कभी वर्गहीन अथवा वर्गों से ऊपर नही हो सकती।[1]

आधुनिक काल पर लागू किये जाने पर यह स्थापना अन्य किसी भी चीज़ से अधिक सिद्धान्तशून्यता की अवधारणा के वास्तविक सारतत्व को स्पष्ट कर देती है। भले ही इसके प्रचारक इसको छद्म वैज्ञानिक रूप दिया करें, चाहे उदार जनवादी इसे सजाकर प्रस्तुत करें अथवा इसके लिए भाववादी अकादमिक मुहावरों का उपयोग करें, यह सत्य है कि यह कट्टर कम्युनिस्ट विरोधियों का एक सक्रिय हथियार है। यही नही यह समाजवाद के विरुद्ध सघर्ष मे एक विशिष्ट राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति करता है।

तथापि, इस तथ्य के बावजूद कि सिद्धान्तहीनता का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से निराधार एव उद्देश्यमूलक है, यह इससे सम्बद्ध अन्य सिद्धान्तों की भाँति पश्चिम मे व्यापक रूप से प्रचारित है। अपेक्षाकृत रूप से इसके अधिक लोकप्रचलित होने का कारण समग्र रूप में पूंजीवादी सामाजिक विचार के गम्भीर संकट की परिस्थितियाँ है जो कतिपय सामाजिक समुदायो और राजनीतिक धाराओं के समकालीन पूंजीवादी समाज में—सामाजिक व्यवहार और हितों को मान्यता प्रदान करती है।

यह बात सबसे अधिक उदार पूंजीपति वर्ग पर लागू होती है जो वास्तव मे पिछले कुछ दशको मे फ़ासिज्म की सर्वाधिपत्यवादी विचारधारा के लज्जाजनक पराभव को देख चुका है और परम्परागत उदार विचारधारा के निरन्तर गहराते आतरिक संकट को भी देख चुका है।

जीवन के सभी क्षेत्रो में इजारेदारी आकस्मिक आक्रमणों से मुक्त प्रतियोगिता के युग के पुराने बन्धनो को तोड़ देती है, प्रचलित धारणाओ को नष्ट कर देती है। सक्षेप मे, पूंजीवादी उदारवाद और उसकी विचारधारा के पारम्परिक आधारों को ध्वस्त कर देती है। और यही कारण है कि बहुत से पूंजीवादी सिद्धान्तकार पूंजीवादी विचारधारा के दिवालियापन को आँकने लगे है, इसके संकट के रूप मे नही बल्कि सामान्य रूप मे 'विचारधारा की समाप्ति' के रूप मे आँकते हैं।

सिद्धान्तहीनता का सिद्धान्त सुधारवादियो के हाथो की कठपुतली बन जाता है जो कि पूंजीपतियो के साथ सिद्धान्तहीन समझौतो के लिए समाजवादी समझ को ही त्याग देते है। मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी शिक्षा को ताक़ पर रखते हुए दक्षिणपंथी सामाजिक जनवादियो के नेता और अन्य सुधारवादी व्यक्ति स्वभावतः सिद्धान्तहीनता के सिद्धान्त को बड़ी पूंजी के साथ अपने समझौतों के

---

1. वी० आई० लेनिन, व्हाट इज टू बी डन ?, कलेक्टेड वर्क्स, खड 5, पृ० 384

औचित्य के रूप मे देखते है। अनिवार्य रूप से यही मुद्दे 'वामपंथी' अतिवादियों तथा संशोधनवादियों को सिद्धान्तहीनता के सिद्धान्त के साथ जोड़ देते है।

लेनिन ने कभी लिखा था कि "पूंजीपतियों की कुटिल कार्यविधियां मजदूर आदोलन के भीतर संशोधनवाद को फैलाती हैं और अक्सर मज़दूर आंदोलन के मतभेदो को स्पष्ट विभाजन की रेखा तक ले जाती है।"[1] यही है जो हुआ है। हर रंग के अवसरवादियो को पूंजीवादी कार्यनीतियो की व्याख्या पूंजीवादी व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लक्षणों के रूप मे करने की उनकी जल्दबाज़ी से पहचाना गया है और वास्तविक समाजवाद के स्थान पर वैयक्तिक आंशिक सुधारों को लागू करते पाया गया है।

निस्सन्देह, अद्यतन सशोधनवादी अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा आम तौर से कुतर्क का अधिक आश्रय लेते है। इस सदी के आरम्भ मे वर्न्सटीनवाद के मुकाबले जो स्वय स्पष्ट रूप से क्रांतिकारी मज़दूर आदोलन का विरोध करता था, आधुनिक संशोधनवाद 'समाजवाद का वेष धारण करके' काम करता है, और जैसाकि कहा जाता है कि वह इजारेदारी विरोधी आदोलन को भीतर से तोड़ने के प्रयासों में पचभोगी (गुप्तचर) की भूमिका अदा करता है। यह कार्यनीति अधिक ख़तरनाक है क्योंकि यह आधुनिक अवसरवाद के उपयोग मे कुछ नयी घटनाक्रियाओं के साथ जुड़ गयी है। 1967 मे यह उत्पन्न हुई और आज की वैचारिक संघर्ष की समस्त नयी स्थिति का लाक्षणिक चरित्र बन गयी। इनसे निम्न निष्कर्ष निकलते हैं—

प्रथम, समस्त अवसरवादी धारणाओ का गहरे सोवियत विरोधी रंग मे रँगा जाना।

दूसरे, अवसरवाद की अधिकाश विविधताओ मे विद्यमान पूंजीवादी राष्ट्रवादी आधार का सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद से अलगाव, तथा वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्त और व्यवहार से स्पष्ट सम्बन्ध-विच्छेद के मुख्य कारक के रूप मे।

तीसरे, इस आधार पर दक्षिण एवं वाम अवसरवाद का वास्तविक सम्मिश्रण, जो अनेक मामलो मे एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध है और एक-दूसरे को प्रभावित करता है।

ये और अन्य लक्षण पूरी तरह स्पष्ट हैं। सार रूप मे, समाजवाद के सामाजिक व्यवहार को सिद्धान्तहीन बनाने के प्रयासों मे लगे अवसरवादी एव संशोधनवादी समाजवाद के सभी तरह के—'सुधरे हुए' और 'आदर्श' रूपो जैसे 'जनवादी', 'उदार' या 'मानवीय समाजवाद' या 'मानवीय आकृति वाला समाजवाद' आदि की खोज मे बड़े प्रत्युत्पन्नमति सिद्ध संपन्न हुए हैं। और इन सबको सोवियत संघ तथा अन्य

---

1. वी० आई० लेनिन, डिफ़रेंसेज़ इन द यूरोपियन लेबर मूवमेंट, कलेक्टेड वर्क्स, खंड 16, पृ० 351

समाजवादी देशों में वास्तव में विद्यमान समाजवाद के मुकाबले रखा जाता है, प्रतिरूपों की भाँति प्रस्तुत किया जाता है। इन्हें देखते हुए एक विचित्र विरोधाभास आँखों में खटकता है : मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सार्वभौम चरित्र से और समाजवादी रूपांतरण के अनुभव में इन्कार करते हुए इस प्रकार की तर्कहीन धारणाओं के प्रतिपादक स्वयं कृत्रिम रूप से निर्मित अपने आदर्श को सभी समाजवादी देशों के लिए अनिवार्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे उनको समस्त मानवता के लिए 'सार्वभौम' फार्मूले से कम किसी रूप में रखने को तैयार नहीं हैं।

इस प्रकार, बीसवीं शती के आरम्भ के सशोधनवाद के विपरीत जो कि वैज्ञानिक समाजवाद और सर्वहारा वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त के—और इस प्रकार उनके अन्तिम ध्येय समाजवाद के— विरुद्ध उत्पन्न हुआ था अद्यतन संशोधनवादी, वास्तव में विद्यमान समाजवाद के विरुद्ध, समाजवादी संरचना के व्यवहार के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं।

उनकी विध्वंसक कार्यवाहियों का मुख्य लक्ष्य समाजवाद-विरोध है। जैसाकि जर्मन के प्रख्यात मार्क्सवादी दार्शनिक प्रो० अल्फ्रेड कौसिंग ने लिखा है : "लेनिनवाद के विरुद्ध आज के सशोधनवाद का संघर्ष वैचारिक संघर्ष से कुछ अधिक है। यह गत 60 वर्षों की क्रान्तिकारी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक उपलब्धियों से अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक आन्दोलन को वंचित करने के उद्देश्य से किया जा रहा प्रहार है। यह अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन को महान् अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की पूर्ववर्ती स्थिति तक नीचे गिराने का प्रयास है।"[1]

लेनिन सदा जोर देकर कहा करते थे कि अवसरवाद आरम्भ तो करता है 'मार्क्स' के सम्बन्ध में वैयक्तिक 'संशोधनों से' और अन्ततः अनिवार्य रूप से क्रांतिकारी मार्क्सवाद से अपने को पूरी तरह तोड़ लेता है। इतिहास इस निष्कर्ष की पूरी तरह पुष्टि करता है। पूंजीवादी प्रचार के पिछलग्गू दक्षिण-पन्थी सुधारवादी सिद्धान्तविद् और सशोधनवादी मार्क्सवाद को जीर्ण घोषित करते हैं, सिद्धान्तहीनता के सिद्धांत की घोषणा करते हैं, 'जनता के पूँजीवाद का उपदेश देते हैं, आदि-आदि। वे सामाजिक और राजनीतिक विवादों को सुलझाने के स्वतः उद्भूत विकास के लिए पूर्णतया काल्पनिक शैली में सामने आते हैं। और हमारे युग के सैद्धान्तिक संघर्ष के समस्त आधारभूत प्रश्नों के सम्बन्ध में कम्युनिज्म विरोधी नीति को ग्रहण करते हैं और वास्तव में इसी उद्देश्य के लिए कार्य करते हैं।

'वामपन्थी' अतिवादी कुछ भिन्न शब्दावली का व्यवहार करते हैं। शब्दों में तो वे इजारेदारियों के सबसे भयानक शत्रु होते हैं और क्रांतिकारी संघर्ष के कट्टर समर्थक। तथापि, कार्यरूप में विभिन्न प्रकार के निम्न पूंजीवादी अति क्रान्ति-

---

1. अल्फ्रेड कौसिंग, अर्न्स्ट फ़िशर-इन माइनर मार्क्सिस्ट, बर्लिन, 1970, S. 145

कारियों, अराजकतावादियों, नवत्रात्स्कीवादियों, 'नव वामपंथियों' जो—हर्बर्ट मार्क्युस के शब्दों की वकालत करते हैं—और मोशीज्म, जो पूंजीवादी प्राविधिज्ञों के सिद्धान्त के स्पष्ट प्रभाव में हैं, के नये रूपों से किसी भी प्रकार भिन्न नही होते। ये सब अत्यधिक अनुदार (संकीर्ण) सामाजिक जनवादी धारणाओं से अधिक दूर नही है। दोनों की ही सैद्धांतिक संरचना, सार रूप मे, उन्ही तत्वों के विभिन्न प्रकार के संयोजन से होती है, दक्षिणपन्थी सुधारवादी की तरह 'वामपन्थी' संशोधनवादी भी समाजवादी क्रान्ति की मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं को विकृत करते हैं। वर्ग-संघर्ष के नियमों का प्रत्याख्यान करते हैं और मजदूर वर्ग के नेतृत्वकारी भूमिका को अस्वीकार करते हैं—इसी प्रकार समाजवाद की सम्पूर्ण विश्व-व्यवस्था का प्रत्याख्यान करते हैं, वर्तमान मुक्ति आन्दोलन का भी। दूसरे शब्दों मे सिद्धान्तहीनता का सिद्धान्त अपने सभी मुख्य रूपों में उनकी भावनाओं से सादृश्य रखता है।

इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि 1960 के दशक के दौरान समाजवाद के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष मे (जो 1968 मे चेकोस्लावाकिया की घटनाओं से और तीखा हुआ) दक्षिणपन्थी सामाजिक जनवादी और 'वामपंथी' अतिवादी साम्राज्यवादी प्रतिक्रिया के साथ वर्गीय मोर्चे की उसी दिशा में चले गये।

दो व्यवस्थाओं की समरूपता का भ्रम

दो व्यवस्थाओं की समरूपता का सिद्धान्त भी विसैद्धान्तिकीकरण के सिद्धात का ही विस्तार है। यह उसी स्थापना से, कि वैचारिक वर्ग-संघर्ष क्षीण होता जा रहा है, निस्तृत हो करके हाल के दशकों मे पूंजीपति वर्ग द्वारा संचित सामाजिक आदोलन के समस्त अनुभव का सार प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त कम्युनिज्म को पूर्णतया अस्वीकार करने और पूंजीवादी व्यवस्था का खुला समर्थन करने की नयी परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने के लक्ष्य का अनुसरण करता है जबकि उससे किसी लाभ की गुजाइश नही है।

स्पष्ट रूप से कम्युनिज्म विरोध के समर्थक और उदारमना पूंजीवादी सिद्धातकार पुनः 'एकताबद्ध' समाज के विचार को प्रोत्साहित करने का प्रयास कर रहे हैं, जिसमें समाजवाद और पूंजीवाद व्यवस्थित रूप से सम्भावित हों। फिर एक बार, साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार सुधारवादी और संशोधनवादी संयुक्त हो रहे हैं और इस मच पर सहयोग कर रहे हैं।

समरूपता के प्रवक्ता मेहनतकश जनता को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि पूंजीवादी एवं समाजवादी समाजो के बीच विद्यमान सामाजिक-राजनीतिक भिन्नताएँ औद्योगिक विकास के फलस्वरूप विशेष रूप से तकनीकी क्रांति के युग में मिटायी जा रही है। वे कहते हैं कि समाजवाद में कम्युनिस्टपन

निरन्तर कम होता जा रहा है और पूंजीवाद मे लगातार पूंजीवादीपन कम होता जा रहा है। इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे दोनो एक-दूसरे के समीप आ जायेंगे; एक ऐसी प्रक्रिया जिसकी परिणति समान आर्थिक एवं सामाजिक रूपो वाले 'संकर समाज' के निर्माण के रूप में होगी।

समरूपता के सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि औद्योगिक समाज के दोनो प्रारूपो के बीच भिन्नताएँ क्षीण होती जायेंगी। जब दोनों प्रकार के समाज जीवन के उसी स्तर पर पहुँच जायेंगे, इस सिद्धान्त का मानना है, उनके एक ही संगठन होंगे।

इस विचार का प्रमाणीकरण वैज्ञानिकता से उतनी ही दूर है जितना कि इसके प्रवर्तक वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने की इच्छा से दूर है। जैसीकि उनकी आदत है, वे समस्याओ की जटिलता की पूरी तरह जाँच करने से कतराते है, और खास तौर से ऐसे 'विवरणो' के सम्बन्ध में जैसे कि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण से रहित समाजवादी समाज एवं मजदूरी के शोषण पर आधारित समाज के बीच बुनियादी भिन्नताएँ। फलस्वरूप वे अपने से सर्वथा विपरीत वर्ग-संरचना, उत्पादन-सम्बन्ध, उत्पादन के लक्ष्य आदि पर ध्यान नही देते। इस प्रकार के सिद्धान्तकार औद्योगिक रूप से विकसित देशो की वर्तमान वास्तविकता के तथ्यों को विकृत रूप मे प्रस्तुत करते हुए शुद्ध रूप से सतही रूपो, लक्षणो पर विचार करने को प्रमुखता देते है।

समरूपता के पक्ष मे सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रयुक्त युक्तियों मे प्रथम और प्रमुख वे है जो भौडी प्राविधिकता की स्थितियो से, अर्थात् उन स्थितियों से जबकि समाजिक जीवन का समस्त क्रियाकलाप यान्त्रिक रूप से प्रत्यक्ष रूप मे प्राविधिकता के स्तर से निर्धारित किया जायगा, उठायी जाती है। इसमें सारा ध्यान दोनों व्यवस्थाओं की आर्थिक क्षेत्र की कुछ समान घटनाक्रियाओ पर दिया जाता है—राष्ट्रीय आर्थिकता मे उद्योग के हिस्से मे वृद्धि और कुल मिलाकर उद्योग मे भारी उद्योग की वृद्धि, नये उद्योगों का विकास, स्वचालन का व्यवहार तथा प्रचार-प्रसार के साधन आदि। संक्षेप में, प्रविधि के विकास पर बल दिया जाता है, लेकिन प्रश्न के दूसरे और मुख्य पहलू के सम्बन्ध मे जानबूझकर चुप्पी साध ली जाती है। इस प्रविधि का स्वामी कौन है, किसके लिए इसका उपयोग किया जाता है, कौन इससे मुनाफ़ा लेता है। दूसरे शब्दो मे, युग के मुख्य वर्ग-विवाद को आँखो से ओझल कर दिया जाता है उत्पादन के साधनो पर सामाजिक स्वामित्व निजी सम्पत्ति को निरस्त कर देता है।

समरूपता का सिद्धान्त औद्योगिक रूप से विकसित आधुनिक समाजों में संरचना सम्बन्धी परिवर्तनो का प्रसंग उठाता है: मजूरी कमाने वालों के अनुपात मे वृद्धि, श्रमिकों की शिक्षा व कुशलता मे वृद्धि, मशीनों द्वारा नियन्त्रण की ओर संक्रमण आदि। तथापि, इन समस्त वास्तविक प्रक्रियाओं को कथित सामाजिक व्यवस्था

के वर्ग-आधार के साथ उनके सम्बन्ध का उल्लेख किये बिना उठाया जाता है, समरूपता के सिद्धान्त के प्रतिपादकों द्वारा पूर्णतया गलत व्याख्या की जाती है, पूंजीवाद के अन्तर्गत और समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के एक प्रकार के स्तरीकरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ-ही-साथ, उक्त सिद्धान्त के समर्थक सामान्यतया इन विशेष रूप से सादृश्यपूर्ण घटनाओं के सारतत्व में विद्यमान बुनियादी भिन्नताओं के विषय में कुछ भी नहीं कहते। इन भिन्नताओं की उत्पत्ति इस तथ्य से होती है कि पूंजीवाद की सामाजिक प्रकृति समाजवाद की प्रकृति से पूर्णतया विपरीत है।

अन्ततः, समरूपता के विकास के प्रवक्ताओं की युक्तियों में जिनको महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है वे विशुद्ध रूप से भावनापूर्ण और नैतिक प्रकृति की है। खास तौर से, इस स्थापना पर बहुत अधिक चर्चा की जाती है कि समाजवादी देशों में जीवन-स्तर के उन्नत होने का परिणाम यह होगा कि वहाँ की जनता में उपभोक्ता-मानसिकता की ओर सम्मान बढ़ेगा जो समाजवाद को पूंजीवादी 'जन-उपभोग' समाज की दिशा में बढ़ने के लिए विवश करेगा। बेशक, यह एक सचाई है जिसे सावधानी के साथ छिपाया गया है कि पूंजीवादी समाज में संपूर्ण जीवन व्यहार में सांसारिक उपभोक्ता मानसिकता बना दी गयी है जिसकी समाजवाद के आदर्शों से जरा भी समानता नहीं है। समाजवाद में, बढ़ती हुई समृद्धि यद्यपि स्वयं महत्वपूर्ण है, पर प्राथमिक रूप से इसका अर्थ है सामाजिक प्रगति की उपलब्धि और व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास।

तथापि, समरूपता सिद्धान्त के प्रतिपादक इन बुनियादी भिन्नताओं के सम्बन्ध में ध्यान न देने का बहाना करते हैं। उनकी दृष्टि के क्षेत्र में, केवल दोनों व्यवस्थाओं में विद्यमान समान रूप ही रहते हैं। इस पहलू पर अपनी दृष्टि को केन्द्रित करते हुए फ्रांसीसी विद्वान एवं पत्रकार रेमण्ड आरों पूछते हैं "'''उत्पादन की उन्हीं शक्तियों से शुरू करते हुए (और उत्पादन शक्तियाँ—विज्ञान और प्रविधि सभी विकसित समाजों में कमोबेश समानता रखती है।) किस सीमा तक उत्पादन सम्बन्ध और सामाजिक संगठन भिन्न हो सकते हैं?"[1]

क्या यह वास्तव में समस्या को सही ढंग से प्रस्तुत करने का तरीका नहीं है?

यह सत्य है कि आधुनिक उत्पादक शक्तियाँ, विशेष रूप से, अपने आगे के विकास में, सर्वदा भिन्न सामाजिक-आर्थिक रूपों में नहीं रह सकती। शीघ्र अथवा विलम्ब से अनिवार्यतया वे एक विश्व आर्थिक व्यवस्था में विलीन हो जायेंगे। लेकिन यह विलय ठीक उसी प्रकार नहीं होगा जैसाकि श्री आरों चाहते है, पूंजीवाद और समाजवाद का इस रूप में विलीनीकरण नहीं होगा कि समाजवाद अपनी बुनि-

1. रेमंड आरों, ले दिस इल्यूजो द् प्रॉग्रेस, पेरिस, 1969, पृ० 251

वादी वर्ग स्थिति को छोड़ देगा और यह कि पूँजीवादी व्यवस्था में प्रत्यावर्तन के फलस्वरूप भी नही होगा।

स्वभावत:, इस प्रकार का निष्कर्ष पूँजीवादी विद्वानो को अनुकूल नही प्रतीत होता। उनका काम तो विरोध को ही सामने लाना है। इसलिए इस बुनियादी सवाल का कि उनकी पसन्द का समरूप 'मिश्रित' समाज किस रूप का होगा, उनका उत्तर उन्हे बेनकाब कर देता है।

समरूपता के सिद्धान्त के भाष्यकार प्रायः वस्तुओं को इस ढग से चित्रित करते हैं कि एकीकृत संकर समाज पूँजीवाद एवं समाजवाद द्वारा उपलब्ध श्रेष्ठतम को विरासत में प्राप्त करेगा अर्थात् यह उनकी कमियो से मुक्त रहेगा तथा दोनो व्यवस्थाओ के गुणो से युक्त होगा। इस प्रकार, अमरीकी अर्थशास्त्री पीटर ड्रुकर—जिन्होने इस सिद्धान्त के विज्ञापन मे भारी श्रम किया है, कहते हैं—"मुक्त औद्योगिक समाज···निश्चित रूप से उससे बहुत भिन्न होगा जैसाकि हम पारम्परिक रूप से 'पूँजीवाद' के सम्बन्ध मे सोचते है। यह उससे भी बहुत भिन्न होगा जैसाकि हम परम्परागत रूप से 'समाजवाद' के सम्बन्ध मे सोचते हैं। एक ऐसा औद्योगिक समाज जो पूँजीवाद और समाजवाद से परे होगा। यह एक नया समाज होगा जो दोनों से बढ-चढकर होगा।"[1]

विषय को इस ढंग से मोड़ देने से प्रतीत होता है कि पूँजीवादी पण्डित सामाजिक जीवन के नये और अधिक पूर्ण रूपों की खोज मे लगे है। इस कारण उनको दोनो व्यवस्थाओ के वस्तुपरक एवं निष्पक्ष निर्णायक के रूप मे आघात करने की छूट मिल जाती है।

अच्छा, क्यों न ऐसा किया जाय कि पूँजीवाद और समाजवाद की उपलब्धियो मे से प्रत्येक साकारात्मक वस्तु अलग कर ली जाय और इन तत्वों से दोनो मे श्रेष्ठतर समाज-व्यवस्था का निर्माण किया जाय? लेकिन पूँजीवादी पण्डित इतने अनजान नही है कि वे यह भी न जानते हो कि समाजवाद और पूँजीवाद दोनो ही अपने-अपने वस्तुगत नियमो के आधार पर विकसित हो रहे है। और यह भी कि उनकी सामाजिक संस्थाएँ परस्पर उतनी ही पृथक् है जितने कि उनके वर्गों की विरोधी बुनियादें।

इस प्रकार के 'सकर' समाज के निर्माण के विषय में आरम्भ की गयी समस्त चर्चा का स्पष्ट उद्देश्य जनता को इस निष्कर्ष से परे ले जाना था कि पूँजीवाद से समाजवाद में सक्रमण अनिवार्य है। लेकिन समरूपता के प्रवक्ता इसे कितना ही बढ़ा-चढाकर प्रस्तुत क्यो न करें कि पूँजीवाद तथा समाजवाद के कौन-से दोष नष्ट

---

1. पीटर एफ० ड्रकर, द न्यू सोसायटी, दि एनाटोमी आफ इडस्ट्रियल आर्डर, न्यू यार्क, 1962, पृ० 351

हो जायेंगे और कौन-से गुण रह जायेंगे और विकसित होंगे, चर्चा सदा इस ओर मुड़ जाती थी कि 'सकर समाज' पूँजीवादी व्यवस्था के मुख्य रूपों का—उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और पूँजी का—प्रभुत्व बना रहेगा। चाहेजितनी खोज की जाय, चीजों को बड़े आकार में दिखाने वाले काँच से भी देखा जाय आपको उसमे समाजवाद का एक दाना भी नहीं मिलेगा।

सारांश मे, समरूपता के भाष्यकार समाजवाद के विद्यमान रहने के अधिकार को उसी सीमा तक मान्यता देते है जिस सीमा तक वह औद्योगिक समाज मे पूँजीवादी आदर्श के अनुसार धीरे-धीरे विकास करता रहे। उदाहरण के लिए, अमरीकी विद्वान वाल्टर एस० वकिंघम जूनियर निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हुए स्पष्ट रूप मे कहते है— "···पूँजीवाद की चार बुनियादों मे से तीन शुद्ध पूँजीवाद से आगे ले जायी जाती है और नये रूप मे उदीयमान आर्थिक व्यवस्था में सम्मिलित कर ली जाती है। प्रथम, पूँजी, कारखाना तथा उपकरण मे निजी सम्पत्ति वैसे-वैसे बढती जाती है जैसे-जैसे उपभोक्ता वस्तुओं तथा सेवाओ मे उद्योग का विस्तार होता है यद्यपि इसको जनशक्ति तथा यातायात सेवाओ के जरिये आशिक रूप से और आगे बढ़ाया जाता है। दूसरे, आर्थिक प्रेरणाएँ और लाभ को प्रोत्साहन सुस्थापित हो जाते हैं और भावी कर-नीतियाँ उनको सुदृढ़ करने वाली प्रतीत होती है। तीसरे, बाजार की व्यवस्था सर्वत्र वस्तुओं और सेवाओं के विनियोजन को नियन्त्रित करने के लिए मुख्य यान्त्रिकता के रूप में अपनी प्रभावशीलता प्रमाणित कर देता है।"[1]

ज़िबग्निएव ब्रजेजिन्स्की तथा सेमुएल हण्टिंगटन और भी अधिक स्पष्ट रूप से कहते है : "पश्चिम मे,···व्यापक रूप से प्रचारित समरूपता के सिद्धान्त की मान्यता है कि भविष्य मे किसी अनिश्चित ऐतिहासिक अवसर पर अमरीका एव रूस के 'समरूप' होने के बाद जनतत्र के बुनियादी रूप से महत्वपूर्ण पहलू बने रहेगे···। इस प्रकार निकट से परीक्षा करने पर पता चलेगा कि तथाकथित समरूपता के अधिकाश सिद्धान्त वास्तव मे समरूपता के रूप मे न माने जाकर विरोधी व्यवस्था के विलय के रूप मे माने जाने चाहिए।"[2]

,और अन्ततः मिशिगन राज्य विश्वविद्यालय मे रूसी अनुसन्धान केन्द्र के निदेशक ए० सी० मेयर प्रश्न के सारतत्व इस रूप मे स्पष्ट करते हैं : "समरूपता के सिद्धान्त को तानाशाही (समाजवादी देशों में राजनीतिक व्यवस्था के लिए परिभाषित शब्द, वी० के०) तथा सिद्धान्त (अर्थात् मार्क्सवाद-लेनिनवाद—वी० के०) की काट के रूप मे देखा जाता है : और आगे "पश्चिमी समरूपता के सिद्धान्त मे

1. वाल्टर एस० वकिंघम जूनियर, थ्योरिटिकल इकोनौमिक सिस्टम्स : ए कपेरेटिव एनेलिसिस, न्यूयार्क, 1958 पृ० 485
2. ज़िबग्निएव ब्रजेजिन्स्की और सेमुएल पी० हंटिंग्टन, पोलिटिस पावर : यू० एस० ए० यू० एस० एस० आर० न्यूमार्क 1964, पृ० 419

बड़ी मात्रा मे यह मान्यता अन्तर्निहित है कि पश्चिमी समाज और विशेष रूप से अमरीकी समाज आदर्श है जिसकी ओर बढ़ने का प्रयास सभी समकालीन समाज कर रहे हैं।"[1]

तथापि, पूँजीवादी समाज विज्ञान के सभी पण्डित इस सीमा तक स्पष्ट नहीं हैं। इसके विपरीत, उनमे से अधिकाश तो समरूपता के सिद्धान्त के वास्तविक अर्थ को छिपाने की कोशिश करते है और इसे—दो व्यवस्थाओं के समरूप विकास के विचार को—समाजवाद को दी जा रही रियायत के रूप मे प्रस्तुत करते है। वे वैज्ञानिक एव प्राविधिक प्रगति की उपलब्धियों के सम्बन्ध मे अनुमान लगाते है और इस तथ्य के सम्बन्ध में भी कि उत्पादक शक्तियों का विकास वास्तव मे कुछ समान रूप की समस्याएँ उत्पन्न करता है। इसी के साथ-साथ दोनों व्यवस्थाओ के बीच बुनियादी वर्ग-भिन्नताओं के सम्बन्ध मे वे मौन रहते है, इस विचार का उपयोग करते है कि समाजवाद और पूँजीवाद दोनों विभिन्न रास्तों से नजदीक आते जा रहे हैं।

निस्सन्देह मुख्यतया इस दखलन्दाजी का उद्देश्य समाजवाद का विरोध है। क्योंकि जब सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशों की उपलब्धियो से अधिक समय तक इन्कार नही कर सकते, तो समाजवाद के पूँजीवादी आलोचक दूसरा रास्ता अपनाते हैं। वे इस बात से इन्कार करते है कि ये उपलब्धियाँ समाजवादी सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर है और वे सामान्यतः औद्योगिक विकास के मात्र विशिष्ट सुधारों के रूप मे इस अनुभव को प्रदर्शित करते है। और औद्योगिक विकास समाजवाद और पूँजीवाद दोनो में लगभग अथवा अधिकाश मे समान है। समाजवाद एवं पूँजीवाद के बीच भिन्नताओं के सम्बन्ध मे उनका कहना है कि इसको व्यवस्थाओ मे नही अपितु केवल विकास की मंजिल के रूप मे देखा जाना चाहिए। जैसे ही समाजवाद उत्पादन के स्तर मे पूँजीवाद को 'पकड लेता' है धीरे-धीरे ये भिन्नताएँ अदृश्य हो जाती है।

साथ-ही-साथ, पूँजीवादी प्रचार चालबाजी तथा सचाई को विकृत रूप में प्रस्तुत करने के उपायो द्वारा हमें इस निष्कर्ष पर लाना चाहता है कि यद्यपि समाजवाद औद्योगिक समाज के दो रूपों में से एक है तथापि यह वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के मामले मे पूँजीवाद की अपेक्षा कम संवेदनशील है। इससे भी आगे, उनके अपने तरीके के अनुसार जब वे विभिन्न समाज-व्यवस्थाओं वाले देशों के विभिन्न प्राविधिक और वैज्ञानिक संकेतकों की तुलना करते हैं तो हमारे विरोधी इस तथ्य के सम्बन्ध मे मौन धारण किये रहते हैं कि पूँजीवादी देश उच्च वैज्ञानिक

---

1. ए० सी० मेयर 'थ्योरीज ऑफ कन्वर्जेन्स' चेंज इन कम्युनिस्ट सिस्टम स० चायर्स जॉनसन स्टेन्फोर्ड, केलिफोर्निया 1970 पृ० 320, 324

एवं प्राविधिक स्तर उपस्थित कर रहे हैं तो आर्थिक क्षेत्र मे, सदियों के विकास मेहनतकश जनता का पाशविक शोषण और दूसरे देशो की लूट के फलस्वरूप, तथापि समाजवाद पूरी तरह अपने निजी आंतरिक संसाधनों के बल पर विकास कर रहा है और उसे केवल साठ वर्ष हुए हैं (यदि हम विश्व के प्रथम राज्य को ध्यान मे रखें तो)। साथ ही, इस दौर मे भी बहुत से और अत्यधिक कठोर वर्ष उसे झेलने पड़े है—गृह युद्ध, विदेशी हस्तक्षेप को पीछे हटाना, द्वितीय विश्वयुद्ध जिसके फल-स्वरूप अत्यधिक आर्थिक विध्वंस हुआ तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का पुर्ननिर्माण करने के वर्ष।

पश्चिमी अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री बड़ी सावधानी के साथ इस तथ्य से कतराकर निकल जाते हैं कि सोवियत संघ सहित कई देशों में अर्धविकसित पूंजीवाद की स्थितियों मे समाजवादी क्रान्ति विजयी हुई। जिसके कारण, अनेक क्षेत्रों में—औद्योगीकरण शुरू किया गया, मज़दूर वर्ग का और बुद्धिजीवियों का निर्माण हुआ, सार्वभौम शिक्षा के लिए प्रावधान तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य—'पूंजीवाद के के काम' समाजवाद ने किये। दूसरे शब्दों मे, इसे वे काम भी पूरे करने हैं (बेशक, अपने तरीकों से और अतुलनीय रूप से अधिक त्वरा के साथ) जो विभिन्न स्थितियों के अन्तर्गत पूंजीवादी समाजो में पूरे किये जा चुके हैं।

दूसरी ओर, पूंजीवादी विचारक पूंजीवाद के बचाव के लिए समरूपता के सिद्धान्त का व्यापक रूप से उपयोग करते हैं। इस सिद्धान्त का मूल्य इजारेदार पूंजीपति वर्ग के लिए इस तथ्य मे निहित है कि यह उसको पूंजीवाद के 'पुराने' पापों से जिनसे कि उसने मज़दूर वर्ग के देखते-देखते स्वयं समझौते किये थे, अपने को मुक्त करने का मौका देता है। इस लक्ष्य से, बूर्ज्वा प्रचार एक सीधी-सादी चालाकी करता है: वास्तविकतावादी मध्यस्थ की भूमिका अदा करते हुए यह समान मात्रा में समाजवाद और पूंजीवाद दोनों की गलतियो के ख़िलाफ़ अपने को प्रदर्शित करता है। निर्णय की शब्दावली कठोर होती है और ऊपरी तौर पर दोनों व्यवस्थाओ को अस्वीकार करती है। तथापि, समस्त चालबाज़ी समाजवाद के ख़िलाफ़ काम आती है। पूंजीवाद की तात्कालिक व्यावहारिकता के मामले मे इसका उपयोग नहीं किया जाता बल्कि आज राजकीय 'इजारेदारी की मंज़िल की स्थिति में ही नहीं अपितु इससे पूर्ववर्ती मंज़िल की भी आलोचना की जाती है।

बूर्ज्वा पण्डित पुराने (शास्त्रीय) पूंजीवाद के विरुद्ध दोषारोपण करते हैं और तुरन्त कहने लगते हैं कि यह जीर्ण हो गया है। लेकिन वे ऐसा साहसिक निष्कर्ष केवल इसलिए निकालते हैं ताकि वे इसकी आधुनिक मंज़िल को पुराने 'परम्परागत पूंजीवाद' का विपर्यय कहकर प्रस्तुत कर सकें, जिसकी प्रत्यक्षरूप में पुराने मे कोई समानता नहीं हो। जहाँ तक अद्यतन पूंजीवाद का सम्बन्ध है इसके सिद्धान्तकार दम्भ के साथ घोषणा करते हैं कि यह निरन्तर मेहनतकश जनता के

हितों की ओर बढ़ रहा है और समाजवाद के श्रेष्ठ पहलुओं को अपने में सम्मिलित करने में सक्षम है, स्वयं समाजवाद से भी अधिक सफलता के साथ।

ये सभी विचार श्रोताओं को ध्यान में रख कर विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किये जाते हैं। **पूंजीवादी देशों की** मेहनतकश जनता के लिए ये 'औद्योगिक समाज' के सम्बन्ध में प्रवचनों के रूप में सामने आते हैं प्रविधि पर पूर्ण निर्भरता का सुझाव देते हुए। इसके पीछे सोच यह है कि मजदूर और पूंजी के बीच वर्तमान मुख्य अन्त-विरोध को सुलझाया जाय, जिसमें कि आगे चलकर विश्वयुद्ध के खतरे को समाप्त किया जा सके। और भी, दो व्यवस्थाओं की इस समरूपता को दोनों व्यवस्थाओं के बीच सैनिक संघर्ष के एकमात्र विकल्प के रूप में देखा जाता है। इसके अतिरिक्त **विकासशील देशों के** लिए ये विचार अफ्रीकी' या 'एशियायी' समाजवाद के रूप में प्रकट होते हैं, जिसके आधारभूत तत्व तीसरी दुनिया के निम्न पूंजीवादी समुदायों की भावनाओं को प्रभावित करते हैं जो एक ही समय में दो परस्पर पूर्णतया भिन्न व एकांतिक कार्यभारों—निजी सम्पत्ति के एकीकरण के तथा बड़ी पूंजी के जुए से मुक्ति प्राप्त करने के कार्यों—को साथ-साथ पूरा करने की सम्भावना का भ्रम पाले हुए हैं।

समाजवादी देशों की आबादी में प्रसारित वक्तव्यों में वे विभिन्न रूपों—जनतांत्रिक', 'उदार', 'मानवीय' समाजवाद के सुधार के रूपों—में दिखायी देते हैं। सारी योजना समाजवादी समाज को विकसित करने की आड़ में भीतर से तोड़ने के लिए है।

आमतौर पर, विशेष रूप से, समाजवादी देशों तथा कम्युनिस्ट पार्टियों के विषय में प्रचार का लक्ष्य होता है कि सामाजिक जीवन के विसैद्धान्तिकरण से इसको घनिष्ठ रूप से जोड़कर किसी भी उपाय से उनमें राष्ट्रवाद की भावना सुलगायी जाय।

समाजवादी विश्व के विषय में इसकी सभी कार्यनीतियों की फिर से परीक्षा करने के लिए विवश होकर साम्राज्यवाद ने अपनी कम्युनिस्ट विरोधी कार्यवाहियों के अत्यधिक परस्पर विरोधी पहलुओं में कुछ सुधार किये हैं अनेक पश्चिमी राज-नयिकों ने एक नया और अधिक लचीला राजनीतिक मार्ग तैयार करने की आव-श्यकता की बात उठायी है।

संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी द्वारा 1960 में प्रकाशित पुस्तक **'शांति की कार्यनीति'** (द स्ट्रेटजी आफ पीस) में और अधिक स्पष्टता के साथ यह विचार प्रकट किया गया है। "पोलेण्ड में—और लौह-आवरण में दिखायी देने वाली किसी अन्य दरार में—घनिष्ठ सम्बन्ध बढाने के लिए और स्वतंत्रता के बीज बोने के लिए, हम सावधानी के साथ शान्तिपूर्वक अपना काम धीरे-धीरे शुरू

कर सकते हैं।[1] केनेडी के उत्तराधिकारी लिण्डन जॉनसन इस योजना के सम्बन्ध मे अधिक सजग थे। उन्होने 'शान्तिपूर्ण लगाव' या 'पुलों के निर्माण' की धारणा को संयुक्त राज्य अमरीका की सरकारी विदेश नीति का स्तर प्रदान किया और उसको सभी समाजवादी देशो के मामले मे समस्त पश्चिमी शक्तियों की संयुक्त नीति के रूप मे प्रतिपादित करने का प्रयास किया। लैंकिसगटन, वर्जीनिया के वर्जीनिया मिलिटरी इस्टीट्यूट(सैनिक सस्थान) में मई 1964 मे भाषण देते हुए जॉनसन ने कहा : "हम पूर्वी यूरोप से हमको पृथक् करने वाली खाई को पार करने के लिए पुल बनाने का काम जारी रखेंगे। वे पुल होंगे विचारो के बढ़ता हुआ व्यापार के, दर्शकों (यात्रियों) के और मानवीय आधार पर सहायता के।"[2] इस स्थापना की जो व्याख्या की गई वह विशुद्ध निहित स्वार्थों पर आधारित थी। संयुक्त राज्य अमरीका की इजारेदार पूंजी से और कुछ अपेक्षा भी नही की जा सकती थी। जल्दी ही व्यवहार से इसकी पूर्णतया पुष्टि होगयी।

यद्यपि परवर्ती काल में इस कार्यक्रम को अनेक बार संशोधित और परिवर्तित किया गया लेकिन इसके मुख्य अश आज तक भी साम्राज्यवादी शक्तियो की कथित पूर्वीय नीति के मार्गदर्शक के रूप मे अवस्थित है। जहाँ तक इस नीति के सैद्धान्तिक पहलू का प्रश्न है, इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। सैद्धान्तिक सेवाओ को छद्म उदारता के विचारो के प्रसार के लिए तथा समाजवादी विश्वदृष्टिकोण को ध्वस्त करने के उद्देश्य से जनमत की जाँच करने के लिए आगे ले आया गया है।

सर्वाधिक घातक प्रहार विशेष रूप से उन महत्वपूर्ण मुद्दों पर किये गये जो समाजवादी विश्व समुदाय और विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की एकता के सशक्त स्थल थे : मार्क्सवाद-लेनिनवाद सभी देशों के कम्युनिस्टो की सैद्धान्तिक एकता के सुदृढ आधार के रूप मे, मजदूर वर्ग की और उसकी पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका, जो सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के विचार को आगे बढ़ाती है, और समाजवादी समुदाय के अनुभवों का सार्वभौम महत्त्व। ये सभी घटक अविश्रान्त सैद्धान्तिक बमबारी के लक्ष्य बने।

लेकिन जब पूंजीवाद दो व्यवस्थाओ के ऐतिहासिक सघर्ष मे समाजवाद को परास्त करने मे सफल नही हो पाता तो वह अपनी सैद्धांतिक सुरक्षा के प्रयास बढा देता है। इसे सामाजिक प्रक्रिया के विश्लेषण को सैद्धान्तिक और वर्गीय अर्थ से पृथक् करने के लिए निरन्तर किये जा रहे प्रयासो के साथ जोड़ देता है।

यह सच है कि समय-समय पर, विशेष रूप से इस समय, पश्चिम में निरन्तर आह्वान किये जाते रहे हैं—मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सामाजिक विकास के

---

1. जॉन एफ केनेडी, द स्ट्रेटेजी आफ़ पीस, स० एलन नेविन्स, न्यूयार्क 1960, पृ० 18
2 द न्यूयार्क टाइम्स, 24 मई 1964

व्यावहारिक (सकारात्मक) सिद्धान्त के प्रतितुलन के लिए 'सिद्धान्त की ओर वापस मुड़ो', इसे पूँजीवादी मनोवृत्ति की ओर 'वापस लाओ'।

बेशक, इन आह्वानों को समझा जा सकता है। सैद्धान्तिक संघर्ष की ओर विशुद्ध रूप से व्यावहारिक रुख के जरिये कभी भी कोई क्रियात्मक स्थिति सुनिश्चित नही की जा सकती। हाल के वर्षों मे पूँजीवादी जगत को दुनिया में जिन प्रहारों का सामना करना पड़ रहा है (सामाजिक-राजनीतिक अन्तर्विरोध की तीव्रता, वियतनाम मे अमरीका की हार, 1974-75 का संकट आदि), इनसे यह अधिकाधिक प्रमाणित होता जा रहा है कि केवल 'प्राविधिक समाधानो' से वास्तव मे कुछ नही सुलझाया जा सकता। हमारे समय की क्रांतिकारी शक्तियो के शक्तिशाली उभार की स्थितियों मे, सामाजिक जीवन के विसैद्धान्तिकीकरण की धारणा क्रियात्मक रूप मे अधिकाधिक असफल होती जा रही है और कभी-कभी तो वह स्वय साम्राज्यवादी सिद्धान्तों को ही अपनी गोली का निशाना बना देती है। यह न तो जनता को क्रियाशील बना सकती है और न उनका सकल विश्वास ही प्राप्त कर सकती है।

इस प्रकार, पुनःसिद्धान्तिकरण के नारों का प्रयोजन उच्च आदर्शों और लक्ष्यों की निरन्तर खोज ही होता है। 'न्यू स्टेटमेण्ट' नामक ब्रिटिश पत्रिका ने 1975 के अन्त मे लिखा था: "1976 का विश्व एक सकट भरे भयानक दौर में प्रवेश कर रहा है। सम्पन्नता की राजनीति इसे अधिक समय तक नही बचा सकती। इसके स्थान पर हमारी पोल अभाव की राजनीति के रूप में अधिकाधिक खुलती जा रही है और इसके गम्भीर दबाव अनिवार्य रूप से राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय दोनो स्तरो पर दिखायी देंगे। हमे यह स्वीकार करना चाहिए कि हम औद्योगिक युग के अन्त की ओर बढ़ते जा रहे हैं। हमें साहस, कल्पनाशीलता एव दृढ संकल्प की आवश्यकता है जिससे कि हम यह सुनिश्चित कर सकें कि हमारा संक्रमण अधिक उपयुक्त समाज में सहज भाव से होगा, आकस्मिक विप्लव द्वारा नही।

"हमे इतिहास के प्रति नयी दृष्टि की आवश्यकता है। हमे इस आश्वासन की आवश्यकता है कि हमारे सिर पर खड़ा भविष्य चुनौतियो से भरा होने पर भी संतोषप्रद होगा।"[1]

तथापि इस प्रकार के नारों में कुछ भी नया नही है। और वे सदा अतीत की तरह भली किन्तु निष्फल आकांक्षाएँ ही बनी रहेंगी, इसमें कोई संदेह नही है। बूर्ज्वा सिद्धान्तकार पूँजीवाद के समर्थन के नये विविध रूपों के अतिरिक्त नया

---

1. न्यू स्टेट्समैन, खंड 90, सं० 2336, दिसंबर 26, 1975, पृ० 809,

विचार देने मे असमर्थ है।

सतही तौर पर यह देखा जा सकता है कि एक सिद्धान्त के स्थान पर दूसरा रखा जा रहा है। लेकिन वास्तव में, विचारधारा (सिद्धान्त) की भूमिका को ही अस्वीकार करना (विसैद्धान्तिकीकरण) और इसके महत्व को स्वीकार करना (पुनः सैद्धान्तिकीकरण) कम्युनिज़्म विरोध के ही दो पक्ष हैं। दोनों ही के प्रयासों का लक्ष्य है कम्युनिस्ट विचारधारा के विरुद्ध कठोर संघर्ष के लिए, मज़दूर वर्ग की विचारधारा का विरोध करने वाले वैचारिक मतों के प्रसार और प्रचार के लिए, वर्ग-संघर्ष और सामाजिक क्रांति से संबंधित मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं के विरोध के लिए जनता पर वैचारिक प्रभाव डालने के समस्त साधनों को संयुक्त करना। यदि हम 1960-1970 के बीच पूँजीवादी पंडितों द्वारा आविष्कृत लोक-प्रचलित वैचारिक सिद्धान्तो की परीक्षा करें तो हम आसानी से इस तथ्य को देख सकते हैं।

राष्ट्रवाद पर दाव

कम्युनिज़्म के 'विशेषज्ञों' में एक अमरीकी विद्वान् एच० गोर्डन स्किलिंग की अति विशिष्ट अनुशंसा के अनुसार 'कम्युनिज़्म के सम्बन्ध मे हमारा रवैया कुशलता-पूर्ण और संयत होना चाहिए। शोर भरे प्रचार और हस्तक्षेप के खतरे से बचते हुए तथा कम्युनिस्ट समुदाय के भीतर **राष्ट्रीय कम्युनिज़्म के शांतिपूर्ण विकास को प्रोत्साहित** करने के लिए।

—(ज़ोर हमारा—वी० के०)[1]

जर्मन मार्क्सवादी गुंथर रोज़ का विचार था : "यूरोप के समाजवादी देशों के विरुद्ध 'सैद्धान्तिक आक्रमण' का कार्यनीतिक लक्ष्य विचारधारा के क्षेत्र में परि-वर्तनों को तीव्र करना है जो, समरूपता के सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या मे प्रावि-धिक क्रांति के कारण स्वतः उत्पन्न हो रहे हैं और उसको विसैद्धान्तिकीकरण की वांछित दिशा मे ले जा रहे हैं···ये इस विचार को मन में जमा देने का प्रयास कर रहे हैं कि समाजवाद का पूँजीवाद की दिशा मे तथाकथित परिवर्तन प्रावि-धिक क्रांति की वस्तुगत प्रक्रिया है और इसे प्रोत्साहित करना चाहिए और रोकने के बजाय समर्थन करना चाहिए······(समाजवादी देशों की—वी० के०) आंतरिक सहृदयता के लिए किये गये प्रयत्नों का परिणाम यह होगा कि इनकी विदेश नीति राष्ट्रवादी लक्षणों एवं प्रवृत्तियों की अपील के रूप मे पूर्ण बन

---

1. एच० गोर्डन स्किलिंग, कम्युनिज़्म नेशनल एंड इंटरनेशनल, टोरंटो, 1964, पृ० 161

जायगी ।[1]

यह पिछला मुद्दा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि कम्युनिस्ट आन्दोलन के बुनियादी सिद्धान्त—सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का ही मूलोच्छेद करता है। लियोनिद ब्रेझनेव ने कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अन्तर्राष्ट्रीय बैठक में कहा था : साम्राज्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा-एकता की शक्ति से सुपरिचित है। "इसीलिए वे समाजवादी शक्तियों, क्रान्तिकारी आन्दोलन से सघर्ष करते हुए राष्ट्रवाद पर भरोसा करते है। वे आशा करते है कि इसके जरिये कम्युनिस्ट आदोलन को बारहबाँट कर देंगे, क्रांतिकारी दस्तो को एक-दूसरे के विरुद्ध खडा कर देंगे।[2]"

बूर्ज्वा राष्ट्रवाद अपने नाना रूपों मे—जैसे महाशक्तियो का अध राष्ट्रवाद, स्थानीय राष्ट्रवाद, नस्लवाद, सार्वदेशिकतावाद आदि—सदा ही प्रतिगामिता का हथियार रहा है। जैसा कि लेनिन ने लिखा था : "पूंजीवादी राष्ट्रवाद और सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद ये दोनो पूरे पूंजीवादी विश्व मे दो बड़े वर्गों के शिविरो के परस्पर कट्टर विरोधी नारे है जो राष्ट्रीय प्रश्न पर दो नीतियो को (या दो विश्व दृष्टिकोणों को) व्यक्त करते हैं।[3] हाल के वर्षो मे साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद विशेष रूप से राष्ट्रवाद को भड़काने के अपने प्रयासो में विशेष रूप से क्रियाशील है जिससे कि इसे कम्युनिज्म विरोध एवं सोवियत विरोध की सम्पूर्ण प्रणाली का अंग बना दिया जाय। विसैद्धान्तिकीकरण और पूंजीवादी राष्ट्रवाद की धारणा को साथ-साथ सजाने के प्रयास इसके साक्ष्य है।

बूर्ज्वा पण्डित राष्ट्रवाद को एक ऐसी समस्या समझते है जिसके सम्बन्ध मे वर्गीय, सामाजिक-आर्थिक या ऐतिहासिक भौतिकवादी रवैया अंगीकार नही किया जा सकता। वे समस्त सामाजिक-आर्थिक कसौटियों को या तो रद्दी की टोकरी मे डाल देते हैं या उनको विकृत कर देते है। वे देशभक्ति के मुकाबले अन्तर्राष्ट्रवाद का विरोध करते है और राष्ट्रीय स्वायत्तता के मुकाबले जनवादी केन्द्रीयता का; अन्तर्राष्ट्रवाद के मुकावले सार्वदेशिकतावाद पर अधिक ध्यान देते हैं, देशभक्ति को राष्ट्रवाद के रूप में प्रस्तुत कर देते है आदि। यह सिद्ध करने के लिए कि राष्ट्रीय विरोध शाश्वत और असमाधेय है, वे विशुद्ध रूप से मनोवैज्ञानिक कारण प्रस्तुत करते है जो मानव स्वभाव के अन्तर्निहित अहंकार से अतर्क्य प्रवृत्तियों से या अज्ञेय विशिष्ट परम्पराओ से उद्‌भूत होते हैं, वह तर्क करते हैं कि न तो उनका सामाजिक

---

1. देखें—फारेन मार्क्सिस्ट्स इन द स्ट्रगल अगेंस्ट बूर्ज्वा आइडियालाजी, मास्को 1971, पृ० 206 (रूसी मे)
2. इटर्नेशनल मीटिंग आफ कम्युनिस्ट एंड वर्कर्स पार्टीज, मास्को, 1969, प्राग, 1969 पृ० 74
3. वी०आई० लेनिन, "क्रिटिकल रिमार्क्स ऑन दि नेशनल क्वेश्चन" कलेक्टिड वर्क्स खड 20 पृ० 26

वि श्लेषण संभव है, और न नियंत्रण।

पूंजीवादी प्रचार राष्ट्रीयताओं के सवाल को विसैद्धान्तिकीकरण के चौखटे मे क्यों रखता है इसको भली-भांति स्पष्ट किया जा सकता है। क्योंकि इससे उनको मार्क्सवाद-लेनिनवाद के उन बुनियादी रूप से नये लक्षणों पर आक्रमण करने के लिए सुविधाजनक स्थिति प्राप्त होती है जिन्हें कि उसने आधुनिक युग की सर्वाधिक ज्वलंत समस्या के विश्लेपण और समाधान प्रस्तुत करने के लिए सम्मिलित किया है।

जैसा कि जीवन स्वयं प्रदर्शित करता है राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय, सामान्य और विशेष के युग्म, किसी भी प्रकार अपना महत्व नही खोते लेकिन इसके विपरीत अनेक नये रग ग्रहण करते हैं, जैसे-जैसे मानव समाज पूंजीवाद से समाजवाद की ओर अग्रसर होता है। ये प्रश्न मजदूर वर्ग और मुक्ति आंदोलन तथा जनवादी आदोलनो की प्रत्येक धारा में विभिन्न समुदायो मे व्यावहारिक सघर्ष की तात्कालिक प्रमुखता प्राप्त कर लेते हैं। वास्तव में इससे भिन्न कुछ हो भी नही सकता जब हम इस तथ्य पर ध्यान देते है कि पूंजीवादी व्यवस्था में पहले से ही भारी मात्रा मे दाहक सामग्री विद्यमान है तथा देशो और जनगण के बीच सामाजिक राजनीतिक स्तर पर मतभेद विद्यमान हैं और हर मामला अपना विशिष्ट राष्ट्रीय रूप प्रस्तुत करता है।

इसके फलस्वरूप राष्ट्रीयताओं के प्रश्न के समाधान की प्रक्रिया एक ओर तो जनगण के क्रान्तिकारी अनुभव से समृद्ध होती है और दूसरी ओर प्रधान रूप से निम्न पूंजीवादी प्रकृति की, प्रायः गंभीर-आत्मगत गलतियों और विकृतियों को पैदा करती है।

अतीत में, ऐतिहासिक युगो के समस्त दौर में, राष्ट्रीयताओं का प्रश्न सामान्य जनतान्त्रिक सुधारो के ढांचे के आगे नही बढ़ पाया। सर्वथा स्वाभाविक रूप से इन सीमाओं के अन्तर्गत बहुत-सी धारणाएँ पूंजीवादी जनतांत्रिक स्थिति की आवश्यकताओं से घिरी थी जो मजदूर जनता मे उभर आयी या उनमे उत्पन्न कर दी गयी।

वर्तमान युग में, राष्ट्रीयताओं के प्रश्न का समाधान अपने द्वन्द्वात्मक विकास मे पुरानी सीमाओं से बहुत आगे पहुँच गया है। समग्र समस्या के अंग के रूप में मानव समाज के उस आंदोलन की सामान्य प्रक्रिया मे विशिष्ट स्थान है जो अपने संक्रमणकालीन एवं मध्यवर्ती रूपो की समस्त भिन्नताओं में पूंजीवाद से समाजवाद के लिए चलाया जा रहा है।

राष्ट्रीयताओं की समस्या का नया सारतत्व इसके संबध में नये रुख की आवश्यकता प्रदर्शित करता है, जहाँ एक ओर मेहनतकश जनता का अग्रणी भाग है जो कम्युनिस्टों का अनुगामी है वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के निर्देशो के द्वारा प्रवर्तित परि-

वर्तनों का अनुसरण करता है, दूसरा भाग, जो अब तक पूंजीवादी निम्न पूंजीवादी परम्पराओं और विचारो से प्रतिबद्ध है वह साम्राज्यवादियों और उनकी सशोधन-वादी कठपुतलियों के जाल मे फँसा है। राष्ट्रीयताओं का प्रश्न समाजवाद और पूंजीवाद के बीच तीव्र वैचारिक सघर्ष का क्षेत्र है, पूंजीवादी और सशोधनवादी विचारधारा के विरुद्ध मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सघर्ष का क्षेत्र में है।

राष्ट्रीयताओं की समस्या की जटिलता पर अटकलबाजी करते हुए पूंजीवादी और संशोधनवादी सिद्धान्तकार जल्दी से कह देते है कि इसका समाधान कम्युनिस्ट आदोलन से नही किया जा सकता। सभी तरह के राजनीति वैज्ञानिक दावा करते हैं कि आत्मगत भूलें या कतिपय राजनीतिक व्यक्तियों सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद से अलग हो जाना स्वाभाविक हैं और सामाजिक विकास के अनिवार्य लक्षण हैं। इससे वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इस क्षेत्र मे कम्युनिस्टों के सैद्धान्तिक नियम अमान्य है। जहाँ तक कि राष्ट्रीयताओ के प्रश्न के समाधान का समाजवाद के व्यावहारिक अनुभव की बात है उसकी आमतौर से उपेक्षा कर दी जाती है।

इस सम्बन्ध में, साम्राज्यवाद के तथा आधुनिक सशोधनवाद के सिद्धान्तकार जहाँ तक संभव हो सकता है इस समस्या के विसिद्धान्तीकरण के लिए मुख्य रूप से प्रयत्नशील रहते है। वे मजदूर वर्ग को इस मुख्य मार्क्सवादी-लेनिनवादी निष्कर्ष से पृथक् करने का प्रयास करते हैं कि राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न, राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का, राष्ट्रीय स्वाधीनता को मजबूत करने और विकसित करने का प्रश्न है यह कोई अलग-थलग समस्या नही है, अपितु विश्वव्यापी साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष का अभिन्न अंग है। जैसा कि लेनिन ने प्रस्तुत किया : आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ जनतत्र की पृथक् माँगें कोई निरपेक्ष माँगे नही हैं अपितु सामान्य जनतांत्रिक विश्व आदोलन के (अब सामान्य समाजवादी आंदोलन के) छोटे भाग है।[1] राष्ट्रीय-ताओं की समस्या का सुसंगत एवं व्यापक समाधान अर्थात् राष्ट्रीय भेदभाव की पूर्णतया समाप्ति और राष्ट्रीयताओं की पूर्ण समानता केवल मजदूर वर्ग के नेतृत्व के अन्तर्गत ही सभव है। यह परिणाम समस्त देशों के मजदूर वर्ग की अन्तर्राष्ट्रीय एकता के फलस्वरूप ही प्राप्त किये जा सकते हैं। जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध सम-झौताहीन संघर्ष मे ही उपलब्ध की जा सकती है।

यह इन स्थापनाओं के विरुद्ध है कि साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार लड रहे है। और यह इस कारण से ही है कि पूंजीवादी राष्ट्रवाद अधिकाधिक सोवियतवाद विरोधियो के साथ हाथ-में-हाथ मिलाकर चलता है और सोवियत विरोधी उकसावो ने राष्ट्रवादी बाना धारण कर रखा है। वास्तव में

---

1. वी० आई० लेनिन—"द डिस्कशन ऑन द सैल्फ डिटर्मिनेशन सम्ड अप" कलक्टिड वर्क्स खड 22, पृ० 34।

समाजवाद के भीतरघात की कोशिश के लिए इस हथियार का उपयोग किया जाता है।

किन्तु साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों को चाहे जितना उकसाये, चाहे जितना ऊँचे से इसके सिद्धान्तकार मुक्ति आंदोलनों की अलग-अलग इकाइयों की 'स्वतंत्रता' के सम्बन्ध में या 'राष्ट्रीय कम्युनिज्म' के विषय में शोर मचाये यह सब किसी को भ्रम में नहीं डाल सकता। प्रतिगामियों ने सदा बूर्ज्वा राष्ट्रवाद का उपयोग किया है—और इन दिनों पहले से कहीं अधिक—मुख्य वर्ग हित के साधन के रूप में और समाजवादी समुदाय को, विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन को और सोवियत संघ के प्रभाव को कमजोर करने के लिए इसका प्रयोग किया है।

अध्याय : 4

प्राविधिक नियतिवाद के कल्पना लोक

मैं अवश्य बरबाद हो गया होता यदि स्वयं मेरे हाथों मे शक्ति नहीं होती। मैंने अपनी ही चोटी पकड़ के स्वयं को और अपने घोड़े को जिसे मैं अपनी जाँघों के बीच जोर से पकड़े हुए था, दलदल से बाहर निकाला।

—जी० बर्गर बैरॉन : मन्छासेन की 'मनोरंजक साहसिक यात्राएँ'

सामाजिक विषयों के सम्बन्ध में प्राविधिक रवैया

कम्युनिज्म-विरोध के लिए नाना प्रकार के सर्वाधिक प्रचलित सिद्धान्तों का निर्माण 1960 एवं 1970 के वर्षों मे 'औद्योगिकतावाद' अथवा 'प्राविधिक नियतिवाद' के सुपरिचित सिद्धान्तों के इर्द-गिर्द किया गया। मुख्य रूप से इसका अभिप्राय है कि पूंजीवादी व्यवस्था में सामाजिक और अन्य सभी विषयों पर प्राविधिक और औद्योगिक विषयों का प्राधान्य रहेगा। अन्तर्निहित स्थापना यह है कि आधुनिक पूंजीवाद का और फलस्वरूप सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं का विकास—पूंजीवाद के मौलिक नवीकरण का परिणाम होगा। इसका अभिप्राय समझा गया है कि यह मानव-समाज को समाजवाद को लाँघकर एकमात्र सार्वभौम औद्योगिक समाज तक और तत्पश्चात् 'औद्योगिकोत्तर' समाज की ओर ले जाएगा जो सिद्धान्त रूप से वर्ग विरोध एवं सामाजिक अन्तर्विरोधों से पूर्णतया मुक्त होगा।

इसकी पुष्टि में हर क्षमतावान पश्चिमी पण्डित अनेक मिथ्या वैज्ञानिक युक्तियाँ देता है जिनमें वह मार्क्सवाद के खण्डन का और उसको पीछे छोड़ देने का दावा किया करता है। इसमें वे मुख्यतया वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति के विविध पहलुओं को आधार बनाते है। पूरी तरह विसैद्धान्तिकीकरण के सामान्य विचार की भावना में भरे हुए वे कहते हैं कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति सामाजिक क्रान्ति के कार्यों को पूरा कर रही है और इसलिए वह समाजवाद को

रद्द कर देती है। वे प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन करने वालों तक, मजदूरों तक विज्ञान एवं प्रविधि के पहुँचाए जाने का विरोध करते हैं और वर्ग-संघर्ष को अनावश्यक तथा अव्यवहार्य घोषित करते है और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षाओं को असामयिक (अथवा समय सापेक्ष) बताते हैं।

ये प्रयत्न अकस्मात् नही अपितु सुविचारित रूप से किये जाते रहे और हाल के वर्षों में इन्हे तेज किया गया, जैसे-जैसे पूँजी के प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष बढ़ता गया और साथ ही आधुनिक पूंजीवाद को अपने ढांचे के भीतर ही नये तीखे संघर्ष की प्रक्रियाओ की गंभीर परीक्षाओं का निरन्तर सामना करना पड़ा। क्योंकि पूंजीवाद अपनी ऐतिहासिक पहलकदमी खो चुका था, इसके सिद्धान्तकारों के लिए एक विशेष स्थिति, जिसमें कि सैद्धातिक संघर्ष में विजय की स्थिति में अधिक समय तक वे बने नही रह सकते थे, उत्पन्न हो गयी थी। विवश होकर उन्हें उस क्षेत्र में संघर्ष करना पड़ा जिसमें पूँजीवादी समाज का भविष्य किसी भी प्रकार उज्ज्वल नही कहा जा सकता, आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के परीक्षा क्षेत्र मे तथा उसकी अनुरूप व्याख्याओं मे। यह पूंजीवाद के लिए सर्वाधिक घातक स्थिति है क्योंकि वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादक शक्तियों के विकास मे शक्तिशाली विस्फोट और साथ-ही-साथ गंभीर सामाजिक प्रक्रिया पूंजीवादी समाज के आधारों को ही अनिवार्य रूप से ध्वस्त कर देगी।

मार्क्स की एक स्थापना मे कहा गया है: "नयी उत्पादन शक्तियों को ग्रहण करने के साथ ही मनुष्य अपने उत्पादन की पद्धति बदल देता है और उत्पादन की पद्धति परिवर्तित होते ही वे समस्त उत्पादन सम्बन्ध जो उस विशिष्ट उत्पादन पद्धति के अनुरूप थे परिवर्तित हो जाते है।"[1] यदि हम इस स्थापना को वर्तमान युग पर लागू करते है तो इसका केवल एक ही अर्थ हो सकता है कि हमारे युग की वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति पूंजीवादी सम्बन्धों को समाजवादी मे परिवर्तित करने वाला मुख्य कारक हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट और वर्कर्स पार्टियों की (1960 की) बैठक के दस्तावेज मे लिखा गया है: कि "वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति मानव समाज को प्रकृतिक पुनर्निमर्णा की, असीम मात्रा मे भौतिक संपदा उत्पन्न करने की और मनुष्य की रचनात्मक क्षमताओं को बहुगुणित करने की अभूतपूर्व संभावनाएँ प्रदान करती है।" और आगे कहा गया है कि "पूंजीवाद वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति का उपयोग अपने मुनाफ़े को बढ़ाने तथा मेहनतकश जनता का शोषण बढ़ाने के लिए कर रहा है—न सिर्फ दीर्घकाल से चले आ रहे पूँजीवाद के अन्त-

1. कार्लमार्क्स एण्ड फ्रेडरिक एगेल्स, सिलेक्टिड कारस्पोडेंस मास्को 1975, पृ० 31

विरोध तेज हो गये है, बल्कि कुछ नये अन्तर्विरोध भी उठ खड़े हुए है।[1] यह कहने की आवश्यकता नही है कि उत्पादन की सामाजिक प्रकृति और इसके नियंत्रण की राज्य-एकाधिकार की प्रकृति के बीच अन्तर्विरोध सत्ता मे बने रहते हैं (काम करते रहते है)। इसके साथ-साथ केवल श्रम और पूँजी के बीच संघर्ष का बढ़ना ही नही जारी रहता अपितु वित्तीय अल्पतंत्र और राष्ट्रो की विशाल बहुसंख्या के बीच विरोध गहरा होता जाता है। इन निष्कर्षों की पुष्टि सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 24वी (1971) तथा 25वी (1976) कांग्रेसों ने की। आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति साथ-ही-साथ (एक ही समय मे) पूंजीवादी और समाजवादी देशो मे हो रही है किन्तु मेहनतकश जनता के लिए प्रत्येक व्यवस्था मे भिन्न प्रकार के परिणाम दे रही है और परस्पर विरोधी सामाजिक परिणाम प्रदर्शित कर रही है। समाजवादी समुदाय के देशों में यह प्रत्यक्ष रूप से मेहनतकश जनता के हितों की सेवा कर रही है तथा कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार के निर्माण सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण बन गयी है। पूंजीवादी राज्यो में, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति का उपयोग सर्वोपरि इजारेदारियो के प्रत्यक्ष लाभ के लिए किया जाता है, जो निस्संदेह विज्ञान और प्रविधि की उपलब्धियों का उपयोग मेहनतकश जनता की भलाई के लिए नही अपितु अपने निजी मुनाफो को बढाने के लिए करती हैं। परिणामस्वरूप, इजारेदार पूंजी की सम्पदा बढ़ती जाती है जबकि मेहनतकश जनता की सामाजिक आवश्यकताएँ अतृप्त ही बनी रहती है। इससे पूंजीवादी समाज मे वर्ग-संघर्ष और तीव्र होता है और अंतिम परिणति मे मेहनतकश जनता को समाजवादी क्रान्ति तक ले जाता है। इस प्रकार आधुनिक उत्पादक शक्तियो के विकास में क्रान्तिकारी छलांग विश्वव्यापी रूप मे उत्पादन की कम्युनिस्ट पद्धति के भौतिक आधार के निर्माण के अतिरिक्त कुछ नही है।

लेकिन स्वभावतः पूंजीवादी विश्व मे विद्यमान शक्तियाँ इस प्रकार की घटनाओ के सम्बन्ध मे निश्चिन्त नही रह सकती। उनकी सेवा मे लगे सिद्धान्त-शास्त्री अनेक छद्म-वैज्ञानिक धारणाओ द्वारा इस संभावना का विरोध करने का प्रयत्न करते है। निस्संदेह, इस सबके पीछे साम्राज्यवाद तथा समाजवादी क्रान्ति के साथ इसकी ऐतिहासिक प्रक्रिया की व्यवस्था के सम्बन्ध में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षाओं के खण्डन का विचार रहता है।

पूंजीवादी सिद्धान्त शास्त्रियो के चित्रण के अनुसार वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति का रूप या तो मसीही होता है अथवा राक्षसी। उनका कहना है कि मनुष्य स्वयं अपनी मुक्ति सुनिश्चित कर सकता है।

—या तो स्वयं को विज्ञान और प्रविधि के विकास के लिए (विशेष रूप से

1. इंटरनेशनल मीटिंग ऑफ कम्युनिस्ट एंड वर्कर्स पार्टीज, मास्को, 1969 पृ० 19

रोस्तोव, गालब्रैथ, वैल, ब्रजेज़िन्स्की की एवं टॉफलर द्वारा प्रस्तावित 'औद्योगिक' अथवा 'औद्योगिकोत्तर समाज' के सिद्धान्त मे प्राविधिक प्रबन्धक के रूप मे कार्यरत व्यक्तियों के रूप मे) अपने को अधीनस्थ बनाने की कीमत पर।

—अथवा विज्ञान और प्रविधि के विकास को कृत्रिम रूप से रोक कर (जैसे रोम के क्लब के सदस्यों की भाँति)

—या अन्ततः पूर्णतया भिन्न मूल्यों के मानदण्ड की खोज करके और 'जीवन की गुणवत्ता' सुधार कर।

इन सिद्धान्तों की सीमाएँ परस्पर इतनी निकट है और कभी-कभी परस्पर गुथ जाती हैं। साथ ही बूर्ज्वा विचार के सामान्य विकास के दृष्टिकोण से ये भिन्न विकास का मार्ग ग्रहण कर लेती हैं पूँजीवादी विश्व में और विशेष रूप से इसके विकास की संभावना के संबंध में स्थिति के अत्यधिक आशावादी दृष्टिकोण से अतिनिराशावादी दृष्टिकोण के मूल्याकनों तक। यह विकास लाक्षणिक और शिक्षाप्रद है।

1960 मे पूँजीवाद के विकास के अपने मूल्याकन मे बूर्ज्वा पण्डितो मे आशावादी धारा प्रधान थी। विकसित पूँजीवादी देशो में अनुकूल आर्थिक स्थिति बन रही थी जिसमे द्वितीय विश्व युद्ध के दसियों वर्ष बाद इस प्रकार का उचित वातावरण बनता दीख रहा था।

वर्तमान शताब्दी में अन्य किसी भी समय से अधिक मात्रा मे स्थिर पूँजी का पुनर्नवीकरण, श्रम शक्ति के विस्तार के उद्देश्य से वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के उपयोग और मेहनतकश जनता के शोषण के नये रूपों के विकास इसी प्रकार 'तीसरी दुनिया' के देशों को लूटने के नवऔपनिवेशिक तरीकों और व्यापक 'राज्य-इजारेदारी, आर्थिकता के विनियमन आदि इन सबने कई वर्षों तक विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उच्च रूप से औद्योगिकीकृत क्षेत्र के विकास को उल्लेखनीय रूप से मजबूत किया है। समाजवाद के साथ प्रतियोगिता ने पूँजीवादी देशों के सत्ताधारी अर्थतंत्र को पूँजीवादी समाज के सभी संभव संचयों को और अधिक समेकित करने को मजबूर किया। फलस्वरूप पूँजीवादी विश्व के कुछ भागो ने उत्पादन कौशल मे कुछ वृद्धि प्राप्त की, आर्थिक सुधार, और जीवन-स्तर में एक निश्चित वृद्धि प्राप्त की।

साम्राज्यवादी सिद्धान्तकारो ने दूरगामी मनोरम परिणाम निकालने में जल्दबाजी की। वे इससे अधिक या कम की घोषणा करने को ही तैयार नही हुए कि पूँजीवाद का नया युग आरम्भ हो गया है। उनका कहना था कि मार्क्सवादियों ने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। पूँजीवाद के आश्चर्यजनक पुनरुत्थान का आधार दुनिया भर मे व्याप्त औद्योगिकीकरण की शक्तिशाली लहर का दिखायी देना ही था। 19वी शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति से इसकी तुलना करते हुए उन्होने दावा

किया कि इसने पूंजीवाद को जीवनदायिनी शक्तियों से भर दिया है। गुणात्मक वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रवेग के फलस्वरूप पूंजीवाद को (लेनिन के सिद्धान्त के विपरीत) और आगे बढ़ने का अवसर मिल गया। अपने दूसरे प्रवाह को प्राप्त कर वह स्पष्ट रूप से इसके दोषों को दूर करने के लिए इस उत्तोलक का उपयोग करते हुए इसे 'सार्वभौम समृद्धि' वाले समाज में क्रमशः विकसित कर रहा था। इस सिद्धान्त के तर्क के अनुसार ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता कि यह पूंजीवाद है।

मोटे तौर से मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत के विरोध के लिए निम्न योजना प्रस्तावित है। दूसरी औद्योगिक क्रांति दुनिया को औद्योगिकीकरण के अदम्य प्रवाह में बहा ले गई है। इस क्रांति ने आधुनिक समाज के समस्त सामाजिक-राजनीतिक भिन्नताओं को और अंतर्विरोधों को वस्तुतः बराबर कर दिया है और स्वतः ही यह मानव समाज को 'जन-उपभोग' की समृद्धि की ओर ले गया है। विभिन्न स्तरों पर इस आश्चर्यप्रद भविष्य का पथ शुरू हो रहा है इसी लिए, औद्योगिकीकरण के विभिन्न प्रारूप प्रस्तुत हो रहे है। बेशक, अंततोगत्वा ये सब 'सार्वभौम समृद्धि' की स्थिति जैसे अकेले समाज की ओर बढ़ेंगे जो संयुक्तराज्य अमरीका में तथाकथित रूप से निर्मित हो चुका है। कुख्यात वैचारिक मतान्धता इस अग्रगामी आंदोलन को रोक ही रही है क्योंकि औद्योगिक विवशताओं (बाध्यताओं) के वेग को न तो सिद्धांतकार ही भलीभांति समझ सकते है न राजनीतिज्ञ ही; अपितु सिद्धांत और राजनीति से पृथक् एवं ऊपर खड़े प्राविधिज्ञ कुलीन ही समझ सकते हैं।

इसके अलावा, औद्योगिकीकरण को पूंजीवाद के समस्त सामाजिक अंतर्विरोधों के समाधान को स्वतः पूर्व निर्धारित शक्ति के रूप मे स्वय प्रेरित शक्ति के रूप में चित्रित किया जाता है। जैसा कि—1960 के आरंभ में औद्योगिकीकरण और उसके परिणाम के संबंध मे पुस्तक लिखने वाले लेखकों ने कहा था—और यह एक विशिष्ट बात है—"दुनिया एक नए युग में, पूर्ण औद्योगिकीकरण के युग मे प्रवेश कर रही है। अब हमारे समय मे कम्युनिज्म का भूत जिसने यूरोप को आतंकित कर रखा था, नही ठहर सकता अपितु इसके बजायनाना रूपों मे औद्योगिकीकरण उभर रहा है जो सारी दुनिया के सामने है। औद्योगिकीकरण का दानव **पुराने और परंपरागत समाज के प्रायः सभी रूपों को परिवर्तित करते हुए** पृथ्वी पर इठला रहा है।" (ज़ोर हमारा—वी० के०)[1]

जहाँ तक 'नये युग' के सारतत्व की बात है विभिन्न लेखकों ने इसे विभिन्न रूप से देखा है : उदाहरण के लिए, कुछ (फ्रांसीसी समाज शास्त्र रेमण्ड आरो) इसे

1. इंडस्ट्रियलिज्म एंड इंडस्ट्रियल मैन, द प्राब्लम्स ऑफ लेबर एंड मैनेजमेंट इन इकोनॉमिक ग्रोथ, क्लार्क केरे, जॉन० टी० डनलप, फ्रेडरिक एच० हार्बिसन एंड चार्ल्स ए० मेयर्स हाइनमेन, लन्दन 1962, पृष्ठ 9, 28

'औद्योगिक समाज' कहते हैं, तथा अन्य (अमरीकी राजनीति वैज्ञानिक डब्ल्यू० डब्ल्यू० रोस्तोव) इसे 'सामूहिक जन उपभोग की स्थिति' कहते हैं, और कुछ दूसरे (फ्रांसीसी सशोधनवादी आर० गैरॉदी) इसे समाजवाद कहते हैं। लेकिन यह कहने मे ये सब एकमत है कि वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के प्रभाव से पूंजीवाद की प्रकृति परिवर्तित हो गई है और इसके वर्ग अंतर्विरोध समाप्त हो गए हैं। समाजवाद भी बदल रहा है, प्राथमिक रूप से यह पूंजीवाद की दिशा मे बदल रहा है। और इसी क्रम में दोनों सामाजिक व्याख्याएँ एक 'औद्योगिक समाज' के अंतर्गत एकाकार हो जाएंगी।

सुधारने, परिपूर्ण बनाने अथवा 'यथार्थ रूप से' इसकी व्याख्या करने के बहाने, मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सैद्धातिक रूप से उन्मूलन के लिए उपकरण के रूप में प्रयुक्त इन प्रस्थापनाओं (आधार वाक्यों) से, कुकरमुत्ते की तरह बहुत से सिद्धांत पैदा हो गए हैं—जो सार रूप मे कम्युनिज्म विरोधी हैं तथा जो विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति में वैज्ञानिक कम्युनिज्म की जीवंतता को एकमत से नकारते है।

आधुनिक पूंजीवाद के सिद्धांतकार सामाजिक राजनीतिक सरचनाओ के नियमाधीन रूपांतरणों से संबंधित मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं की बुनियादों की ही काट कर देना चाहते हैं। यही उनके आक्रमण का मुख्य निशाना है। और सामाजिक संबंधों के विकास में उत्पादक शक्तियों की यही भूमिका है कि वे उनमें से अधिकांश को विसैद्धातिकीकरण अथवा 'आर्थिक भौतिकवाद' की स्थितियों से—भ्रष्ट (विकृत) कर देते हैं। सार रूप में, वे सामाजिक प्रक्रिया की समस्त जटिलता को उत्पादन प्राविधिकता के कारकों और उपभोग के स्तर तक नीचे ले आते है। वे उत्पादक-शक्तियों (और जिनमे से वे मनमाने ढंग से मुख्य तत्व को—स्वयं उत्पादकों को अर्थात् मजदूरो को, मेहनतकश लोगों को अलग कर देते हैं) तथा उत्पादन संबधों के बीच द्वंद्वात्मक संबंध को धृष्टतापूर्वक छिन्न-भिन्न कर देते हैं। वे उत्पादन की शक्तियो और संबधों की एकता को कृत्रिम रूप से पृथक् कर देते है और सामाजिक विकास को अलग कर देते हैं, जिसे कि उन्होंने सीधे-सीधे प्राविधिक प्रगति के साथ जोड़कर उसके वर्ग-सार से रिक्त कर दिया है।

एक सीमा तक इस प्राविधिक धारा के सभी प्रतिनिधियो का, सबसे बढ़कर रोस्तोव, गैलब्रेथ, बेल, टॉफ़्लर जैसे अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिकों का, रवैया एक सा है। 1960 से 1970 के बीच जिन सिद्धातों को लेकर वे सामने आए उनका विस्तृत आलोचनात्मक विश्लेषण अनेक सोवियत लेखको की कृतियों मे पाया जाता है जिनमे सोवियत विद्वानो की तीन भागों वाली संकलित ग्रंथावली भी सम्मिलित है जिसका शीर्षक है—द स्ट्रगल ऑफ आइडियाज इन द मॉडर्न

वर्ल्ड ("वर्तमान विश्व में विचारों का संघर्ष"[1]) उन्होंने इनकी समीक्षा "विचार-धारा और राजनीति" (आइडियो ' ' एंड पॉलिटिक्स)[2] मे भी की है पर भिन्न दृष्टिकोण से।

तथापि, इन पर एक और दृष्टि मे (प्राय: उन्ही लेखको की नई कृतियों और वक्तव्यो को ध्यान में रखते हुए), हाल के वर्षों मे पूँजीवादी वर्ग के सामाजिक विचारों के विकास की सामान्य धारा पर विचार करना भी उपयुक्त होगा।

'औद्योगिक समाज'—निराधार आशाएँ

डब्ल्यू० डब्ल्यू० रोस्तोव को औद्योगिक समाज के सिद्धांत का जनक माना जाता है। सही तो यह है कि उसने इस 'जीवन रक्षक' विचार का आविष्कार नही किया। इसकी कतिपय प्रस्थापनाएँ बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के और 19वी सदी की उत्तरार्ध के पूँजीवादी और सुधारवादी लेखकों की कृतियो मेदेखी जा सकती है। जैसे : हर्बर्ट स्पेंसर, ऑगस्ट काम्टे, अलेक्सी डि तॉकुविले, मैक्स वेबर, रूडोल्फ हिल्फर्डिंग, जॉन कीन्स, जेम्स बर्नहम और अन्य। लेकिन औद्योगिक समाज के सिद्धांत को अंतिम रूप रोस्टोव की कृति "आर्थिक उन्नति की अवस्थाएँ : गैर कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र (द स्टेजेज़ ऑफ इकोनोमिक ग्रोथ ए नान् कम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो) से प्राप्त हुआ जो पहले-पहल 1960 मे प्रकाशित हुई। महत्वपूर्ण बात क्या है? वह यह है कि उस काल में इसे पूँजीवादी प्रचारकों ने कम्युनिज्म विरोध के वैचारिक उपकरणों मे प्रमुखता दी। निस्सदेह यह भी अकारण नही था कि रोस्तोव ने अपनी कृति का उप शीर्षक दंभपूर्ण तरीके से रखा—एक गैर कम्युनिस्ट घोषणा पत्र। उसने स्पष्ट रूप से इस बात पर बल दिया कि वर्तमान स्थितियों में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धात का स्थान सामाजिक विकास के एक 'अत्याधुनिक' सिद्धांत ने ले लिया है।

रोस्तोव ने सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं के संबंध में मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं के मुकाबले मानव समाज के विकास की अपनी योजना प्रस्तुत की। उनका कहना है: सभी समाजों की पहचान उनके आर्थिक आयामो से जो पाँचो श्रेणियों मे से किसी मे भी विद्यमान रहते है, की जा सकती है : परंपरागत समाज

---

1. द स्ट्रगल ऑफ आइडियाज इन द मॉडर्न वर्ल्ड (तीन जिल्दो में), मॉडर्न कैपिटलिज्म: कट्राडिक्शन्स एड डॉक्ट्रिन्स (अडर द जनरल एडीटरशिप ऑफ एफ० कौसोन्तिनोव) मास्को, 1976 (रूसी संस्करण)
2 वी० कोर्तुनोव 'आइडियालोजी एन्ड पॉलिटिक्स' द स्ट्रगल ऑफ़ आइडियाज एन्ड इवोल्यूशन ऑफ एन्टी कम्युनिस्ट आइडियालॉजिकल कासेप्ट्स इन् 1950-1970 मास्को, 1974 (रूसी मे)

प्रस्थान के लिए पूर्व स्थितियाँ (वह इसको समाज का संक्रमण कालीन युग भी कहते हैं—वी० के०), प्रस्थान, परिपक्वता की ओर परिचलन और उच्च जन उपभोग का युग।"[1] ये स्थापनाएँ अपेक्षाकृत सुपरिचित बन गई हैं, जनता के मस्तिष्कों में सचेष्टता के साथ बैठाई गई हैं तथा विभिन्न पाठ्य-पुस्तकों में और अन्यत्र लिखी गई हैं।

लेकिन यहाँ खास बात क्या है: रोस्तोव के मत के अनुसार, प्रत्येक वस्तु "उच्च सामूहिक उपभोग के युग" में परिणत हो जाती है, जहाँ कि समस्त उच्च रूप से विकसित औद्योगिक समाज क्रमशः एक में विलीन हो जाते है। रोस्तोव कहते हैं: यह एक दौर है जिससे अमरीकियों का उदय आरंभ हुआ है, जिसकी अस्पष्ट प्रसन्नताओं की पश्चिमी यूरोप और जापान उत्साहपूर्वक पड़ताल आरंभ कर रहे हैं और जिसके साथ सोवियत समाज असहज प्रेम प्रदर्शन में व्यस्त है।[2]

इस प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका, पश्चिमी यूरोप तथा जापान के भविष्य की रोस्तोव को जरा भी चिंता नहीं है। उन सबके भंडार में पृथ्वी पर एक स्वर्ग रखा है, उच्च सामूहिक उपभोग के समाज के रूप में। बेशक, इस प्रकार, वह सोवियत संघ के संबंध में चिंता अनुभव करते हैं जहाँ कि उन्हें सोवियत समाज के लिए सामूहिक संपन्नता के राज्य तक पहुँचने में ही बाधा दिखाई देती है। वह बाधा है कम्युनिज्म। एक ओर, रोस्तोव तर्क करते हैं: इस समय सोवियत संघ उच्च सामूहिक उपभोग के युग के लिए प्राविधिक रूप से उद्यत समाज है। यह संरचनात्मक रूप में अपनी श्रम शक्ति की शिक्षा और कौशल की शब्दावली में उद्यत है'''लेकिन दूसरी ओर, उनका मानना है कि जो चीजें पूँजीवादी देशों में सामूहिक उपभोग की ओर ले जा रही हैं उनका समाजवादी जगत् में उचित उपयोग नहीं किया जा रहा। वह चिंतापूर्वक कहते हैं कि इसका कारण है कि कम्युनिज्म समाज का ऐसा रूप है जो "वृद्धि की समस्या के केवल आपूर्ति के पक्ष के लिए ही उपयुक्त है लेकिन उपभोग पक्ष की प्रगति के लिए नहीं।"[3] इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के युग में सोवियत संघ विकास में अन्य राज्यों से न पिछड़ जाय इसलिए उसे अपनी विचारधारा और राजनीतिक संगठन से मुक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

दूसरे शब्दों में, विकास की प्रक्रिया द्वारा निर्धारित प्राविधिक प्रगति के 'विशिष्ट आदेश' पूरी विश्वसनीयता के साथ पूँजीवाद में ही कार्य करते है, जो

1. डब्ल्यू० डब्ल्यू० रोस्तोव, द स्टेजेज आफ इकोनॉमिक ग्रोथ, ए नान-कम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो, कैंब्रिज, 1967, पृष्ठ 4
2. वही, पृष्ठ 10
3. वही, पृष्ठ 133

स्वभावतः ही, इसके अनुकूल परिणामों को ग्रहण करने के लिएतैयार रहती हैं। जहाँ तक कुछ समाजवादी देशो की बात है यद्यपि उन्होने औद्योगिक विकास का ऊँचा स्तर प्राप्त कर लिया है, पर वह उनके लिए काफी नही है। प्राविधिक आधुनिकता की मुख्य धारा मे सम्मिलित होने के लिए उन्हें राज्य इजारेदारी पूँजीवाद के कुछ नियम अनिवार्यतः स्वीकार करने होगे।

इस प्रकार रोस्तोव के निष्कर्षों में पूँजीवाद का उचित समर्थन, एक ऐसे समय में जबकि प्राविधिक प्रगति दो व्यवस्थाओं के बीच प्रत्यक्ष प्रतियोगिता का क्षेत्र बनती जा रही है, वैज्ञानिक कम्युनिज्म के लिए सैद्धांतिक विकल्प प्रस्तुत करने के प्रयास मे बदल जाता है। इस स्थापना से रोस्तोव का सिद्धांत एक समय में तीन समस्याओ के समाधान का प्रयत्न करता दिखाई देता है। यह सिद्ध करके कि प्राविधिक प्रगति पूँजीवाद के विरुद्ध मेहनतकश जनता को वर्ग संघर्ष की आवश्यकता को समाप्त कर देता है, सोवियत अनुभव को अविश्वसनीय बना देता है वह निस्सदेह विश्व समाज-व्यवस्था के विकास के लिए अमरीकी जीवन पद्धति को सर्वोच्च शिखर घोषित करते है।

जॉन केनेथ द न्यू इंडस्ट्रियल सोसायटी (नया औद्योगिक समाज) (1967) में इस सदी के उत्तरार्धमे प्राविधिक नियतिवाद की स्थिति से 'औद्योगिकीकरण' के सिद्धान्त के लिए आर्थिक आधार प्रदान करने का प्रयत्न करते है। एक प्रकार से यह जॉन कीन्स की इस शती के पूर्वार्ध में पूँजीवादी सम्बन्ध की राज्य इजारेदारी पद्धति का स्मरण दिलाता है जो उनकी पुस्तक 'द जनरल थियरी ऑफ एंप्लायमेंट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी' में निरूपित है।

गालब्रेथ 'औद्योगिक' समाज की संपूर्ण आर्थिक संरचना की व्याख्या के लिए प्राविधिक नियतिवाद से आरंभ करते हैं। हम इस प्रस्थापना को ध्यान में रख सकते हैं "आर्थिक परिवर्तन की जटिल ग्रंथि की परीक्षा के लिए प्राविधिक ज्ञान स्वयं अपनी पहलकदमी की क्षमता के कारण उसके भीतर प्रवेश के लिए एक तर्क संगत बिन्दु है लेकिन प्रविधि परिवर्तन का कारण ही नही है, परिवर्तन का प्रत्युत्तर भी है।"[1] फलस्वरूप, गालब्रेथ की मुख्य स्थापना यह है कि वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति 'औद्योगिक राज्य' की अर्थव्यवस्था मे योजना के नियमों के विकास को स्वयं पहले से निर्धारित कर देती है। परिणामस्वरूप बड़ी इजारेदारी, ट्रेड यूनियन और राज्य की अन्तःक्रिया में एक प्रकार का आदर्श सतुलन कायम कर देती है जिसको पूरे समाजका प्रतिनिधि माना जाता है। परिपक्व नियम जो स्पर्द्धा समाप्त करने में सक्षम है, बाजार-अर्थव्यवस्था का स्थान ले लेते हैं योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के साथ, और उसके प्रमुख अंग बन जाते हैं।

इस प्रकार, गालब्रेथ के अनुसार, अधिकतम लाभ (मुनाफ़ा) पूँजीवादी उत्पादन

1. जॉन कैनेथ गालब्रेथ, द न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट, पृ० 20

की मूल प्रेरणा नहीं रहती अपितु प्रविधि एवं परियोजना की माँगें उसकी प्रेरक बन जाती है। जहाँ तक अर्थव्यवस्था मे प्रभावी पदों का प्रश्न है, वे उनके विधिसम्मत स्वामियों के हाथ से निकलकर सुप्रशिक्षित प्रशासनिक तथा प्राविधिक माध्यमों को प्राप्त हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि अधिकाधिक लाभ (मुनाफ़े) में रुचि रखने वाले पुराने उद्यमी को उत्पादन के नियन्त्रकों की सूची से पृथक् करके उसके स्थान पर प्रविधिज्ञों के अपरिचित समुदाय (प्राविधिक संरचना) को रख दिया जाता है जिसकी रुचि मुनाफे की रक्षा मे नही बल्कि अपनी सत्ता बनाए रखने मे होती है सिद्धान्त रूप से वे सामान्य हितों की देखभाल करते है—सामूहिक उत्पादन की क्रमशः वृद्धि तथा मूल्यों मे कमी के द्वारा बाजार का विस्तार जिससे समस्त जनगण को लाभ पहुँचे।

यह काल्पनिक संरचना वास्तविकता से बहुत दूर है। रोस्तोव के छद्म वैज्ञानिक सिद्धांत की भाँति ही गालब्रेथ का आविष्कृत कल्पनालोक (जो आधुनिक पूँजीवाद के आयोजन के तत्वों का परिचय, प्रबन्धकों की बढ़ती हुई भूमिका, संपदा के आकारहीन नैगम रूप जैसे वस्तुतः विद्यमान कतिपय तत्वों पर आधारित है) मुख्य बात की—पूँजीवादी पुनरुत्पादन के वस्तुपरक नियमों की—उपेक्षा करता है। तथापि, ये नियम तेज़ी से तीव्र होते हुए प्रतियोगितात्मक संघर्ष का निजी पूँजी से सामना कराते हैं जिसके दौरान हर व्यापारी अधिकतम मुनाफ़ा कमाने का प्रयास करने के लिए विवश होता है। और बाजार की माँग की कोई भी भविष्य-वाणी, कोई 'प्रबन्धकीय क्रान्ति' चाहे वह 'अतिपरिपक्व' निगमो के विद्यमान रहते हुए ही पैदा हुई हो—इस स्थिति को परिवर्तित नही कर सकती।

और न प्राविधिक नियतिवाद के पक्ष-पोषक ही इस तथ्य से बच सकते है, भले ही उन्होंने अपनी सैद्धान्तिक संरचनाओं मे मार्क्स से उधार लिये इस विचार को अपना आधार बनाया हो कि उत्पादक शक्तियों का विकास ही ऐतिहासिक प्रगति का आधार है। वस्तुतः वे इस विचार को पूर्णतया विकृत कर देते हैं, इस अर्थ मे वे उत्पादन सम्बधो से उत्पादन शक्तियों को पृथक् कर देते है और किसी एक या अन्य सामाजिक-राजनीतिक रूप से उनके संबधों को विच्छिन्न करके उस पर बहस करते हैं। वे सम्पत्ति की प्रकृति, सामाजिक संबंध, वर्ग-शक्तियो के संतुलन और इसी प्रकार की महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक कसौटियों की उपेक्षा करते है तथा इन सबके स्थान पर जनसंख्या के कतिपय घटकों के जरिए प्रति व्यक्ति उपभोग के यांत्रिक संकेतो को प्रस्थापित कर देते हैं।

यहाँ हम इस बात से इन्कार नही कर रहे है कि वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति और उपभोग का स्तर समाज के विकास के अत्यंत महत्वपूर्ण संकेतक हैं। किंतु वे कितने भी वास्तविक हो, हैं तो सामान्य स्थिति के अंश मात्र ही। उदाहरण के लिए, क्या कोई इन मूलभूत लक्षणों को, जिन पर कि वह आधारित है, छोड़कर वर्तमान

पूंजीवादी उत्पादन का सही वैज्ञानिक विश्लेषण कर सकता है, . इसके सम्मुख लक्ष्य क्या हैं ? यह किनके हितों की पूर्ति करता है ? इस पर किसका स्वामित्व है ? क्या केवल उपभोग के स्तर से मेहनतकश जनता के भौतिक कल्याण को मापना उचित है ? क्या श्रम शक्ति के विस्तार, श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन के लिए व्यय में निरन्तर वृद्धि, सामान्यतया आधुनिक मानव की आवश्यकताओं मे वृद्धि और इसी प्रकार के महत्वपूर्ण मुद्दों की उपेक्षा की जा सकती है ?

तथापि रोस्तोव, गालब्रेथ और 'उद्योगवाद' के अन्य धुरन्धरो ने यही मार्ग ग्रहण किया। सामाजिक प्रक्रिया का सर्वांगीण विश्लेषण करने के स्थान पर वे प्राय. मनमर्जी से चुनी हुई कतिपय घटनाओ का विश्लेषण करते है और इसी आधार पर संयुक्त राज्य अमरीका मे और समस्त पूंजीवादी विश्व में पूंजीवादी वास्तविकता का भ्रामक चित्र खीचते हैं और उसके भविष्य के संबध मे भविष्यवाणियां करते हैं। इन स्थापनाओ में बूर्जा पण्डित एक समस्या के समाधान की बार-बार कोशिश करते हैं जैसे कोई गोलाकार को वर्गाकार बनाने का, असंगत को सगत करने का, प्रयास कर रहा हो। 'सार्वत्रिक समृद्धि' के समाज मे, जिसे कि वे सयुक्त राज्य अमरीका में पहले से ही अर्थात् अमरीका की तीसरी शताब्दी के आरभ से ही निर्मित मानते है, वे एक ही समय मे व्यापार मे अधिकाधिक मुनाफ़ा तथा मेहनतकश जनता के लिए वृद्धिमान उपभोग का वायदा करते हैं। किंतु इसमे कोई सदेह नही कि यह कितनी ही अतिरंजित कलाकृति क्यो न हो, यह एक स्वप्नलोक ही है, इस बात से कोई इन्कार नही कर सकता कि पूंजीवाद के नियम और उसका दैनिक व्यवहार इस प्रकार की सभावना को ही समाप्त कर देता है। पूंजीपतियो के समाज का समस्त इतिहास, जिसमे अमरीकी समाज भी सम्मिलित है, इसका प्रमाण है।

संयोगवश, 1776 मे, जिस वर्ष कि संयुक्त अमरीका ने अपने स्वतंत्र होने की घोषणा की थी, स्कॉटलैंड के प्रोफ़ेसर एडम स्मिथ अपनी प्रसिद्ध कृति **"राष्ट्रों की संपत्ति की प्रकृति और कारणों की जांच"** (इन्क्वायरी इनटु द नेचर एण्ड काजेज ऑफ़ द वैल्थ ऑफ नेशन्स) प्रकाशित की थी जिसमे उन्होंने अपने समय की पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धात की व्याख्या की थी।

पूंजीवादी आर्थिक विचार धारा के जनक इस बात के पूरी तरह कायल थे कि प्रतियोगिता के लाभप्रद प्रभाव के अतर्गत पूंजीवादी संबधो के विकास में निश्चित रूप से उद्यमियो द्वारा कम-से-कम कीमत पर अच्छी-से-अच्छी वस्तुओ की आपूर्ति के लिए किए जा रहे प्रयास सम्मिलित होगे और इस प्रकार आम जनता के कल्याण मे निरंतर उभार सुनिश्चित होगा। यह स्वीकार करते हुए कि प्रतियोगिता को निर्बन्ध स्वातंत्र्य प्रदान किया जाए जैसाकि प्रकृति ने स्वयं वस्तुओं के क्रम में किया है। उन्होंने बड़ी आशा के साथ अपनी कृति **'विपुलता की बाइबिल'** (बाइबिल

ऑफ एप़लुएन्स) में सामूहिक उत्पादन के उत्थान, समस्त वैयक्तिक हितो मे समन्वय और सभी के लिए चितामुक्त एवं सुरक्षित जीवन की पूर्वकल्पना की थी।

इस प्रकार, 'सामूहिक उपभोग' के समाज की घोषणा एक प्रकार से दो सौ वर्ष पूर्व ही कर दी गई थी, ठीक उस समय जब कि सयुक्त राज्य अमरीका ऐसे राज्य का निर्माण आरंभ करने जा रहा था जिसे कि 'स्वतंत्र उद्योग' वाले राज्य के आदर्श के रूप मे मान्यता दी जानी थी।

वर्तमान काल मे, पूंजीवादी व्यवस्था के रक्षक क्रमश: पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के स्रोतों की ओर लौट रहे हैं। लेकिन आदर ग्रंथो के विपरीत, वे स्वयं को इजारेदार पूंजी के प्रत्यक्ष समर्थन के घेरे में अधिकाधिक बन्द करते जा रहे है। कोई भी आत्मगत लक्ष्य 'औद्योगिक' और 'औद्योगिकोत्तर समाज' के मिथक में अन्तर्निहित क्यों न हों, सार रूप में इसकी सब विविधताएँ ऐसे प्रयास प्रमाणित हो रही हैं जो उन्नत विधि और प्रविधि सहित अथवा नई उत्पादन प्रबन्धक पद्धति सहित आधुनिक राज्य इजारेदारी को सामूहिक उपभोग की वृद्धि से लक्षित करती है। जैसी कि कहावत है, ये मायावी रंगो में पूंजीवाद के अस्तित्व को दीर्घजीवी बनाने के प्रयास हैं।

इन प्रयासों ने इस सत्य को ही प्रमाणित किया है कि हमारे समय मे पहले कभी की अपेक्षा पूंजीवाद को पुन: स्थापित करने का कोई भी प्रयास अधिक जटिल और कम प्रभावशाली होगा। प्रचार की मिथ्या गाथाओं के माध्यम से प्रदर्शित 'सामूहिक उपभोग' की सफल और उज्ज्वल संभावना समय की कसौटी पर खरी नही उतरी हैं। जीवन ने इस मनोरंजक कथा की उपेक्षा कर दी है। और इसके कारण पूंजीवादी विश्व को ऐसे जटिल अन्तर्विरोधो का सामना करना पडेगा जो वस्तुत: इसके क्रिया-कलाप के प्रत्येक पहलू को अपने मे लपेट लेंगे। 1970 के दशक के पूंजीवादी सिद्धान्तकार पूंजीवाद की पुरानी व्याधियो के लिए चिकित्सा के नए नुस्खे तैयार करने के लिए अन्य सिद्धान्तो की खोज करते रहे। ऐसे समय मे जबकि पूंजीवादी विश्व अन्तर्विरोधपूर्ण घटना क्रियाओं के प्रवाह में बहता जा रहा है उन्होंने अपने जिम्मे एक जटिल और सामान्यतया अव्यावहारिक कार्य भार—मजदूर वर्ग के सामाजिक आदर्शों को पूंजीवाद की वास्तविकताओं के साथ मिलाने का—ले लिया है। उनमें से कुछ अब भी प्रविधि के सहज विकास पर अपनी आशाएँ लगाए बैठे है, इसके विपरीत, दूसरों की दृष्टि मे यही समस्त संकटों का कारण हैं, लेकिन उनमें से लगभग सभी पूरी तरह प्राविधिक रुख को त्यागना पसन्द नही करते और आधुनिक पूंजीवाद के विश्लेषण में सामाजिक एवं वर्गीय पक्षों को सुनियोजित तरीके से नजरन्दाज कर देते हैं।

श्रेष्ठतर भविष्य की आशाओं और साथ ही वर्तमान के लिए लांछन दोनों को ही वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के साथ जोड़ दिया गया है। इस संबंध में अमरीका

के प्रमुख इतिहासकार आर्थर श्लेसिंजर का वक्तव्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है : "यदि संयुक्त राज्य अमरीका में आज अन्य कही की भी अपेक्षा अत्यधिक उत्कट संकट दिखायी देता है तो यह हमारी अर्थव्यवस्था के चरित्र के कारण नही अपितु, उन क्रांतियों के कारण है जिनको कि विज्ञान और प्रविधि द्वारा लाया गया है जैसाकि दूसरी जगह कही नही हुआ है। प्राविधिक विकास में अत्युन्नत राष्ट्र के रूप मे अमरीका ने ही पहले-पहल क्षिप्रगामी परिवर्तन का अजस्र आघात और विप्लवकारी गहनता का अनुभव किया। हम जिन सकटों मे जी रहे है वे आधुनिकता के संकट है। कोई भी राष्ट्र जब प्राविधिक विकास की अपेक्षाकृत उच्च स्थिति को प्राप्त् करना आरम्भ करता है तब उसे अपेक्षाकृत इसी प्रकार के सकटो का सामना करना पड़ता है।"[1] इस प्रकार औद्योगिक समाज के सकट का निषेध नही किया गया, बल्कि इसे प्रगति के अनिवार्य पुरस्कार के रूप में व्याख्यायित किया गया है। जहाँ तक श्रेष्ठतर समय की आशाओं का संबंध है, उन्हें कुछ थोडा और आगे भविष्य के लिए बढा दिया गया है और अब उनका संबध अद्यतन औद्योगिक समाज से इतना अधिक नही रहा जितना कि इसके स्थान पर आने वाली सामाजिक व्यवस्था का।

क्या 'औद्योगिकोत्तर समाज' मुक्ति है ?

औद्योगिकोत्तर समाज की नई सुप्रचारित अवधारणा के जनक अमरीकी समाजशास्त्री डेनियल बैल थे। हरमन काहन, जिबग्निएव ब्रजेजिन्स्की, जॉन गॉलब्रेथ, रेमण्ड आरों, एडोल्फ बर्ले और जीन फ़ौरेस्टी सहित अन्य अन्वेषकों ने भी इस अवधारणा को विकसित करने मे कठिन श्रम किया। लेकिन इसकी सर्वाधिक पूर्ण व्याख्या बैल की न्यूयॉर्क में 1970 मे प्रकाशित कृति-द कमिंग ऑफ़ पोस्ट इण्डस्ट्रियल सोसायटी, ए वेंचर इन सोशल फ़ोरकास्टिंग मे की गई। ठीक सामूहिक उपभोग समाज की अवधारणा की तरह ही औद्योगिकोत्तर समाज का विचार भी अनेक पहलुओं में पूँजीवादी पडितों द्वारा पहले से प्रदर्शित विचारो की पुनरावृत्ति मात्र है। इस विषय में यह थोर्स्टीन वेब्लेन की कृतियों मे आंशिक रूप से उठाया गया प्रश्न है लेकिन सर्वोपरि अमरीकी प्रोफ़ेसर जेम्स बर्नहम के, 'द मैनेजरियल रेवोल्यूशन' (प्रबंध मे क्रांति) का प्रश्न भी है। विश्व मे क्या हो रहा है—के माध्यम से इसे 1941 मे सबसे पहले प्रस्तुत किया गया था। पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक बर्नहम ने उन्ही वर्षों में औद्योगिकोत्तर समाज के बुनियादी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था। उन्होने समस्त उचित सीमाओं को लाँघकर उत्पादन में लगे उच्चाधिकारियों की भूमिका को बढा-चढ़ाकर बखानते हुए और मज़दूर वर्ग की

1. न्यूजवीक, 6 जुलाई 1970 पृष्ठ 29-30

क्रांतिकारी भूमिका को नकारते हुए यह निष्कर्ष निकाला था कि पूंजीवाद के बाद समाजवाद नहीं आएगा अपितु समाज के अन्य सामाजिक संगठन आएँगे।

इन प्रस्थापनाओं के आधार पर बैल औद्योगिकोत्तर समाज का प्रतिरूप प्रस्तुत करते हैं और इसके पाँच विशिष्ट आयामों का उल्लेख करते है : प्रथम, माल-उत्पादन से सेवा-प्रधान अर्थव्यवस्था में परिवर्तन; द्वितीय, व्यावसायिक एवं प्राविधिक श्रेणी की श्रेष्ठता; तृतीय, समाज के लिए नवीकरण और नीति निर्माण के स्रोत के रूप में सैद्धांतिक ज्ञान की केन्द्रिकता, चतुर्थ प्रविधि एवं प्राविधिक मूल्यांकन का नियंत्रण तथा पंचम, नवीन 'बुद्धिवादी प्रविधि' की संरचना[1]

इस व्यवस्था में बैल विज्ञान को प्रमुख स्थान देते हैं। वह लिखते हैं—'ठीक वैसे ही जैसे कि गत सौ वर्षों से व्यापारिक संस्थान बुनियादी संस्थान थे...विश्वविद्यालय और इसी प्रकार के ज्ञान के संस्थान अगले सौ वर्षों तक केन्द्रीय संस्थान रहेंगे क्योंकि नवीकरण और ज्ञान के नये स्रोत के रूप मे इनकी भूमिका है।"[2] वह आगे लिखते है "औद्योगिकोत्तर समाज की जड़े उत्पादन पद्धतियों पर विज्ञान के अक्षय प्रभाव मे निहित है—और विज्ञान अर्ध स्वायत्त शक्ति के रूप में पूंजीवाद के आगे तक चलता जाएगा। इस सकेत से कोई कह सकता है कि वैज्ञानिक सपदा, इसकी प्रकृति और इसके संगठन ऐसा प्रजीवाणु है जिसमें भावी समाज की प्रतिभा अन्तर्निहित है।"[3]

जैसे कि बैल इसे देखते हैं मानव समाज का समग्र इतिहास उत्पादन के एक रूप से दूसरे रूप की ओर अग्रसर है : कृषि से उद्योग और उद्योग से सेवा प्रधान अर्थव्यवस्था की ओर। प्रत्येक अवस्था के अपने शक्ति के वितरण और सामाजिक संगठनों के लाक्षणिक उत्कर्ष होते हैं। औद्योगिकोत्तर समाज में निर्णय वैज्ञानिको एवं उच्चतम योग्यता प्राप्त विशेषज्ञों—ज्ञान के धारकों—पर निर्भर होता है। इसके शिखर पर रहेगे विश्वविद्यालय और अकादमिक केन्द्र। चुने हुए श्रेष्ठ 'राजनीतिक प्रबन्धक' साधुता और न्याय निष्ठा से समाज का मार्ग-दर्शन करेंगे।

जहाँ तक पूंजीपति और मजदूरों के शत्रुतापूर्ण वर्गों की बात है वे भी औद्योगिकोत्तर समाज में उसी प्रकार एकीकृत हो जाएँगे जैसे कि उत्पादन का वर्तमान वैज्ञानिक पुनर्गठन स्वयं पूंजीवाद को विलीन कर देता है। पहली स्थिति वैज्ञानिक स्थिति के रूप में क्रमशः लाई जाएगी, ठीक उसी प्रकार जैसे कि अपने समय में सामंती अभिजात वर्ग पूंजीपति वर्ग मे विलीन हो गया, जबकि बाद वाली स्थिति

1. डी॰ बैल, द कमिंग ऑफ पोस्ट इंडस्ट्रियल सोसायटी, ए वेंचर इन सोशल फ़ोरकास्टिंग न्यूयॉर्क, 1973, पृष्ठ 14
2. वही, पृष्ठ 344
3. वही, पृष्ठ 378

ऐतिहासिक पुरातत्व के रूप मे परिवर्तित हो जाएगी अर्थात इसका भाग्य वही होगा जैसाकि औद्योगिक समाज मे कृषकों का हुआ। इसका परिणाम यह होता है कि बैल 'औद्योगिक' एव 'औद्योगिकोत्तर' समाजो के अपने विश्लेषण मे से उत्पादन संबंधो की तथा इसके बाद वर्ग-सघर्ष की श्रेणियां को ही गायब कर देते हैं।

व्यापार से राजनीतिक प्रबंध मे सत्ता का पुनःवितरण व्यावहारिक रूप मे किस प्रकार होगा? बैल इस सामान्य तथ्य को विस्मृत नही कर सकते कि वर्तमान पूंजीवादी समाज मे वैज्ञानिक और प्राविधिक विचार इजारेदारियो की विशुद्ध व्यावहारिक मांगों की सेवा करता है। वह इस अन्तर्विरोध से सुपरिचित है। और वह प्रायः वेब्लेन की आलोचना करते हैं जिन्होंने आधी सदी पूर्व केवल प्राविधिक संगठनो को आधार माना था। बैल ने लिखा था—यह श्रम-संघवादी विचार कि बीसवी सदी मे क्रान्ति केवल औद्योगिक उलट-फेर ही हो सकती थी—वेब्लेन के विचार मे निहित भ्रान्ति का एक निदर्शन है। जैसा कि हमें ज्ञात है कि सामाजिक प्रक्रियाएँ चाहे जितनी प्राविधिक हों समाज मे परिवर्तन का निर्णायक बिन्दु राजनीतिक रूप मे ही आता है। सत्ता अंतिम रूप से प्राविधिक के हाथ में नही आती बल्कि राजनीतिज्ञ के[1] इस प्रकार दो अन्य तत्व भी हैं—राजनीतिक और सास्कृतिक संरचनाएँ—जो लेखक की कृति औद्योगिकोत्तर समाज का आगमन" के लेखक के अभिप्राय मे इसकी सामाजिक संरचना के साथ विद्यमान है। लेकिन औद्योगिकोत्तर समाज को इन तीन क्षेत्रों में पुनः विभक्त करते हुए जिनमे से प्रत्येक बैल के मतानुसार स्वायत्त रूप मे कार्य करता है, विषय को बिल्कुल स्पष्ट नही करता। और उनका राजनीतिक प्रबंध के सबंध मे यह कहना कि वह लंबे काल मे राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त कर लेगा अधिक संतोषजनक न होने से स्वीकरणीय नही है। कोई सोच सकता है कि वेब्लेन के आलोचक बैल स्वय उनके 'श्रम संघवाद के' विचार से ही विमोहित हो जाते है, जिसको वह छोड़ देते है।

बैल एक सीमा तक चेतावनी देते हैं विशेष रूप से भविष्यवाणी करने के संबंध मे, और इस प्रकार के निष्कर्षो की उपेक्षा करते है जो एकदम निरपवाद प्रतीत होते है। लेकिन उनके साथी प्रो० जिबग्निएव ब्रजेजिन्स्की ऐसा नही करते जो औद्योगिकोत्तर समाज की अपनी धारणा के समर्थन में सर्वथा निरपेक्ष है। बैल की तरह ही वह सामाजिक प्रक्रिया तथा उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को प्रविधि एवं ज्ञान के दृष्टिकोण से देखते है और औद्योगिकोत्तर समाज की अवधारणा को प्राविधिक वैद्युतिक युग द्वारा रूपांतरित करके इस दृष्टिकोण को पुष्ट करने का प्रयास करते हैं। यद्यपि उनकी खोज सामान्यतया न्यूनाधिक मात्रा मे

1. सर्वे, विंटर 1971 खंड 16, अक 1 पृष्ठ 19

बैल, गालब्रेथ, रोस्तोव और 'प्राविधिक नियतिवाद' के अन्य समर्थकों द्वारा पुन. स्थापित प्रस्थापनाओं की ही छद्म भरी प्रतिलिपि है। ब्रजेजिन्स्की दावा करते हैं कि यह समस्या के प्रति नया दृष्टिकोण है। वह घोषणा करते हैं कि प्रविधि एवं इलैक्ट्रोनिक्स इन दोनों के बीच संयुति मानव समाज के विकास में निर्णायक शक्तियाँ हैं। उनका दावा है कि यह संयुति केवल अर्थ-व्यवस्था को ही परिवर्तित नही करती अपितु मानव जीवन के सामाजिक 'सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों को भी परिवर्तित कर देती है।

ऐसा रवैया लेखक को अपनी धारणा को नये रूप में प्रस्तुत करने योग्य बना देता है, और महत्वपूर्ण यह है, कि वह इस विचार को आगे बढ़ाते हैं कि 'प्राविधिक वैद्युतिक युग' पूरी तरह अथवा लगभग औद्योगिकोत्तर समाज का विपर्यय है तथा प्राविधिक वैद्युतिक युग की विजय (जिसमे कि उनके दावे के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका प्रवेश करना आरंभ कर रहा है) एक नये युग की शुरुआत है जो मानव समाज के इतिहास मे मूल रूप से पिछले सभी युगों से सर्वथा भिन्न है। लेखक स्पष्ट रूप से विश्वास करते है कि प्रश्न को इस प्रकार प्रस्तुत करना उन्हें इस बात के लिए विवश करता है कि वह पूंजीवाद की विद्यमान वास्तविकता को इस प्रकार विश्लेषित करें कि वह स्वयं को भविष्य के प्राविधिक-वैद्युतिक युग के सम्बन्ध मे गूढ़ अनुभावों मे तल्लीन कर सकें। जहाँ तक वर्तमान संघर्ष का सम्बन्ध है लेखक उनका चित्रण बढ़ती हुई पीड़ा के रूप मे करता है जो कि विश्वव्यापी मानवता के विकास की उच्चतर अवस्था के लिए विश्वव्यापी संक्रमण के लिए अनिवार्य है और ये पीड़ाएँ आने वाले युग में सामने आने वाली समस्याओं की तुलना मे अधिक महत्वपूर्ण नही हैं।

दूसरे शब्दो के ब्रजेजिन्स्की यह सिद्ध करना चाहते होंगे कि वर्तमान क्रान्ति के लिए संक्रमणकालीन युग को दोषी ठहराया जाना चाहिए जिससे कि मनुष्य समाज गुजर रहा है, न कि पूंजीवाद को। जैसे ही यह युग अपने हर्षप्रद अन्त तक पहुँचेगा, हर चीज़ कल्याण के लिए परिवर्तित हो जाएगी।

प्राविधिक-वैद्युतिक समाज में वैज्ञानिक और प्राविधिक ज्ञान जो वर्धमान उत्पादन क्षमताओं से संपन्न है जीवन के लगभग सभी पहलुओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने के लिए त्वरित गति से प्रवाहित होता है। इस 'सत्य' की खोज करके ब्रजेजिन्स्की इसके समर्थन मे कोई गंभीर तर्क प्रस्तुत करके स्वयं को और पाठकों को परेशानी में डाले बिना इसके आधार पर प्रस्थापनाओं की संपूर्ण व्यवस्था का निर्माण करते हैं।

प्राविधिक-वैद्युतिक समाज मे .औद्योगिक कार्य इसकी सेवा मे प्रयुक्त होगा और साइबर्नेटिक्स तथा स्वचालन यंत्र विधि नियंत्रण मे। मनुष्य का स्थान ग्रहण करेंगे। व्यवसायों के शीघ्र विलुप्त होने से सम्बन्धित समस्याएँ केन्द्रीय स्थान प्राप्त

करेंगी। "...अपेक्षाकृत सुरक्षित लेकिन क्षमता की दृष्टि से लक्ष्यहीन निम्न मध्यम वर्ग के मैले-कुचैले कपड़ों वाले लाखों लोगों के मानसिक स्वास्थ्य की देखभाल करनी होगी।"[1] तथा उनके विश्राम के समय को संगठित करने और लाभांश में भागीदारी की समस्या का समाधान करना होगा। व्यक्तिगत क्षमताओं का उन्नयन 'समाजिक प्रगति के लिए प्रस्थान विन्दु' के रूप में सामाजिक सुधारकों का मुख्य लक्ष्य होगा।

ज्ञान शक्ति का एक साधन (उपकरण) हो जाएगा। विश्वविद्यालय चिन्तन-सागर बन जायेंगे : आयोजन के सामाजिक नवीकरण के स्रोत। जन प्रचार माध्यम के विकास का परिणाम तेजी से परिवर्तन के रूप मे होगा। विश्व दृष्टिकोण की अस्थिरता 'सामाजिक विवादों को संख्यात्मक एवं मात्रात्मक आयामों में घटाने' के लिए बढती हुई क्षमता सामाजिक समस्याओ के प्रति अधिक स्पष्ट रवैये की ओर ले जाएगी। औद्योगिक समाज मे राजनीतिक पार्टियाँ सहयोग और अपेक्षाकृत सामान्य विचारधारात्मक कार्यक्रम के आधार पर बनायी जाएँगी। तथा ये राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित होंगी। प्राविधिक-वैद्युतिक समाज में जन-प्रचार माध्यम की सहायता से जनता की भावनाओ को प्रभावित करना और उनकी मनोवृत्ति को नियंत्रित करना संभव होगा। राष्ट्रभाषा के स्थान पर दूरदर्शन के प्रतीकों (प्रतिमाओं) द्वारा घटनाओं की अधिक सार्वत्रिक और प्रभावशाली समझ की ओर बढ़ाया जा सकेगा। आर्थिक शक्ति का बढ़ती हुई राजनीतिक शक्ति में विलय होगा और वह निर्वैयक्तिक हो जाएगी।

ब्रजेज़िन्स्की के मत से नये समाज के निर्माण का पता विश्व की वास्तविकता के साथ मनुष्य के नए सम्बन्धों के आरम्भ से चलेगा जिसकी रोशनी में पुरानी अवधारणाएँ और उनके साथ पुरानी विचारधाराएँ अपना महत्व खो देंगी।

कुल मिलाकर, अपनी अंतिम प्रस्थापना को प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत तर्क वही है जिसका उपयोग विसिद्धान्तिकीकरण की अवधारणा के समर्थक पहले ही कर चुके थे। भविष्य की विचारधारा सभी विचारधाराओ का उन्मूलन होगी। कारण यह कि, ठीक जैसे मार्क्सवाद ने औद्योगिक युग के लिए इस प्रकार का सिद्धान्त रचा वैसे ही हमारे समय ने भी अपनी क्रान्ति की निजी अवधारणा निर्मित की। प्राविधिक-वैद्युतिक युग में संक्रमण तीसरी अमरीकी क्रान्ति के सदृश है। पहली ने स्वतंत्रता की घोषणा को स्वीकृति दी। दूसरी ने खेतिहर एव अंशतः दास स्वामित्व वाले समाज को शहरी औद्योगिक राष्ट्र में रूपांतरित किया। तीसरी ऐसी क्षिप्रगामी प्रक्रिया है जिसमें 'प्राग औद्योगिक', 'औद्योगिक' और 'प्राविधिक-वैद्युतिक' अमरीका का विलय हो रहा है।

---

1. वही, पृ० 11

इस निष्कर्ष द्वारा वह सिद्ध करते है कि प्राविधिक-वैद्युतिक अमरीका अनिवार्य रूप मे सर्वश्रेष्ठ हो जाएगा। इसका विरोध उसी प्रकार निष्फल होगा जैसे कि मशीनों के विरुद्ध लुड्डाइट आदोलन हुआ था। और इससे भी बढ़कर अमरीका केवल अपने निजी हितों के लिए चिंतित नही है बल्कि समस्त विश्व के कल्याण के लिए चिंतित है। इसलिए ब्रजेज़िन्स्की का दावा है कि यह अमरीका का विशिष्ट ध्येय है कि वह औद्योगिक राज्यों के समुदाय का निर्माण करे और उसका नेतृत्व करे।

ब्रजेज़िन्स्की के 'प्राविधिक नियतिवाद' के विचार तथा उनके अनुरूप लक्ष्यों की देन को भी परिभाषित करना सरल है। जहाँ तक कि प्रश्न के सैद्धांतिक पहलू का सम्बन्ध है: वह किंचित परिवर्तित शब्दावली का उपयोग करते हुए इस विकास की उसी ज्ञात, अति सरलीकृत ऐतिहासिक प्रक्रिया—'प्राग औद्योगिक', 'औद्योगिक' और प्राविधिक-वैद्युतिक (अर्थात् औद्योगिकोत्तर) को दुहराते मात्र है। उनका प्राविधिक-वैद्युतिक समाज का वर्णन मुख्य रूप से बैल की 'औद्योगिकोत्तर समाज' की परिभाषा का पुन: कथन मात्र है।

तथापि, कुछ ऐसे पहलू भी है जो अमरीकी प्रोफेसर की रचनाओं को इस विषय पर लिखी गयी अन्य रचनाओं से भिन्न एवं विशिष्ट प्रदर्शित करते हैं।

उनमे से एक है इसका सुस्पष्ट समर्थन का स्वभाव। ब्रजेज़िन्स्की ने 'प्राविधिक-वैद्युतिक युग' को पाठक के समक्ष अमरीका के राज्य-इजारेदारी पूँजीवाद की प्रतिमा के रूप में प्रयुक्त किया है जो प्राविधिक रूप से आधुनिकीकृत है और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्तियों द्वारा सुदृढ़ की गयी है। वह बलपूर्वक कहते हैं कि प्राविधिक-वैद्युतिक युग अमरीका का युग है जो समाजवाद के अस्तित्व को आरंभ से ही नकार देता है। दोनों व्यवस्थाओं के अभिसरण के विचार का विरोध करते हुए वह स्पष्ट रूप से आह्वान करते हैं कि समाजवादी व्यवस्था को अखिल अमरीकीवाद के नये रूप मे विलीन कर दिया जाये।

'प्राविधिक-वैद्युतिक युग' की समस्त परिकल्पना साम्राज्यवादी हल्कों की घोर प्रतिक्रियावादी धारा को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है। इसके प्रस्तावित संस्थानों को समस्त राज्य और सामाजिक सत्ता को आत्मसात करने और सब पर और अधिक तथा सामाजिक जीवन की समस्त जनतान्त्रिक क्रियाविधि पर अपना नियंत्रण क़ायम करने और उसे और अधिक मजबूत करने के लिए अति व्यापक प्रशासकीय मशीनरी के उपकरण के रूप मे निर्मित किया गया है। भावी 'प्राविधिक-वैद्युतिक' विश्व के आदर्श को लेखक नागरिकों पर राज्य के नियंत्रण को अधिकतम व्यापक बनाने के कार्य को प्राविधिक प्रगति का सर्वोच्च लक्ष्य घोषित करता है। इन प्रस्थापनाओं को ध्यान मे रखते हुए ब्रजेज़िन्स्की की सामाजिक जीवन के विसैद्धान्तिकीकरण से संबधित स्थापना है जबकि जनता के बौद्धिक क्रियाकलाप

को राज्य के नियंत्रण मे रखा जाएगा और कतिपय पूर्वनिर्धारित पद्धतियों (आदर्शों) तक सीमित कर दिया जाएगा। इस प्रकार ब्रजेजिन्स्की का नया विचार इजारेदार पूंजीवाद तथा विशेष रूप से अमरीकी साम्राज्यवाद के स्पष्ट समर्थन के अतिरिक्त कुछ नही है। लेकिन औद्योगिकोत्तर समाज मे भी मुक्ति नही प्राप्त होगी। इसका सीधा-सा कारण यह है कि इस कृत्रिम योजना का वास्तविकता से संबंध नही है।

'नवीनीकृत' पूंजीवाद की मरीचिकाएँ

'औद्योगिकोत्तर समाज' की अवधारणा ही तात्कालिक सामाजिक समस्याओ के समाधान को तब तक के लिए टाल देती है जब तक कि किसी समय भविष्य मे वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के अनुग्रह के अतर्गत पूंजीवाद के यान्त्रिक नवीकरण के विचार से एक प्रकार अपने को पृथक् नही कर लेती। जहाँ तक प्राविधिक-वैद्युतिक युग की अवधारणा की बात है, इसका सबंध ठोस पूंजीवादी वास्तविकता से कम ही है।

यह कहना आवश्यक नही कि ऐसे समय मे जबकि वास्तविक घटनाएँ पूंजीवाद के सरल रूपांतरण द्वारा स्वयं श्रेष्ठतर भविष्य की क्षीणप्राय आशा को प्रकट करती है, साम्राज्यवादी सिद्धान्तकारो की स्थिति मे इस प्रकार के परिवर्तन आकस्मिक नही समझे जा सकते। एक ओर तो वे पूंजीवाद के स्वचालित पुनर्नवीकरण के सबंध में टूट रहे भ्रम को प्रदर्शित करते हैं और दूसरी ओर, मेहनतकश जनता के ध्यान को वर्तमान की ठोस समस्याओ से हटाने की इच्छा को प्रतिबिंबित करते हैं।

साम्राज्यवादी सिद्धान्तकार यह प्रभाव उत्पन्न करने की जी तोड़ कोशिश कर रहे हैं कि ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन शीघ्र होने वाले हैं जो वर्तमान समाजो से भिन्न एक नये समाज के निर्माण की ओर अग्रसर होंगे जिसके लिए विद्यमान मूल्याकन, अवधारणाएँ और कसौटियाँ अव्यवहार्य होगी। इस विचार को क्रान्तिकारी नवीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पूंजीवादी विचारक कहते हैं कि सामाजिक जीवन में कम्युनिस्टों की कल्पना से भी अधिक गभीर और सर्वग्राही परिवर्तन होने वाले है। दूसरा वक्तव्य यह है कि समाजवादी रूपांतरण समकालीन संसार की अति सामान्य प्रक्रिया का अंश मात्र है। वास्तविक तथ्य यह है कि यह सामाजिक विकास की निरंतरता (सातत्य) को, घटनाओ की ऐतिहासिक निरंतरता को, और अतिम विश्लेषण मे ऐतिहासिक प्रक्रिया की नियम शासित प्रकृति को अप्रभावित करने का प्रयास है। प्रश्न को इस प्रकार उपस्थित करना साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के सामाजिक आदर्शों को और इसकी प्रेरक शक्तियों को अत्यधिक मनमाने दुरुपयोग की वस्तुओ मे परिवर्तित कर देता है।

एक और विषय प्रासगिक है जिस पर बहुत चर्चा की गई है : इस सिद्धान्त को प्रसिद्ध अमरीकी समाजशास्त्री आल्विन टॉफ़लर ने अपनी पुस्तक **फ्यूचर शॉक** मे और तत्पश्चात् **दि इकोस्पाज्म** में सूत्रित किया है। लेखक इस प्रस्थापना से आरभ करता है कि वर्तमान समाज ऐसे युग में पहुँच गया है जिसे मुख्य रूप से परिवर्तन द्वारा पहचाना जाता है, और इस समय यह अति गंभीर रूपान्तरणों के कगार पर है। वह मानव समाज के समग्र इतिहास के लगभग 65-65 वर्षों के 800 जीवनकालों में विभाजित करते हुए कहते हैं कि इनमे से 650 जीवनकाल गुफाओं मे बिताए गए। केवल पिछले 70 में ही उसके पास लिखित भाषा रही। केवल पिछले छः कालों ने छापे के शब्द देखे हैं। केवल पिछले चार ही सटीकता से समय को माप सकें और पिछले दो ने ही बिजली की मोटर का उपयोग किया। मनुष्य समाज के अधिकांश लोग वर्तमान वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के लाभो का उपयोग करने में समर्थ हैं, 800वें जीवन काल में।[1] केवल हाल की और विशेष रूप से विद्यमान जीवित, पीढ़ियाँ ही जीवन की ऐसी प्रचड गति में सम्मिलित हैं जिनकी कल्पना भी पूर्ववर्तियों मे कोई नही कर सकता था। उनके पास अत्यधिक जटिल प्राविधिक उपकरण है, वे अधिक ऊर्जा का उपयोग कर सकते है, उनके पास सूचना की क्षिप्रतम व्यवस्था है और वैज्ञानिक विकास पर पहले कभी की अपेक्षा अधिक खर्च कर सकने हैं।

टॉफ़लर मानते हैं कि आधुनिक पूँजीवादी समाज अब अधिक समय तक सामान्य तरीकों से विज्ञान और प्रविधि के विकास को जारी नही रख सकता, लेकिन अपने इन सचमुच निर्विवाद वक्तव्यों में से लेखक निजी निष्कर्ष निकालता है। जबकि प्रत्येक कल्पनीय क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार की जा रही है वह वर्ग सबधों केक्षेत्र को स्पष्ट रूप से पृथक् कर देता है। ब्रजेजिन्स्की की तरह ही उसने भी वर्तमान युग के पूँजीवाद और समाजवाद के बीच मुख्य अन्तर्विरोधों को गौण अन्तर्विरोधों के समूह मे विलीन करने का निश्चय कर रखा है तथा पूंजीवाद के दोषों को सक्रमण काल की विशेषताओ के रूप में मान लिया है। वह लिखते हैं—"क्रान्ति सस्थाओ व सत्ता संबंधों को छिन्न-भिन्न कर देती है। स्पष्ट रूप से यही है जो आज सभी उच्च प्राविधिक राष्ट्रो मे हो रहा है···। यह एक ऐसा समाज है जो क्रान्तिकारी परिवर्तन की पीड़ा से ग्रस्त है···जो आज हो रहा है वह पूँजीवाद का संकट नही है, अपितु स्वय औद्योगिक समाज का है, भले ही इसका राजनीतिक रूप कुछ भी क्यो न हो। हम इसके साथ ही साथ एक युवा क्रान्ति का अनुभव कर रहे हैं, एक लैंगिक क्रान्ति का, एक जातीय क्रान्ति का, एक औपनिवेशिक क्रान्ति का, एक आर्थिक क्रान्ति का और इतिहास मे सर्वाधिक गहन और क्षिप्रगामी प्राविधिक क्रान्ति का अनुभव कर रहे हैं। हम औद्योगिकवाद के सामान्य

1. देखें आल्विन टॉफलर : फ्यूचर शॉक पृ० 15

सकट में जी रहे है। एक शब्द मे, हम सर्वोच्च औद्योगिक क्रान्ति के मध्य में है।[1] वह अनुभव करते है "इसकी परिणति एक नई आश्चर्यपूर्ण अर्थव्यवस्था के रूप मे होगी जिसका अनुभव आज तक किसी व्यक्ति को नही हुआ।" यह जिन मुद्दों को उठाएगी वे "बीसवी शताब्दी के भीषण संघर्ष को कम कर देगी—पूंजीवाद एवं कम्युनिज्म के संघर्ष को तुलनात्मक रूप से महत्वहीन कर देगी। क्यो ये मुद्दे आर्थिक और राजनीतिक कठमुल्लापन मे दूर ले जाएँगे।" इसके अनुसार टॉफलर की 'सैद्धान्तिक खोज' यह है कि वह एक साथ ही पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा का भी प्रयत्न करते हैं और क्रान्तिकारी की भूमिका भी निभाना चाहते है। इस दृष्टि से वह पूंजीवाद तथा कम्युनिज्म के बीच विद्यमान विवाद को गौण बना देते है और इसका सही अभिप्राय स्पष्ट किए बिना सर्वोच्च औद्योगिक क्रान्ति के पक्ष में बात करने लगते हैं।

अपनी नई कृति 'दि इको-स्पाज्म रिपोर्ट'[2] (न्यूयार्क, 1975) मे टॉफलर संकट के समाधान के संबध में अपनी अनुशंसाओं को ठोस रूप देने का प्रयास करते हैं। वह अपनी कृति के मुख्य विचार को सादे कागज पर सूत्रित करते है। वास्तव में वह 'फ्यूचर शॉक' की सामान्य अवधारणा को ही दुहराते है लेकिन 1974-75 में पूंजीवादी देशों को जकड़ने वाले संकट की स्थितियों के अनुकूलित करते हुए। उनका यह विश्वास है कि आज जो कुछ दिखाई दे रहा है यह सामान्य आर्थिक उथल-पुथल नही है, बल्कि कुछ अधिक गहरी घटना है जिसे पारंपरिक अर्थशास्त्र के ढांचे में नही समझा जा सकता। यही कारण है कि चकित (उद्भ्रान्त) अर्थ-शास्त्री शिकायत करते है कि "पुराने नियम अधिक समय तक काम नही दे सकते।" टॉफ़लर स्वीकार करते हैं कि हम औद्योगिकवाद के सामान्य संकट के साक्षी हैं और साथ ही अर्थव्यवस्था के ह्रास के, पश्चिम के ऊर्जा पर आधारित होने और इसके मूल्यो की समस्त व्यवस्था का ह्रास होने के साक्षी हैं। उनके पर्याप्त रूप से युक्तिहीन निराशावादी निष्कर्ष उन्हे इस घोषणा से नही रोक्ते कि सर्वोच्च औद्योगिक सभ्यता का उदय हो गया है जो औद्योगिक न हो कर प्राविधिक है।

निस्संदेह, व्यावहारिक अनुशंसाएँ ('संक्रमण काल के लिए कार्य नीति') प्रस्तुत करने के लिए टॉफलर के प्रयास पूर्णतया असहाय है। अधिक से अधिक, वे केवल प्रक्रिया का पुनरुत्पादन करते हैं जो पहले से ही इजारेदार पूंजीवाद की गहराइयों मे विकसित हो रही है: अन्तर्राष्ट्रीय निगमों के संक्रमणकालीन क्रियाकलाप, दीर्घ-कालीन आयोजनो का समेकन—श्रम शक्ति का सेवा उद्योगों मे संचरण और इसी

1. वही पृ० 165-66
2. वही—पृ० 195
3. टॉफ़लर 'इको—स्पाज्म' का प्रयोग समकालीन पूंजीवाद के संकटों को वर्णित करने के लिए करते हैं।
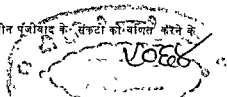
प्रकार के कार्यों की पूर्ति। यह केवल गलत अवधारणा का परिणाम है कि इन्हे पूँजीवाद के विकल्प के रूप मे माना जा सकता है।

'फ्यूचर शॉक' से तुलना करने टॉफ़लर की इस वाद की रचना को उनके आगे बढ़े कदम के रूप में नही देखा जा सकता। तथापि यह इस अर्थ में कुछ रुचि उत्पन्न करती है कि यह पूंजीवादी समाजशास्त्रीय चिन्तन के विकास की 1970 के आरंभ की निश्चित धारा को प्रकट करती है। 'प्राविधिक नियतिवाद' की सामान्य अवधारणा की रक्षा के लिए किए गए प्रयास की और बढ़ती हुई दरारों को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है। साम्राज्यवादी सिद्धान्तकार कुछ अधिक ठोस निष्कर्षों और सिफारिशो से उसे और पुष्ट करते है। यही टॉफ़लर ने भी किया है और डब्ल्यू० रोस्तोव, डी० बैल तथा जो० गॉलब्रेथ ने भी निस्संदेह अपने-अपने ढग से। तथापि तथ्य यह दिखाते हैं कि पूंजीवादी धारणा के समर्थक इस मार्ग से थोड़ा ही प्राप्त कर सकते हैं। जीवन की अमूर्त प्रस्थापनाओं का कोई भी अनुमान और वास्तविकता मे उसकी तुलना या तो कम्युनिस्ट विरोधी सिद्धान्तों का अति दिवालियापन प्रदर्शित करती है अथवा सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं वास्तविक संशोधन द्वारा सुधार की आवश्यकता प्रदर्शित करती है। प्राविधिक नियतिवाद के समर्थकों के संबध में भी यह सच है।

इसके प्रमाण वॉल्ट रोस्तोव की कृति **"पॉलिटिक्स एंड द स्टेंजज ऑफ ग्रोथ"** मे पाए जा सकते हैं जहाँ कि वह गृह-नीति एवं विदेश नीति के ठोस मुद्दों पर सामान्य निष्कर्षो को लागू करने का प्रयास करते हैं। इस स्थापना से आरंभ करके कि 1970 का दशक राजनीति का दशक होगा, ठीक वैसे ही जैसे कि 1960 का दशक आर्थिक उन्नति में लक्षित किया गया था, वह राजनीति की दृष्टि को सुरक्षा, कल्याण और सवैधानिक व्यवस्था—जिसमे विकास की मंजिलें भी सम्मिलित है—की आर्थिक समस्याओ के साथ समन्वित और सतुलित करने के प्रयास के रूप मे परीक्षा करने का प्रयास करते हैं।[1] वह अब भी विश्वास करते हैं कि उनका मुख्य कार्य संयुक्त राज्य अमरीका मे प्राविधिक समाज के बचाव के लिए बोलना है लेकिन वह वितरण के स्तरीकरण और अन्य मानवीय कार्यों और सामाजिक उद्देश्यों के लिए नागरिकों के हक़ बढाए जाने पर अधिक बल देते है।

यह स्वीकार करते हुए कि 1970 के दशक के आरभ मे संयुक्त राज्य अमरीका को गभीर कठिनाइयो तथा अन्तर्विरोधो का सामना करना पड़ा, रोस्तोव अपनी अनुशंसाओं मे स्पष्ट रूप से स्वयंसिद्ध बातों को दुहराने से आगे नही बढ़ते। गृहनीति के क्षेत्र मे वह अत्यन्त अस्पष्ट दुविधापूर्ण फार्मूलो का—क्रियाकलाप के

1. रोस्तोव, पालिटिक्स एड स्टेजेज आफ ग्रोथ, कैंब्रिज, 1971, पृ० 2

गतिशील संतुलन, आर्थिक उन्नति, कल्याण, राष्ट्रीय सुरक्षा और संवैधानिक व्यवस्था का समर्थन करते है। जहाँ तक विदेश नीति का सबंध है वह अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य मे शाति सन्तुलन की एक बार फिर वकालत मे अच्छी कोई बात नही सोच पाते। एक शब्द मे, रोस्तोव वर्तमान घटनाओं के वर्गीय सारतत्व से पाठकों को पृथक् रखने की और पूंजीवाद को पुन स्थापित करने की चेष्टा करते है। जहाँ तक व्यावहारिक सुझावो का मामला है, वह टॉफ़लर जैसे ही है उनमे सत्ताधारी वर्ग द्वारा पहले मे व्यवहृत सरकारी नीति से अधिक कुछ नही।

क्या पूंजीवाद के अन्तर्गत नियोजित अर्थव्यवस्था संभव है ?

इस बात को जानते हुए भी कि वर्तमान मे पूंजीवाद सकटापन्न है न तो रोस्तोव और न टॉफलर ही कोई गंभीर सिफारिशें करने का साहस करते है, वे वस्तुत: न चाहते हुए भी अपनी अवधारणाओ की विशुद्ध रूप से प्रचारात्मक प्रकृति को ही सामने ला रहे हैं।

जे० के० गालब्रेथ की स्थिति इससे कुछ भिन्न है। केवल इसलिए नही कि वह स्वीकार करते हैं कि पूंजीवाद मे अन्तर्विरोध बढ रहे है, और तदनुसार वह अपने पुराने विचारो में संशोधन भी करते हैं, अपितु वह शासक वर्ग से भी हो रहे परिवर्तनों के प्रति विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया प्रकट करने का अनुरोध भी करते है। उनके विचारो का यह विकास सचमुच महत्वपूर्ण है।

यह एक लाक्षणिक बात है कि पिछले कुछ ही वर्षों के भीतर उनकी प्रकाशित पुस्तक **"द न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट"** मे वह इस बात से सहमत हो जाते है कि विरोधी शक्तियों—इजारेदारियो, ट्रेड यूनियनों और राज्य—का सामान्य संतुलन एक तो इजारेदारियों के पक्ष मे बदल जाता है और दूसरे, 'परिपक्व निगम' मूल्य कम करने की इच्छा नही रखते। दूसरी ओर, यह स्पष्ट हो गया है कि बढती हुई समृद्धि के बावजूद मेहनतकश जनता वर्ग संघर्ष को समाप्त करने को तत्पर नही है। गालब्रेथ की मान्यता है इन तत्वों के सम्मिलित हो जाने के आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा-प्रसार की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है।

इसके अनेक कारणों में से एक की ओर इशारा करते हुए वह घबराते नही। गत 1969 में उन्होने अपनी पुस्तक **"हाउ टु कन्ट्रोल द मिलिटरी"** में लिखा था : "यहाँ हम अमरीका की राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली, जिसकी रूपरेखा इसके पूर्वजों ने बनाई थी और जो आज भी युवकों के समक्ष चित्रित की जाती है, के स्पष्ट विपर्यय को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। वह दृष्टिकोण अन्तिम सत्ता, अन्तिम संप्रभुता के जनता में निहित होने को स्वीकार करता है। और माना जाता है कि यह सत्ता सर्वग्राही है। राज्य की परिधि के अन्तर्गत नागरिक उन व्यक्तियों—राष्ट्रपति तथा कांग्रेस के सदस्यों के माध्यम से जिन्हे कि वह चुनता है अपनी

इच्छा को अभिव्यक्त करता है। निजी क्षेत्र मे वह इस कार्य को बाजार मे वस्तुओं की खरीद करके पूरा करता है। वे (नागरिक) सम्बन्धित आपूर्ति-फ़र्मों को—जैसे जनरल मोटर्स, जनरल इलैक्ट्रिक, न्यूजर्सी का स्टैंडर्ड आयल—हिदायत देते हैं कि वे किस वस्तु का निर्माण करेंगी और बेचेंगी।

"तथापि, यहां हम सशस्त्र सेनाएँ और निगमों को पाते है, जो उनकी आपूर्ति करते है, निर्णय करते हैं और कांग्रेस को तथा जनता को निर्देश देते है। जनता उनको स्वीकार करती है और बिल चुकाती है।"[1]

संयुक्त राज्य अमरीका मे तथाकथित सोवियत ख़तरे और कम्युनिस्ट विरोधी उन्माद की खिल्ली उड़ाते हुए गालब्रेथ कहते हैं—"पुराने नारे—हमें विश्वव्यापी कम्युनिस्ट हमले का मुकाबला करना चाहिए, हमें आक्रमण को पुरस्कृत नही करना चाहिए, हमें अपने बहादुर साथियों का साथ देना चाहिए—सिर्फ तब तक ही नही लगाये जाते रहे जब तक कि बार-बार दुहराने से ही उनका अर्थ समाप्त नही हो गया बल्कि घटनाओं ने ही उन्हें हास्यास्पद सिद्ध नही कर दिया।"[2] लेकिन बड़ी इजारेदारियो के प्रवक्ता के रूप मे वह उनकी भूमिका को सैनिक औद्योगिक कॉम्प्लैक्स के आधिपत्य में कम करके आँकते है और इसकी सारी जिम्मेदारी पेंटागन तथा सेना पर डाल देते है।

स्पष्ट रूप से समस्या के समाधान से कतराते हुए गालब्रेथ अनिवार्य रूप से अस्थिर और अनिश्चित निष्कर्षों पर पहुँच जाते हैं। वह कहते है कि सैनिक औद्योगिक काम्प्लैक्स की सत्ता मे कटौती से अमरीकी अर्थव्यवस्था सबल हो सकती थी लेकिन इस प्रस्ताव के साथ वह इतनी शर्तें लगा देते है कि वह स्वयं ही अपनी सिफारिशो की व्यावहारिकता पर प्रश्नचिह्न लगा देते है।

कुछ समय पश्चात् ही गालब्रेथ को फिर एक बार आधुनिक पूंजीवाद के लक्षणों के अपने मूल्यांकन में सशोधन के लिए विवश होना पड़ा। फ़रवरी 1971 में पैरिस मे दिए भाषण में तथा उसके बाद अप्रैल 1972 मे इटली की एक पत्रिका को दिये साक्षात्कार मे, उन्होंने कहा कि पूँजीवादी समाज संसाधनों और उत्पादन के वितरण के अपने तरीकों मे न्याय संगत नही रहा और मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति पर विजय पाने मे इसकी अक्षमता रही। यह आबादी की मकान, नगरीय यातायात, चिकित्सा सहायता आदि प्राथमिक आवश्यकताओं को विवेकपूर्वक सतुष्ट करने मे अक्षम है और साथ-ही-साथ भारी मात्रा मे ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में लगा है जो या तो निरर्थक हैं अथवा सामान्य रूप से हानिकारक हैं। शस्त्रास्त्रो के निर्माण पर तथा प्रशासनिक तंत्र के भरण-पोषण पर अत्यधिक व्यय ने अर्थव्यवस्था को खोखला कर दिया है।

1. जॉन केनेथ गालब्रेथ, हाउ टू कन्ट्रोल द मिलिट्री न्यूयॉर्क 1969 पृ० 30-31

2. वही पृ० 149

उनका विचार है कि इस दयनीय स्थिति का उपचार क़ीमतो और वेतनो पर राज्य के नियंत्रण की नई व्यवस्था द्वारा किया जा सकता है जिसे प्रमुख निगमों के साथ संयुक्त रूप से लागू किया जाना चाहिए। पूंजीवादी देशों को आतंकित कर रहे सामाजिक ख़तरे के अपने समक्ष विद्यमान रहते निगम वस्तुतः ऐसा करने मे रुचि ले सकते है।

तत्पश्चात्, उन्होंने इन विचारों को 1973 मे बोस्टन से प्रकाशित अपनी पुस्तक **"इकोनॉमिक्स एण्ड पब्लिक पर्पज"** में विस्तृत किया है। यह नई प्रमुख कृति उनकी ग्रन्थत्रयी में अन्तिम है। (अन्य दो है **"दि एफ्लुएण्ट सोसायटी"** और **"द न्यू इण्डस्ट्रियल स्टेट"** जो क्रमश. 1958 और 1967 मे प्रकाशित हुई)। एक ओर तो वह पुराने निष्कर्षों को दुहराते है और दूसरी ओर उनको संशोधित करते है। गालब्रेथ का अन्तर्विरोधी सिद्धान्त स्वयं पूंजीवादी वास्तविकता के अन्तर्विरोधों को प्रतिबिम्बित करता है। उनके इस प्रयास से कुछ नये लक्षण भी, जो हाल के वर्षों में उभरे है, सामने आये है।

घटनाक्रम ने, विशेष रूप से मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति की निरंतरता ने, उनके इन पुराने कथनों को कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के विकास के साथ श्रमिक जनगण को उधर ले जा सकेगी जिसे वह **'समृद्ध समाज'** कहते हैं—पूर्णतया खंडित कर दिया है।

गालब्रेथ के पुराने कथनों के बावजूद तथाकथित योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (अर्थात प्रौढ़ निगम) और बाज़ार व्यवस्था जिसमें छोटी फर्में और साधारण उद्यमी भी सम्मिलित है, के बीच शक्तियों के परस्पर संबंधों में अत्यंत गहन और स्पष्ट परिवर्तन हो गया है। गालब्रेथ का उद्देश्य (आशय) वर्तमान पूंजीवादी समाज वर्ग विरोधो के स्थान पर 'नियोजन' और 'बाज़ार' अर्थव्यवस्था के बीच विरोध मे विश्वास उत्पन्न करना है। वह इन दोनों श्रेणियों में से प्रत्येक को कुछ-कुछ स्वायत्त, पृथक्कृत तथा सामाजिक रूप से सजातीय घटनाक्रिया मान लेते हैं। लेकिन वास्तव मे बड़े निगम, जो राज्यतंत्र से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहते है, तथाकथित बाज़ार व्यवस्था का अपनी स्थिति सुदृढ करने के लिए व्यापक रूप से उपयोग करते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर वे पूंजीवादी समाज के सामाजिक अंतर्विरोधो को तीव्र कर रहे है।

यह अधिकाधिक प्रमाणित होता जा रहा है कि निगमों और पूंजीवादी राज्य द्वारा व्यवहार में लाई जा रही आर्थिक उन्नति की नीति किस प्रकार पूंजीवाद को सुदृढ नही कर सकती। इसके विपरीत, पहले से विद्यमान अंतर्विरोधों के साथ-साथ पूंजीवादी विश्व नए अंतर्विरोध उत्पन्न कर रहा है जिनमें निरंकुश मुद्रास्फीति का संकट महानगरो का संकट और पर्यावरण के भग होने का संकट भी सम्मिलित है।

इन सब पर तथा अन्य नकारात्मक घटनाओं पर विचार करते हुए गालब्रेथ अमरीकी अर्थव्यवस्था के संबंध में एक अति कठोर टिप्पणी करते हैं—कि अर्थ-व्यवस्था में अपने को पूर्ण बनाने की प्रवृत्ति होती है अब इस पर विश्वास नही किया जाएगा। असमान विकास, असमानता, अगंभीर तथा अनियमित नव्य प्रयोग पर्यावरण पर आक्रमण, व्यक्तित्व की उपेक्षा, राज्य पर नियंत्रण, मुद्रास्फीति, अंतर औद्योगिक सहयोग मे असफलता व्यवस्था के अंग बन गए है जैसे कि वे वास्त-विकता के ही अंग है। ये साधारण खामियाँ नही हैं, जैसे कि मशीन पर विकृत आकृति का चक्का हो जिसे कोई एकदम पहचान सकता है और हटा सकता है और इस प्रकार वह ठीक कर दी जाती है। वे गहराई मे व्यवस्था से जुड़ी है।"[1]

तो फिर, उनकी राय मे क्या किया जाना चाहिए? "न तो अर्थशास्त्री ही क्रांतिकारी होते है और न उनकी पुस्तकें ही,"[2] वह अपनी पुस्तक के आरभ मे ही यह लिखते है किंतु फिर भी वह अपने कार्यक्रम को 'नया समाजवाद' कहता है। जिसके संबंध मे उनका विश्वास है कि वह गंभीर असुविधा, उल्लेखनीय सामाजिक अव्यवस्था और कभी स्वास्थ्य और जनकल्याण को घातक क्षति पहुँचाने की कीमत अदा करके ही हम उससे निस्तार पा सकते।

"नया समाजवाद विचारधारात्मक नही होगा यह परिस्थितियों की विवशता से उत्पन्न होगा।"[3]

अब, आर्थिक उन्नति के प्रभाव और राज्य, इजारेदारियाँ और ट्रेड यूनियनो के बीच गतिशील सतुलन प्राप्त करने की अपेक्षा गालब्रेथ 'नियोजन व्यवस्था' तथा 'बाजार व्यवस्था' के बीच अंतर्विरोधों को समाप्त करने के कार्य को केंद्रीय महत्व देते हैं। वह उनके विषय में मूलरूप से नई आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के रूप में सोचते है जिनकी रूपरेखा समस्त पूँजीवादी विश्व विकास और परस्पर क्रिया के क्रम मे नवीकरण के लिए तैयार की गई थी।

उनके मत में इन दोनों व्यवस्थाओं के बीच के विरोध को, जिसे कि वह मुख्य सामाजिक विरोध के रूप में चित्रित करते है, नियोजन व्यवस्था को (अर्थात् इजारेदारी को) समेकित करके समाप्त किया जा सकता है। सीधे-सादे रूप से आवश्यकता यह मान्यता देने की है कि हमारे विश्वास एवं सुविधाजनक सामाजिक गुण स्वयं हमारे अंदर से नही उत्पन्न हुए अपितु नियोजन व्यवस्था से प्राप्त हुए हैं।"[4] इसलिए वह इसे राजनीतिक एवं आगे बढ़े हुए विशेषाधिकार प्राप्त क्षेत्र के रूप में चित्रित करते है जिस पर कि विश्वास के साथ दावा किया जा सके क्योंकि

---

1 जॉन कैनेथ गालब्रेथ, इकनॉमिक्स एंड द पब्लिक पर्पज, बोस्टन, 1973, पृष्ठ 21।

2 वही पृष्ठ 17

3. वही, पृष्ठ 277

4. वही, पृष्ठ 225

"नियोजन व्यवस्था के स्वयं अपने प्रयोजन होते हैं और वह उसके अनुसार जनता को व्यवस्थित कर देती है।"[1]

दूसरी ओर, वह राज्य की भूमिका को भी बढ़ाना आवश्यक समझते है जिसे कि पूरे समाज के हित के लिए कार्य करना चाहिए क्योंकि 'आधुनिक राज्य'...पूंजीपतियों की कार्यकारिणी समिति नही है अपितु यह प्राविधिक संरचना की कार्यकारिणी अधिक प्रतीत होती है।"[2] सिद्धांततः वह उत्पादन के साधनों के समाजीकरण का विरोध करते हैं क्योकि वह यह सोचते है कि सत्ता की समस्या की जड़ें सामान्यतया संगठन मे हैं, निजी उद्योगो मे नही। लेकिन उसके साथ-ही-साथ वह इस स्थापना का भी विरोध करते है एक सीमा तक ऐसी कुछ शाखाओं के राष्ट्रीयकरण का समर्थन करके जिनमे लाभ कम होता है किंतु वे समाज के लिए विशेप रूप से आवश्यक है (मकान निर्माण, चिकित्सा सस्थान...नगर यातायात और कुछ अन्य भी); और अश धारकों से युद्ध उद्योगो के खरीदने की भी बात करते है।

उसका दावा है कि इन उपायो से अधिक प्रगतिशील कर निधान, प्रत्येक नागरिक के लिए निश्चित आय, स्त्रियो के लिए आर्थिक मुक्ति की सुरक्षा, शिक्षा के समान अधिकार सुरक्षित करना, स्वास्थ्य की व्यवस्था को सुधारना और इसी प्रकार के कार्य, जो सब 'जीवन के गुणों' को निर्मित करते है, करना संभव होगा।

इसका अर्थ यह है कि गालब्रेथ की 'नए समाजवाद' की अवधारणा के पीछे अति सावधानी भरे ऐसे सुधारों के कार्यक्रम के अतिरिक्त कुछ नही है जिसका राज्य इजारेदारी पूंजीवाद के मुख्य आधारों पर किसी प्रकार का प्रभाव नही पड़ता हो। यह तथ्य अपरिवर्तित रहता है, यद्यपि अपने नवीनतम वक्तव्य मे गालब्रेथ सैनिक-औद्योगिक कॉम्प्लैक्स के क्षेत्र सहित उद्योगो की कतिपय पिछड़ी शाखाओ के राष्ट्रीयकरण के रूप में कतिपय अतिवादी उपायों की संभावनाओ को भी स्वीकार करते है। यह सर्वथा स्पष्ट है कि इजारेदारी के अंतर्गत राष्ट्रीयकरण से पूंजीवादी समाज की अंतर्विरोधो से पूर्ण सामाजिक प्रकृति सुधर नही सकती।

'प्राविधिक' संप्रदाय के दूसरे प्रतिनिधियो की तरह गालब्रेथ भी वैज्ञानिक कम्युनिज्म के निष्कर्षों की उपेक्षा करते हैं। वह ऐतिहासिक प्रक्रिया की मूल नियमितताओ, वर्ग-संघर्ष और मजदूर वर्ग की भूमिका, लेनिन के साम्राज्यवाद के विश्लेषण और समाजवादी क्रांति के उसका सिद्धांत जैसे मूल मुद्दों पर अप्रत्यक्ष रूप से विवाद खड़ा करते हैं। इस प्रकार, वर्तमान पूंजीवादी वास्तविकताओं के बहुत से रूपों पर अपने आलोचनात्मक रवैये तथा पूंजीवाद के समर्थन के अति-

1. वही, पृष्ठ 241
2. वही, पृष्ठ 172

घृणित जड़ चिंतन के संशोधन के बावजूद जॉन गालब्रैथ अंतिम विश्लेषण में स्वयं को स्वप्नलोक के निष्कर्षों तक सीमित कर लेते है।

वास्तव में, अपनी नवीनतम पुस्तक में उनके तर्क उसी विचार तक सीमित हैं, यानी कि प्राविधिक संरचना के हाथों में पूंजी के क्रियाकलाप का पूंजी के स्वामित्व से तथाकथित पृथक्करण कर दिया जाता है। इसी कारण, वह दावा करते हैं कि प्राविधिक संरचना सामान्य जन हित से संबद्ध होकर स्वयं वर्गोपरि संस्थान में बदल जाती है, अधिक संचित मुनाफों से नहीं। और यह संस्थान सोद्देश्य रूप से अंशधारकों के लिए उदार और निश्चित लाभांशों को सुनिश्चित करने तथा श्रमिकों के लिए उच्च एवं स्थायी वेतन के लिए चिंता करेगा।

वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं होता। पूंजीवादी विश्व का समग्र चित्र पूर्णतया भिन्न है। इजारेदारियाँ अपने लिए अधिकतम संभव मुनाफा कमाने में लगी हैं। श्रमिक निरंतर किंतु असफलता के साथ अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाने का प्रयास करते हैं जबकि प्राविधिक संरचना के प्रतिनिधि इस स्थिति को बदलने के लिए कुछ भी नहीं कर रहे क्योंकि इस मामले में वे कुछ भी करने में अपने को असमर्थ पाते है। इसलिए, जॉन गालब्रैथ की अवधारणा न तो कुछ स्पष्ट करती है, और न व्यावहारिक मूल्य का कुछ देती ही है।

अध्याय : 5

आर्थिक विकास की अवधारणाओं का संकट

निराशावाद के उत्स

1970 के पूर्वार्ध में ही यह स्पष्ट हो गया था कि 'प्राविधिक नियतिवाद' का विचार अपने समर्थकों को असमाधेय अन्तर्विरोधों की अंधी गली में ले जा रहा है। पूँजीवादी संबंधों के ('प्राविधिक' सिद्धान्तों में इस प्रकार की परिघटनाएँ जैसे बेरोजगारी, मुद्रा स्फीति एवं वर्ग संघर्ष सुस्पष्ट रूप से अनुपस्थित थीं) सामाजिक वर्गीय सारतत्व से बच निकलने के प्रयास औद्योगिकवाद के समर्थकों के विरुद्ध मुड़ गये।

आज ये सब परिघटनाएँ इतने विशाल अनुपात प्राप्त कर चुकी है कि प्रचार संबंधी कोई भी वक्तव्य अधिक समय तक उनकी उपेक्षा नही कर सकता।

इन घटनाओं के विद्यमान रहते हुए रोस्तोव, बैल, टॉफ़लर और गालब्रेथ पूँजीवादी विश्व में नये और अधिक गंभीर अन्तर्विरोधों के विषय में बात करते हैं। वे सभी 'औद्योगिकवाद' की अवधारणा को किसी भी प्रकार नया रूप देना चाहते हैं और व्यावहारिक सिफ़ारिशें प्रस्तुत करते हैं, जो परीक्षा किये जाने पर सर्वथा असफल प्रमाणित होती है?

वैज्ञानिक विचार की यह व्यावहारिक अक्षमता है जो कि 'औद्योगिकवाद' के विचार के गंभीर संकट को सबसे आगे होकर प्रकट करती है। लेनिन के साम्राज्यवाद एवं समाजवादी क्रान्ति के सिद्धान्त के विरोध के लिए प्रचार की एक अवधारणा के रूप में उसकी कल्पना की गयी। इसका जीवन के साथ तीक्ष्ण एवं शान्त न होने वाला अंतर्विरोध है। और यह इस तथ्य के बावजूद कि इस मंच पर विपरीत ही नहीं विरोधी—अत्यधिक आशावादी और अत्यधिक निराशावदी—भविष्यवाणियाँ साथ-साथ भली-भाँति देखी जा सकती हैं। दूसरी ओर, औद्योगिक समाज की अवधारणा को पूँजीवाद के बढ़ रहे संकट द्वारा उत्पन्न नयी परिघटना के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करते हुए गालब्रेथ और उनका अनुसरण करने वाले अन्य बूर्ज्वा पण्डितों ने अपनी विचारधारा में एक नये महत्वपूर्ण तत्व को प्रविष्ट किया।

अन्य चीजों के साथ उन्होंने सुझाव दिया कि मुद्रा-स्फीति और संकट की अन्य परिघटनाओं की जड़ें भी अत्यधिक आर्थिक विकास व सामान्य उत्पादन में सतत वृद्धि के लिए प्रयास की नीति में निहित हैं जो दीर्घकाल में जीवन के गुणों को क्षति पहुँचाती है।

1950 और 1960 के दशकों में पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने जो लिखा और बोला उससे तुलना करने पर इन विचारों पर कुछ अन्य अभिप्राय हावी दिखायी देते हैं। उनकी वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के मंगलकारी परिणामों की रंगीन आशाओं का स्थान ये वक्तव्य ले रहे हैं कि यह मानव समाज के लिए उपयोगी होने की अपेक्षा अधिक हानिकारक प्रभावित हो रहा है। पश्चिमी पंडितों के झूठे आशावाद का स्थान मायूसी और भ्रान्ति ने ले लिया है। बैल निष्कर्ष निकालते हैं; युक्तिसंगतता की, अथवा कहना चाहिए कि एक विशिष्ट प्रकार की तर्क संगति की आशाएँ निश्चित रूप से मन्द हो गयी हैं। "समाज के न्याय संगत संगठन की अवधारणा गड्डमड्ड हो गई है।"[1] औद्योगिकवाद एक अन्य प्रमुख प्रवक्ता फ्रांसीसी विद्वान् रेमण्ड आरों ने अपनी पुस्तक का नाम रखा है: ला डिसइल्यूज़न्स डु प्रोग्रेस।[2]

'औद्योगिक' अथवा 'औद्योगिकोत्तर' समाज, के पूर्ववर्ती वर्णनों में वर्तमान पूँजीवाद के स्थायी बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, समाज के समस्त चारित्रिक और नैतिक मूल्यों का बढ़ता हुआ संकट—जैसे भयानक रूपों को साधारणतया मौन रह कर उपेक्षा कर दी जाती थी, इस विश्वास पर कि विज्ञान एवं प्रविधि के विकास होने पर मनुष्य समाज इन सब बुराइयों से स्वतः मुक्त हो जाएगा। अब बुराइयों को सहज रूप से ही सीधे-सीधे अशुभ वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के माथे मढ़ दिया जाता है जिसे कि भद्दे नगरीकरण के लिए, आबादी के विस्फोट के लिए, पर्यावरण को छिन्न-भिन्न करने के लिए और आणविक युद्ध के ख़तरे के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी मान लिया गया है।

संयुक्त राज्य अमरीका की वैज्ञानिक राष्ट्रीय अकादमी के अध्यक्ष फ़िलिप हैंडलर कहते हैं कि विज्ञान एवं प्रविधि को दोषी ठहराना (अभिशाप देना) राष्ट्रीय सनक बन गयी है, अभी कल तक इनको जीवन के बाहुल्य का वरदानमाना जाता था।

आज अधिकाधिक चिन्ताकुल आवाजें उठ रही हैं कि परमाणु के विषय में बात करने का अर्थ है भविष्य में होने वाला आणविक सर्वनाश, रेडियो-धर्मिता का विस्तार और प्रजनन संबंधी घातक परिवर्तन; कि भारी उद्योग प्रत्यक्षतया

1. डेनियल बैल 'टैक्नोक्रेसी एंड पॉलिटिक्स' इन सर्वे 1971, खंड 16, अंक 6, पृ० 52-24
2. रेमंड आरों 'ला डिसइल्यूज़न्स डु प्रोग्रेस' एसे सुरला डायलेक्टीक डि सा मोर्डनिटी, पेरिस 1969

पर्यावरण समुद्रो और नदियो के प्रदूषण के लिए जिम्मेदार है; आधुनिक औषिधि विज्ञान की उपलब्धियाँ कुरूप अपग बच्चो के जन्म के लिए और औषधि सेवन के व्यसन के लिए जिम्मेदार है। 'मानव मस्तिष्क के कार्यों के सबंध मे तथा प्रजनन संबंधी यांत्रिकता के विषय मे बढ़ता हुआ ज्ञान निरंकुशता की ओर ले जा रहा है; चिकित्सा और स्वच्छता के क्षेत्र मे प्राप्त सफलताएँ आबादी बढने के लिए उत्तर-दायी हैं आदि-आदि।

यह बहुत पहले की बात तो नही है जब पूँजीवादी सिद्धांतशास्त्री प्राविधिक प्रगति तथा आर्थिक विकास के प्रशंसा भरे गीत गाया करते थे और भावुकतापूर्ण तर्क देते थे कि इससे बाहुल्य की ओर जाना संभव होगा; और बहुलता से 'सामूहिक उपभोग' की ओर जिससे सार्वभौम समृद्धि सुनिश्चित होगी। किन्तु यही आवाजें तब शोकगीत बन गयी जब यह दिखाई देने लगा कि प्राविधिक प्रगति दो स्वामियों की सेवक नही है और वह पूँजीवाद को अन्तर्विरोधों से नही बचा सकती। बूर्ज्वा पंडितों के लिए यह अधिक उपयुक्त होता कि वे अपनी कृतियों को 'प्रगति से मोह भंग' के बजाए 'प्रगति की भ्रान्ति' का नाम देते।

किसी भी प्रकार के जादूटोनों से चाहे वे वैज्ञानिक और प्राविधिक ही क्यों न हो सामाजिक प्रगति को नही रोका जा सकता। आज की दुनिया में आर्थिक प्रगति को रोकने का आह्वान देना और वह भी ऐसे समय जबकि बहुत से देश शताब्दियों से दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में जी रहे हैं, और लाखो लोगों को यह भी नही मालूम कि आज उन्हें खाना मिलेगा भी या नही और कल वे अपने बच्चों के लिए भोजन प्राप्त कर सकेंगे या नही।

फिर भी पूँजीवादी सिद्धान्तकार 'प्राविधिक' सिद्धान्त के संबंध मे इस नये वक्तव्य के विषय में प्राविधिक विकास के नकारात्मक परिणामो को सामने लाते हुए अपने अनुमानों को जारी रखेंगे। उनका ख़याल है कि पूँजीवाद के अन्तर्गत प्राविधिक प्रगति की विध्वसक प्रकृति बन गयी है वह स्वय प्राविधिक प्रगति के कारण उत्पन्न हुई है, पूँजीवाद के कारण नही।

अधिसंख्य न होने पर भी, अनेक पूँजीवादी अन्वेषक आर्थिक उन्नति में अपने मोहभंग की अर्थात् उन आशाओं के नष्ट होने की अभिव्यक्ति करते है कि विज्ञान और प्रविधिक विकास से पूँजीवादी समाज की अधिकाश तात्कालिक समस्याओं को सुलझाना संभव होगा। वे सभी अब ऐसे बलि के बकरे को खोज रहे है जिस पर इन आशाओं के पूरा न होने की ज़िम्मेदारी डाल सकें, और स्वभावतः वे पूँजीवाद को मुख्य अपराधी नही मानते। उनमें से बहुत सें पूछते है कि क्या आधुनिक समाज के अन्तर्विरोध आर्थिक विकास के कारण उत्पन्न हुए है या इसके बिना ही उत्पन्न हुए हैं। और अधिकाधिक बूर्ज्वा सिद्धातकार मांग करते है कि 'अतिशय' आर्थिक उन्नति को प्रतिबधित (सीमित) कर देना चाहिए। 'सामूहिक उपभोग'

और 'सार्वभौम समृद्धि' पर आधारित समाज की सन्निकटता के संबंध में आशावादी भविष्यवाणियों के स्थान पर विश्वव्यापी पर्यावरणिक महाविनाश अथवा प्रलय के बारे में अशुभ भविष्यवाणियां की जा रही हैं।

रोम का क्लब : जीवित रहने के उपाय

प्रलय के नये विचार का सर्वाधिक पूर्ण रूप से नया विवरण रोम के क्लब[1] के तत्वावधान मे आयोजित एक मौलिक अध्ययन मे प्रस्तुत किया गया है जिसे प्रविधि के मैसाच्यूसेट्स संस्थान के डेनिस मीडोज के नेतृत्व मे किया गया था। पुस्तक[2] में अनेकों गणनाएं, तालिकाएं, रेखाचित्र दिए गए हैं : इसमे औद्योगिक समाज के विकास की 'खतरनाक' प्रवृत्तियों के न केवल सांगोपांग विश्लेषण का दावा किया गया है बल्कि यह दावा करने का भी साहस किया गया है कि इसमे आसन्न संकट को दूर करने के लिए ठोस उपायों की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है।

पूंजीवादी विचारकों के मध्य हाल के वर्षों मे निरतर विद्यमान प्रवृत्ति के अनुरूप लेखकों ने वर्तमान काल की संकटपूर्ण प्रकृति और आसन्न परिवर्तन के क्रांतिकारी चरित्र को पूरे बल के साथ प्रदर्शित किया है। 'प्राविधिक' दिशा के अन्य अनुगामियों की तरह ही उन्होंने भी इसके समक्ष विद्यमान समस्याओं की जटिलता के संबंध मे मानव समाज को चेतावनी दी और यह उल्लेख किया है कि 'परपरागत संस्थाएं और नीतियां उनका सामना नही कर सकती और न वे उनके सारतत्व को ही पूरी तरह ग्रहण कर सकती है।'[3] इस सामान्य वक्तव्य से सतुष्ट न होकर लेखकों ने इन समस्याओं के सार को इस प्रकार स्पष्ट किया है : धन के ढेर के बीच निर्धनता, संपन्नता मे दरिद्रता, वातावरण का अधःपतन, संस्थाओं मे विश्वास का भंग होना, अनियंत्रित नगरीय विस्तार, नियोजन की असुरक्षा; युवा

पीढ़ी का अलगाव, परंपरागत मूल्यों का अस्वीकार, और मुद्रास्फीति और अन्य वित्तीय एवं आर्थिक विघटन।"[1]

ऐसा प्रतीत हो सकता था कि इस प्रकार की स्पष्ट व बेलाग घोषणा के बाद उपर्युक्त सभी तथ्यों का उचित मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा। लेकिन लेखकों ने भिन्न मार्ग को ही वरीयता दी। उन्होंने वास्तव में इस प्रकार के महत्वपूर्ण विषयों पर मौन रहना ही ठीक समझा : जैसे, श्रम और पूंजी के बीच सामाजिक अन्तर्विरोधों का बढ़ना, मेहनतकश जनता के शोषण का बढ़ना, और मज़दूर वर्ग का अधिकाधिक विस्तार और बेरोज़गारी मे वृद्धि। पूंजीवादी विश्व मे औद्योगिक और विकासशील देशों के बीच बढ़ते हुए विरोध के विषय मे एक शब्द भी नही कहा गया, नव उपनिवशवाद की नीति के विरोध में, हथियारबंदी की दौड, समस्त मानवता के विरुद्ध सैन्यवाद और आक्रमण की नीति के ज़हरीले परिणामों के संबंध मे कुछ भी नही कहा गया।

मीडोज़ और उसके सहयोगी अपने प्रतिवेदन मे विश्व से संबंधित पांच मुख्य प्रवृत्तियों की गतिशीलता की खोज करते है : औद्योगीकरण का तेज़ी से विस्तार, जनसंख्याओं में तेज़ी से वृद्धि, व्यापक कुपोषण, नवीकरणयोग्य संसाधनों की समाप्ति और वातावरण का विकृत होना। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विश्व विकास के बुनियादी कारकों का चुनाव इस प्रकार किया गया है कि उन पर ध्यान केन्द्रित किया जाए जो कमोबेश समान रूप से पूरे मानव समाज से संबंध रखते है, बिना इस बात का विचार किए कि उसकी सामाजिक संरचना कैसी है। एक शब्द मे, लेखकों ने सारांश मे दो सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओ में विश्व के विभाजन की उपेक्षा की है और वे 'एकमात्र विश्व समाज' के नए किंतु निरर्थक प्रतिरूप के साथ सामने आते है।

प्रतिवेदन के लेखकों का विश्वास है कि इन घातक शक्तियों, विश्व के विकास के पांच कारकों, की अंत: क्रिया सहजभाव से मानवता को महानाश की ओर धकेल रही है। सामान्य रूप से कहा जाए तो, उपर्युक्त पांचों अंग अपरिहार्य रूप से परस्पर क्रिया करते है और उनका विकास मानव समाज को अंधी गली मे धकेलता है। उदाहरण के लिए, खाद्य उत्पादन में वृद्धि के बिना आबादी नही बढ़ सकती और यह केवल औद्योगिक विकास के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। औद्योगिक विकास खनिज संसाधनों के उत्पादन बढ़ने पर निर्भर है जिनके शोधन से पर्यावरण का प्रदूषण बढता है, और इससे कृषि उत्पादन को क्षति पहुंचती जो इसी क्रम में जनसंख्या वृद्धि को रोकती है।

लेखक कहते हैं, इस अविभाज्य और अन्तर्विरोधी परस्पर क्रिया के सभी

---

1. वही, पृ॰ 10

और 'सार्वभौम समृद्धि' पर आधरित समाज की सन्निकटता के संबंध में आशावादी भविष्यवाणियों के स्थान पर विश्वव्यापी पर्यावरणिक महाविनाश अथवा प्रलय के बारे में अशुभ भविष्यवाणियाँ की जा रही है।

रोम का क्लब : जीवित रहने के उपाय

प्रलय के नये विचार का सर्वाधिक पूर्ण रूप से नया विवरण **रोम के क्लब**[1] के तत्वावधान में आयोजित एक मौलिक अध्ययन मे प्रस्तुत किया गया है जिसे प्रविधि के मैंसाच्यूट्स संस्थान के डेनिस मीडोज के नेतृत्व मे किया गया था। पुस्तक[2] में अनेको गणनाएँ, तालिकाएँ, रेखाचित्र दिए गए है : इसमे औद्योगिक समाज के विकास की 'खतरनाक' प्रवृत्तियों के न केवल सांगोपांग विश्लेषण का दावा किया गया है बल्कि यह दावा करने का भी साहस किया गया है कि इसमे आसन्न संकट को दूर करने के लिए ठोस उपायों की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है।

पूंजीवादी विचारकों के मध्य हाल के वर्षों मे निरंतर विद्यमान प्रवृत्ति के अनुरूप लेखकों ने वर्तमान काल की संकटपूर्ण प्रकृति और आसन्न परिवर्तन के क्रातिकारी चरित्र को पूरे बल के साथ प्रदर्शित किया है। 'प्राविधिक' दिशा के अन्य अनुगामियों की तरह ही उन्होने भी इसके समक्ष विद्यमान समस्याओ की जटिलता के संबंध मे मानव समाज को चेतावनी दी और यह उल्लेख किया है कि 'परंपरागत संस्थाएँ और नीतियां उनका सामना नही कर सकती और न वे उनके सारतत्व को ही पूरी तरह ग्रहण कर सकती है।'[3] इस सामान्य वक्तव्य से संतुष्ट न होकर लेखकों ने इन समस्याओं के सार को इस प्रकार स्पष्ट किया है : धन के ढेर के बीच निर्धनता, संपन्नता में दरिद्रता, 'वातावरण का अधःपतन, संस्थाओ में विश्वास का नष्ट होना, अनियंत्रित नगरीय विस्तार, नियोजन की असुरक्षा; युवा

---

1 रोम का क्लब : वैज्ञानिको, व्यवस्थापको, जननेताओ, राजनीतिज्ञो का 1968 मे स्थापित एक अन्तर्राष्टीय संगठन। रोम के क्लब के संगठनकर्ताओ मे इटली के फिएट उद्योग की निरीक्षक कौंसिल पूर्व अध्यक्ष औलियो पेस्सेई भी सम्मिलित थे, जिन्होंने इसे उल्लेखनीय राजनीतिक अधिकार प्रदान रने की भी व्यवस्था की। उदाहरण के लिए, फरवरी 1974 मे भावी कार्यक्रम पर विचार के लिए साल्ज़बर्ग के समीप हुई बैठक में आस्ट्रिया के चासलर ब्रूनो क्रीस्की, मैक्सिको के राष्ट्रपति लुइस एचें वेरिया, सेनेगल के राष्ट्रपति लियोपोल्ड सेन्गोर, कनाडा के प्रधानमंत्री पियरे इलियट त्रूदो, स्वीडन के प्रधानमंत्री ओलोफ पाम, नीदरलैंड के प्रधानमंत्री जे-एम डेन यूइल और अन्य प्रसिद्ध राजनयिक उपस्थित थे।

2. डोनेला एच॰मीडोज, डेनिस एवं मीडोज, जार्गेन रेंडर्स विलियम डब्ल्यू बेहरेंस 'द लिमिट्स टू ग्रोथ', 'ए रिपोर्ट फार ए क्लब ऑफ रोम्स प्रोजेक्ट ऑन द प्रेडिकमेंट ऑफ मेनकाइंड, यूनिवर्सल बुक्स, न्यूयार्क, 1972,

3. वही, पृ॰ 9-10

पीढ़ी का अलगाव, परंपरागत मूल्यों का अस्वीकार, और मुद्रास्फीति और अन्य वित्तीय एवं आर्थिक विघटन।"[1]

ऐसा प्रतीत हो सकता था कि इस प्रकार की स्पष्ट व बेलाग घोषणा के बाद उपर्युक्त सभी तथ्यों का उचित मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा। लेकिन लेखकों ने भिन्न मार्ग को ही वरीयता दी। उन्होंने वास्तव में इस प्रकार के महत्वपूर्ण विषयों पर मौन रहना ही ठीक समझा: जैसे, श्रम और पूंजी के बीच सामाजिक अन्तर्विरोधों का बढ़ना, मेहनतकश जनता के शोषण का बढ़ना, और मजदूर वर्ग का अधिकाधिक विस्तार और बेरोज़गारी मे वृद्धि। पूंजीवादी विश्व में औद्योगिक और विकासशील देशों के बीच बढ़ते हुए विरोध के विषय मे एक शब्द भी नही कहा गया, नव उपनिवेशवाद की नीति के विरोध में, हथियारबंदी की दौड, समस्त मानवता के विरुद्ध सैन्यवाद और आक्रमण की नीति के ज़हरीले परिणामों के संबंध मे कुछ भी नही कहा गया।

मीडोज़ और उसके सहयोगी अपने प्रतिवेदन मे विश्व से संबंधित पाँच मुख्य प्रवृत्तियों की गतिशीलता की खोज करते है: औद्योगीकरण का तेज़ी से विस्तार, जनसंख्याओं में तेज़ी से वृद्धि, व्यापक कुपोषण, नवीकरणयोग्य ससाधनो की समाप्ति और वातावरण का विकृत होना। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विश्व विकास के बुनियादी कारकों का चुनाव इस प्रकार किया गया है कि उन पर ध्यान केन्द्रित किया जाए जो कमोबेश समान रूप से पूरे मानव समाज से संबंध रखते हैं, बिना इस बात का विचार किए कि उसकी सामाजिक संरचना कैसी है। एक शब्द में, लेखकों ने सारांश मे दो सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में विश्व के विभाजन की उपेक्षा की है और वे 'एकमात्र विश्व समाज' के नए किंतु निरर्थक प्रतिरूप के साथ सामने आते हैं।

प्रतिवेदन के लेखकों का विश्वास है कि इन घातक शक्तियो, विश्व के विकास के पाँच कारकों, की अंत: क्रिया सहजभाव से मानवता को महानाश की ओर धकेल रही है। सामान्य रूप से कहा जाए तो, उपर्युक्त पाँचों अंग अपरिहार्य रूप से परस्पर क्रिया करते है और उनका विकास मानव समाज को अंधी गली में धकेलता है। उदाहरण के लिए, खाद्य उत्पादन में वृद्धि के बिना आबादी नही बढ़ सकती और यह केवल औद्योगिक विकास के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। औद्योगिक विकास खनिज संसाधनों के उत्पादन बढ़ने पर निर्भर है जिनके शोधन से पर्यावरण का प्रदूषण बढता है, और इससे कृषि उत्पादन को क्षति पहुँचती जो इसी क्रम में जनसंख्या वृद्धि को रोकती है।

लेखक कहते हैं, इस अविभाज्य और अन्तर्विरोधी परस्पर क्रिया के सभी

1. वही, पृ० 10,

तत्वों का बढ़ता हुआ प्रभाव गति की निरन्तरता द्वारा एक सामान्य रेखीय प्रक्रिया के रूप में नही होता। यह उस नियम के अन्तर्गत आता है जिसे घातांकीय नियम कहते है अर्थात् उसका वेग सदा तीव्र होता रहता है। विश्व की जनसंख्या की वृद्धि पर ज्यामितीय प्रगति में वृद्धि की वही दर लागू होती है जिस दर से फ़ैक्टरियों और नगरों की संख्या बढ़ती है और यह माँग करती है संसाधनों की निरन्तर वृद्धि की। आर्थिक प्रगति पहले से भी ऊँची संख्या की माँग करती है ठीक उस लोक कथा की तरह जिसमे कि शतरंज के चतुर आविष्कर्ता ने करने की कोशिश की थी। पुरस्कार के रूप में उसने सुल्तान से कहा कि पहले वर्ग में वह चावल का एक दाना रखे और हर वर्ग में उसे दुगुना करता जाए। शतरंज फलक की पहली पंक्ति में उनकी संख्या बहुत अधिक न थी और बहुत धीरे-धीरे बढ़ती थी, लेकिन अगली पंक्ति में संख्या लाखों तक, फिर करोड़ों तक और फिर वह खगोलीय अंकों तक जा पहुँची ! खेल के आविष्कर्ता को दिए वचन को निभाने के लिए सुल्तान को सारी दुनिया को जीतकर उसे चावल के खेत मे बदल देना पड़ता। निन्दकों का कहना है कि चालाक सुल्तान ने इसका सीधा-सा समाधान ढूँढ़ निकाला—उसने केवल उस बुद्धिमान को मौत के घाट उतार दिया।

क्या यह समाधान ऐसा ही नही है जिसे कि रोम की गोष्ठी के विद्वान् प्रस्तुत कर रहे हैं, क्योकि वे वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति की माँगों के सम्मुख अपने को अक्षम पाते हैं ? वे कहते हैं कि इस आसन्न महासंकट से बचने का एकमात्र मार्ग है विश्व की जनसंख्या को और साथ-ही-साथ औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि को रोकना। संगणक यंत्र की सहायता से इन पाँचों तत्वों (अंगो) की संभावित गतियों का आकलन करते मीडोज दल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जन्म दर और मृत्यु दर संतुलित रही चाहिए तथा पूंजी-विनियोग भी मूल्य-ह्रास निधि से अधिक नही होना चाहिए। उनके मत से वृद्धि के स्थान पर स्थिरीकरण होना चाहिए। वे लिखते हैं : "वस्तुतः, हमारा विश्वास है''' कि नयी नयी क्रियाओं और प्राविधिक विकास का पक्षधर समाज, समानता और न्याय पर आधारित समाज संभवतः वर्तमान मे अनुभव की जा रही वृद्धि की स्थिति की अपेक्षा वैश्विक संतुलन का स्थिति मे ही विकसित हो सकता है।"[1]

इस प्रकार का है उनका निष्कर्ष। यद्यपि प्रतिवेदन के लेखक उन समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, जो वास्तव मे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं और वर्तमान पूंजीवाद में जिनकी गहरी जड़ें हैं, शून्य वृद्धि जैसी अवधारणा उनके सही समाधान में किंचित भी लाभदायक नही है। ये काल्पनिक और प्रतिगामी दोनों प्रकार की है। काल्पनिक, क्योंकि पूंजीवादी प्रतिस्पर्धा तथा ऊँचे मुनाफ़ों के

1. वही, पृ० 165

लिए दौड़ की स्थितियों में उत्पादन को जाम कर देने की बात सर्वथा अकल्पनीय है, स्वयं इजारेदारियाँ ही कभी इसे स्वीकार नही करेंगी क्योकि वे पूंजी के संचय किए बिना जीवित नही रह सकती।

प्रतिगामी, क्योंकि इसकी जड़ें सामाजिक यथास्थिति को बनाये रखने मे है और इसका सुझाव है कि पूंजीवाद की स्थिरता के लिए पूंजीवादी देशो में मेहनतकश जनता को अपने पर अतिरिक्त भौतिक त्याग का—बढ़ती बेरोजगारी, उपभोग मे कटौती और जीवन के सामान्य स्तर में ह्रास आदि—भार उठाना चाहिए। पूंजीवादी दुनिया मे मेहनतकश जनता स्वभावतः सबसे अधिक कष्ट भोगेगी।

शून्य-वृद्धि की अवधारणा वैचारिक रूप से मजदूर वर्ग और जनतान्त्रिक शक्तियों को नष्ट करने के लिए तैयार की गयी है क्योंकि यह विद्यमान पूंजीवाद के गहराते संकट पर पर्दा डालती है। मानव समाज की कठिन स्थिति के आरोप को यह भौतिक, प्राविधिक एवं जन संख्या के तत्वो पर डाल देती है। इसका लक्ष्य वर्ग-संघर्ष की तीव्रता को नष्ट करना है।

रोम की गोष्ठी की द्वितीय एवं तृतीय परियोजनाएँ

'वृद्धि को सीमित करो' प्रतिवेदन ने पश्चिमी विचारकों मे हड़कम्प पैदा कर दिया। वादविवाद मे इसकी कतिपय स्थापनाओं पर प्रश्न उठाये गये इसकी आँकड़ों संबंधी भविष्यवाणियों की बार-बार जाँच की गयी और उनमे से कुछ की आलोचना भी की गयी।

अन्त मे रोम की गोष्ठी को मीडोज़ और उसके दल द्वारा निकाले निष्कर्षों को अस्वीकृत करने के लिए बाध्य होना पड़ा, इसलिए नही कि उनमे कुछ भूलें और खामियाँ थी अपितु मुख्य रूप से इसलिए कि **शून्य वृद्धि** की अवधारणा इजारेदारी पूंजी के हितो से मेल नही खाती थी।

इसके बाद रोम की गोष्ठी की दूसरी रिपोर्ट सामने आयी। इसे अमरीका के क्लीवलैंड विश्वविद्यालय के प्रणाली विश्लेषण के विशेषज्ञ प्रोफेसर मिहाजलो मेसरोविक तथा पश्चिमी जर्मनी के प्रोफ़ेसर एडुअर्ड पेस्टल ने तैयार किया। यद्यपि दूसरी रिपोर्ट के निष्कर्ष उतने क्रान्तिकारी नही है (लेखकों ने सामान्यतया आर्थिक वृद्धि को अस्वीकृत नही किया, अपितु इसे सीमित करने की ही सिफ़ारिश की है) क्योंकि इसने गोष्ठी के पूर्ववर्ती दृष्टिकोण की सामान्य रूपरेखा को पूर्णतया बनाये रखा है।

अपने पूर्ववर्तियों की तरह ही लेखको ने समकालीन पूंजीवाद की संकटपूर्ण स्थिति के संबंध में चर्चा की है। उन्होंने भविष्यवाणी की कि सन् 2000 से 2025 मे विश्व मे अभूतपूर्व जनसंख्या-विस्फोट होगा, प्राकृतिक संसाधन निःशेष हो जाएँगे, ग़रीब और अमीर के बीच आर्थिक असमानता भयानक रूप से गहरी

हो जायेगी और वह आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को तीव्र कर देगी। इस 'प्रलय दिवस' को टालने के लिए लेखकों ने जिन उपायों की सिफ़ारिश की है उन्हे वे अत्यधिक निर्णायक समझते है। उनके मत से विश्व की व्यवस्था मौलिक रूप से पुन संगठित की जानी चाहिए। अन्यथा, अस्वस्थ कैंसर रूपी वृद्धि के, स्वभावतः, विश्व के विभिन्न भागो मे अपने विशिष्ट रूपों में व्यक्त, समस्त परिणामो का ख़तरा है। और इसके विपरीत, सुव्यवस्थित वृद्धि के अन्तर्गत विभिन्न अंगों के बीच घनिष्ठ संबध उनमें से प्रत्येक के विकास को नियंत्रित करते हैं।

एक वैश्विक सत्ता के रूप में मानवता एक विकल्प तक आ पहुँची है: या तो कैंसररूपी यह वृद्धि निरंतर होती रहे अथवा सुव्यवस्थित विकास की ओर संक्रमण हो।

लेखकों ने साहस के साथ यह प्रस्तावित करते हुए कि, विश्व व्यवस्था भौतिक रूप से पुनर्संगठित की जानी चाहिए, बड़े अस्पष्ट नुस्खे और व्यावहारिक सिफारिशें प्रस्तुत की है। कुल मिला कर वे मानव समाज को समस्त परेशानियों (चिंताओ) से मुक्त करने में इतनी रुचि नही रखते जितनी कि पूँजीवाद को बचाने में जिससे कि यह सुचारू रूप से कार्य कर सके। यह मनुष्य और प्रकृति के बीच की खाई को पाट कर प्राप्त किया जा सकता है। अपने नुस्खों में मैसारोविक और पेस्टल दोनों समान रूप से विश्व के दो व्यवस्थाओं में विभक्त होने की और स्वयं पूँजीवाद के आन्तरिक विकास के नियमो की उपेक्षा करते हैं। कुल मिलाकर वे निरर्थक खीच-तान करते हैं और पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से असहाय हैं।

उदाहरण के लिए जब 'सुव्यवस्थित' अथवा 'संतुलित' वृद्धि का विचार रखते हुए जिसके विषय में वे समझते हैं कि यह विद्यमान 'असंतुलित एवं विभेदित वृद्धि' का स्थान लेगी, लेखकों के पास अत्यधिक महत्व की वस्तु के विषय में स्वभावतः कहने के लिए कुछ नही है—कि पूँजीवाद की योजनाविहीन और अराजकतापूर्ण अर्थव्यवस्था की स्थितियों के अंतर्गत इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

उनकी यह मान्यता है कि विश्व-समस्याओं के संबंध मे विभेदीकृत दृष्टिकोण इस विषय में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अपने अध्ययन में उन्होने……"साझी परम्परा, जीवन शैली व इतिहास, आर्थिकविकास का स्तर (मंज़िल), समाजिक-राजनीतिक क्रम और उन मुख्य समस्याओं की जो समय-असमय इन देशों के समक्ष आती रहती हैं, विश्व-व्यवस्था को दस भागों मे विभक्त किया: (1) उत्तरी अमरीका (2) पश्चिमी यूरोप (3) जापान (4) आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और विकसित बाज़ार अर्थव्यवस्था वाले शेप देश (5) सोवियत संघ सहित पूर्वी यूरोप (6) लैटिन अमरीका (7) उत्तरी अफ्रीका और मध्यपूर्व (8) उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका (9) दक्षिण एवं दक्षिणपूर्व एशिया तथा (10)

अंतर्राष्ट्रीय, वर्गीय और वैचारिक संघर्ष का तीव्र होना आदि उनकी नजर से ओझल हो जाता है। उनकी व्यावहारिक सिफ़ारिशें—विश्व बैंक की स्थापना और ऊर्जा, प्राकृतिक संसाधनों, खाद्य, औद्योगिक विनियोजन और अन्य मामलो के संबध में इसी कारण से टिक नही पाती। इन संस्थाओं के क्रियाकलाप का वर्णन भी बड़ी अस्पष्ट भाषा मे है क्योंकि लेखक विश्व को सम्पूर्ण सामान्यीकृत इकाई के रूप में देखते हैं, मसलों की वास्तविक स्थिति से पृथक्कृत काल्पनिक रूप मे।

पूंजीवादी विश्व मे वर्तमान परिस्थिति के दिवालियापन को आवश्यक रूप से स्वीकार करते हुए रोम गोष्ठी की तीसरी रिपोर्ट असाधारण समस्याओं के क्रान्तिकारी समाधान ढूंढने मे पूंजीवादी आर्थिक विचार की अक्षमता का और प्रमाण प्रस्तुत करती है।

इससे ज्ञात होता है कि मीडोज, फिर मेसारोविक और पेस्टल, तथा अन्त में टिंबरजेन के नेतृत्व मे दलों के लेखको द्वारा तैयार की गयी भिन्न-भिन्न तीनों रिपोर्टें जो गोष्ठी के सैद्धान्तिक अध्ययन है वास्तव में पूंजीवाद के काल्पनिक समर्थन के विभिन्न रूप है। वे इस प्रकार के नव्य प्रयोग प्रस्तुत करती है जो तथ्य रूप मे चीज़ों को उसी रूप मे छोड़ देते है जैसी कि वे है, पूंजीवाद के आधारों को रंचमात्र भी प्रभावित नही करतें और काल्पनिक आशाओं के प्रकट करने से आगे नही बढती तथा पूंजीवादी विश्व के शासको को अपनी भूख को थोड़ा कम करने की सलाह देते है।

दूसरी ओर, 'विश्व के विनाश की अवधारणा' स्पष्ट रूप से इस तथ्य की स्वीकृति है कि आर्थिक प्रगति पूंजीवाद की समस्याओं का समाधान नही है और कि पूंजीवाद के अन्तर्गत वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति के लाभो का उपयोग मानव समाज को अंधी गली में ले जाता है। क्या यह पूंजीवादी सामाजिक संबंधों के दिवालियापन की स्वीकृति नही है? युगों से यह सोचा जा रहा है कि आर्थिक विकास और पूंजीवाद अविभाज्य हैं। पूंजीवादी सिद्धान्तकार सदा यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। आर्थिक प्रगति दोनों ही थी, आवश्यक भी और वांछनीय भी, और आज वे यदि 'सीमित वृद्धि' "वृद्धि को सीमित करो' और 'शून्य वृद्धि' की बात करते हैं तो क्या इससे यह प्रमाणित नही होता कि पूंजीवाद की क्षमता सकुचित हो रही है, कि यह कुछ सीमाओ मे ही काम कर सकती है और यह कि इसके आरक्षित भंडार खाली हो रहे हैं?

जीवन की गुणवत्ता की पहेलियां

यह कहना आवश्यक नही कि कम्युनिज्म के विरोधी विचारक सर्वाधिक प्रयास इस बात के लिए कर रहे हैं कि जनता को यह समझने से रोका जाये कि पूंजीवाद मौत की घड़ियां गिन रहा है। कुछ समय से वे लोग 'जीवन की गुणवत्ता'

को सुधारने के नारे का उपयोग कर रहे हैं जिससे कि लक्ष्य सिद्धि का पथ प्रकाशित हो सके। यह शब्दावली जॉन गालब्रेथ द्वारा प्रचारित की गयी थी। जबकि अमरीकी विद्वान ने इसका उपयोग सामान्य रूप से गरीबी के उन्मूलन की आवश्यकता पर बल देने के लिए किया था, धीरे-धीरे इसकी अधिक व्यापक व्याख्या की जाने लगी विशेषतः यूरोप में जहाँ कि पूंजीपतियों ने और सामाजिक जनवादी सिद्धान्तकारों ने इसे उत्सुकता के साथ ग्रहण कर लिया।

जो लोग आज भी विश्वास नहीं करते कि मानव-समाज के समक्ष विद्यमान समस्याएँ प्राविधिक साधनों और आर्थिक उन्नति की सहायता से हल कर ली जाएँगी, वे पश्चिम जर्मनी के दार्शनिक ज्यार्ज पिह्त की द फ्यूचर ऑफ़ द ह्यूमनरेस को उद्धृत करते हैं। पिह्त कहते हैं"'मानव जाति का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि कोई गुणात्मक छलांग सामूहिक भौतिकता और सामूहिक बुद्धि को ऊँचे स्तर तक उठायेगी अथवा नहीं"'आकांक्षित भविष्य आसमान से नहीं आयेगा, नयी संपदा की खोज, और हमारी प्राविधिक और औद्योगिक संसाधनों का बहुगुणित होने सफलताओं के परिणामस्वरूप, क्योंकि ये उपलब्धियाँ चाहे कितनी भी आवश्यक हों केवल विनाश की प्रक्रिया को तीव्र कर सकती हैं जब तक कि कोई ऐसी राजनीतिक व्यवस्था नहीं बनायी जाती जो इन समाधनों का समझदारी के साथ सुविचारित उपयोग कर सके। जर्मन दार्शनिक ने निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत किया : "मानव-समाज अपना भविष्य केवल नैतिक तथा आध्यात्मिक पहलक़दमी की सहायता से ही सुरक्षित कर सकता है जो इतिहास में अनुपम होगा।"[1]

पश्चिमी विचारकों को समस्या की ऐसी विस्तृत व्याख्या बड़ी अनुकूल लगी। उन्होंने इसे एक ऐसे सामान्य मंच के रूप में माना जिस पर कि 1960 एवं 1970 के दशकों के पूंजीवादी विचारों की भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाली धाराएँ विद्यमान रहें और एक-दूसरे की पूरक भी बन सकें। आधुनिक समाज के जीवन में वस्तुतः 'प्राविधिक नियतिवाद' को अस्वीकृत किए बिना ('औद्योगिकवाद' और 'औद्योगिकोत्तरवाद' की अवधारणाएँ) 'जीवन की गुणवत्ता' को बढ़ाने की अपील साथ ही अत्यधिक आर्थिक विकास के विरुद्ध चेतावनी है (पर्यावरणिक विध्वंस की अवधारणा)। इस विचार पर भी जोर दिया जाता है कि विश्व इस समय इस प्रकार गंभीर परिवर्तनों की देहरी पर खड़ा है जिसके समक्ष समाजवादी परिवर्तन पृष्ठभूमि में चले गए हैं और निरर्थक हो गए हैं।

'जीवन की गुणवत्ता' का नारा सबसे बढ़कर जनता का ध्यान पूंजीवाद के अंतर्विरोधों से, इसके सामाजिक विरोधों की कटुता से दूर हटाने के लिए, इस तथ्य

1. ज्यार्ज पिह्त' म्युत ज्योर युतोपी डाई आसेन' मचेन, 1970, पृ० 145

को छिपाने के लिए कि मजदूर वर्ग का शोषण बढ़ गया है, तथा उसको समाज के वास्तविक क्रांतिकारी रूपांतरण के सही उद्देश्य से अलग हटाने के लिए, दिया गया है। यह नारा यह भ्रम पैदा करने के लिए दिया गया है कि मजदूरों के पक्ष में सामाजिक स्थितियों का सुधार—गरीबी का उन्मूलन, बेरोजगारी में कमी, जन-स्वास्थ्य में सुधार, शैक्षणिक सुअवसर और काम और विश्राम की स्थितियाँ तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सम्मान की सुरक्षा—पूँजीवाद के अंतर्गत ही संभव है। यह सब करने के लिए, वे कहते हैं, कि यह अनिवार्य है कि आर्थिक उन्नति को स्थायी किया जाय (जब कभी भी उत्पादन के पूँजीवादी संबंधों से इसका विवाद अधिक मुखर हो उठे) और विद्यमान पूँजीवादी संस्थानों के स्वरूप को सबसे बढ़कर, गुणात्मक लक्षणों पर विश्वास करते हुए बदला जाय (समाजवादी देशों की तुलना में जो कथित रूप से शुद्ध 'परिमाणात्मक' सुधार की आकांक्षा रखते हैं)।

बहुत से सामाजिक जनवादी नेता इस दृष्टिकोण से पूर्ण रूप से सहमत हैं। वे मानते हैं कि कतिपय बूर्ज्वा संस्थाओं का विकास आवश्यक है कि पूँजीवादी समाज को अधिक समय तक पूंजीवाद न माना जाय अपितु उसका रूप 'जनतांत्रिक समाजवाद' के रूप में स्वीकृति प्राप्त करे। हँस जोशन वोगेल घोषणा करते है, 'जीवन की गुणवत्ता' जनतांत्रिक समाजवाद का केंद्रीय विचार है।

दक्षिणपथी सामाजिक जनवादी नेता उदारतापूर्वक इन संभावनाओं को चित्रित करते हैं जर्मनी की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के कार्यक्रम में लिखा गया है 'जीवन की गुणवत्ता' साधारण रूप से जीवन का ऊँचा स्तर ही नही है। इसके अंतर्गत स्वतंत्रता है, जिसमे भय से मुक्ति, आत्म-निर्णय और आत्मोपलब्धि के लिए, प्रशासन में भागीदारी और उत्तरदायित्व में हिस्सेदारी, ऊर्जा को श्रम में समझदारी के साथ के प्रयोग का अवसर···प्रकृति के साथ तादात्म्य, और सांस्कृतिक मूल्यों की अधिक उपलब्धि, स्वस्थ बने रहने का अवसर अथवा पुनः स्वास्थ्य प्राप्त करना, सम्मिलित है। जीवन की गुणवत्ता का अर्थ है हमारे जीवन की संपन्नता तथा भौतिक उपभोग की सीमाओं के परे जाकर श्रेष्ठ होना।[1]

तथापि, मजदूर जनता के जीवन की गुणवत्ता को सुधारने की उसकी सभी प्रतिज्ञाएँ तब तक थोथी आवाजें रहेंगी जब तक इस बात की गारंटी नहीं होगी कि इनको प्रभावशाली ढग से लागू किया जाएगा। और इस प्रकार की पूर्ण विश्वसनीयता स्वयं श्रमिक जनता की शक्ति में है।

'जीवन की गुणवत्ता' की अवधारणा के अन्य सामाजिक परिघटनाओं के साथ द्वंद्वात्मक संबंध की परीक्षा करके एक सौ वर्ष पूर्व वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के संस्थापकों की कृतियों में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया था। मार्क्स और एंगेल्स ने

1. सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी का पार्टी प्रोग्राम, 1973, पृ. 72

जर्मन विचारधारा में लिखा था : "उत्पादन की इस प्रणाली को सामान्यतया केवल व्यक्तियों के शारीरिक अस्तित्व के पुनरुत्पादन के रूप में ही नहीं समझना चाहिए। बजाय इसके वह इन व्यक्तियों की क्रिया का निश्चित रूप है, उनके जीवन को प्रकट करने का निश्चित रूप, उनकी ओर से जीवन की एक निश्चित प्रणाली है। वे क्या हैं...इसकी संगति (उनके उत्पादन के साथ) ये क्या उत्पादित करते हैं और कैसे उत्पादित करते हैं—के साथ व्यक्त होती है। अतः व्यक्ति क्या हैं यह उनके उत्पादन की भौतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"[1]

'जीवन की गुणवत्ता' सर्वोपरि एक सामाजिक अवधारणा है। इसके मुख्य सूचक हैं: प्रथम, समाज में जो भी सामाजिक, भौतिक और आध्यात्मिक मूल्य उपलब्ध हैं; दूसरे, कौन और किन परिस्थितियों मे इन मूल्यों को पैदा करता है; तीसरे, समाज के सदस्यों मे उनका वितरण किस प्रकार किया जाता है और अंततः किस प्रकार यह वितरण मानव व्यक्तित्व के विकास को प्रोन्नत करता है। अंतिम विश्लेषण में यह मनुष्य ही है जो सब वस्तुओं को मापता है और फलस्वरूप किसी भी समाज का जन्म इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार मनुष्य की भौतिक और आत्मिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करता है।

इस समय तक के पूंजीवादी समाज के विकास का समस्त अनुभव अकाट्य रूप से सिद्ध करता है कि भले ही इसने चाहे जितने मूल्यों का संचय किया हो पूंजीवादी व्यवस्था सदा शोषण की, सामाजिक असमानता की और गंभीर वर्ग-संघर्ष की व्यवस्था रही है। यह मानव समाज की किसी विकट समस्या का समाधान नहीं कर सकती। इसके पक्षपोषक चाहे जितने वायदे क्यों न करें, पूंजीवाद सदा एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था रहेगी, यह सामाजिक विरोध की, बेरोजगारी की, भविष्य में असुरक्षा की, नैतिक अधःपतन की व्यवस्था, भ्रष्टाचार और अपराध की व्यवस्था बनी रहेगी। पूंजीवाद के अंतर्गत 'जीवन की गुणवत्ता' के सुधार के संबंध मे बात करना कैसे संभव है जबकि परोपकार की धारणा के बजाय श्रमिक जनता के शोषण द्वारा मुनाफ़े के ढेर जमा करना सदा और आगे भी इस व्यवस्था की मूल प्रेरक शक्ति रहेगी? और बड़ी-से-बड़ी मानवीय परियोजनाएँ भी इस स्थिति को नहीं बदल सकती।

यह एक अलग बात है कि साम्राज्यवाद के सिद्धातकार जीवन की गुणवत्ता बढाने की आवश्यकता के संबंध में प्रश्न उठाने के लिए मजबूर हो गए है और इस प्रकार की समस्याओं के विषय मे जैसे ग़रीबी का उन्मूलन, जनस्वास्थ्य सेवाओं का और शिक्षा का सुधार, काम और विश्राम की स्थितियों का सुधार तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता और सम्मान की बात करने के लिए बाध्य हो गए हैं। इसके पीछे दो कारण हैं जिनसे वे प्रेरित हुए हैं।

1. कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स कलेक्टेड, वर्क्स, खंड 5, पृ० 31-32

सर्वप्रथम, उन्हें इस तथ्य को ध्यान में रखना पड़ता है कि इन समस्याओं को समाजवाद के अतर्गत भलीभांति हल कर लिया गया है। इसका अर्थ यह है कि 'जीवन की गुणवत्ता' मे सुधार का नारा समाजवाद की चुनौती के प्रत्युत्तर मे पूंजीवादी सिद्धांतकारो की पाखंड पूर्ण प्रतिक्रिया से अधिक कुछ नही है। बल्कि पूंजीवादी प्रचार इस अवधारणा को अपनी नीति का हथियार बना लेता है, इसके लिए वह इसे उस अर्थ से जो समाजवादी विचारधारा में लिया जाता है वचित कर देता है इसे सारहीन बना कर वह इसको पश्चिमी आदर्श में ढाल देता है।

इजारेदार पूंजीपतिवर्ग के सिद्धांतकार 'जीवन की गुणवत्ता' के नारे को समाजवाद का विकल्प मानते है, एक ऐसा विकल्प जो वर्तमान प्रशासन में केवल थोड़ा-सा सुधार प्रस्तुत करता है, पूंजीवादी विश्व में समस्याओं के संबंध में किसी क्रांतिकारी परिवर्तन की बात नही करता।

साम्राज्यवादी शक्तियो के शासक वर्ग इस नारे का उपयोग वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति तथा पूंजीवादी देशों में चल रहे वर्ग-संघर्षों से उत्पन्न चुनौतियो के जवाब के रूप मे करते है। सर्वोपरि यह श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन के संबंधित है जो तेजी से हो रही प्राविधिक प्रगति को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, और काम करने की स्थितियों में सुधार पर अतिरिक्त विनियोजन के बिना सोचा भी नही जा सकता; पूंजीपति वर्ग यह भार उठाने के लिए विवश है, किसी लोकोपकार के विचार से नही, अपितु स्वयं उत्पादन की मांगों को पूरा करने के और मुनाफे बटोरने के लिए। दूसरी ओर, पूंजीवादी देशों मे वर्ग-संघर्ष का वर्तमान स्तर पूंजीवादीयों के सामने वास्तव मे कोई अन्य विकल्प नही रहने देता सिवाय इसके कि वह मजदूर-वर्ग जनता को कुछ और रियायतें दे।

तथापि इस सबध मे उल्लेख योग्य मुख्य बात है, कि 'जीवन की गुणवत्ता' की धारणा के विषय मे कोई समान रवैया नही अपनाया जाता। इस संबंध मे पूंजीवाद का और समाजवाद का अनुभव एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है व परस्पर विरोधी भी है बशर्ते कि उसका मूल्यांकन सीमित और शुद्ध रूप से सब ही तुलना तक सीमित हो।

अन्त मे, क्या पूंजीवादी सिद्धांतकारो को यह नही दिखाई देता कि 'जीवन की गुणवत्ता' के संबंध मे बात उठाने में उन्होंने बहुत विलब कर दिया? यह एक सचाई है कि यह विषय पश्चिम मे कम-से-कम तीन सौ वर्ष तक यूरोप मे पूंजीवादी शासन रहने के बाद उठाया गया। यह इस कठोर सत्य की, कि पूंजीवाद जनता के हित में इस समस्या का समाधान करने में अक्षम है, अप्रत्यक्ष स्वीकृति है।

× × ×

इस प्रकार उपर्युक्त समीक्षा ने साम्राज्यवाद की बुनियादी वैचारिक अवधारणाओं को और समकालीन पूंजीवादी और सुधारवादी विचारों के सामान्य विकास को

निरावृत कर दिया है। गत 15-20 वर्षों में इन विचारों में आश्चर्यजनक बदलाव आया है। पचास के दशक की उल्लास की स्थिति से आगे बढ़ कर यह तेजी से पूँजीवादी विकास के अधिक तर्कपरक मूल्यांकन करने की ओर प्रवृत्त हुआ और तब निराशावाद की गहराइयो मे डूबने-उतरने लगा। स्पष्ट रूप से पूँजीवाद के अंतर्गत जिसकी कोई संभावना नही उसी 'जीवन की गुणवत्ता को सुधारने' के आह्वान के साथ उस भविष्यवाणी के पूरा होने की प्रतीक्षा करने लगा जिसमे उसके क़यामत तक पहुँचने की बात कही गई है।

यह वह समय था जब साम्राज्यवादी सिद्धांतकार कम्युनिज़्म का वास्तविक विकल्प ढूँढ़ने के लिए पागलपन भरा निरर्थक प्रयास कर रहे थे। बूर्ज्वा विद्वानों की सैद्धांतिक अवधारणाओ मे वर्तमान वास्तविकता के अलग-अलग पहलुओं को सही ढंग से तराश कर किया प्रस्तुत जाता है। कभी-कभी इनमें कुछ बहुत मनोरंजक बातें भी दिखाई दे जाती है। किंतु इनमे से कोई भी समग्र सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत नही करता और इसलिए कोई भी सैद्धांतिक प्रबध होने का दावा नही कर सकता। कुल मिलाकर पूँजीवादी विचारधारा आज तक जो उत्पन्न कर पाई है वह है जीवन से असंपृक्त स्थापनाएँ, मानवता के अंधी गली मे पहुँच जाने से संबधित वक्तव्य, और, ऐतिहासिक प्रगति की नई 'कसौटी' के पाखंडपूर्ण पर्दे के पीछे आज की विशिष्ट समस्याओ को टालने का प्रयास। यह वर्तमान युग के मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण के समक्ष टिक पाने मे एकदम असमर्थ है।

अध्याय : 6

विश्व पूंजीवाद का अधःपतन

कारण दूर कर दीजिए, रोग अपने आप चला जायेगा।
—हिप्पोक्रेट्स

लेनिन द्वारा साम्राज्यवाद का विश्लेषण

साठ वर्ष से अधिक हो गए, 1916 की गर्मियों मे, लेनिन ने अपनी 'साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की सर्वोच्च अवस्था' नाम की पुस्तक पूरी की, जो कि आगामी दशको में विश्व-मुक्ति-आन्दोलन की कार्यनीति एवं रणनीति के विविध पहलुओं को कई तरह से पूर्व निर्धारित करने की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण है।

इस काल मे पूंजीवाद के विकास मे गुणात्मक रूप से नये रूप सामने आ रहे थे : श्रम और पूंजी के बीच अन्तर्विरोधों ने अभूतपूर्व तीव्रता प्राप्त कर ली थी और प्रभावक्षेत्रों के पुनः वितरण के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों के संघर्ष का परिणाम विश्व युद्ध के रूप मे आया। पूंजीवादी सम्बन्धों के विकास के कारण उत्पन्न संकट ने मानव समाज को महानाश के कगार पर ला खड़ा किया।

लेनिन की पुस्तक उस काल की ऐतिहासिक स्थिति का प्रत्युत्तर थी। इसने उसके मूल कारणों और पूंजीवाद के साम्राज्यवाद में विकसित होने के रचनाक्रम पर प्रकाश डाला। और साम्राज्यवाद के लाक्षणिक रूपों को तथा गहराई में विद्यमान अन्तर्विरोधो को निरावृत किया। इस कृति में लेनिन ने इतिहास मे साम्राज्यवाद के स्थान को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया—समाजवादी क्रान्ति के उदय के रूप मे, एक वर्ष से थोड़े अधिक समय में हुई 1917 की अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय ने, भविष्यवक्ता के निष्कर्षों को पुष्ट कर दिया। बाद के दशको ने भी लेनिन के दूसरे निष्कर्षों को सही सिद्ध कर दिया।

लेकिन जीवन जितना अधिक लेनिन के साम्राज्यवाद के विश्लेषण के समर्थन मे और प्रमाण देता जा रहा है, उतना ही उनको साम्राज्यवादी विचारक गलत सिद्ध करने के कठिन प्रयास कर रहे हैं। वे सभी उपलब्ध बहानों का उपयोग करके मजदूर

वर्ग को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि लेनिन द्वारा किया गया वैज्ञानिक विश्लेषण अपूर्ण है। ये कहते हैं कि समाजवादी क्रान्ति के नेता ने आगे होने वाले विकास द्वारा उत्पन्न परिघटनाओ को पहले से नही देखा और इसलिए पूंजीवाद की 'क्षमता' को कम करके आंका और इसके सामाजिक अन्तर्विरोधो की तीव्रता को भी 'बढ़ा-चढाकर' बताया और इस प्रकार इसका परिणाम यह हुआ कि उनके निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण रहे।

बड़े पैमाने पर, लेनिन की रचना के सम्बन्ध में बार-बार अपनी एकांगी आलोचना के साथ-साथ पूंजीवादी सिद्धान्तकार कम्युनिस्टों को वास्तविकता को सरल बनाकर दिखाने के लिए लांछित करते है। उनका विश्वास है कि आजकल, और वर्तमान युग में, सामाजिक विकास की परिघटना उस समय से कही अधिक जटिल है जिसकी कल्पना वैज्ञानिक कम्युनिज्म के शास्त्रीय ग्रन्थों मे की गई थी। इस प्रकार कट्टरता का आरोप लगाते हुए वे कहते है कि मार्क्सवादी जानबूझ कर उन नये अवसरों की उपेक्षा करते हैं जो हाल के वर्षों मे पूंजीवाद के समक्ष उद्घाटित हुई है। कम्युनिस्टो पर लचीलेपन की कमी का आरोप लगाया जाता है : कि वे तात्कालिक सामाजिक राजनीतिक समस्याओं के संबंध मे नया और व्यापक दृष्टिकोण काम में लेने की बजाय इनकी ओर अपनी आँखे मूंद लेते है।

लेनिन और उसके अनुयायियों को 'अपदस्थ करने' 'सुधारने' और उनका 'अतिक्रमण करने' के असंभव कार्य को हाथ में लेकर ये दोषान्वेषी पूंजीवादी और संशोधनवादी वस्तुतः कम्युनिस्ट विचारों की आलोचना नही करते। वे वास्तव में जिस पर आक्रमण करते है वह एक प्रकार से उनका अपना आविष्कृत भ्रष्ट सिद्धान्त है जिसकी लेनिनवाद से कोई समानता नही है। वास्तव मे वे ऐतिहासिक विकास की यथार्थ रूप से विद्यमान प्रक्रिया की परीक्षा नही करते, बल्कि केवल उसकी अलग-अलग, मनमाने ढंग से चुनी गई और असबद्ध परिघटनाओं की परीक्षा करते हैं।

कई दशक पहले लेनिन ने उस वैचारिक संघर्ष की मुख्य दिशाओ की भविष्यवाणी कर दी थी जो पूंजीवाद के विकास के साम्राज्यवादी युग मे प्रवेश करते समय आरम्भ हुआ था। उन्होंने लिखा : "यहाँ हम पूंजीवाद के नवीनतम दौर—अर्थात् साम्राज्यवाद के सैद्धांतिक मूल्यांकन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात कहने जा रहे है वह यह है कि पूंजीवाद इजारेदार पूंजीवाद हो गया है। इस बाद की अवस्था पर जोर देना चाहिए क्योंकि पूंजीवादी सुधारवादियों के त्रुटिपूर्ण दावे ये है कि इजारेदार पूंजीवाद या राज्य-पूंजीवाद कोई पूंजीवाद नही है बल्कि उसे—'राज्य-समाजवाद' कहा जाना चाहिए। लेनिन ने आगे बताया कि बावजूद कुछ परिवर्तनों के "हम आज भी पूंजीवाद के अन्तर्गत रह रहे हैं—उसकी नई अवस्था मे, यह सही है, लेकिन इसमें कोई संदेह नही कि अब भी यह पूंजीवाद है। इस प्रकार के पूंजीवाद

की समाजवाद से समीपता सर्वहारा वर्ग के सच्चे प्रतिनिधियों के हाथ में समाजवादी क्रान्ति की समीपता, सुविधा व्यावहारिकता और तात्कालिकता के लिए एक तर्क है, इस बात के लिए सर्वथा नही कि इस प्रकार की क्रान्ति के उन्मूलन को सहन किया जाय। यह पूंजीवाद को अधिक आकर्षक बनाने के लिए प्रयास करने जैसा है। सभी सुधारवादी इस तरह के प्रयास किया करते है।" (ज़ोर हमारा वी० के०)[1]

अपनी कृति "साम्राज्यवाद : पूंजीवाद की सर्वोच्च अवस्था" में लेनिन ने प्रमाणित कर दिया है कि (प्राविधिक प्रगति एवं उत्पादक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप) उत्पादन और पूंजी के केन्द्रीकरण से मुक्त प्रतियोगिता का पूंजीवाद बनेगा जो अधःपतित और मरणासन्न पूंजीवाद के रूप में होगा—साम्राज्यवाद जो पूंजीवाद की अन्तिम अवस्था होगी और समाजवादी पूर्व संध्या क्रान्ति होगी।"

लेनिन ने लिखा "साम्राज्यवाद पूंजीवाद की एक विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्था है। इसके तीन विशिष्ट लक्षण है : (1) इजारेदार पूंजीवाद, (2) परजीवी या क्षीयमाण पूंजीवाद, (3) मरणासन्न पूंजीवाद।"[2]

हमारे वैचारिक विरोधी इन बुनियादी परिणामो के विरुद्ध मुख्य रूप से आक्रमण करते है। इसका सीधा-सा कारण है कि ये पूंजीवाद की कलई खोलते है, उसकी ऐतिहासिक नियति को प्रकाश में लाते है, विद्यमान वर्ग-संघर्ष के सार को स्पष्ट करते हैं और विविध प्रकार से विरोधी शक्तियो के परस्पर सम्बन्ध को पूर्व निर्धारित करते है। इसके लिए यदि पूंजी की और इजारेदारी की प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है जैसे इसकी परजीविता निरंतर बढ़ती जाती है तो इसका अर्थ है कि कम्युनिस्ट सही कहते हैं—जब वे पूंजीवादी विश्व में वर्ग-शक्तियों के ध्रुवीकरण की बात करते है, और वहां विरोधात्मक अंतर्विरोधो के विषय मे और पूंजीवाद के नाश के लिए वस्तुगत पूर्वावश्यकताओ के संबंध में बात करते हैं। दूसरी ओर यदि इन प्रक्रियाओ को अनदेखा किया जाए तो ज्ञात हो जाएगा कि पूंजीवाद के नवीकरण में पूंजीवादी सिद्धान्त रेत पर नही खड़े हैं। वास्तविक स्थिति क्या है ? हमें तथ्यों को देखना चाहिए।

श्रमिक जनता के हितों की चिन्ता किए बिना पूंजी का संचयन

साम्राज्यवाद के सार तत्व को रंगीन बनाकर प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत कोई भी सिद्धांत पूंजी और उत्पादन के, और फलस्वरूप, मुनाफ़ों के संकेन्द्रण के तथ्य को बदल नही सकता। यह आधुनिक पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का केवल एक विशिष्ट

1. वी० आई० लेनिन, 'द स्टेट एंड रिवोल्यूशन, कलेक्टेड वर्क्स खंड 25, पृ० 447-48
2. वी० आई० लेनिन 'इंपीरियलिज्म एंड द स्प्लिट इन सोशलिज्म,' कलेक्टेड वर्क्स, खंड 23, पृ० 105

रूप नही है अपितु इसके विकास को शासित करने वाला क़ानून भी है। इजारेदारियाँ अधिकतम संभव मुनाफे के बिना एक दिन भी जीवित नही रह सकती। लेकिन क्योंकि मुनाफे की मात्रा पूँजी की दर के बढने पर निर्भर होती है इसलिए इजारेदारियाँ वस्तुगत रूप मे इसके उच्चतम संभव संकेन्द्रण के लिए प्रयास करती हैं।

लेनिन ने इस सामान्य नियम की ओर इंगित किया है। किन्तु जब उनकी कृति "साम्राज्यवाद : पूंजीवाद की उच्चतम अवस्था" प्रकाशित हुई तब यहाँ उद्योग की समस्त शाखाओ को नियमित करने वाले मात्र चन्द उद्योग थे। स्टील और लोहा उद्योग मे *यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कारपोरेशन*, तेल उद्योग मे **स्टैंडर्ड ऑयल कंपनी** और ऑटोमोबाइल उद्योग मे **जनरल मोटर्स कारपोरेशन**। निस्सदेह आज 350 इजारेदारियाँ उत्पादन का नियंत्रण करती हैं जिनमे पूँजीवादी दुनिया की दो-तिहाई क्रयशक्ति लगी है। उदाहरण के लिए फ्रांस में केवल 25 औद्योगिक और विशाल वित्तीय कंपनियाँ सर्व शक्तिमान इजारेदारियों के उच्च स्तर पर हैं। संघीय जर्मनीमे लगभग 200 परिवार अर्थ-व्यवस्था के मूल केन्द्रो पर स्थित हैं, और अमरीका में 500 कपनियाँ दो-तिहाई औद्योगिक उत्पादन का नियत्रण करती है, और इस क्षेत्र के तीन-चौथाई मुनाफे को हड़प जाती है।[1]

हमारे समय में उत्पादन बडी तेजी के साथ संकेन्द्रित होता जा रहा है। यह उन महत्वपूर्ण कारकों के क्रम में स्वाभाविक ही है—जिन्हें संयोगवश, पूंजीवादियों और सुधारवादी सिद्धातकारो ने बेहद झुठलाने का प्रयास किया है।

प्रथम, इस समय संकेन्द्रीकरण और केन्द्रीकरण की प्रक्रिया वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति की स्थितियो के अंतर्गत बढती जा रही है। इसने जिस विशेषीकरण और प्राविधिक आधुनिकीकरण को संगठित किया है वह अधिक पूँजी लगाने की तथा आर्थिक सहयोग—अर्थात् उत्पादन के सामाजिकीकरण—की माँग करता है। यह सभी जानते हैं कि पूँजीवाद के अन्तर्गत ये तत्व प्रत्यक्ष सीधे-सीधे पूंजी के संचयन की ओर ले जाते है। दूसरी ओर, प्राविधिक प्रगति के सारांश को ग्रहण करके पूँजीवाद ने अत्यधिक औद्योगीकृत देशों में उत्पादक शक्तियों के लक्षित विकास को प्राप्त करने का किसी स्तर तक प्रबंध किया है। उदाहरण के लिए, युद्ध के काल से इन देशों में श्रम की उत्पादकता कई गुना बढ़ गई है। इसके साथ ही साथ, वेतन में वृद्धि बहुत नीची रही है। इस प्रकार वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति की स्थिति मे मेहनतकश जनता के शोषण का स्तर पूँजीवादी विश्व में घटा नही, अपितु इसके विपरीत, तेजी के साथ बढ़ा है। पूंजीवादी प्रचार इस तथ्य को छिपाने की पूरी कोशिश करता है। इसका स्पष्ट और सीधा-सा कारण यह है कि यह 1960 के दशक में दिखाए इसके आर्थिक चमत्कार के वास्तविक कारणों को प्रकट कर देता है। यह केवल आर्थिक अतिरिक्तताओं की कीमत पर हुआ

1. देखें, वर्ल्ड मार्क्सिस्ट रिव्यू, 1976, खड 19, सं० 10, पृ० 21-22

अर्थात् अतिरिक्त मूल्यों की कीमत पर (जिसे कि उत्पादन के साधनों के विकास में प्रगति करके सुनिश्चित किया गया), श्रम के और अधिक विस्तार के कारण और विकासशील देशों की खुली लूट के निरंतर जारी रहने की कीमत पर संभव हुआ जिसका पूँजीवाद ने अपनी ऐसी व्यापक विज्ञापित समृद्धि प्राप्त करने का कुछ समय तक जुगाड़ बैठाया। लेकिन पूँजीवाद के अन्तर्गत इस उत्पादन वृद्धि के क्या परिणाम रहे और इससे किसके हित पूरे हुए ? पूँजीवादी प्रचार इस संबंध में कुछ नहीं कहना चाहता जब कि यह विषय बुनियादी महत्व का है। उत्पादन की वृद्धि से पूँजी का सघन संचयन हुआ इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक और वित्तीय इजारेदारियो के हाथ में और अधिक आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो गयी और उनका अधिपत्य भी बढ़ गया।

दूसरे, सान्द्रीकरण की प्रक्रिया ने राज्य इजारेदारी का रूप धारण कर लिया। इसकी नई गुणवत्ता इस तथ्य में प्रदर्शित हुई कि पूँजीवादी राज्य वास्तविक रूप में सान्द्रीकरण की प्रवृत्तियों का संगठनकर्ता अथवा संरक्षक बन गया। इस क्षमता से युक्त होकर विशेष रूप से आधुनिक आयुधों का निर्माण करने वाले उद्योगो में, जो शासक वर्ग दीर्घकालीन राजनीतिक हितों तथा इसकी वैदेशिक नीति के लक्षणों के साथ सम्बद्ध हैं, इसका निहितार्थ है ऐसी कुजियाँ जैसे कानून निर्माण, बजट तथा करो की नीतियाँ सरकारी अनुदार और इसी प्रकार की अन्य चीजें।

इस प्रकार पूँजीवादी राज्य उन क्रिया-कलाप को जिन्हें कि पहले निजी पूँजी द्वारा सम्पन्न किया जाता था अधिकाधिक अपने हाथ मे लेता जाता है। निस्संदेह, ऐसा करते हुए वह समूचे समाज के हितों को पूरा करने का प्रयास नही करता। इसके विपरीत, इसका लक्ष्य इजारेदारियों के मुनाफ़े बढ़ाना हो जाता है, दोनों ही तरह से, जनता का शोषण जारी रखकर और सरकारी निधियों का उपयोग करके। बड़ी पूँजीवादी इजारेदारियों के हितों की पूर्ति के लिए कार्य करते हुए राज्य वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के फलो को हड़पने की कोशिश करता है जिससे कि श्रम शक्ति का विस्तार किया जा सके और शोषण को छिपाया जा सके और इस प्रकार बाहरी विस्तार को सुविधाजनक बनाया जा सके। और इस पर जो व्यय हो उसे निरपवाद रूप से मजदूर वर्ग उठाए।

तीसरे, हमारे समय में इजारेदारियों का विस्तार एक अंतर्राष्ट्रीय परिघटना बन चुका है। विशाल इजारेदारियों और उच्च इजारेदारियों ने राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़ दिया है, राज्यों की सीमाएँ लाँघकर संघ बना लिये हैं, जिनका कोई एक नाम नही है और उन्हे विभिन्न रूपों मे जैसे परराष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, अतिराष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय आदि नामों से पुकारा जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियां पहले-पहल इस शताब्दी के मोड़ पर दिखाई दी थी, लेकिन वे शताब्दी के मध्य से बड़ी विशेष भूमिका निभा

रही हैं। 1971 में परराष्ट्रीय कंपनियों ने पूँजीवादी विश्व के कुल विनियोग के 90 प्रतिशत पर नियंत्रण कर रखा था और उनका अपने बढ़े हुए सामान्य राष्ट्रीय उत्पादन तथा विदेशी व्यापार के व्यवसाय के तीसरे भाग पर नियत्रण था। कुछ भविष्यवाणियों के अनुसार 1980 तक तथा कुछ अन्य के अनुसार 1985 तक 300 प्रमुख बहुराष्ट्रीय निगम विश्व के निर्माता उद्योगों के 75 प्रतिशत पर नियत्रण रखेंगे और दस या बीस वर्षों के बाद कुछ उत्पादन के 75 प्रतिशत पर वे नियंत्रण प्राप्त कर लेंगे।[1]

अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियो मे निरतर हो रहा विस्तार स्पष्ट रूप से हमारे समय मे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास का एक निश्चित लक्षण है। यह तथ्य निस्सदेह रूप से स्पष्ट करता है कि *उत्पादन के, पूँजी के निर्यात का तथा इजारेदार गुटो का* विभाजन तथा पुनर्विभाजन अतर्राष्ट्रीयकरण की दिशा मे बढ़ रहा है जैसा कि लेनिन ने कई दशक पहले स्पष्ट रूप से बताया था।

अतर्राष्ट्रीय बड़े प्रतिष्ठानों के पास विपुल पूँजी है और कपट कौशल का उपयोग करने की उन्हे पूर्ण स्वतंत्रता है, इसलिए उनके क्रियाकलाप से समकालीन साम्राज्यवाद को आर्थिक विस्तार के लिए सीमातीत क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। सार यह है कि स्थानीय अधिकारियों से और राष्ट्रीय सरकारों से अनियत्रित तथा व्यापार और चुंगी की तयशुदा नीति के प्रतिबंधों से व्यावहारिक रूप से मुक्त, ये वित्तीय व्यापारिक-आर्थिक 'सर्वोच्च शक्तियाँ' राज्य के ऊपर राज्य, 'अपने ही क़ानून' लागू करते हैं जो राज्यो की सीमाओं के पार चले जाते है। अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियाँ (जिनकी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत से विषयो मे स्पष्ट रूप से बड़े पैमाने पर लगी अमरीकी पूँजी के आधिपत्य को छिपाने के लिए एक मुखौटा है) पूँजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था की समस्त शाखाओं पर नियंत्रण रखती है। और इससे भी बढ़कर, वे बहुत से मामलों में सामाजिक तथा आर्थिक विकास को निर्धारित करती है और इन राज्यों की नीतियों पर गहरा प्रभाव रखती हैं। *एक समय था* जब विदेशी पूँजी उपनिवेशों पर आधिपत्य रखती थी अब औद्योगिक रूप से आगे बढ़े हुए देश भी उसके शिकार बन गये हैं।

बहुत से *अध्ययनों में इसके प्रमाण मिलते है। इनमें से एक है अमरीकी अर्थ*-शास्त्री रिचर्ड बर्नेट और रोनाल्ड मूलर की 'पावर ऑफ़ मल्टिनेशनल कार-पोरेशन्स' नामक कृति। लेखकों ने स्पष्ट रूप से इस संबंध मे लिखा है—इसे वे विश्व अर्थव्यवस्था का अमरीकीकरण कहते है और शिकायत करते है कि अमरीकी इजारेदारियाँ दूसरे देशों में कठिनाइयाँ—विशेष रूप से राजनीतिक और वैचारिक

1. देखिए रिचर्ड जे. बार्बर; दि अमेरिकन कारपोरेशन, इट्स पावर, इट्स मनी, इट्स पॉलिटिक्स, न्यूयॉर्क 1970 पृ० 264

कठिनाइयाँ—पैदा करती है। कृति की नीचे लिखी पंक्तियाँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। "लेकिन क्योंकि निगम आधिकारिक रूप से राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है, विश्व व्यवस्थापकों की विचारधारा कुछ महत्वपूर्ण संस्थापित धारणाओं के साथ संघर्ष में आती है।"[1] निस्संदेह यह राष्ट्रीय संप्रभुसत्ता, राज्यों की आर्थिक स्वाधीनता, पूंजीवादी जनतंत्र में मेहनतकश जनता के बुनियादी अधिकार आदि की ओर ही संकेत है।

निजी पूंजीवादी आधार पर अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियों की रचना के साथ-साथ पश्चिम में **अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवादी एकीकरण** की प्रक्रिया भी विकसित हो रही है। इस संबंध मे यूरोपीय आर्थिक समुदाय (ईईसी) एक संकेत है जिसे कि इजारेदारियों और बैंकों का पश्चिमी यूरोप कहा जा सकता है।

अनिवार्यतया पूंजीवादी देशों की अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियों तथा अंतर्राष्ट्रीय संघों के क्रियाकलाप सम्बद्ध प्रक्रियायें हैं। ये एक सुनिश्चित प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं, जिसे पूंजीवाद द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की इच्छा—जो विश्वमुक्ति आंदोलनके ऐतिहासिक रूप से पूर्व निर्धारित आक्रमण को दृष्टि में रखते हुए की गयी है—कहा जा सकता है। तथापि ई०ई०सी० के उदाहरण को आधार बनाकर देखें तो एकीकरण का राज्य इजारेदारी रूप निजी पूंजी से बहुत पिछड़ गया है। ऐसा किस कारण हुआ? निस्संदेह रूप से इसके अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण है जनसंख्या (आबादी) की बहुसंख्या का प्रतिरोध।

जबकि निजी उद्योग के स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियों के संगठन को छिपाना संभव है जो नियम के तौर पर, अपने कार्य पर्दे के पीछे करती हैं, अंतर्राज्यीय संघों का निर्माण गुप्त नहीं रखा जा सकता। 'संयुक्त पश्चिमी यूरोप' के प्रवक्ताओं के जनता को कायल करने के प्रयासों के बावजूद बहुत से श्रमिक-जन स्वभावतः इसे इजारेदारियों का एक सहयोग ही मानते हैं। इसका लक्ष्य है ऊँचे मुनाफे सुनिश्चित करना, पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा करना, क्रान्तिकारी आंदोलन और विश्व समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष करना तथा हथियारों की दौड़ को सुरक्षात्मक उपायों के पर्दे मे और तेज करना—(स्वभावतः लाल खतरे के खिलाफ़)।

दूसरा कारण है कि अंतर्साम्राज्यवादी अंतर्विरोध निर्विवाद रूप से गहरे होते जा रहे हैं। समकालीन साम्राज्यवाद के भीतर दो उभार साथ-साथ विकसित हो रहे हैं: इजारेदारियाँ और प्रतिस्पर्धा; तथा दो मनोवृत्तियाँ—अभिकेन्द्रीय और उपकेन्द्रीय (केन्द्राभिमुखी एवं केन्द्रापसारी): अपने वर्ग शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए सभी शक्तियों को संयुक्त करने की अभिलाषा और इसके अपने अंतर्विरोधों

1. रिचर्ड जे० बर्नेट, रोनाल्ड ई० मूलर 'ग्लोबल रीच' द पावर ऑफ़ द मल्टिनेशनल्स कारपोरेशन्स, न्यूयार्क, 1974, पृ० 47

का गहरा होना। प्रथम महायुद्ध के बाद के वर्षों में, शीत युद्ध के समय में और सापेक्ष तथा अनुकूल आर्थिक स्थिति में केन्द्राभिमुखी शक्तियाँ पूंजीवादी विश्व मे प्रमुख थी। तथापि, बाद में विशेष रूप में 1974-75 के सकटकाल के सबंध में स्थिति इसके विपरीत है। केन्द्रापसारी आवेग और साम्राज्यवादी अन्तर्विरोध निरतर बढते जा रहे है। लेनिन यह लिखते समय सर्वथा सही थे "कि विकास की प्रवृत्ति एक विश्व न्यास (ट्रस्ट) की दिशा में है जो बिना किसी अपवाद के सभी उद्योगों को और बिना किसी अपवाद के सभी राज्यो को अपने भीतर समेट लेगा।" आगे चलकर उन्होने जो निष्कर्ष निकाला उसे जीवन ने पूर्णतया पुष्ट कर दिया है: "यह विकास ऐसी परिस्थितियो मे आगे बढता है, ऐसी रफ़्तार से, ऐसे अंतर्विरोधो, विवादों और विप्लवों के माध्यम से—केवल आर्थिक ही नही बल्कि राजनीतिक, राष्ट्रीय आदि—जिनसे कि साम्राज्यवाद और पूंजीवाद अनिवार्यतया फट जाएँगे। और अपने विरोधी रूप मे बदल जाएँगे, इससे बहुत पहले जबकि एक विश्व न्यास आकार ग्रहण कर पाये अतिसाम्राज्यवाद', कि इससे पूर्व राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी वा विश्वव्यापी समायोजित हो पाये।"[1] हमारा समय और युग विश्वसनीय रूप से प्रमाणित करता है कि पूंजी का इजारेदारीकरण तेज रफ्तार से होने के साथ-साथ पूंजीवाद के विद्यमान अतरविरोधों को बडी तीव्रता से बढाता है और नये विरोध को उभारता भी है।"

अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे राजनीतिक शक्तियों के सहयोग के संदर्भ मे निम्नलिखित की ओर ध्यान दिलाना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है: राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय दोनो पैमानों पर उत्पादन और पूंजी का सघन सान्द्रीकरण वस्तुगत रूप से पूंजीवादी विश्व के शासक वर्ग को क्षीण करता है और साम्राज्यवाद विरोधी आदोलन के मोर्चे को व्यापक बनाता है। उनके बीच विद्यमान विरोध अधिक तीव्र और गहरे हो जाते है। पूंजीवादी समाज के विभेदीकरण और सामाजिक ध्रुवीकरण की यह प्रक्रिया राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रो मे चलती है। अंतर्राष्ट्रीय इज़ारेदारी की भूख राष्ट्रीय पूंजीपतियों के हितो की अधिकाधिक विरोधी होती जाती है। इस प्रकार नए विवादों को उभारती है और तीव्र करती है।

इस प्रकार, साम्राज्यवाद की पहली ऐतिहासिक विशेषता—जिसकी ओर लेनिन ने इशारा किया था वह थी : पूंजी के इज़ारेदारीकरण की ओर इसकी प्रवृत्ति जो आज की वास्तविकता के प्रकाश मे सतह पर दिखाई देने लगती है। कम्युनिज्म विरोध के सिद्धांतकार 'औद्योगिक' और 'औद्योगिकोत्तर' समाज के प्रवक्ता, 'पूर्ण विकास' अथवा 'जीवन की गुणवत्ता' के प्रवक्ता इस तथ्य के प्रत्युत्तर मे क्या

1. वी० आई० लेनिन, एन० बुखारिन की पुस्तिका, 'साम्राज्यवाद और विश्व अर्थव्यवस्था' की भूमिका, सकलित रचनाएँ, भाग 22, पृ० 107

कठिनाइयाँ—पैदा करती है। कृति की नीचे लिखी पंक्तियाँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। "लेकिन क्योंकि निगम आधिकारिक रूप से राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त नही है, विश्व व्यवस्थापकों की विचारधारा कुछ महत्वपूर्ण संस्थापित धारणाओं के साथ संघर्ष में आती है।"[1] निस्संदेह यह राष्ट्रीय सप्रभुसत्ता, राज्यों की आर्थिक स्वाधीनता, पूँजीवादी जनतंत्र में मेहनतकश जनता के बुनियादी अधिकार आदि की ओर ही संकेत है।

निजी पूँजीवादी आधार पर अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियों की रचना के साथ-साथ पश्चिम में **अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवादी एकीकरण** की प्रक्रिया भी विकसित हो रही है। इस संबंध में यूरोपीय आर्थिक समुदाय (ईईसी) एक संकेत है जिसे कि इजारेदारियों और बैंकों का पश्चिमी यूरोप कहा जा सकता है।

अनिवार्यतया पूँजीवादी देशों की अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियों तथा अंतर्राष्ट्रीय संघों के क्रियाकलाप सम्बद्ध प्रक्रियायें हैं। ये एक सुनिश्चित प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं, जिसे पूँजीवाद द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की इच्छा—जो विश्वमुक्ति आंदोलनके ऐतिहासिक रूप से पूर्व निर्धारित आक्रमण को दृष्टि में रखते हुए की गयी है—कहा जा सकता है। तथापि ई०ई०सी० के उदाहरण को आधार बनाकर देखें तो एकीकरण का राज्य इजारेदारी रूप निजी पूँजी से बहुत पिछड़ गया है। ऐसा किस कारण हुआ? निस्संदेह रूप से इसके अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण है जनसंख्या (आबादी) की बहुसंख्या का प्रतिरोध।

जबकि निजी उद्योग के स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियों के संगठन को छिपाना संभव है जो नियम के तौर पर, अपने कार्य पर्दे के पीछे करती हैं, अंतर्राज्यीय संघों का निर्माण गुप्त नही रखा जा सकता। 'संयुक्त पश्चिमी यूरोप' के प्रवक्ताओं के जनता को कायल करने के प्रयासों के बावजूद बहुत से श्रमिक-जन स्वभावतः इसे इजारेदारियों का एक सहयोग ही मानते हैं। इसका लक्ष्य है ऊँचे मुनाफे सुनिश्चित करना, पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा करना, क्रान्तिकारी आंदोलन और विश्व समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष करना तथा हथियारों की दौड़ को सुरक्षात्मक उपायों के पर्दे मे और तेज़ करना—(स्वभावतः लाल ख़तरे के ख़िलाफ़)।

दूसरा कारण है कि अंतर्साम्राज्यवादी अंतर्विरोध निर्विवाद रूप से गहरे होते जा रहे है। समकालीन साम्राज्यवाद के भीतर दो उभार साथ-साथ विकसित हो रहे है: इजारेदारियाँ और प्रतिस्पर्धा; तथा दो मनोवृत्तियाँ—अभिकेन्द्रीय और उपकेन्द्रीय (केन्द्राभिमुखी एवं केन्द्रापसारी): अपने वर्ग शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए सभी शक्तियों को संयुक्त करने की अभिलाषा और इसके अपने अंतर्विरोधों

1. रिचर्ड जे० बर्नेट, रोनाल्ड ई० मूलर 'ग्लोबल रीच' द पावर ऑफ द इंटरनेशनल कारपोरेशन्स, न्यूयार्क, 1974, पृ० 47

सुनिश्चित करने में दिन-ब-दिन असमर्थ होती जा रही है। फलतः पूंजीवादी विश्व के समस्त अंतर्विरोध ऐसी संकटपूर्ण स्थिति पर पहुँच गए है जहाँ उसका समाधान समाज के क्रांतिकारी रूपांतरण से हो ही सकता है।

पूंजीवाद की राज्य-इजारेदारी की स्थिति में इसका ऐतिहासिक रूप से पूर्वनिर्धारित अधःपतन विशेष रूप से प्रकट होता है, उदाहरण के लिए सैन्यीकरण की ओर प्रवृत्ति मे, जिसकी निषेधात्मक भूमिका की नीचे परीक्षा की जा रही है। इसका अधःपतन उत्पादन शक्तियों के विकास दर की गिरावट मे, सभी मनुष्यों के लाभ के लिए आधुनिकतम उपकरणों, प्राकृतिक संसाधनों तथा मानवीय श्रम का उपयोग करने मे समकालीन पूंजीवाद की अक्षमता मे प्रत्यक्ष दिखाई देता है और यह पूंजीवादी समाज के राजनीतिक और नैतिक अध.पतन से भी प्रदर्शित होता है।

ये परिघटनाएं न तो अस्थाई हैं और न आंशिक, उनकी जडें पूंजीवाद प्रकृति में ही हैं ये और निरपवाद रूप से सभी पूंजीवादी देशो में स्थानीय रूप ले चुकी है, उसके (पूंजीवाद के) सभी सामाजिक, राजनीतिक और सैद्धांतिक संगठनों के विकास को तथा समस्त मानव समाज के महत्वपूर्ण हितों के बीच मौलिक विरोधों को सतह पर लाते हुए इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ लवे समय में स्वयं साम्राज्यवाद के विरुद्ध मोड़ ले लेती है।

वस्तुत. क्या यह मज़दूर वर्ग के लिए संभव है कि वे अनिश्चित समय तक ऐसी स्थिति से मेल बैठाएँ जिसके अतर्गत अत्यधिक फूल रहे सैनिक-औद्योगिक समूह निरंतर बढ़ती हुई ख़तरनाक मात्रा में मज़दूर वर्ग का जीवन रक्त परजीवी जौकों की तरह चूसते रहते हैं? साथ ही, यह वैज्ञानिक और प्राविधिक उपलब्धियों को समूची मानवता के लिए एक ख़तरे के रूप में बदल देता है। और यह एक भयानक विसगति है कि जैसे-जैसे मानव समाज अधिक सपन्न होता जाता है और उसके हाथो मे प्रकृति पर अधिक सत्ता केंद्रित होती जाती है, उसका अपना ही अस्तित्व अधिकाधिक असुरक्षित हो जाता है।

सैन्यवाद स्वभाव और सारवस्तु की दृष्टि से दोनों ही रूपों में परजीवी होता है। इसका अभिप्राय है कि न केवल श्रम और भौतिक संसाधनों का ही भयावह अपव्यय होता है अपितु शनैः-शनैः सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों को वस्तुतः सारे समाज को ही वह प्रभावित करता है। महान् जर्मन क्रांतिकारी कार्ल लिब्नेख्त ने अपने समय मे लिखा था : "सैन्यवाद सबसे पहले स्वयं सेना के रूप में ही प्रस्तुत होता है, तत्पश्चात् सेना से परे एक निर्मित व्यवस्था के रूप में, जो सैन्यवादियों और अर्ध-सैन्यवादी संस्थानों के जाल के ज़रिए पूरे समाज में प्रवेश पा लेता है…।"[1] तब से

1. कार्ल लिब्नेख्त, मिलिटेरिज्म एण्ड एंटी-मिलिटेरिज्म, विद स्पेशल रिगार्ड टू यंग सोशलिस्ट मूवमेंट, ग्लासगो, 1917, पृ० 39

कह सकते है ? उनकी खीचतान कर की गई स्थापनाएँ और वर्तमान प्रक्रिया को झुठलाने के प्रयास वास्तविकता के संपर्क में आते ही विनष्ट हो जाते है; यह बार-बार इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि हमारे समय मे विद्यमान नई परिघटनाओं को, जो कि बड़े पैमाने पर हो रही हैं, केवल मार्क्सवाद-लेनिनवाद की स्थितियों से साम्राज्यवाद के सच्चे वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर सही ढंग से समझा जा सकता है और इसी आधार पर उनका मूल्यांकन किया जा सकता है।

परजीविता, पूंजीवाद का विशिष्ट लक्षण

लेनिन ने साम्राज्यवाद को परजीवी और पतनशील पूंजीवाद के रूप में भी चित्रित किया था। इस निष्कर्ष को खंडित करने के लिए किए गए प्रयास में कम्युनिज्म विरोध के सिद्धांतकार प्राय: यह तर्क देते हैं कि 'लाल' झंडे वालों की भविष्यवाणियो के बावजूद वर्तमान पूंजीवादी उत्पादन निरंतर विकसित हो रहा है, इतना ही नही, पहले की अपेक्षा तेजी मे भी। क्योंकि वस्तुस्थिति ऐसी है इसलिए लेनिन का साम्राज्यवाद का विश्लेषण समर्थन योग्य नही है। कोई भी सोच सकता है कि लेनिनवाद के बूर्ज्वा आलोचक अपने निष्कर्षों मे अधिक सही हो सकते थे यदि उन्होंने थोड़ा भी ध्यान दिया होता कि वास्तव में लेनिन ने इस संबंध में क्या लिखा है। उन्होने पूंजीवाद के आधुनिकीकरण की अथवा नई परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को ढालने की उसकी क्षमता से अथवा निरंतर विकास से कभी इंकार नही किया। इसके विपरीत उन्होने अपनी कृति 'साम्राज्यवाद-पूंजीवाद की सर्वोच्च अवस्था मे लिखा था "यह विश्वास करना भूल होगी कि पतन की ओर यह प्रवृत्ति पूंजीवाद की वृद्धि को रोक देगी। यह ऐसा नही करती। साम्राज्यवाद के युग में, उद्योग की कुछ शाखाएँ, पूंजीपति वर्ग के कुछ समूह और कुछ देश, थोड़ी या बहुत मात्रा मे, इन प्रवृत्तियों को जब-तब प्रतिबिंबित करते हैं। कुल मिलाकर, पूंजीवाद पहले को अपेक्षा तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन यह वृद्धि न केवल सामान्यतया अधिकाधिक असमान हो रही है यह असमानता दिखाई भी देती है, विशेष रूप से उन देशों के पतन में **जो कि पूंजी में सर्वाधिक धनी हैं।**" (जोर हमारा वी० के०)[1]

लेनिन के विचार के अनुसार पूंजीवाद के अधःपतन और परजीविता का कारण इसका उच्चतम सामाजिक और आर्थिक संरचनाओ में संक्रमण के लिए आर्थिक रूप से पूर्णतया परिपक्व होना था। पूंजीवादी व्यवस्था स्वयं इस बात को सिद्ध कर रही है कि वह भौतिक संसाधनों और उत्पादक शक्तियों के पूर्ण उपयोग तथा समग्र समाज के हितों के लिए उनका उनके बुद्धिमत्तापूर्ण विकास को

1. वी० आई० लेनिन : इम्पीरियलिज्म द हाईएस्ट स्टेज ऑफ़ कैपिटलिज्म सकलित ग्रन्थावली, भाग 22, पृ० 300

सुनिश्चित करने में दिन-ब-दिन असमर्थ होती जा रही है। फलतः पूँजीवादी विश्व के समस्त अंतर्विरोध ऐसी संकटपूर्ण स्थिति पर पहुँच गए है जहाँ उसका समाधान समाज के क्रांतिकारी रूपांतरण से हो ही सकता है।

पूँजीवाद की राज्य-इज़ारेदारी की स्थिति मे इसका ऐतिहासिक रूप से पूर्व-निर्धारित अध.पतन विशेष रूप से प्रकट होता है, उदाहरण के लिए सैन्यीकरण की ओर प्रवृत्ति मे, जिसकी निषेधात्मक भूमिका की नीचे परीक्षा की जा रही है। इसका अधःपतन उत्पादन शक्तियों के विकास दर की गिरावट मे, सभी मनुष्यो के लाभ के लिए आधुनिकतम उपकरणों, प्राकृतिक ससाधनों तथा मानवीय श्रम का उपयोग करने मे समकालीन पूँजीवाद की अक्षमता मे प्रत्यक्ष दिखाई देता है और यह पूँजीवादी समाज के राजनीतिक और नैतिक अधःपतन से भी प्रदर्शित होता है।

ये परिघटनाएँ न तो अस्थाई हैं और न आंशिक, उनकी जड़ें पूँजीवाद प्रकृति में ही है ये और निरपवाद रूप से सभी पूँजीवादी देशों में स्थानीय रूप ले चुकी हैं, उसके (पूँजीवाद के) सभी सामाजिक, राजनीतिक और सैद्धांतिक संगठनों के विकास को तथा समस्त मानव समाज के महत्वपूर्ण हितो के बीच मौलिक विरोधों को सतह पर लाते हुए इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ लंबे समय में स्वयं साम्राज्यवाद के विरुद्ध मोड़ ले लेती हैं।

वस्तुत. क्या यह मजदूर वर्ग के लिए संभव है कि वे अनिश्चित समय तक ऐसी स्थिति से मेल बैठाएँ जिसके अतर्गत अत्यधिक फूल रहे सैनिक-औद्योगिक समूह निरंतर बढ़ती हुई खतरनाक मात्रा मे मजदूर वर्ग का जीवन रक्त परजीवी जौकों की तरह चूसते रहते हैं? साथ ही, यह वैज्ञानिक और प्राविधिक उपलब्धियों को समूची मानवता के लिए एक खतरे के रूप में बदल देता है। और यह एक भयानक विसगति है कि जैसे-जैसे मानव समाज अधिक संपन्न होता जाता है और उसके हाथों में प्रकृति पर अधिक सत्ता केंद्रित होती जाती है, उसका अपना ही अस्तित्व अधिकाधिक असुरक्षित हो जाता है।

सैन्यवाद स्वभाव औरस ारवस्तु की दृष्टि से दोनों ही रूपो में परजीवी होता है। इसका अभिप्राय है कि न केवल श्रम और भौतिक संसाधनों का ही भयावह अपव्यय होना है अपितु शनैः-शनैः सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों को वस्तुतः सारे समाज को ही वह प्रभावित करता है। महान् जर्मन क्रांतिकारी कार्ल लिब्नेख्त ने अपने समय में लिखा था : "सैन्यवाद सबसे पहले स्वयं सेना के रूप में ही प्रस्तुत होता है, तत्पश्चात् सेना से परे एक निर्मित व्यवस्था के रूप में, जो सैन्यवादियों और अर्ध-सैन्यवादी संस्थानों के जाल के जरिए पूरे समाज मे प्रवेश पा लेता है...।"[1] तब से

1. कार्ल लिब्नेख्त, मिलिटेरिज्म एण्ड एंटी-मिलिटेरिज्म, विद स्पेशल रिगार्ड टू यग सोशलिस्ट मूवमेंट, ग्लासगो, 1917, पृ० 39

(अतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य समेत) किसी एक भी पूंजीवादी देश ने वास्तव में सैन्य-वाद को अस्वीकृत नही किया है। इसके विपरीत, पूंजीवादी विश्व के शासक युद्ध के लिए भौतिक संसाधनों को बढ़ाने का हर प्रयास कर रहे है और समूचे सामाजिक जीवन को सैन्यवादी भावना से भर रहे हैं। उद्देश्य यह है कि राज्य के आर्थिक क्रियाकलाप को, जनसंचार माध्यमों को, और विदेश नीति को सैनिक-औद्योगिक समूह की इच्छा के अधीन कर दिया जाय। सैन्यवाद वर्तमान पूंजीवाद के एकदम नग्न और भयानक रूप से अध.पतन और परजीविता का ही प्रकट रूप है।

परजीविता के अन्य रूप भी, जो उत्पादक शक्तियो की वृद्धि की गति को मद्धिम करने के साथ प्रत्यक्ष रूप में संबद्ध हैं, विकसित हो रहे हैं। निस्संदेह, विश्व साम्राज्यवाद ने अब तक प्राविधिक प्रगति को प्रोत्साहित करने, श्रम उत्पादकता को उठाने और अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने की संभावनाएं बनाये रखी है। तथापि, यह भी सत्य है कि और आगे वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की बढ़ती हुई अस्थिरता व वैसी ही सामाजिक अस्थिरता के मूल्य पर ही की जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि विनियोजन प्रथमतया समाज के लिए आवश्यक क्षेत्रो में नही अपितु उन क्षेत्रों में होता है जहाँ अधिकतम मुनाफ़ा उपलब्ध करने की संभावना होती है। इसके कारण होने वाले परिणाम हर जगह दिखाई दे रहे हैं पूंजीवाद के और अधिक अध.पतन एवं परजीविता के रूप में।

बूर्ज्वा सिद्धांतकार शपथपूर्वक घोषणा करते है कि पूंजीवादी उत्पादन में आयोजन और संगठन ने वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति तथा राज्य कानूनों के द्वारा अव्यवस्था पर विजय प्राप्त कर ली है। वे दावा करते हैं, कि पूंजीवादी उत्पादन बुद्धिमत्तापूर्ण हो गया है और इससे भी बढकर विज्ञान और प्राविधिकी नवीनतम उपलब्धियो का उससे भी अच्छा उपयोग कर सकता है जैसा कि समाजवाद में किया जा रहा है। लेकिन वे इस तथ्य को प्रस्तुत नही करते कि यद्यपि पूंजीवाद अपने निजी उद्देश्यों से विज्ञान एवं प्रविधि का उपयोग करता है, साथ-ही-साथ उनकी प्रगति को मन्द करता है और इसकी उपलब्धियों का उपयोग समाज को क्षति पहुँचाने के लिए करता है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति सार रूप में पूंजीवाद के नियमों की विरोधी है। पूंजीवाद को पूंजी से अधिकतम मुनाफ़ा प्राप्त करने की अधिक चिंता रहती है, जिसे यह निरपवाद रूप से चुनता है बजाय उत्पादन की उपयुक्तता के। तथापि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक आविष्कारों का उपयोग अनिवार्य रूप से उत्पादन के खर्चों को बढ़ाता है जो एक स्तर पर पहुँचकर उनके मुनाफे मे गिरावट का कारण बन जाता है। यह वह समय होता है जब इजारेदारयाँ वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति को बनाए रखने के लिए चिंतित रहती है और निरंतर उनका उपयोग करने के लिए क्षेत्रों की खोज करती रहती हैं: उदाहरणार्थ,

शस्त्रास्त्रोत्पादन जिसमें मुनाफ़ों के निरंतर बढते रहने का विश्वास रहता है। दूसरे शब्दो मे, यह उच्च रूप से औद्योगीकृत देशों को अपनी प्राविधिक क्षमता विकसित करने में समर्थ बनाती है जिससे कि यह एकखास कालावधि के दौरान वस्तुओं का और अधिक मात्रा में उत्पादन कर सके। बेशक इसी प्रकार शस्त्रास्त्रों का। भी, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति धनी को और धनी बना देती है। दूसरी ओर, यह किसी भी प्रकार पूँजीवाद के परजीविता के स्वभाव को नही बदलती और न यह उसे बदलने की स्थिति में ही होती है। इससे भी आगे, यह मजदूर वर्ग के साथ पूँजीवाद के संघर्ष को बढाती है।

क्या कोई गभीरतापूर्वक उस समय 'जीवन की गुणवत्ता' सुधारने की बात कर सकता है जबकि बेरोजगारी, मुद्रा प्रसार और महँगाई पूँजीवादी देशो में बढती जा रही है। बेशक, ये परिघटनाएँ पूँजीवाद के लिए नई नही है, बल्कि हाल के वर्षों में उनके रूप विशेष रूप से सर्वव्यापी बन गये हैं। आम बेरोजगारी अब एक जीर्ण व्याधि, पूँजीवादी वास्तविकता का एक स्थायी पहलू बन गयी है। और व्यापारिक क्रियाकलाप की वृद्धि भी इसे नीचे उतारने का नाम नही लेती। लाखों लोग केवल अस्थायी तौर पर ही नौकरी से नही निकाले जाते जैसा कि अतीत मे हुआ करता था, बल्कि उनसे काम छुड़ा दिया जाता है: वे स्थाई रूप से अपने को उत्पादन की प्रक्रिया में भाग लेने से वंचित पाते है। काम की आज की गति के कारण वह व्यक्ति जो काम नही पा सकता या जो उसे खो चुका है, अपनी व्यावसायिक कुशलता खो बैठता है और फलस्वरूप उद्यमी के लिए वह अपना मूल्य भी खो देता है।

कुछ समय पूर्व, सितम्बर 1976 में 'यू० एस० न्यूज़ एंड वर्ल्ड रिपोर्ट ने निम्न टिप्पणी की थी: "अधिकाधिक नवयुवक अत्यधिक प्रतियोगिता पर आधारित व्यवसाय बाजार के दुष्चक्र को तोड़ने मे असफल होकर गलियो मे घूम रहे है।[1] इसी ने एक काले परिवार की जिंदगी पर एक विशेषज्ञ को उद्धृत किया है जिसका कहना है: "हम अपने काले समुदाय (जाति) में 30 या उससे अधिक आयु के युवा लोग है जिनको कभी काम नही मिला, इसलिए हम एक स्थायी बेरोजगार उपसमाज विकसित कर रहे हैं, जिसके परिणाम अकल्पनीय रूप से भयानक होंगे।[2] और इस पर संपादक की टिप्पणी थी: "मोटे तौर पर अल्पशिक्षित और कार्यकौशल की कमी वाले काले हजारों और लाखों नवयुवक गरीबी, शराब, अपराध और हिंसा के निरुद्देश्य जीवन की ओर झुक रहे है।"[3] यह केवल अमरीका की काली या गोरी आबादी के लिए ही सत्य नही है बल्कि साम्राज्यवाद के गढ़ के लिए यह सार्वभौम

1 यू. एस. न्यूज एण्ड वर्ल्ड रिपोर्ट, स० 13, सितंबर 27, 1976, पृ० 62
2. वही, पृ० 14
3. वही, पृ० 11

मान्यता प्राप्त सत्य है।

इस संबंध में ऊँचे दर्जे की कुशलता अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने से भी किसी बड़े परिवर्तन की आशा नही की जा सकती। बेरोज़गारो में बहुत से लोग, विशेष रूप से युवक और युवतियाँ, उच्च शिक्षा प्राप्त होते है। कोई समय था जब विश्वविद्यालय का प्रमाणपत्र न्यूनाधिक मात्रा में जीवन के एक स्तर के लिए गारंटी समझा जाता था। आज, जैसा कि पश्चिम में कहा जाता है यहमात्र एक महँगा लाटरी टिकट बन गया है। उत्पादन में बढता हुआ यंत्रीकरण और स्वचालन मेहनतकश जनता के बड़े भाग के लिए नष्ट होने का खतरा बन गया है। यदि आगे बढे हुए समृद्धतम पूँजीवादी देशों मे इस प्रकार की स्थिति है तब विश्व के उन विशाल क्षेत्रों के लिए क्या कहा जा सकता है जहाँ पूँजीवाद ने स्थानीय आबादी को उत्पादक शक्तियो के विकास की दृष्टि से विषम स्थिति में डाल रखा है? आज भी, जैसाकि एक सौ वर्ष पूर्व होता था, सामान्य रूप से लोग ज़मीन पर, खेती के लिए, हल का उपयोग करते हैं। वस्तुतः साम्राज्यवाद ने इन देशो में वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति को पहुँचने से रोकने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी है। उन सबको बाहर निकाल कर साम्राज्यवाद सभी द्वीपों के जनगण को ग़रीबी और अज्ञान मे रखकर दंड देना चाहता है और इस प्रकार उनको ऐतिहासिक प्रगति में भाग लेने से रोक देता है। इजारेदारियों के लिए इन लोगों का कोई उपयोग नही है, उनको वे अतिरिक्त मुँह समझते हैं और उनको न तो वे काम देना चाहते हैं न भोजन ही दे सकते हैं। संभवतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीवादी सिद्धान्तकार मानवसमाज को, विशेष रूप से विकासमान देशों को, 'आबादी के विस्फोट' का नारा देकर आतंकित करना चाहते है।

दूसरी एक और महाविपत्ति हाल के वर्षों मे पूँजीवादी देशों के श्रमिकों में प्लेग की तरह फैलाई जा रही है, वह है मुद्रास्फीति। मुद्रा-स्फीति की प्रक्रियाएँ स्थायी रूप से पूँजीवादी विश्व को झंझोड़ती रहती हैं आर्थिक मन्दी के समय मे भी, जब कि खाद्य तथा निर्मित वस्तुओं की क़ीमतें आमतौर से नीची रहती हैं। पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का सामान्य अस्थायित्व बजट के घाटे को पूरा करने मे पूँजी के अत्यधिक उपयोग ने—वह भी इजारेदारियों के हित में—हथियारों पर अत्यधिक व्यय ने तथा इसी प्रकार साम्राज्यवाद की परजीविता की अन्य अभिव्यक्तियों ने पूँजीवादी समाज मे मुद्रास्फीति को स्थायी संस्था बना दिया। शासक वर्गों ने इसे वेतनो में कटौती के प्रच्छन्न साधन में बदल दिया है, अर्थात् मज़दूर जनता के शोषण के एक अन्य रूप में परिवर्तित कर दिया है। मज़दूर वर्ग की पूँजीवादी लूट की सारी मशीनरी इस तरीके से काम करती है कि पहले कष्ट भोगने वाले होते है वेतनों, पेंशनों, छात्रवृत्तियों आदि के रूप में निश्चित आय वाले लोग। लाखो छोटे उद्यमी, स्वयंनियोजित कारीगर, व्यापारी और

किसान उसी सीमा तक प्रभावित होते है जिस सीमा तक उनके उत्पादों की कीमत अनिवार्यतया उस दर से अधिक मन्द गति से बढ़ती है जितनी कि इजारेदारियों द्वारा निर्दिष्ट है। स्पष्ट रूप से छोटे पूँजी-निवेश वालो को भी क्षति पहुँचती है, क्योकि वे स्वय को अवमूल्यित संपत्ति के स्वामी के रूप मे पाते हैं। दूसरी ओर वित्तीय धन्नासेठ जिन्होंने पहले लगाई कम पूँजी को मुद्रा के रूप में वापस लौटा दिया है जो अपना वास्तविक मूल्य खो चुकी है। शब्दशः कहा जाए तो मुद्रास्फीति वेतनों मे वृद्धि को चट कर जाती है जिसे कि मजदूरों ने स्वयं अर्जित किया है।

इन इजारेदारियो के क्रियाकलाप किस प्रकार विकासमान देश को प्रभावित करते हैं? पूंजीवादी सिद्धान्तकार ऊर्जा संकट को पार करने की आवश्यकताओं व कच्चे माल की कमी के सबंध मे वात करते हैं तथा आमतौर से इस समस्या को पर्यावरण की सुरक्षा की समस्या से जोड़ते है। लेकिन इजारेदारियाँ इसके समाधान के लिए कैसे प्रयत्न करती है? निस्सदेह यह सिद्ध करने के लिए अनेक तथ्य दिये जा सकते है कि वे विकासशील देशों के शोषण के कुछ सुधरे (नवीन) रूपों की सहायता से ऐसा करना चाहते है। कच्चे माल की बढती क़ीमत की उन्हे चिन्ता है लेकिन पर्यावरण के विनाश की बिल्कुल नही, इजारेदारियाँ विशेष रूप से बहु-राष्ट्रीय कपनियाँ अपनी औपनिवेशिक स्थितियो की क्षति की पूर्ति का प्रयास करते है, बड़े साफ-सुथरे तरीको की मदद से : पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में विकास-मान देशों को लाकर। वे उच्च रूप से विशेषीकृत (विशिष्टता प्राप्त) औद्योगिक प्रतिष्ठानों को श्रम और तीव्र ऊर्जायुक्त प्रक्रिया वाली और उच्च पर्यावरणिक प्रदूषणयुक्त—इस क्षेत्र में स्थानातरित कर देती है। नवउपनिवेशवादी तीन उद्देश्यों का अनुसरण करते हैं : सस्ते श्रम का शोषण, उनके कच्चे माल के स्रोतों को हाथ में ले लेते हैं और विकासशील देशो की पूँजीवादी शक्तियों पर आर्थिक निर्भरता सुदृढ कर देते है। और इस सबके ऊपर इन देशों पर कुछ उपकारों का भार लाद देते हैं और उनको सामाजिक सुधारो के जरिये करने से रोक देते हैं। तथापि, साम्राज्यवादी परजीविता की नयी व्यवस्था के निर्माण द्वारा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के उनके प्रयास में इजारेदारियाँ विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की विषमता को और अधिक गहरा कर देती हैं और इसके आन्तरिक और वाह्य अन्तर्विरोधो को वढ़ा देती है।

इजारेदार पांतों में व्याप्त प्रतिक्रियावाद : इसे कैसे समझा जाए

इजारेदारियो की अपनी स्थितियों को सुदृढ बनाने की इच्छा अनिवार्य रूप से गृह एवं विदेशनीति के समस्त क्षेत्रो मे जनतंत्रविरोधी प्रवृत्तियों को मजबूत करने की माँग करती है। पहले अपने समय में लेनिन ने साम्राज्यवाद की व्याख्या करते हुए इसे पांतो के मध्य प्रतिक्रियावाद को पुष्ट करने के रूप में परिभाषित

किया था। आगे होने वाले पूँजीवादी समाज के विकास ने इस निष्कर्ष के समर्थन में अनेक प्रमाण प्रस्तुत कर दिये। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अवधारणासदा ही, स्पष्ट रूप से, राजनीतिक जीवन मे प्रतिक्रियावाद सुदृढ़ बनाती है। यह समझ में आने योग्य तथ्य है।

इजारेदार पूँजीवाद का राज्य इजारेदारी में विकास पहले से क्षतविक्षत वर्तमान बूर्ज्वा जनतंत्र के मुख्य आधारों को नष्ट कर देता है। यह लोगों के सामाजिक और वैयक्तिक दोनों प्रकार के व्यवहार के नियमन की एक निश्चित पद्धति के साथ और निश्चित सीमाओ के अन्तर्गत बाँध देने की एक अत्यधिक कठोर प्रक्रिया है (जो सदा सतह पर दिखायी नही देती है)। कभी-कभी वहां जनता को दबाने के लिए फ़ासिस्ट तरीके लागू करने की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है। पूँजीवादी संविधानो मे घोषित मेहनतकश जनता के अधिकार भी अधिकाधिक कुचले जाते है। साम्राज्यवाद ने ही फ़ासिज्म के राजनीतिक आतंक एवं मृत्यु शिविरों की व्यवस्था को पैदा किया है। 1969 की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक का मुख्य दस्तावेज कहता है: "जहाँ कही भी इसके लिए संभव होता है वही साम्राज्यवाद जनतांत्रिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं के विरुद्ध आक्रमण शुरू कर देता है। मानव समाज को यह पैरों तले कुचल देता है और नस्लवाद को उत्पन्न करता है।"[1]

इन दिनों फ़ासिज्म के प्रत्याक्रमण करने के प्रयत्न आवश्यक रूप से शोर भरे प्रदर्शनों के साथ नही होते जैसा कि अतीत में आम तौर से होता था। उदाहरणार्थ, फ़रवरी 1933 में रीश्टाग मे आग लगाने का शैतानी भरा उत्तेजक कारनामा था जिसके जरिये हिटलर के जल्लादों ने अपने सत्ता मे आने की सूचना दी थी। इसके विपरीत, आजकल 'परंपरागत' फ़ासिज्म के अवशेष, नव-फ़ासीवादी आमतौर से राजनीतिक मंच के पीछे काम करने को वरीयता देते हैं। तब तक जब तक कि साम्राज्यवादी पूँजीपति वर्ग फासिस्ट आंदोलन को राजनीतिक आरक्षित सेना की भाँति देखता है, इसके 'कार्यकर्ता' इस प्रकार रहते है जैसे आधे भूमिगत हों और किसी भी उपयुक्त मौके पर काम के लिए तत्पर हैं। तो भी फ़ासीवादी विचारो के राजनीतिज्ञ जनतंत्र के विरुद्ध संघर्ष की अगली पाँत में हैं, जैसाकि चिली की घटना थी। अथवा प्रतिक्रियावाद उनका उपयोग कुछ समय के लिए एक सहायक सेना के रूप मे करता हो जैसाकि कुछ पूँजीवादी देशों में हुआ है। फासीवादी और नवाफसीवादी आंदोलन सदा ही साम्राज्यवाद के उपकरण रहे हैं, अधिक प्रतिक्रियावादी और अधिक आक्रामक : और इसमें यह भी जोड़ना चाहिए कि वे पूँजीपति वर्ग के सहयोगी तत्व हैं। पिछला तथ्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अपेक्षाकृत नयी परिघटना है जो बाद में

1. कम्युनिस्ट एवं वर्कर्स पार्टियों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक, मास्को, 1969 पृ० 21

दैनिक अभ्यास के रूप मे विकसित होता रहा है। काफ़ी समय अब से यह कोई रहस्य नही रह गया है कि विदेशी इजारेदारियाँ प्रत्यक्ष रूप से अथवा अपनी सरकारों के ज़रिये किसी भी देश मे वहाँ के विभिन्न राजनीतिक पक्षों के आन्तरिक संघर्ष में हस्तक्षेप करती है, और, स्वभावतः जनतंत्र विरोधी शक्तियों का पक्ष लेती हैं। चिली मे यही हुआ इस तथ्य के बावजूद कि राष्ट्रपति के चुनावों से वहाँ एक लोकप्रिय सयुक्त सरकार सत्ता पर आ गयी थी, आन्तरिक तथा बाह्य प्रतिक्रियावादियों ने सीधे रूप मे हमला किया और उसे सैनिक फ़ासिस्ट विद्रोह के रूप में पूरा किया। यही पुर्तगाल मे भी हुआ जहाँ देश के भीतर और बाहर प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने कम्युनिस्टों को सरकार से बाहर रखने के लिए जो कुछ किया जा सकता था सभी किया, जिन्होंने संसदीय चुनावो में समाजवादियों सहित लगभग 50 प्रतिशत मत प्राप्त कर लिये थे। यही इटली में भी हुआ, जबकि अमरीका के नेतृत्व मे साम्राज्यवादी शक्तियाँ सरकार मे कम्युनिस्टों के शामिल होने के विरुद्ध चेतावनी लेकर सामने आयी और उस पर भारी दबाव डाला इस अकाट्य तथ्य को अस्वीकार करते हुए कि 1976 के चुनावों में कम्युनिस्टों ने ससद के एक-तिहाई स्थानों से अधिक पर अधिकार कर लियाथा।

हाल ही के ये और अन्य उदाहरण प्रत्यक्ष रूप से बताते है कि इजारेदारियाँ मेहनतकश जनता के विरुद्ध खतरनाक अंतर्राष्ट्रीय साजिशें करती हैं। यह है नया 'पवित्र संयुक्त मोर्चा' जो प्रतिक्रियावाद को पैदा करता है, निस्संदेह जिसका सबसे प्रमुख रूप फासिज्म है। प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध संघर्ष केवल ससदीय और संसदेतर क्षेत्रों को ही प्रभावित नही करता, वास्तव मे यह पूँजीवादी समाज के समस्त आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को ही घेरे मे ले लेता है।

राज्य-इजारेदारी पूँजीवाद के विकास के साथ, न केवल राजनीतिक और सार्वजनिक संगठन ही अति प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के वाहक बन जाते हैं बल्कि स्वयं राज्य मशीनरी भी, साम्राज्यवादी देशों की अफ़सरशाही मशीनरी भी, अपनी समग्र आर्थिक, प्रशासनिक और विधायिका शक्तियों के साथ—स्वभावत. जिसमे गुप्तचर एवं दण्डदात्री संस्थाएँ भी आती है सम्मिलित रहती है।

वर्तमान मे साम्राज्यवादी शिविर में जो कुछ हो रहा है उसे तर्कसंगत रूप से बड़ी इजारेदार पूँजी की तानाशाही का आगे विस्तार के रूप मे ही लक्षित किया जा सकता है। यह एक विविध रूपों वाली प्रक्रिया है जिसमें पूँजीवादी समाज के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे उत्पादन, राजनीतिक संगठन और सास्कृतिक क्षेत्र आ जाते हैं और हर जगह यह साम्राज्यवाद की ऊपरी इजारेदारी सतह और समाज के बीच कभी दूर न होने वाले अंतर्विरोध को तीव्र करती है। ये परिघटनाएँ जो कि पूँजीवादी जनतंत्र के गंभीर सकट को प्रकट करती है यह भी साबित करती है कि ये इसके विकास का ही स्वाभाविक परिणाम हैं। पूँजीवाद के ऐतिहासिक रूप से

पूर्वनिर्धारित पतन का।

व्यापक रूप से प्रचारित पूंजीवादी जनतंत्र में पूंजीवादी व्यवस्था जो उत्पन्न करती है वह है स्पष्ट रूप से त्रुटियों से भरा कुरूप प्रतिक्रियावाद। भले ही सामंतवादी व्यवस्था की तुलना में इसने भारी उन्नति का कदम उठाया हो अथवा मेहनतकश जनता को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के चाहे जितने अवसर दिये हों, जनतंत्र अपने पूंजीवादी रूप में कभी यह दावा नही कर सकता कि जनता द्वारा (बनाई गयी) सरकार की शब्दावली के सही मूलार्थ से इसकी कोई समानता नही है।

मनुष्य को शोषण के विषय के रूप में देखते हुए (पूंजीवाद, अपने सारतत्व और मानव विरोधी प्रकृति के कारण अन्य किसी आधार से उत्पन्न नही हो सकता) सकता) सामाजिक सबंधो की पूंजीवादी अवधारणा अपने अंतिम विश्लेपण में हिंसा का रूप ले लेती है। लेनिन ने लिखा था "बूर्ज्वा वर्ग किसी भी राज्य को केवल तभी सुदृढ़ मानता है जबकि सरकारी मशीनरी की सहायता से वह जहां भी पूंजीवादी शासक चाहे जनता को फेंकने की सामर्थ्य रखता हो।"[1] दूसरे शब्दों में वे जनता का उपयोग अपने उद्देश्य के लिए करते हैं।

इस प्रमुख लक्ष्य को ध्यान में रखकर शासक वर्ग अपने सम्पूर्ण जटिल राज्यतंत्र और प्रशासकीय सत्ता का—सरकारी संस्थानों, दण्डदायक संगठनों और सेना का—निर्माण करता है और यह भी निर्धारित करता है कि विचारधोरात्मक जनप्रभाव के मुख्य उत्तोलकों जैसे स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय, प्रचार की मशीनरी, जनसचार माध्यम, तथाकथित जनसंस्कृति, आदि मे नियुक्तियां किस आधार पर की जाएं। ये सभी एक ही लक्ष्य की उपलब्धि के लिए चलायी जाती है वह है—मजदूर जनता को सामाजिक जीवन मे स्वतंत्र भूमिका निभाने से और साम्राज्यवादी नीति के वास्तविक उद्देश्यों को समझने से रोका जाये और उनको शासक अभिजात वर्ग का अंधा हथियार बना लिया जाय। यदि जुझारू सघर्षों के दौरान मजदूर वर्ग पूंजीवादी देशों में कुछ राजनीतिक स्वतंत्रताएं अर्जित करने की व्यवस्था कर लेता है, तो यह सत्ता के अनुग्रह के कारण नही होता, जैसाकि उनका प्रचार दावा करता है, बल्कि उनकी मजबूरी से उत्पन्न सुविधा है। ऐसी प्रत्येक रियायत संबधित देश में वर्ग शक्तियों के वास्तविक पारस्परिक संबंधों को प्रतिबिम्बित करती है, और अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भी। इसी के साथ-साथ बूर्ज्वा वर्ग इन्हें शून्य मे बदलने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयास करता है। इसी संघर्ष के दौरान जनतंत्र के पूंजीवादी पथ का विकास होता है।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय ने अन्य सिद्धान्तों की रचना की,

1. वी० आई० लेनिन "द्वितीय अखिल रूसी सोवियत मजदूरों और सैनिक प्रतिनिधियों की कांग्रेस" संकलित रचनायें खंड, 26, पृ० 256

जोकि पूंजीवादी प्रजातंत्र के विरोध मे थे। इसने प्रत्येक नागरिक को अपनी रचनात्मक क्षमताएँ विकसित करने के लिए अधिकतम अवसर प्रदान करने का कर्तव्य सामने रखा तथा इस प्रकार मेहनतकश जनता को समाज के सक्रिय और समझदार रचयिता के रूप में बदलने का कार्यभार रखा जैसा कोई भी पूर्ववर्ती समाज नही कर सका था। लेनिन ने लिखा : "शक्ति का हमारा विचार सर्वथा भिन्न है। हमारा विचार यह है कि राज्य तब ही शुद्ध हो सकता है जब जनता राजनीतिक रूप से समझदार हो और यह तब ही मजबूत हो सकता है जब जनता हर चीज जानती हो, हर चीज के बारे में राय क़ायम कर सकती हो और समझदारी के साथ हर काम कर सकती हो।"[1]

जीवन ने दिखादिया है कि पूंजीवादी जनतत्र के अलग अलग लक्षणों की तुलना मे सोवियत राज्य अपनी सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्य समस्याओं का समाधान बुनियादी रूप से भिन्न तरीके से करता है इस तथ्य ने पूंजीवाद के गंभीर संकट के आरभिक दौर को स्पष्ट कर दिया है। यह संकट 'कम्युनिस्टों का' आविष्कार नही है, जैसाकि सोवियत सघ के शत्रु दुनिया को विश्वास दिलाना चाहते हैं, अपितु स्वयं पूंजीवादी समाज मे चल रही प्रक्रियाओं का परिणाम है। एक ओर तो, पूंजीवादी उदारवाद की पारपरिक आर्थिक परंपरा, निजी उद्यमों की स्वतंत्रता (जो अब पहले ही काटी जा चुकी है) का दौर समाप्त हो रहा है और इजारेदारियों ने उसका स्थान ले लिया है। यही नही पूंजीवाद ने, जो 1930 के आरंभ में विनाशक मंदी के चंगुल मे था, अर्थव्यवस्था में राज्य हस्तक्षेप के लिए अपने द्वार खोल दिये जिससे कि वह अपना सिर ऊँचा बनाये रख सके। इस प्रकार करते हुए उसने पूरी तरह पूंजीवाद राज्य इजारेदारी की तानाशाही के लिए भौतिक आधारशिला रख दी। दूसरी ओर तात्कालिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं को हल करने में पूंजीवादी जनतांत्रिक संगठनों की अक्षमता के कारण मजदूर जनता मे असन्तोष बढ़ने लगा। इस क्रम मे, कुछ पूंजीवादी देशों में यह अत्यधिक अस्थिर राजनीतिक स्थिति उत्पन्न कर देता है, प्रतिक्रियावाद जिसका व्यापक रूप से उपभोग करता है—जनता पर आधिपत्य के लिए फासिस्ट तरीके लागू करने के लिए। फलस्वरूप, इजारेदारी पूंजीवाद के दक्षिणपंथी ग्रुपो और आतंकवादी तानाशाही के समर्थकों के प्रभुत्व के लिए सैद्धान्तिक और राजनीतिक आधार आकार ग्रहण कर लेता है।

'क़ानून'और व्यवस्था', 'मजबूत सरकार' और, 'श्रेष्ठतम नस्ल का शासन' का नारा देकर वे बहुधा निम्न मध्यमवर्गीय जनता को पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा के लिए अपने साथ बहा ले जाते हैं।

1. वी० आई० लेनिन 'द्वितीय अखिल रूसी सोवियत कार्यकर्ताओं और प्रतिनिधियों की कांग्रेस' सकलित रचना, भाग 26, पृ० 256

साथ-ही पूंजीवादी जनतंत्र का संकट, जो एक समय मानवता और फ़ासिज़्म के बीच विश्वव्यापी संघर्ष के लिए भी उत्तरदायी था और शक्तिशाली रूप सेकिसी भी पूंजीवादी देश में एक अन्य सघर्ष के खतरे को अभी भी बनाये हुए है, स्वयं पूंजीवाद के भीतर शक्तियों के विभेदीकरण की ओर ले जाता है। इस स्थिति में इजारेदार पूंजी की तानाशाही को मजबूत करने की आकांक्षाएँ निरंतर बढ़ते हुए विरोध उभारती है। उदार पूंजीवादी जनतान्त्रिक संस्थानो के पूंजीवादी समर्थकों की ओर से भी विरोध होने लगता जिन्हें अपना कार्य निरन्तर जारी रखने के लिए मजदूर वर्ग पर भरोसा करना पड़ता है। इसका अर्थ है कि पूंजीवादी जनतंत्र अपने परम्परागत आधार पर निर्भर नही रह सकता। यह उन शक्तियों की सहायता के बिना कार्य नही कर सकता जो इजारेदारियों के आर्थिक और राजनीतिक आधिपत्य के विरुद्ध युद्ध के द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन प्राप्त करने में रुचि रखते है।

यह मूल रूप से एक नया तथ्य है। यह ऐसे कार्यक्रम के आधार पर जो पूंजीवादी जनतत्र की सीमाओ से का अतिक्रमण करता है, व्यापक साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चा स्थापित करने के लिए अवसर खोलता है। इस प्रकार का संयुक्त मोर्चा 'समस्त जनतान्त्रिक धाराओं के एक राजनीतिक संयुक्त मोर्चे मे आने से बन सकता है जो निश्चित रूप से सबद्ध देशों की अर्थव्यवस्थाओ मे इजारेदारियों द्वारा निभायी जा रही भूमिका को सीमित करने में निर्णायक भूमिका निभा सकता है, बड़ी पूंजी की शक्ति को समाप्त कर सकता है तथा इस प्रकार के क्रान्तिकारी राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन ला सकता है जो समाजवाद के लिए संघर्ष जारी रखने हेतु सर्वाधिक अनुकूल परिस्थितियों को सुनिश्चित कर सकते हों।'[1]

हमारे समय मे पूंजीवाद के पतन एवं ध्वंस की प्रक्रिया जैसा कि लेनिन ने अपनी कृति साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की उच्चतम अवस्था में चित्रित किया था, ने सार्वभौम रूप धारण कर लिया है।

साम्राज्यवाद जिन संकटो से गुज़र रहा है, यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के 1976 के सम्मेलन मे यह उल्लेख किया गया, "वे पूंजीवादी व्यवस्था के आम संकट के और बढ़ जाने के फलस्वरूप प्रकट होते हैं और विभिन्न देशों में विभिन्न रूप और आयाम ग्रहण करते हैं।" पूंजीवादी समाज के आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों को प्रभावित करताहै। सम्मेलन में यह भी कहा गया : "वर्तमान गभीर संकट के इस प्रकार के लक्षण—जैसे स्थायी मुद्रास्फीति, मौद्रिक व्यवस्था का संकट, उत्पादन क्षमताओं का अधिकाधिक कम उपयोग होना और मेहनतकश जनता के लाखों व्यक्तियों का बेरोजगार होना

---

1. कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अतर्राष्ट्रीय बैठक, मास्को, 1969, पृ० 27

—बड़ी गहराई के साथ अनुभव किये जा रहे है।"[1]

पूँजीवाद के अन्तर्गत ये परिघटनाएँ नयी नहीं हैं। तथापि, जो नया है, वह यह है कि ये स्थायी बन गयी है और अपने को विशेष रूप से विध्वंसक रूप मे प्रदर्शित करने लगी हैं। उत्पादन में वृद्धि, जिसके पश्चात् प्रायः मंदी आती है, अधिक समय तक बेरोजगारी की समस्या का समाधान नही कर सकती; और आर्थिक गिरावट होने पर आवश्यक तौर पर क़ीमतें नही गिरती। श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि और उत्पादन की प्रभावशशीलता महगाई को कम नहीं कर सकती। मजदूरों की स्थिति अधिकाधिक निराशाजनक होती जाती है लेकिन पूंजीवादी देशों की आर्थिक स्थिति में हो रहे परिवर्तनों के बावजूद—चाहे उत्पादन क्षमताओं का भार बढ़े, बेरोजगारी में गिरावट आये या वह बढ़े, मुद्रास्फीति मे घटत या बढ़त हो—एक क्षेत्र ऐसा है जो सदा एक जैसा रहता है जिसमें कभी गिरावट नही आती। वह है इजारेदारियों के मुनाफ़े का क्षेत्र। यह कहना ही काफी होगा कि अमरीकी इजारेदारियों के मुनाफे 1970 से 1974 के बीच ही दुगुने हो गये। 1975 मे (1929-33 की मंदी के बाद के अनुपम आर्थिक संकट की वृद्धि के समय) बेरोजगारी की तेजी से वृद्धि के साथ और मुद्रास्फीति की प्रक्रिया मे तथा महगाई में वृद्धि के साथ, अमरीकी व्यापार क्षेत्रों के प्रभावशाली मासिक फ़ार्च्यून के अनुसार, सबसे बड़ी 50 कंपनियों के व्यवसाय मे 30,000 मिलियन डालर तक बढ़ोतरी हो गयी, और शुद्ध मुनाफ़ा 1971 की तुलना मे 12,000 मिलियन डालर तक बढ़ गया था।

यह इस विषय का मूल प्रश्न है। सामाजिक संबधो की ऐसी व्यवस्था जो निर्बाध रूप से पूंजी के संचय को सुनिश्चित बनाने से और मुनाफ़ो की राशि जमा करने से संबंध रखती है, तथा लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति से सरोकार नही रखती, अन्य कोई परिणाम प्रस्तुत कर ही नही सकती। व्यक्तियों के हितों पर संभवतः इस व्यवस्था में विचार किया जाता हो लेकिन वह भी गौण महत्व का विषय है, क्योंकि वे भी सदा पूंजी के हित मे त्याग दिये जाते है और कभी-कभी उनकी सर्वथा उपेक्षा कर दी जाती है। पश्चिम जर्मनी को वर्टश्चाफ़्टसोचे ने लिखा : चूहों के बाद विश्व मे मनुष्य ही सर्वाधिक संख्या में है। लोगों के अतिरेक ने प्रत्येक व्यक्ति के अलग महत्व को कम कर दिया है। मानव जीवन, जो किसी भी मानवीय नैतिकता का सार है अत्यधिक उपेक्षित हो गया है और अब इसका मूल्य एक पाउण्ड स्टर्लिंग के फ़ैंक साथ मिलाने से अधिक नही है।[2]

वर्तमान पूंजीवादी विश्व मे पूंजीवादी समाज और व्यक्ति के बीच असाध्य अंतर्विरोध अत्यधिक गहरा और दुखद बन गया है। इजारेदारियों की शक्ति

1. यूरोप मे शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति के लिए' मास्को, 1976, पृ० 36
2. वर्टश्चाफ़्टसोचे स. 12, मार्च 15, 1974 S, 24

ने भविष्य मे व्यक्ति की आस्था को तोड़ दिया है, वह उसकी नागरिक प्रतिष्ठा को कुचल देती है,उसकी मनोवृत्ति को कुरूप और दास बना देती है, दवाओं की आदत, और नशाखोरी, अपराधो की अकल्पनीय वृद्धि, समूहों की मानसिक अराजकता, आदि वे कीमतें है जिन्हे वर्तमान पूँजीवादी समाज व्यक्ति के साथ संबंधों की समस्या को सुलझाने में अपनी असमर्थता के लिए अदा करता है।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पूँजीवादी विश्व के अधःपतन के उक्त लक्षणों के मुख्य केन्द्र हैं सर्वाधिक उद्योगीकृत और सम्पन्नतम पूँजीवादी देश। अमरीका में, उदाहरण के लिए, आबादी की वृद्धि की अपेक्षा 9 गुना तेज़ी से सामूहिक अपराध बढ़ रहे है। इस साम्राज्यवादी शक्ति में इसी प्रकार अन्य कई की सूचियाँ भी सबसे ऊँची है। अमरीका के युद्धोत्तर विकास के परिणामों की चर्चा करते हुए 1976 मे राष्ट्रपति के चुनाव अभियान में जिराल्ड फ़ोर्ड जो उन दिनों अमरीका के राष्ट्रपति थे, ने विवाद की उत्तेजना में स्वीकार किया था कि वर्तमान पीढ़ी के अधिकांश जीवनों के माध्यम से अमरीका ने संकट का सामना किया। अमरीका के कई नेताओं को कत्ल कर दिया गया, एक युद्ध हुआ जिसमें अमरीका न तो जीत सका और न उसे समाप्त ही कर सका। अमरीका की सड़कों और विश्वविद्यालय परिसरों मे उत्पाती दंगे हुए। "असीमित मुद्रास्फीति भुगतनी पड़ी और सबसे खराब मंदी सहनी पड़ी। उन्होंने कहा : "सरकार के उच्चतम स्तर पर भ्रष्टाचार ने हमारा पर्दाफाश किया।"[1]

यह सोचने का कोई कारण नही है कि फ़ोर्ड आत्मालोचना कर रहे थे। वह केवल वास्तविकता से बच निकलने मे असमर्थ हो गये थे। अमरीका का यंत्रणापूर्ण अनुभव पूँजीवादी विश्व में कोई अपवाद नही है : यह सीधे-सादे ढंग से सामान्य शब्दावली मे उस मार्ग के विषय में पूर्वानुमान है जिस पर औद्योगीकृत पूँजीवादी देश वर्तमान मे चल रहे हैं। यह स्थिति चाहे जितनी अपमानजनक हो वह इस पर बढ़ते चले जाएँगे वस्तुगत अनिवार्यता के साथ तब तक जब तक कि उनकी अर्थ-व्यवस्थाएँ अमरीकी रथ के साथ जुड़ी हैं और उनके वैचारिक केन्द्र उनको अमरीकी पद्धति की ओर निर्देशित करते रहें।

यदि संयुक्त राज्य अमरीका में, जहाँ यूरोप की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय तीन गुना ऊँची है, विकास और समृद्धि ने ग़रीबी को हटा दिया होता, सामाजिक अन्याय और मज़दूर वर्ग की कुछ श्रेणियों के शोषण, को समाप्त कर दिया होता तब वहाँ उसके उदाहरण का अनुसरण करना लाभदायक होता। ल मोंद डिप्लोमेटिक के संपादक क्लाड जूलियन ने अपनी पुस्तक 'ले सुईसाइड्स डेमोक्रेटीस' मे लिखा : "लेकिन उस देश का अनुभव जो यूरोप से आगे बढ़कर प्राविधिक और उपभोग के

1. टाम लिंक, सितम्बर 15, 1976

युग में प्रवेश कर चुका है, सारे भ्रमों को तोड देता है : उत्पादन के विस्तार से गरीबी का अन्त नहीं हुआ, जीवन की गुणवत्ता की अपेक्षा जीवन का स्तर ऊंचा हुआ, फ़ार्मों की संख्या, जहां मजदूरों को समस्त मानवीय हित के सभी अधिकारों से वचित है, कई गुना बढ़ गयी है···और अन्ततः पार्यावरणिक प्रदूषण ने सभी सीमाएँ तोड दी हैं—और आज सारा यूरोप अमरीका के क़दमों का अनुसरण कर रहा है।"[1]

फ्रांसीसी पत्रकार का चेतावनी भरा वक्तव्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, इस संकट की रोशनी में जो निरतर पूंजीवादी विश्व को कंपा रहा है और 1970 के मध्य मे विशेष रूप से गंभीर हो गया है।

सत्तर का दशक : पूंजीवाद के नवीकरण का शोकगीत

यदि 'प्राविधिक नियतिवाद' की अवधारणा तथा 'जीवन की गुणवत्ता' सुधारने की पूंजीवादी शैली के नारे का दिवालियापन प्रमाणित करने के लिए किसी अतिरिक्त प्रमाण की आवश्यकता है, तो वह 1970 के मध्य अत्यधिक तीव्र संकट के रूप में स्वयं प्रकट हो गया, जिस संकट ने समस्त पूंजीवादी विश्व को कँपा दिया। पूंजीवाद के इतिहास मे इतनी अधिक संख्या में आये, पूर्ववर्ती आर्थिक संकटों से इतना भिन्न, 1974-75 का यह संकट बहुमुखी परिघटना के रूप में विकसित हुआ। "यह केवल एक आर्थिक संकट होने से कुछ अलग हट कर था, यह राजनीतिक और नैतिक संकट भी था।" 1976 में यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के सम्मेलन में लियोनिद ब्रेजनेव ने इस ओर ध्यान दिलाया था कि "जनगण अधिकाधिक समझते जा रहे है कि पूंजीवादी समाज ऐसा समाज है जिसका भविष्य नही है।"[2]

यह ऐसे समय में प्रकट हो रहा है जब पूरे विश्व में वर्ग शक्तियां अपने को पुनर्गठित कर रही हैं और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों मे नये परिवर्तन हो रहे है, यह संकट पूंजीवादी समाज के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में—अर्थव्यवस्था, राजनीति और विचारधारा में—फैलता जा रहा है। परंपरागत रूपों की विविधता के अतिरिक्त इसके बडी संख्या में नये पहलू हैं जो मौलिक महत्व रखते हैं।

1930 के दशक के प्रारंभ में उत्पन्न संकट से कुछ भिन्न, जबकि विश्व पूंजीवाद की राज्य इजारेदारी की व्यवस्था अभी आरंभ हो रही थी, आकार ले रही थी, वर्तमान संकट उस समय आया जब कि इस व्यवस्था का निर्माण पूरा हो चुका था और जब यह इसके नियामक उत्तोलकों जिनमें से कुछ प्रभावहीन हो चुके थे, को

1. क्लाड जूलियन, ले सुईसाइड द डैमोक्रेटीस, पैरिस 1972, पृ० 174
2. यूरोप मे शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति के लिए, वर्णित जून, 28-30, 1976, मास्को, 1976, पृ० 5

पुन: नियन्त्रित करने में लगा था। इन अर्थों में 1974-75 का संकट और उसके परिणाम वास्तव में स्वयं राज्य-इजारेदारी व्यवस्था के संकट के अतिरिक्त कुछ न थे।

अर्थव्यवस्था के राज्य द्वारा नियमन, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय इजारेदारी मे एकीकरण ने इस संकट को विशेष रूप से गहरा और तीव्र बना दिया है। एक ही समय आयी उत्पादन में चक्रिक मंदी ने पूंजीवादी विश्व मे अर्थव्यस्था की सभी मूलशाखाओं को और साम्राज्यवाद के सभी शक्ति केन्द्रों को, प्रभावित कर दिया, और ऐक्यबद्धता की सीमाओं को पार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक भी पूंजीवादी देश दूसरे देश की क़ीमत पर संकट से बाहर नही निकल सका। दूसरी ओर, सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा, अपनी इजारेदारियों सहित, डाला गया निरंतर दबाव संकट को और अधिक बढ़ा देता है और नयी कठिनाइयां पैदा हो जाती है जिन्हें इसके 'कनिष्ठ भागीदार' मेहनतकश जनता के कंधों पर डालने की कोशिश करते हैं।

पूंजीवाद अब इस स्थिति में नहीं है कि अतिरिक्त उत्सर्जन तथा कमी की आपूर्ति, तथा धन के व्यय के लिए पर्याप्त मात्रा में योग्यता के साथ कीन्स के नुस्खों का उपयोग कर सके जैसे कि क्लासिकीय रूपों के काल में किया जाता था—मंदी के और बेरोजगारी के साथ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की स्फीति वित्त व्यवस्था से जुड़ गयी है। मुद्रास्फीति वास्तव में नियंत्रण को तोड़ चुकी है और इसने संपूर्ण विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मुद्रा-क्षेत्र मे भयानक संकट उत्पन्न कर दिया है। इससे भी आगे, निरंतर बढती हुई कीमतों, और इसी प्रकार इजारेदारियों के सरकारी अनुदानों और शस्त्रास्त्र निर्माण पर अत्यधिक व्यय ने संकट मे बाहर निकलने के रास्ते खोजने और उसके परिणामों का सामना करने के अवसर समाप्त कर दिये है।

इस प्रकार, क्लाड जूलियन तब सर्वथा सही थे जब 1974 के अंत में उन्होंने संकटापन्न परिघटनाओं के वास्तविक आयामो को कम आंकने और इस प्रकार सामान्य मूल्यांकन को विकृत करने के प्रयासों के विरुद्ध चेतावनी दी थी। उन्होंने **'ल मांद डिप्लोमेटिक'** में लिखा था : "रिनाल्ट स्टेट फैक्टरीज़ बोर्ड के अध्यक्ष ने कहा : एक बाजार का संकट'''एक दीर्घकालिक बाजार संकट, अमरीकी अधिक संतुलित निर्णय देते हुए कहते है, एक लंबी अवधि का सकट, वेलेरी गिस्कार्ड डीएस्टेंग पुष्टि करते हैं। कोई भी स्पष्ट रूप से इसके चरित्र के संबंध में एक शब्द भी कहने का साहस नही करता, **व्यवस्था के संकट** के रूप में, और यह स्पष्टतः विषय का मर्म है।"[1]

1. ल' मांद डिप्लोमेटिक सं० 248, नवम्बर 1974, पृ० 1

1974-75 का आर्थिक संकट साम्राज्यवाद की पुरानी औपनिवेशिक व्यवस्था की छिन्न-भिन्न होने की स्थितियों के तथा गंभीर विरोधो के ऊँचे होने की स्थितियो के अतर्गत चल रहा था। औद्योगीकृत और विकासशील देशों के बीच। यह उस समय उभरा जबकि नयी विश्व आर्थिक व्यवस्था के संगठन का प्रश्न विचारणीय मुद्दा बन चुका था। इसने न केवल पूंजीवाद के लिए वर्तमान आर्थिक कठिनाइयों का समाधान करना अधिक कठिन बना दिया अपितु वह इसके आम संकट की अगली व्यवस्था का बुनियादी कारक भी बन गया।

वास्तव में, हम तथाकथित विकासमान देशों की विस्तृत कीमत पर संघर्षक एक और दौर के आरंभ के साक्षी हैं जो इस समय आर्थिक क्षेत्रो मे है। यद्यपि राष्ट्रीय मुक्ति सघर्षों के आघातों ने साम्राज्यवाद को एशिया और अफ्रीका मे बहुत से देशों की राजनीतिक स्वाधीनता को मान्यता देने के लिए बाध्य किया है, वस्तुतः वे विश्व के इन विशाल क्षेत्रों के जनगण की तथा उनके कच्चे माल की और ऊर्जा ससाधनों की लूट को जारी रखें हुए है।

1953 मे 1973 के पिछले दो दशको मे, पूंजीवादी और विकासशील देशो के प्रतिव्यक्ति सामान्य राष्ट्रीय उत्पादन के बीच का अन्तर दुगुना बढ गया है। और आज यहअनुपात 16·1 के बराबर है। यह आश्चर्यप्रद नही है, यदि हम यह ध्यान मे रखे, उदाहरणार्थ, यह तथ्य कि पश्चिम जर्मनी मुख्य रूप से जो कच्चा माल विकासमान देशो से आयात करता है वह 1962 से 1972 के बीच 2.1 प्रतिशत बढ गया जबकि तैयार माल का निर्यात मूल्य 24.5 प्रतिशत तक पहुँच गया—इसी काल मे। हमने इस प्रकार बहुत से उदाहरण उद्धत किए हैं जो स्पष्ट रूप से यह दिखाते है नव उपनिवेशवाद के नाम से जिस परिघटना की चर्चा की जा रही है वह पुराने उपनिवेशवाद से अधिक भिन्न नही है। इसका अर्थ है कि मुट्ठी भर आर्थिक रूप से विकसित देश विकासमान देशों को अभी भी निरंतर लूट और कुचल रहे हैं।

और अधिक समय तक इस स्थिति को जारी रखने के अनिच्छुक विकासशील देश अपने यहाँ के ऊर्जा ससाधनो और कच्चे माल के स्वामित्व और मुनाफ़ों (जो विदेशी इजारेदारियाँ ले रही है) के बीच साम्राज्यवादियो द्वारा लागू किए गए असतुलन को सुधारने, उसकी रक्षा करने के लिए ठोस कदम उठा रहे है। दूसरे शब्दो मे वे अधिक न्याय संगत आर्थिक व्यवस्था चाहते हैं जो श्रम के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन पर आधारित हो, जो समस्त मानव समाज के हितो को पूरी तरह ध्यान मे रख सके।

कुछ क्षेत्रों में और कुछ मुद्दों पर विकासमान देश पहले से ही स्थिति को अपने पक्ष में परिवर्तित कर रहे है। कुछ मामलों मे साम्राज्यवाद अधिक समय तक पहले की तरह कच्चे माल की कीमतें मनमाने ढंग से निर्धारित नही कर सकता। इन परिस्थितियों ने इजारेदारियो को अतिरिक्त संसाधनो की खोज के लिए

मजबूर कर दिया है जिससे कि कच्चे माल और ऊर्जा की कमी को पूरा कर सकें और विकासशील देशों की क़ीमत पर संकट से बचने की उनकी परम्परागत संभावनाओं में कटौती भी कर दी है।

1974-75 का आर्थिक संकट पहला था जो विश्व समाजवादी व्यवस्था के अस्तित्व में आने के बाद आया। अब एक ही समाजवादी देश नही है, बल्कि समाजवादी देशो का समुदाय है जो सक्रिय रूप से विश्व की घटनाओं को प्रभावित करता है, स्वयं पूंजीवादी देशों की घटनाओं पर भी प्रभाव डालता है। फलस्वरूप, पूंजीवाद अपनी इच्छानुसार काम नही कर सकता। साम्राज्यवाद भी समाजवादी व्यवस्था और मेहनतकश जनता के मुक्ति आदोलन के विरुद्ध इसी प्रकार अपने स्वयं के अन्तर्विरोधों को हल करने के लिए अपने आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक साधनों के चयन मे अधिकाधिक सीमित होता जा रहा है। यह उसकी दोनों, गृह तथा विदेश—नीतियों पर लागू होता है। मेहनतकश जनता की कीमत पर और विदेश नीति के विस्तार के जरिये अन्तर्विरोधों को सुलझाने के परम्परागत तरीकों को इजारेदारी विरोधी शक्तियों के शक्तिशाली विरोध का सामना करना पड़ रहा है।

विश्व एकाधिकारवाद ने कभी अपने तरीकों को नही छोड़ा जब कभी इसके मुनाफों के लिए खतरा पैदा हुआ इसने अत्यधिक खतरनाक जुएबाजी और उग्रवादी उपाय किए। उदाहरण के लिए, यह सभी जानते है कि पहला विश्वयुद्ध अत्युत्पादन के चाक्रिक संकट के दौरान शुरू हुआ था जो 1913 में आरंभ हुआ और उसने आर्थिक रूप से सभी पूंजीवादी देशों को प्रभावित किया था। 1929-33 का विध्वंसकारी आर्थिक संकट और उसके बाद 1937-38 की मंदी दूसरे विश्व युद्ध के पूर्व आई थी। इसी तरह वर्तमान संकटापन्न स्थिति पूंजीवादी देशों में सैन्यवादी शक्तियों के क्रियाकलाप को बढ़ावा दे रही है जो तनाव-शैथिल्य को सर्वथा अस्वीकार करते हैं। यही ताकतें हथियारबंदी की दौड़ को और अधिक मात्रा मे तेज करना चाहती हैं, और समय रहते विश्व नीति के क्रम को शीतयुद्ध की तरफ उलटा घुमाना चाहती है लेकिन वर्तमान परिस्थितियों के अंतर्गत हल्के इस स्थिति में नही हैं कि विश्व घटनाओं के क्रम को निर्देशित कर सकें और अपनी इच्छा जनगण पर लाद सकें जैसा कि कभी अतीत में वे किया करते थे।

जब कभी पूंजीवाद को आंतरिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है यह अपने सामाजिक प्रभुत्व को बचाने और विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक, और राजनीतिक स्थिरता की कमी का लाभ उठाने की कोशिश में घोर प्रतिक्रियावादी तरीके काम में लाते हैं। मज़दूर वर्ग पर और सामान्यतया आम जनता पर चोट करने के लिए। यही जर्मनी में फ़ासिज़्म ने किया था।

वर्तमान संकटापन्न परिघटना भी नव फ़ासीवादी शक्तियों को और अन्य

उग्र दक्षिण पंथी धाराओं को उत्तेजित करती है। उनका वेद वाक्य है 'शिकंजा कसो', जिससे कि मजदूर वर्ग को 'अपने पेटियाँ कसने को बाध्य किया जा सके तथा 'कानून और व्यवस्था' स्थापित की जा सके।

तथापि, आज इन प्रवृत्तियो का विरोध जनतांत्रिक शक्तियों के मोर्चे द्वारा दोनों तरह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, तथा अलग-अलग पूंजीवादी देशों में भी, किया जा रहा है। एक पूर्णतया भिन्न स्थिति आकार ले रही है। नव पूंजीवाद, जबकि निस्संदेह रूप से अपने साम्राज्यवादी रूप में रहते हुए, वह अधिक समय तक मात्र अपने स्वयं के क़ानूनों द्वारा अस्तित्व में नही रह सकता, इससे भी बढकर, यह समाजवाद में सक्रमण का रूप धारण करता जा रहा है। लेनिन ने लिखा था—"पूंजीवाद अपनी साम्राज्यवादी अवस्था में, उत्पादन के प्रत्यक्ष तथा अत्यधिक समझदारी भरे समाजीकरण की दिशा ग्रहण करता है; या कहना चाहिए, कि यह पूंजीपतियो को, उनकी इच्छा और चेतना के विरुद्ध खीच ले जाता है, एक प्रकार की नई सामाजिक व्यवस्था में ले जाता है, जो कि संक्रमण काल की अवस्था है, एक पूर्णतया मुक्त प्रतियोगिता से पूर्ण समाजीकरण की दिशा मे।"[1] एक ओर तो इसे राज्य इजारेदारी पूंजीवाद की कार्य विधि मे मुख्य परिवर्तन द्वारा लक्षित किया गया है और दूसरी ओर सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों के सहसंबंधों में महत्वपूर्ण परिवर्तन के रूप में भी जो समाजवादी क्रांति के आरंभ मे इजारेदारी विरोधी मोर्चा बनाता है। इसके लिए यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के सम्मेलन के दस्तावेज मे लिखा गया है—"समाज में पहले से बहुत बड़े भाग पूंजीवादी समाज को समाजवादी समाज मे रूपांतरित करने की ऐतिहासिक आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं जो प्रत्येक जनगण की इच्छाओं के अनुरूप निर्मित की जाएगी।[2]

1. वी. आई. लेनिन, साम्राज्यवाद : पूंजीवाद की सर्वोच्च अवस्था, संकलित रचनाएं भाग 22 पृष्ठ 205
2. फ़ॉर पीस सिक्योरिटी, कोऑपरेशन एंड सोशल प्रोग्रेस इन यूरोप, पृष्ठ 35

अध्याय : 7

इजारेदारी-विरोधी-मोर्चे का निर्माण

"अब इतिहास स्वयं ही न्यायाधीश है, तथा सर्वहारा उसके निर्णय का निष्पादक।"[1]

—कार्ल मार्क्स

सामाजिक विकास की मूल शक्ति

पूंजीवादी दुनिया में मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता दरअसल समय की पहचान बन गई है। पूंजीवादी विश्व में आज न तो कोई भी ऐसा दल या सामाजिक आंदोलन है जो जन-असंतोष की अवहेलना कर सकता हो और न ही एक या दूसरे सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन को समर्थन देने से चूक सकता हो। सन् 1974-75 का संकट और उसके बाद के प्रभावों ने इस प्रवृत्ति को मजबूत ही किया है। सारी समस्या का केंद्र इन मूलभूत परिवर्तनों की विषयवस्तु है—कि ये किसके पक्ष में हैं और किस तरह घटित होते हैं।

लेनिन के अनुसार, मार्क्सवादी हमेशा "एक निर्धारित क्षण में ऐतिहासिक प्रक्रिया के वस्तुगत सार तत्त्व का विश्लेषण करते हैं, निश्चित और ठोस परिस्थितियों में उसकी जाँच करते हैं; वे ऐसा यह निर्धारित करने के लिए करते हैं कि प्रमुखतया कोई आंदोलन किस प्रकार का है, उन ठोस परिस्थितियों में वह किस वर्ग के मूल नेतृत्व में, किस उद्देश्य के लिए, किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है।"[2]

मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षण के अनुसार 'प्रेरणास्रोत' मजदूर वर्ग होता है। इस निष्कर्ष के समर्थन में हमारा अनुभव समुचित प्रमाण उपलब्ध कराता है, पिछले 150 वर्षों में सर्वहारा वर्ग अपरिहार्य वर्ग-संघर्षों के बीचोंबीच रहा है और उसने मुक्ति और लोकतांत्रिक आंदोलन में पूर्ण आत्मविश्वास के साथ नेतृत्वकारी भूमिका अदा की है। अपेक्षाकृत अल्प ऐतिहासिक अवधि में मजदूर वर्ग ने राजनैतिक शक्ति के रूप में विशाल प्रगति की है। यह हमारे युग के प्रगतिशील परिवर्तनों का नेता है। पूंजीवादी देशों में इसका संघर्ष सामाजिक विकास की प्रमुख शक्ति बन चुका है और "सारी मेहनतकश जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करता है, और

1. मार्क्स/एंगेल्स, वर्क, खंड 12, पृ० 4
2. वी. आई. लेनिन, 'अंडर ए फ़ाल्स फ्लैग', कलेक्टेड वर्क्स, खंड 22, पृ० 143

सबसे बढ़कर राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करता है।'[1]

मजदूर वर्ग ने मुक्ति और लोकतान्त्रिक संघर्ष के नेतृत्व को, साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध भारी लड़ाइयों के दौरान लड़ते हुए जीतकर हासिल किया है। समकालीन समाज के अन्य वर्गों में इसकी भूमिका और इसका स्थान क्रमश: पहचाना गया था। एक ऐसा भी समय था जब सर्वहारा, जोकि पहले से ही लोकतांत्रिक आंदोलन में हिस्सा ले रहा था, अपने ही बलबूते पर एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में काम नही कर सकता था और न अपना खुद का कार्यक्रम ही सामने रख सकता था; उसने जो संघर्ष छेड़ा था वह अपने वर्ग शत्रु—बूर्ज्वा वर्ग—के खिलाफ़ सीधे तौर पर लक्षित नही था किंतु वह उसके दुश्मन के दुश्मनों के विरुद्ध था—अर्थात् सामंती प्रभुओं और तानाशाही के विरुद्ध था। अठारहवीं शताब्दी के अंत की स्थिति ऐसी ही थी अर्थात् फ्रांसीसी क्रांति और अमरीकी उपनिवेशों के स्वाधीनता संग्राम की अवधि के दौर में। दूसरे शब्दों में, उस अवस्था में यह फिर भी आवश्यक था कि बूर्ज्वा वर्ग के सामाजिक-राजनैतिक और सैद्धांतिक प्रभाव से सर्वहारा की मुक्ति की समस्या को हल किया जाय अर्थात् इसे अपने आपको एक स्वाधीन, और उससे भी अधिक, सामाजिक प्रगति की मूल शक्ति के रूप में स्थापित करना था।

यह लक्ष्य कुछ दशकों के दौर में ही पूरी तरह प्राप्त कर लिया गया। सर्वहारा वर्ग 1830 और 1840 के दशकों के वर्ग युद्धों (ग्रेट ब्रिटेन में चार्टिस्ट आंदोलन और फ्रांस और जर्मनी में मजदूर संघर्ष) में लोकतान्त्रिक आंदोलन की स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरने लगा था। अगले दशकों में, विशेषतया मार्क्सवाद के उदय के बाद, यह प्रक्रिया तीव्र गति से विकसित होने लगी, अधिकाधिक देशों को प्रभावित करती हुई। समय के साथ मजदूर वर्ग ने अपने खुद के कार्यक्रम का निर्माण किया जो दूसरे तमाम लोकतांत्रिक आंदोलनों के कार्यक्रमों की अपेक्षा, कहीं अधिक व्यापक और अधिक प्रगतिशील था। इस विकास की द्वंद्वात्मकता ऐसी थी कि स्वयं के द्वारा निर्मित मंच के आधार पर एक के बाद दूसरी स्थिति पर विजय प्राप्त करते हुए सर्वहारा अपने ऐतिहासिक मिशन को न केवल अपने ही हितों को प्राप्त करने के लिए ही पूरा करने लगा, किंतु वह उसे सारे ही श्रमिक जनसमुदाय के हितों की प्राप्ति के लिए पूरा करने लगा। तब से आबादी के व्यापक गैर-सर्वहारा हिस्सों के साथ इसका पुनर्मिलन हुआ जिसका आधार था मौलिक सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए निर्धारित एक स्वतंत्र कार्यक्रम। सामाजिक विकास के तर्क ने इस सह मिलन को अनिवार्य बना दिया था। ठीक जैसे कि बूर्ज्वा वर्ग ने अपनी आरंभिक अवस्था में अपनी ही कब्र खोदने वालों को, अर्थात् सर्वहारा को, पैदा कर दिया था उसी तरह पूंजीवाद—एक व्यवस्था के रूप में नष्ट होने के दौर में—ऐसी वस्तुगत परिस्थितियाँ पैदा कर देता

1. फ़ॉर पीस, सीक्योरिटी, को आपरेशन एण्ड सोशल प्रोग्रेस इन यूरोप, मास्को 1974, पृ० 35

है जिनसे एक ऐसा व्यापक इजारेदारी-विरोधी मोर्चा संगठित हो जाता है जिसमें सभी वास्तविक प्रगतिशील सामाजिक शक्तियाँ मज़दूर वर्ग के चारों ओर एकताबद्ध हो जाती हैं तथा जो देर-सवेर पूँजीवादी व्यवस्था को उलट देती हैं।

प्रत्येक राष्ट्र की सीमाओं के भीतर और अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर, युद्ध को रोकने के लिए सच्ची लोकतान्त्रिकता तथा एक अन्य विश्व युद्ध को टालने के लिए संघर्ष समाजवादी क्रांति की प्रस्तावना के रूप में परिवर्तित हो रहा है। लेनिन ने लिखा—"सर्वहारा को लोकतान्त्रिक क्रांति को पूर्ण करना ही होगा, अपने आपको किसानों के समुदाय से मैत्री के द्वारा एकताबद्ध करके ताकि निरंकुश एकतंत्र के प्रतिरोध को शक्ति के द्वारा कुचला जा सके और बूर्ज्वा अस्थिरता को शक्तिहीन बनाया जा सके।" इसके आगे उन्होंने स्पष्टतया कहा—"सर्वहारा को समाजवादी क्रांति को पूर्ण करना होगा, अपने आपको आबादी के अर्द्ध-सर्वहारा तत्त्वों से मैत्री के द्वारा एकताबद्ध करके, ताकि बूर्ज्वा प्रतिरोध को शक्ति के द्वारा कुचला जा सके और किसानों और टटपुंजियों के वर्ग की अस्थिरता को संज्ञा शून्य किया जा सके।"[1]

लेनिन ने यह निष्कर्ष इस शताब्दी के आरंभ में निकाला था, उस प्रारंभिक अनुभव के आधार पर जो सन् 1905-07 की रूसी क्रांति के दौरान प्राप्त हुआ था। उन्होंने पूँजीवाद से समाजवाद में मानवता के संक्रमण के आगामी युग के सार तत्त्व तथा आधारभूत दायित्वों व उन्हे पूरा करने वाली शक्तियों का व्यापक पूर्वानुमान लगा लिया था।

जब से इस सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ तब से यह एक अक्षुण्ण सैद्धांतिक और राजनैतिक संघर्ष का केंद्र बिंदु रहा है। और स्वभावतः इस रूप में वह समकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया और सामाजिक विकास के मुख्य सामाजिक-राजनैतिक दिशा-निर्देशों के सार तत्त्व के मूल्यांकन कारक बन गया है। यहाँ दो प्रकार के सिद्धांत सूत्र हो सकते है। यदि यह मान लिया जाय की समकालीन समाज की नेतृत्वकारी शक्ति सर्वहारा है, तो ऐतिहासिक विकास की धारणा वह मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत है जिसके अनुसार पूँजीवादी लोकतांत्रिक क्रांति, प्रगति करते हुए विश्व स्तर पर प्रत्येक देश की वर्ग शक्तियों की प्रसंगानुसार मैत्री और एकता को साथ लिये समाजवादी क्रांति मे रूपांतरित हो जाती है। यदि, दूसरी ओर यह मान लिया जाय कि सर्वहारा ऐसी कोई शक्ति नहीं है, और, यह भी कि अब उसका अस्तित्व ही समाप्त हो चुका है (जो कि मार्क्सवाद विरोधियों का मत है), तो बहुत ऐसी गुंजाइश है कि मनमाने नतीजे, आम तौर पर कम्युनिस्ट-विरोधी प्रकृति के, निकाले जा सकें।

1. वी० आई० लेनिन—"टू टेक्टिस ऑफ़ सोशल-डैमोक्रेसी इन द डैमोक्रैटिक रिवोल्यूशन" संकलित रचनाएँ, खंड 9 पृ० 100

आजकल मजदूर वर्ग की भूमिका के विषय में विशद रूप से विवादपूर्ण संघर्ष चल रहा है। यह सब उन महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की पृष्ठभूमि के विरोध में हो रहा है जो अन्य कारकों के अलावा वैज्ञानिक प्राविधिक क्रांति के द्वारा अधिक घटित किए जा रहे है। ये परिवर्तन अपने आप मे इतने महत्वपूर्ण है कि श्रमिक वर्ग के आंदोलन के पक्ष मे वर्ग शक्तियों के विश्व संतुलन के दायरे में घटित होने वाली तब्दीलियों की चर्चा तर्कसंगत बन जाती है।

इस तथ्य का खंडन करने से प्रतिबद्ध बूर्ज्वा सिद्धांतकार मजदूर वर्ग के 'क्षय' 'विलय' और 'अदृश्य' हो जाने की बात भी करते है। एलेन तूरेन ज़ोर देकर कहते हैं—"एक कार्यक्रमबद्ध समाज मे मजदूर वर्ग अब कोई इतिहास का नेतृत्वकारी नायक नहीं है।"[1] इससे भी अधिक स्पष्ट वक्तव्य सिग्रिद ह्यूक के हैं जो पश्चिम मे लोकप्रिय दार्शनिक और राजनैतिक रचनाओं की लेखिका हैं। वह अपनी पुस्तक, जिसका एक महत्वाकाक्षा पूर्व आडबरी शीर्षक 'पोस्ट-कम्युनिस्ट मेनिफ़ेस्टो' है, मे लिखती हैं—'मार्क्स का प्रतिरूप परिवर्तित समाज के अनुरूप सिद्ध नहीं होता। अब सर्वहारा वर्ग का कोई चिह्न बाकी नही बचा है। प्रत्येक निवर्तमान दिन के साथ मजदूर वर्ग के संबंध में बात करने का बहुत कम औचित्य दिखता है। यह काफी समय पहले से मध्यम स्तर के साथ एकजुट हो चुका है। अब वर्ग संघर्ष मे उसकी दिलचस्पी नही है। क्योंकि क्लासिकी मार्क्सवाद के अर्थ में देखें तो अब गरीब वर्ग है ही नही, सर्वहारा मे यह भावना नहीं है कि वह अपने आप मे एक माल है; उसका न कोई शोषण होता है न कोई दमन तथा न ही आर्थिक संबंधों का दबाव।"[2]

सिग्रिद ह्यूक कहती हैं कि वह घोषित मार्क्सवाद-विरोधी है और हम उनसे कुल मिलाकर इसी बात पर सहमत हो सकते है। वह जिस महत्त्वाकाक्षी काम को पूरा करने मे संकल्पबद्ध हैं—"युवा पीढ़ियों को मार्क्सवाद के विरुद्ध लड़ने के लिए हथियारबद करना।"[3] वह कुछ बहुत घिसेपिटे और पूर्णतया भ्रामक विचारों को, जिनके अनुसार 'सामाजिक भागीदारी' की सभावना व्यक्त की गई है—व्यक्त करने के अलावा कुछ भी नया विचार पैदा करने में असमर्थ है। अत: उनकी रचनाएँ पाठक को वापस भौड़े कम्युनिज़म-विरोधी विचारो की ओर धकेलती है। तूरेन, ह्यूक और दूसरे बूर्ज्वा विचारको से और क्या उम्मीद की जा सकती है, जो समकालीन युग के विकास की वास्तविक प्रवृत्तियों की ही उपेक्षा करना चाहते हैं। आज के बूर्ज्वा विश्व की सामाजिक संरचना की सच्ची तस्वीर को विकृत करके वे

1. एलेन तूरेन,—'ल' सोसाइटी पोस्ट-इडस्ट्रीले', पेरिस, 1969, पृ० 25
2. सिग्रिद ह्यूक, दास नाक-कम्युनिस्टिक मैनीफेस्ट, डेर डाइलैक्टिक यूनिट रिज्मस एल्स आल्टरनेटिव, स्टुटगार्ट 1974, पृ० 15
3 वही, पृ० 11

जानबूझकर इसकी मूल प्रवृत्तियों—किराए के मजदूरों की संख्या में तीव्र वृद्धि और मजदूर वर्ग के लगातार बढ़ते हुए अनुपात—को नजरंदाज करते है।

दोनो प्रवृत्तियां आधुनिक उत्पादन की वस्तुगत आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करती है, और ये समाजवादी और पूंजीवादी दोनों प्रकार के देशो में विकसित होती हैं। किंतु इसमे वस्तुगत अतर यह है कि जहां तक समाजवादी देशों का संबंध है वहां उनमे सब काम योजनाबद्ध तरीके से किया जाता है और सब कुछ मेहनतकश लोगों की भलाई के लिए किया जाता है, जबकि पूंजीवादी देशों मे वे काम सहज गति से होते रहते हैं और इसलिए आगे चलकर सामाजिक विरोधों और संघर्षों को अनिवार्यत: तीव्र करते है।

सोवियत सघ मे सन् 1960 से 1974 तक, जबकि कृषि मजदूरों की संख्या और उनके अनुपात में ह्रास हुआ, तो औद्योगिक मजदूर वर्ग की संख्या 459 लाख से बढकर 702 लाख हो गई। सफ़ेद पोश मजदूरों की सख्या भी तेज़ी से बढ़ गई—88 लाख से बढकर इसी अवधि में 214 लाख हो गई।[1] ये सभी प्रक्रियाएँ—जो एक विकसित समाजवादी समाज में, अंतिम विश्लेषण में, औद्योगिक, यांत्रिक और उन्नत कुशल श्रम के अनुपात से निर्धारित होती है सोवियत संघ में भविष्य मे भी जारी रहेगी। समाजवाद के अंतर्गत ये प्रक्रियाएँ सारे समाज को फ़ायदा पहुँचाती हैं और इसलिए इनके साथ-साथ मजदूर लोगों की सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा मे भी तेज़ी के साथ विकास होता है तथा उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जाता है। समाजवादी समाज में श्रमिक लोगों में बीच के विभिन्न सामाजिक पृष्ठ-भूमि के भेदभाव को मिटा दिया है जो उनकी बढ़ती हुई संबद्धता और नैतिक और राजनैतिक एकता मे अभिव्यक्त होता है।

पूंजीवाद के अंतर्गत किराये के मज़दूरो की संख्या में वृद्धि होने और मजदूर वर्ग के आकार में वृद्धि होने का परिणाम होता है श्रम और पूंजी के बीच में मुख्य विरोध का तीव्र होना।

उत्पादन के साधनों के सकेंद्रीकरण की तरफ पूंजीवाद का स्थायी रुझान एक ऐसे संकेंद्रीकरण की तरफ ले जाता है जो उसके विपरीत ध्रुव में होता है। यह सकेंद्रीकरण जनसंख्या के उस विशाल जन समुदाय मे होता है जिसे जीवन के सभी साधनो से—सिवाय उनकी मानवी शक्ति के—वंचित किया जा चुका है, तथा यह समूचे पूंजीवादी विश्व मे, खास कर उन्नत औद्योगिक देशों मे बखूबी देखा जा सकता है। सरकारी आंकडो के अनुसार किराये के मजदूरों का अनुपात, फ़ायदे वाली नियुक्त आबादी मे लगातार बढता जाता है। 1970 के दशक के मध्य मे वह 70 से 85 प्रतिशत तक ऊँचा चला गया, उन देशों मे जो

1. देखिए : सोवियत सघ की सन् 1975 मे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, आंकड़ो की वर्ष पुस्तिका, मॉस्को : 1976 पृ० 9 (रूसी भाषा मे)

औद्योगिक पूंजीवादी देश हैं। ये आंकड़े लाखों-लाख लोगों की जिंदगी तथा सैंकड़ों-हजारों परिवारों की तबाही की कहानी कहते है, आबादी के विशाल हिस्से के सर्वहाराकरण, मोहभंग, पुराने विचारो की दुखद अस्वीकृति, तथा साथ ही वर्गीय विरोधों व सामाजिक शक्तियो के सशक्त होने को भी व्यक्त करते है। इजारेदारों के शासन के विरोध में, पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया मे इन शक्तियों को ही आगे लाया गया था।

निस्संदेह बूर्ज्वा समाज के सामाजिक ध्रुवीकरण का सबसे महत्वपूर्ण पहलू मजदूरों की संख्यात्मक और अनुपातात्मक वृद्धि ही होती है। इस तथ्य से इंकार नही किया जा सकता कि पिछले दशक मे वे दरअसल एक विशाल वर्ग बन चुके है। पिछली सदी के अंत मे सारी दुनिया मे लगभग 300 लाख औद्योगिक मजदूर थे, जबकि आज 2000 लाख से अधिक मजदूर केवल औद्योगिक पूंजीवादी देशों मे ही है, और दुनिया भर में काम पर लगे हुए लोगों की कुल संख्या अनुमानतः 7000 लाख है।[1]

तथापि, क्रातिकारी आदोलन के नेता के रूप में मजदूर वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका केवल इसकी संख्या शक्ति की वजह से ही नही है, अपितु सामाजिक उत्पादन व्यवस्था में इसके स्थान की वजह से कही अधिक है; संगठन के स्तर, इसकी राजनैतिक चेतना और सम्मान की वजह से भी है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति के प्रभावाधीन मजदूर वर्ग की स्थिति के गंभीर गुणात्मक परिवर्तन होते है; अर्थव्यवस्था मे इसकी भूमिका बढ़ जाती है और इसी प्रकार उसका शैक्षिक स्तर और उसकी राजनैतिक सक्रियता बढ़ जाती है।

---

1. पिछले सौ सालो मे औद्योगिक पूंजीवादी देशों मे मजदूर वर्ग का विकास निम्नांवित प्रकार से था—

19 वी सदी के मध्य में ग्रेट ब्रिटेन मे 41 लाख औद्योगिक मजदूर थे (1951), फ्रांस मे 25 लाख (1848), जर्मनी मे 9 लाख (1850), संयुक्त राज्य में 14 लाख (1850)।

20 वी सदी के मोड़ पर सयुक्त राज्य में सर्वहारा वर्ग की सख्या थी—104 लाख (1900), ग्रेट ब्रिटेन में 85 लाख (1901), जर्मनी मे 85 लाख (1907), फ्रांस मे 34 लाख (1906), इटली में 29 लाख (1901) और आस्ट्रिया-हंगरी 23 लाख (1900) आदि।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह प्रक्रिया इतनी तेजी से बढ़ी कि सख्या विषम हो गई। सयुक्त राज्य में 225 लाख से बढकर (1971) मे 313 लाख हो गई, ग्रेट ब्रिटेन मे 1951 मे 115 लाख से बढकर 1966 मे 125 लाख हो गई, फांस मे 1954 में 66 लाख से बढकर 1971 मे 85 लाख हो गई, पश्चिमी जर्मनी मे 1950 में 82 लाख से बढकर 1971 मे 137 लाख हो गई, इटली मे 1954 में 46 लाख से बढकर 1970 में 80 लाख, जापान मे 1950 में 88 लाख से बढ़कर 1970 में 197 लाख हो गई (देखिए—ग्रेट सोवियत एंसाइक्लोपीडिया खंड 21 पृ० 110-14, 314)

हर जगह जहाँ सर्वहारा की कतारों मे ताजा शक्तियों के लामबंद होने से शक्ति आती है वस्तुगत रूप मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारों के फैलने की अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं और उनके झंडे के नीचे लोकतांत्रिक शक्तियों का व्यापक साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चा बन जाता है। इस सबसे गंभीर सामाजिक आर्थिक रूपांतरणों के लिए अनुकूल पूर्वापेक्षाएँ तैयार हो जाती हैं जिन्हें मज़दूर वर्ग का हिरावल दस्ता इजारेदारी शासन के विरुद्ध अथक संघर्ष के दौर मे जीवन के भीतर उतारने का काम करता है।

इस दिशा में उठाया जाने वाला प्रत्येक कदम स्वभावतः पूँजीवाद द्वारा उन्मत्त प्रतिरोध को प्रेरित करता है। जब तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पूँजीवाद जीवित रहता है, चाहे वह किसी भी रूप में हो, वह मजदूर वर्ग पर इस दृष्टि से दबाव डालता रहता है कि वह अपने मित्रों से अलग हट जाय और संघर्ष के मुख्य उद्देश्य से उसका ध्यान हट जाय। साम्राज्यवादी गिरोह श्रमिक वर्ग व उसके संगठनों के पंचमेल तथा बूर्ज्वा परंपराओं एवं भ्रांत धारणाओं—जो कि बाहर से श्रमिक वर्ग में प्रविष्ट करायी जाती है—का दोहन करता है तथा करता रहेगा। यह दिमाग में रखना चाहिए कि आज के बहुत से मजदूर कल तक आबादी के गैर-सर्वहारा वर्ग से संबंधित थे। उनमें राजनैतिक संघर्ष का सही अनुभव नही है और इसलिए प्रायः वे बूर्ज्वा सिद्धात और टटपुंजिया मध्यमवर्गीय सुधारवाद के लिए उपजाऊ भूमि का काम करते हैं।

पूँजीवादी दुनिया मे मजदूर वर्ग की स्थिति विभिन्न राष्ट्रों की अनिश्चितताओं भरी आर्थिक स्थिति में बहुत विषमता लिये होती है। प्रत्येक पूँजीवादी देश में मज़दूर लोगों की यही स्थिति विभिन्न श्रेणियों की होती है। पूँजीवादी प्रणाली के अलग-अलग क्षेत्रों के विकास मे विषमता बढ़ती रहती है जो आगे चलकर हालात को और अधिक तेजी से बिगाड़ने लगती है और मज़दूरों के कुछ हिस्सों में तमाम प्रकार के भ्रमों को बढावा देने लगती है। पूँजीवाद ने हाल ही मे बहुत कुछ सीखा है और ऐसे हजारों छलछंदों का आविष्कार किया है जिनसे मजदूरवर्ग के संघर्ष को झूठी राह पर धकेल दिया जाय और इस प्रकार उनकी चोट घूमकर उनपर ही पड़े, वह स्वयं निशाना न बने।

इस विषय मे वैचारिक तोड़फोड़ किसी भी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है। पूँजीवादी दक्षिणपंथी अवसरवादी और 'वाम' उग्रपंथी प्रचारतंत्र दो दिशाओ से अपनी बदूक का निशाना मार्क्सवाद-लेनिनवाद की उस शिक्षा और विचारधारा को बनाते है जिसमे लोकतान्त्रिक आदोलनों और समाजवाद के लिए संघर्ष मे सर्वहारा वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका को रेखांकित किया गया है। सभी बूर्ज्वा विद्वान, सुधारवादी नेताओं की तो बात ही क्या, अपने विचारों मे उतने स्पष्ट नही होते जितनी कि 'पोस्ट-कम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो' की लेखिका है। उनमे से बहुत से न

तो किराये के मजदूरों के अनुपात में वृद्धि से इंकार करते हैं, न ही आधुनिक उत्पादन में उनकी भूमिका की बढ़ोतरी से इंकार करते है, और न ही, स्वभावतः इस तथ्य से कि सर्वहारा नये समाज के निर्माण मे मार्गदर्शन करता है—सफलतापूर्वक, व्यापक स्तर पर। इसलिए वे एक नई दलील देते हैं जो स्पष्टतः इन वास्तविकताओं पर विचार करती है। एक समय था जब मात्र आदिम क़िस्म के तर्क दिये जाते थे : मजदूर वर्ग, इसके प्रतिनिधि, "साधारण मशीन-औजार पर काम करने वाले लोग" लोकतांत्रिक आंदोलन के नेता की भूमिका का दावा नही कर सकते क्योंकि उनके पास शिक्षा का अभाव था और उनके पास आवश्यक अनुभव भी नही था कि आबादी के दूसरे हिस्से सर्वहारा का समर्थन करते। अब एक नया विचार प्रस्तुत किया जाने लगा है कि सर्वहारा और उसकी जीवन स्थितियों मे इतने मूलभूत परिवर्तन हो गए हैं कि मजदूर वर्ग के लिए नेतृत्वकारी भूमिका अदा करने की आवश्यकता और परिणामतः समाजवादी क्रांति के लिए भी इसकी आवश्यकता स्वतः समाप्त हो गई है। कारण यह दिया जाता है कि सभी या लगभग सभी भूतकालीन पापमयी समस्याएँ सुलझा दी गई है या इस सामान्य अभिजात्य प्रजातंत्र में शीघ्र और सर्वोत्तम विधि से सुलझा दी जायेंगी। या इसके विपरीत इस बात पर लगातार जोर देकर कहा जाता है कि परिवर्तनों के परिणामस्वरूप दूसरे वर्ग और पूंजीवादी समाज के दूसरे हिस्से ठीक वैसे ही हो गए हैं—उतने ही 'क्रांतिकारी' या उससे भी अधिक—और इसीलिए इजारेदारी-विरोधी संघर्ष मे नेतृत्व की भूमिका का दावा करने का अधिक अधिकार उनको है।

इस समस्या के संबंध मे व्यापक साहित्य में विभिन्न दृष्टिकोण पाये जाते हैं। कुछ लेखक मजदूरों के श्रम को शारीरिक श्रम के रूप मे ही पहचानते है और यह विचार आगे बढाते हैं कि वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के विकास के साथ मजदूर वर्ग लुप्त हो जायगा। दूसरे, जो परंपरागत बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के प्रति निष्ठावान है तथा थामस कार्वर के समय की भोंडी धारणाओं से प्रतिबद्ध हैं—वे इसी व्याख्या को विस्तार देते हैं कि निगमीय मुनाफों मे हिस्सा बँटाने के पश्चात् सर्वहारा अब अभावग्रस्त वर्ग नही रह गया है और लगभग या पूरी तरह पूंजी का सहस्वामी बन चुका है। तीसरा दल इस बात को सिद्ध करने मे लगा हुआ है कि सर्वहारा अब उतना संगठित वर्ग नही रहा जितना कि वह पहले था तथा अब अनेक छोटे-छोटे गुटों और 'स्तरो' में बिखर रहा है। किन्तु ये सब नतीजे इस दृष्टि से आपस में मेल खाते है कि आधुनिक श्रमिक ने अपने लिए अचानक इस तथ्य का पता लगा लिया है कि 'मुनाफ़ों मे क्रांति' हो चुकी है जिसने उसको उपक्रमी के 'सामाजिक भागीदार' के रूप में बदल दिया है और अब उसमे क्रांतिकारी की क्षमता नही रही है तथा वह पूरी तरह अभिजात्य वर्ग मे बदल गया है जिसकी कि इजारेदारी पूंजी के शासन के साथ संगति है।

जे० गालब्रेथ अपनी पुस्तक 'द न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट' मे जोर देकर कहते हैं कि पुराने पूँजीवाद से एकदम पृथक, वर्ग-संघर्ष इसलिए समाप्तप्राय: हो गया है कि 'पहले जो तीव्र विरोधी हित हुआ करते थे अब उनमे तालमेल क़ायम हो गया है।[1]

लाक्षणिक दृष्टि से देखें तो गालब्रेथ, बैल और लिपसैट आदि जैसे प्रसिद्ध राजनीति विज्ञानवेत्ता 'नव औद्योगिक' और 'औद्योगिकोत्तर' समाज और 'प्राविधिक विद्युतीय युग' के विषय मे अपने विचारों को व्यक्त करते हुए 'मजदूर वर्ग' की धारणा को शारीरिक श्रमिकों की श्रेणी तक ही सीमित रखते है। इसके विपरीत सशोधनवादी और 'वामपंथी' शोधकर्ता नियमानुसार कम-से-कम अपनी रचनाओ मे तो समाज के दूसरे स्तर मे इस वर्ग के 'विलय' की दलील देते है। वर्ग के रूप मे वे सर्वहारा की सामाजिक एकात्मता पर ही प्रश्न-चिह्न लगाने की कोशिश करते हैं और इस प्रकार क्रातिकारी और रूपांतरणकारी शक्ति के रूप में इसके ऐतिहासिक मिशन को ही कम करके आँकते है।

हेनरी लिफ़ेवर, जो एक फ्रांसीसी विद्वान् है, पूछते हैं कि 19वी शताब्दी के अंत व 20वी शताब्दी प्रारंभ के काल की श्रमिक वर्ग कितना क्रातिकारी है और किन परिस्थितियों में वह सामाजिक व्यवहार की अपनी क्रातिकारी सामर्थ्य एवं संभावना को कायम रखता है ? अपने प्रश्न के उत्तर मे वह यह सिद्ध करने की कोशिश करते है कि वर्तमान पूँजीवादी समाज के सामाजिक बिखराव से उत्पन्न सामान्य सर्वहाराकरण के परिणामस्वरूप मजदूरवर्ग के साथ अन्य स्तर उभर आए हैं जिनका उसके साथ कमोबेश निकट का संबध है। ये तत्त्व ऐसे हैं जो कुछ सुधारों को लागू करवाने के लिए काम करने को तैयार है, किन्तु बुनियादी क्रांतिकारी रूपांतरणों के लिए बिल्कुल तैयार नही है।

हेनरी लिफ़ेवर जोर देकर कहते हैं—"वर्ग सघर्ष, जीवन और मृत्यु के संघर्ष के रूप में फिलहाल कम-से-कम हमारे औद्योगिक देशो में तो ग़ायब ही हो चुका है श्रमिक वर्ग के रूप मे वहाँ अपेक्षाकृत ऐसा समरूप गुट है जो शोषण का प्रतिरोध करता है, तो भी उसमें कुछ दकियानूसी प्रवृत्तियाँ है जिससे वह अधिकतम रूपांतर का निषेध कर देता है अर्थात् समाज के मूलभूत रूपांतर को मना करता है।"[2]

बूर्ज्वा सिद्धांतकार और सुधारवादी मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी भूमिका को उपेक्षित करने की कितनी भी चालाकीभरी कोशिशें क्यों न करें, वे इस *अकाट्य तथ्य को छिपा नहीं सकते कि पूँजीवादी दुनिया मे समकालीन सर्वहारा* उत्पादन के साधनों से बेगानापन अनुभव करता है और प्रशासनिक व्यवस्थाओं में भागीदारी से वंचित कर दिया जाता है : कि वह केवल अपनी श्रम शक्ति को बेच कर ही जीता है। दूसरे शब्दों में, यह अब भी निस्संदेह पूँजीवाद का मुख्य दुश्मन है

1. जॉन कैनेथ गालब्रेथ, 'द न्यू इडस्ट्रियल स्टेट' पृ० 263
2. 'ल' होम एट ला सोसाइटी, पेरिस, 1971, अक 21 पृष्ठ 154

और ऐसा कोई प्रसंग नही दिखाई देता कि पश्चिम में मजदूर की ज़िन्दगी के भौतिक स्तर मे हाल ही में कोई ऐसा सुधार हुआ हो जो इसके विपरीत किसी बात को सिद्ध करता हो। कुछ औद्योगिक देशों में मजदूरों की भौतिक और जीवन संबंधी परिस्थितियो मे कोई भी परिवर्तन नही है, मजदूरो की व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति में कोई फ़र्क नही, तथा कोई भी शब्दजाल इस मूल वस्तुतर्क को नही काट सकता कि हमारे इस युग में भी किराए का मज़दूर शोषित वर्ग ही है जो पूंजीपति वर्ग के लिए अपने श्रम से अतिरिक्त मूल्य का निर्माण करता है। विकास के द्वारा प्रदत्त अवसरों और मज़दूरों के जीवन स्तर के बीच का अंतर बढ़ रहा है। कभी-कभी मजदूर इस खाई को पाटने का प्रयास करते है, किंतु जब तक आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति के साधन इजारेदारियो और बूर्ज्वा राज्य के हाथों मे है, तब तक सर्वहारा वर्ग के काम के हालात बुनियादी तौर पर वही रहते हैं। एक पूंजीवादी देश मे मजदूर केवल यही कर सकता है कि वह उन अधिक अनुकूल परिस्थितियों के लिए लडे जिनके अधीन, जैसे मार्क्स ने कहा है कि उसे "पूंजीपति की दौलत बढ़ाने, पूंजी की शक्ति का विस्तार करने," की छूट दी जाती है तथा उन सुनहरी जंज़ीरों को घड़ने की छूट दी जाती है जिनका प्रयोग करके बूर्ज्वा वर्ग उसे अपने साथ रहने पर विवश करता है।"[1]

पूंजीवादी उत्पादक शक्तियो मे हाल के दशकों मे जो संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं अर्थात् वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति और राज्य-इज़ारेदारी पूंजीवाद का मज़बूत होना—उन्होने किराये के मजदूरों की स्थिति मे कोई बुनियादी सुधार नही किया। इसके विपरीत, इनसे मजदूर वर्ग का शोषण और बढता ही है : वे मज़दूरो की संख्या में वृद्धि, असह्य मानसिक तनावों तथा बढ़ती हुई व्यावसायिक दुर्घटनाओं के भी कारक बनते हैं। इन सब तथ्यों के आलोक मे एक निष्पक्ष प्रेक्षक 'वर्ग शान्ति' और 'सामाजिक भागीदारी' की ज़ोर-शोर से विज्ञापित धारणाओं पर बहुत ही कम भरोसा करता है।

पूंजीवादी देशों में आधुनिक सर्वहारा, आर्थिक एवं राजनैतिक संघर्ष के समूचे मोर्चे पर इजारेदारी पूंजीवाद के विरुद्ध खड़ा है। वैचारिक क्षेत्र मे भी वह समाजवादी मार्ग का अनुसरण करने और वैज्ञानिक कम्युनिज़म के कार्यक्रम को समर्थन देने के लिए संकल्पबद्ध दिखता है। इसका प्रमाण है मज़दूर वर्ग की मार्क्सवादी-लेनिनवादी हिरावल—कम्युनिस्ट पार्टियों—का विकास, उनकी बढती हुई सदस्यता और जनसमूह में उसकी पैठ और कुल मिलाकर विश्व-कम्युनिस्ट आंदोलन का विस्तार।

अक्तूबर क्रांति से पहले, रूस को छोडकर अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग का आदोलन लगभग अविच्छिन्न रूप से सुधारवादी सामाजिक जनवादियों द्वारा नियंत्रित

1. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, चयनित रचनाएं तीन खंडों में, खंड 1, पृ० 167-68

था जो उसे अवसरवाद के रास्ते पर धकेलते चले जा रहे थे। सोवियत क्रांति की विजय और सोवियत सत्ता के सुदृढ़ीकरण और कॉमिंटर्न की स्थापना ने दुनिया की क्रांतिकारी शक्तियों की सक्रियता को अत्यधिक तेज़ी से बढ़ावा दिया और बहुत से देशों मे लड़ाकू मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टियों के निर्माण को प्रेरित किया। सन् 1919 की कॉमिन्टर्न की प्रथम कांग्रेस में 30 देशों के कम्युनिस्ट संगठनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया, और सन् 1935 मे सातवी कांग्रेस मे 76 कम्युनिस्ट पार्टियो के प्रतिनिधि उपस्थित थे, जिन पार्टियों की कुल सदस्य संख्या 30 लाख से अधिक थी।

विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन ने द्वितीय विश्वयुद्ध मे फासिज़्म के खिलाफ़ कड़े संघर्ष में तथा बाद में शीत युद्ध के दौरान अत्यंत महत्वपूर्ण जीतें हासिल की। हाल के वर्षों में इसने विकास के और भी उन्नत स्तर को प्राप्त कर लिया है। उन उन वर्षों के कुछ परिणामों का मूल्यांकन करते हुए अक्तूबर सन् 1976 मे हुए सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के महाधिवेशन में लियोनिद ब्रेझनेव ने रेखांकित किया कि कड़े वर्गीय-संघर्षों में अनेक पूंजीवादी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों ने बहुत बड़ी सफलताएँ हासिल की है। उन्होंने अपने सामाजिक आधार को व्यापक किया है और अपने सम्मान को सुदृढ किया है, राजनैतिक जीवन मे उनका असर बढ़ा है। आज छः बड़े पूंजीवादी देशों में से तीन—फ्रांस, इटली और जापान में व्यापक आधार वाली कम्युनिस्ट पार्टियाँ है जिनको 200 लाख से अधिक मत-दाता मत देते है। पिछले चुनावों के परिणामस्वरूप इटली की कम्युनिस्ट पार्टी ने ऐसी स्थिति बना ली कि व्यवहारत: उस देश में कोई भी बड़ा प्रश्न उसकी भागी-दारी के बिना हल नही किया जा सकता। फ्रांस मे यह सामान्य मान्यता है कि कम्युनिस्टों की सोशलिस्टों और दूसरी वामपंथी ताकतों के साथ मित्रता देश के राजनैतिक जीवन की एक वज़नदार हकीकत है...। भारत, फिनलैंड, डेनमार्क और कुछ लैटिन अमरीकी देशो की कम्युनिस्ट पार्टियाँ अपने देशो में समुचित राजनैतिक प्रभाव रखती हैं।"[1]

आज दुनिया में कोई भी ऐसा वैचारिक और राजनैतिक आंदोलन नही है जो कम्युनिस्ट आंदोलन की तुलना में जनसमूह से अधिक जुड़ा हुआ हो और जिसके अधिक समर्थक हों। बहुत से देशों मे बड़े जनसमूहों के द्वारा इसकी विचारधारा को स्वीकार कर लिया गया है और दुनिया की विचारधारा और राजनीति पर इसका प्रभाव बढ़ता चला जा रहा है।

वर्तमान समाजवाद के वास्तविक अनुभव को आधार बनाकर दुनिया के कम्यु-निस्ट आंदोलन ने ऐसी महत्वपूर्ण विशिष्टताएँ अर्जित की हैं जो कि विचार-

1. एल. आई. ब्रेझनेव, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की प्लेनरी मीटिंग मे दिया गया भाषण, मॉस्को, 1976, पृष्ठ 52

धारात्मक एवं राजनीतिक क्षेत्र में इसके लक्ष्यों को व्यापक बनाती है। सबसे प्रमुख बात यह है कि सामान्य लोकतांत्रिक सघर्ष मे कम्युनिस्ट हिरावल दस्ते की विजयी नेतृत्वकारी भूमिका का सवाल जो स्वभावतः वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों के साथ घुल-मिल जाता है—न केवल मजदूर वर्ग के आंदोलन के साथ जुड़ा हुआ है, अपितु मजदूर वर्ग के दूसरे समूहो के आंदोलन के साथ भी जुडा हुआ होता है। इसे राष्ट्रीय मुक्ति आदोलनों के साथ भी अपने सपर्कों को मजबूत करना पड़ता है, और इसका अर्थ यह होता है कि विकासमान देशों मे उनकी नेतृत्वकारी क्रांतिकारी शक्तियों मे वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा को फैलाना आवश्यक है।

ये दोनों बिन्दु किसी तरह के अस्थायी कारणों के साथ संबधित नही है जो कल आसानी से बदल सकते है, किन्तु अपेक्षाकृत समकालीन पूंजीवादी विकास के समूचे दौर में उभरकर सामने आये है—वह भी इसकी औपनिवेशिक प्रणाली के संकट के कारण। इससे भी और अधिक, वे एक ऐसी आवश्यकता के रूप में है जो राज्य-इजारेदारी पूंजीवाद की बढ़ती हुई परोपजीविता तथा वैज्ञानिक और प्राविधिक क्राति के बढ़ते हुए सवेग के द्वारा आदेशित होते है, जोकि इजारेदारी शासन के अधीन व्यापक पैमाने पर सामाजिक विरोधों के पुनरुत्पादन की ओर ले जाती है, और वह भी पहले से अधिक तीखेपन के साथ। सन् 1969 मे कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक मे यह नोट किया गया—"यह केवल पूंजी और श्रम के विरोध का विकास ही नही है, अपितु राष्ट्र के विशाल बहुमत के हितों और वित्तीय अल्पतंत्र के हितों के बीच के गहराते हुए शत्रुतापूर्ण विरोधों का विकास भी है।"[1] व्यवहार मे इसका क्या मतलब है? इस पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी जो जवाब देते हैं वे व्यावहारिक अनुभव पर आधारित होते है। यह एक तथ्य है कि 'मुनाफों मे क्रांति' और 'सामाजिक भागीदारी' के विषय मे सारी बातों के बावजूद पूंजीवादी शोषण बढ़ रहा है। श्रमिकों के वेतन इजारेदारियो के मुनाफ़ों की दर की तुलना मे बहुत धीमी गति से बढ़ते हैं और उत्पादन मे वृद्धि और श्रम के विशदीकरण से बहुत पीछे रह जाते हैं तथा सामाजिक आवश्कताओं को पूरा करने मे असफल रहते है। छोटे किसानों की स्थिति लगातार गिरती जाती है और मध्यम स्तर के जीवन की परिस्थितियाँ और अधिक कठिन होती जाती हैं।

टट्पुंजिया और बुद्धिजीवी : वे कहाँ से संबंधित है?

गैर-समाजवादी देशों की आबादी के विशाल बहुमत का दैनिक जीवन इजारेदारी शासन के अधिकाधिक अविचल विरोध मे खड़ा हो रहा है और यह परिस्थिति

1. कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अतर्राष्ट्रीय बैठक, मास्को, 1969, पृ॰ 19

अत्यधिक विचारपूर्वक अपनाए गए साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के सामाजिक आधार को व्यापक बनाती है। परिणामस्वरूप गैर-सर्वहारा आबादी के अधिक जन-समूहों मे एकजुटता कायम करने की पूर्वापेक्षाएं तैयार की जाती है, इसमे मजदूर वर्ग के इर्द-गिर्द हैं—किसान, शहरी टटपूंजिया, कार्यालयी कर्मचारी, बुद्धिजीवी आदि सम्मिलित होते हैं। ये हिस्से असली लोकतांत्रिक मांगों के लिए और अंततः समाजवाद के लिए इजारेदारी के दमन के विरुद्ध किए जाने वाले संघर्ष में सर्वहारा वर्ग के स्वाभाविक मित्र बनते हैं।

पूंजीवादी देशो मे आबादी का एक भाग जो सामान्यतया मध्य वर्ग के नाम से जाना जाता है—एक बहुत ही पंचमेल जनसमूह है। कारीगर और छोटे व्यापारी, कार्यालयी कर्मचारी, बुद्धिजीवी और अन्य पेशेवर लोग पूंजीवादी समाज में दोनों तरह से अर्थात् सामाजिक संरचना तथा उत्पादन अल्पतंत्र और राजनीतिक जीवन में—भिन्न-भिन्न स्थानो पर अधिकार रखते है। कुछ के पास पूंजी की निश्चित राशि है, दूसरो के पास अपनी मेहनत के सिवा कुछ भी नही है जो उनकी आजीविका का साधन बन सके। कुछ विशाल एवं लघु उत्पादन से जुड़े हुए है, तो दूसरे उत्पादन क्षेत्र मे नियुक्त ही नही है। निष्कर्षतः कुछ तो भौतिक साधनों से संपन्न हैं, जबकि दूसरे, सरल भाषा में कहा जाय तो गरीबी से प्रताड़ित है। इन समूहों के सामाजिक और राजनीतिक हित, और इसलिए उनकी विचारात्मक अभिमुखताएं, तदनुसार अस्थिर और प्रायः विरोधपूर्ण होती है।

किसान, दस्तकार और छोटे व्यापारी, जो टटपूंजियाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, का अतीत उन्हे पूंजीवाद से जोड़ता है, जबकि उनका भविष्य उन्हे निस्संदेह सर्वहारा की तरफ खीचता है। वे बड़े व्यापार के विरुद्ध असमान और कठिन संघर्ष छेड़ते हैं, किन्तु 'न्यून-माल-उत्पादन के खंड' होने के कारण वे अक्सर अपने पुराने दृष्टिकोण के अनुरूप ही कार्य करते है। स्वतंत्र उद्योग के 'सुनहरे अतीत' के प्रति उनका विरह भाव तथा अपनी क्षणिक स्वाधीनता—जो यथार्थ में काफ़ी पहले समाप्त हो चुकी है—को सुरक्षित रखने का उनका अटल संकल्प उन्हे समाजवादी विचारों को अपनाने से रोकते है। दूसरी ओर, पूंजीवादी विश्व का यथार्थ निर्दयतापूर्वक इन भ्रांतियों के टुकडे कर देता है और उनको इजारेदार-विरोधी मोर्चे की कतारों में ला खड़ा करता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व इन सामाजिक समूहों का एक बड़ा हिस्सा प्रतिक्रियावादी पार्टियों का प्रायः फासिस्ट दिमाग वाले जनोत्तेजकों का अनुसरण करता था तथा दक्षिण-पंथी बूर्ज्वा प्रवृत्तियों का सामाजिक आधार निर्मित करता था। समाजवाद के पक्ष मे ऐतिहासिक परिवर्तनों, पूंजीवादी प्रणाली के सामान्य संकट को गहराने और इजारेदारी प्रतिक्रियावाद के और अधिक दक्षिणपंथी समूहों के निन्दनीय पतन की स्थिति में पहुंचने के कारण, उन्होंने अपनी विचारधारात्मक अभि-

मुखता को वास्तव मे सशोधित कर लिया।

सन् 1950 और 1960 के दशकों में टट्पुंजिया तबके ने अपने सबसे अधिक हलके में बूर्ज्वा प्रचार के सभी प्रकार के उदारतावादी विचारो के लिए भूमिका का निर्माण किया। हाल के सालों में, खासतौर से 1974-75 के संकट के संबध में, ऐसे सकेत मिले हैं कि उनका झुकाव वापस कम्युनिस्ट-आन्दोलन की तरफ हो गया है और वैज्ञानिक समाजवाद मे उनकी रुचि बढ़ गई है।

निस्संदेह, यह परिवर्तन आसानी से संपन्न नही हुआ। पूंजीवादी संबंधों और परंपराओं के बोझ के दबे हुए टट्पुंजिया तबके के प्रतिनिधि प्रायः वैचारिक संघर्ष के क्षेत्र में सुधारवादी, उग्र वामपथी, अराजकतावादी या अन्य अवैज्ञानिक दृष्टिकोण ले आते है। पूंजीवाद की उनकी आलोचना अक्सर एकागी एव अस्थिर होती है तथा समाजवादी विचारों की स्वीकृति सभी प्रकार की उदार बूर्ज्वा प्रतिबधो से बंधी हुई होती है।

मध्यम वर्गों के विभिन्न प्रतिनिधियों के बीच न तो सीधे समुदाय के हित और न ही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क होते हैं और न ही वे किसी एक ही वर्ग सगठन के साथ एकताबद्ध होते हैं। इसलिए, मार्क्स के कथन के अनुसार "वे अपने वर्ग हितों को अपने ही नाम से सबल अभिव्यक्ति नही दे सकते।"[1] बहुत-सी बातों में उनकी स्थिति राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्ग शक्तियों के सहसंबंध पर निर्भर करती है तथा मजदूर वर्ग और विश्व समाजवाद के प्रभाव पर आधारित होती है।

फिर भी, जैसे कि सन् 1969 की कम्युनिस्ट और मज़दूर पार्टियों की अंतरराष्ट्रीय बैठक मे नोट किया गया—"उनमे एकता की कमी और पूंजीवादी विचारधारा के प्रति विशेष भावुकता के बावजूद, मध्यमवर्ग का विशाल जनसमूह अपने हितों की रक्षा करने के लिए आगे आ रहा है, सामान्य लोकतान्त्रिक मांगों के लिए व्यापक संघर्ष मे शामिल हो रहा है और **मज़दूर वर्ग के संयुक्त संघर्ष के बहुत बड़े महत्व के प्रति तेजी से सचेत हो रहा है।**"(ज़ोर लेखक का)[2]

एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हमारे समय में पूंजीवादी देशों मे मज़दूर वर्ग के मुख्य दोस्त केवल मध्य स्तरीय लोग (सामाजिक दृष्टि से, किसी न किसी रूप मे अभिजात्य वर्ग से संबद्ध) ही नही हैं, अपितु किराये के मजदूरो के बढते हुए जनसमूह के प्रतिनिधि भी हैं, जिनका प्रायः पूंजीपति के साथ कोई वर्गीय संबंध नही होता।

बुद्धिजीवी वर्ग हमेशा से मज़दूर वर्ग का काफ़ी भरोसेमंद और शक्तिशाली

1. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, चयनित रचनाएं तीन खडो मे, खड-1 पृ० 479
2. कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो की अतर्राष्ट्रीय बैठक, मॉस्को, 1969 पृ० 25

दोस्त है, और रहा है। वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के आगे के विकास की दृष्टि से सामान्यतया उत्पादन प्रक्रिया में यह एक बहुत प्रभावशाली शक्ति है, विशेषतौर पर सामाजिक जीवन में तो और भी अधिक। राज्य-इजारेदार पूंजीवाद बुद्धिजीवी वर्ग का समूहो में बांटने के प्रति अपना उत्साह एवं संकल्प प्रदर्शित कर रहा है, इजारेदार पूंजी के आधिपत्य के खिलाफ़ संघर्ष के दौरान उनका बहुमत मजदूर वर्ग और सामाजिक क्षेत्र मे उसके आदर्शों की तरफ खिंच जाता है।

आज बुद्धिजीवियों का बड़ा भाग उन कर्मचारियों से भरा पड़ा है जिनका अनिवार्यतः उत्पादन के साधनों पर कोई स्वामित्व नही है। वे सरकारी अधिकारी हैं, इजारेदार-निगमों और निजी फर्मो के कर्मचारी हैं, इंजीनियर और तकनीशियन तथा पेशेवर लोग है। हमारी दृष्टि से इन समूहों के सामाजिक कार्य और संपत्ति की दृष्टि से इनकी हैसियत एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। यह तथ्य कि उनका बड़ा भाग सरकारी विभागों में नियुक्त है या निजी उद्योगों में प्रशासक के रूप में कार्यरत है उन्हे विचारधारात्मक दृष्टि से बूर्ज्वा वर्ग निकट लाता है। इसका उन सफ़ेदपोशों पर प्रभाव पड़ता है तथा वे मार्क्सवादी विचारधारा को आत्मसात् कर पाने मे असमर्थ हो जाते हैं। फिर भी जीवन के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं के कारण जो आबादी की इन श्रेणियों से संबंधित होते हैं—वे मजदूर वर्ग के घनिष्ठ संपर्क मे आते हैं।

कार्यालय कर्मचारियों का बड़ा भाग, इंजीनियर और तकनीशियन और पेशेवर लोग मजदूर परिवारों से आते है और अपनी आजीविका अपने ही श्रम से कमाते है। वेतन-भोगी होने के कारण वे स्वभावतः बड़े पूंजीपति के द्वारा शोषित होते हैं। उनका जीवन स्तर कुशल मजदूर से कुछ ही भिन्न होता है और कभी-कभी तो नीचे भी चला जाता है। उनकी स्थितिअतिशय अस्थिर होती है और पूरी तरह पूंजीवादी देशों की आर्थिकताओं के उतार-चढ़ाव पर आधारित होती है, अक्सर मालिक की सनक पर भी निर्भर करती है।

इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दो दशकों में, जबकि इजारेदार पूंजी ने वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति की मलाई को हड़पने का बंदोबस्त कर लिया था, इन समूहों का भौतिक स्तर कमोबेश स्थिर था। उसी समय बूर्ज्वा प्रचारतंत्र ने सफ़ेदपोशों के पक्ष में 'मुनाफों के वितरण मे इंकलाब' की गुहार लगाना प्रारंभ कर दिया, तो भी यह एक खुला रहस्य है कि ज्यों ही पूंजीवादी देशों ने 1970 के दशक के मोड़ पर आर्थिक विकास की दर में कुछ गिरावट तथा मुद्रा और मुद्रास्फीति की कठिनाइयों का अनुभव किया, तो सफ़ेदपोश भी मजदूर वर्ग के इन परिवर्तनों के शिकार हो गये। 1974-75 के संकट ने इस बात का मान्य सबूत पेश किया कि पूंजीवादी देशों में यही तलवार बुद्धिजीवी तबके पर भी स्थायी तौर पर लटकने लगी है।

राजनैतिक प्रतिक्रियावाद का विशदीकरण, सामाजिक जीवन का नैतिक एवं बौद्धिक पतन और बूर्ज्वा सस्कृति का गंभीर संकट आदि ऐसे विन्दु है जो बुद्धिजीवी तबके को पूंजीवाद के सामाजिक विकल्प पर अधिक गहराई से सोचने को मजबूर करते है। यह परिस्थिति उन्हें समाजवादी विश्व दृष्टिकोण को आत्मसात करने की ओर ले जाती है। 1960 के दशक के आखिर के अत्यंत व्यापक एव उग्र छात्र संघर्ष (अर्थात् भावी सफेदपोशो का संघर्ष) पूंजीवादी प्रणाली के विरुद्ध बुद्धिजीवियों के उभरते हुए विरोध का प्रथम भयंकर आभास था।

ऐसे समय, जब इजारेदार पूंजीवाद सिर्फ़ अपना आकार ही ग्रहण कर रहा था, लेनिन को यह पूर्वाभास हो गया था कि इसके विकास का लक्षण दो विरोधी प्रक्रियाएँ होंगी अर्थात् एक तरफ बुद्धिजीवी समूह का सर्वहाराकरण तथा दूसरी ओर मजदूर वर्ग का बौद्धिकीकरण।[1] गत कई दशको मे, और ख़ासतौर से वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति के बाद, पूंजीवाद ने लगभग पूरी तरह से बुद्धिजीवी को उसके स्वतंत्र स्तर से वंचित कर दिया है और उसे श्रम-बाजार की सभी सनक भरी स्थितियों का शिकार बना कर एक साधारण वेतन भोगी के रूप में बदल कर रख दिया है। यह दरअसल बुद्धिजीवियो के बडे समूह का सर्वहाराकरण था जो ताज़ा शक्ति के साथ खुलकर सामने आया। साथ ही एक जैसे कारणों की वजह से शारीरिक और गैर-शारीरिक श्रम के बीच एक ध्यान देने योग्य अभिमुखता भी उभरकर सामने आयी है। शिक्षास्तर में विचारणीय सुधार हुआ है और मजदूरों की कुशलता के बढ़ने से उनका बौद्धिकीकरण हुआ है। इंजीनियर, तकनीशियन और कुशल मजदूर के बीच का भेदभाव आधुनिक बड़े औद्योगिक संस्थान मे बहुत घट गया है। निस्सदेह वे, अपने भौतिक स्तर, श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक व्यय और श्रम के प्रकृति के अनुरूप ही इकट्ठा हुए है।

इस नयी वास्तविकता के जवाब मे बूर्ज्वा सिद्धातकार भरसक प्रयत्न कर रहे है कि किसी भी कीमत पर हो बुद्धिजीवी तबके को मजदूर वर्ग से अलग किया जाये तथा सफ़ेद कालर वाले बुद्धिजीवियों और नीली कॉलर वाले श्रमिक वर्ग के बीच मे दीवार खड़ी कर दी जाये।

डेनियल बेल और अन्य समान विचार के लोगों ने, उदाहरण के लिए, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह प्रस्तावित किया कि समाज मे व्यावसायिकों और तकनीशियनों के रूप में जो बुद्धिजीवी तबका है उसकी भूमिका को ऊपर उठा दिया जाये तथा सम्मान दिया जाये। एक नये वर्ग के रूप में यह बुद्धिवर्ग मानवता के मसीहा की भूमिका अदा करने को था। वास्तव मे नेतृत्व का यह रास्ता इस

1. देखिए : वी० आई० लेनिन, 'रिव्यू कार्ल कॉट्स्की, बर्नस्टीन अंड डास सोशियल डेमोक्रेटिक प्रोग्राम, ईन एंटीक्रिटिक' सकलित रचनाएँ, खंड 4, पृ० 202 'रिवोल्यूशनरी एडवेंचरिज्म', सकलित रचनाए, खड 6, पृ०198

प्रकार की 'गुणशाही' को आत्म-अलगाव की तरफ़ ही ले जा सकता था और इसे बड़े व्यापार की निर्भरता से मुक्त नहीं कर सकता था।

शोधकर्त्ता और इंजीनियर तथा सामान्यतया बुद्धिजीवी तबक़े का समुदाय कुल मिलाकर वेतनभोगी लोगों की किस्मे ही होती है। फलस्वरूप सफ़ेदपोशों का सारा समूह इजारेदारियों के विरुद्ध अपना आधार क़ायम रखेगा और अपने अधिकारों के लिए एक व्यापक लोकतान्त्रिक मोर्चे के चौखटे में ही लड़ेगा।

लोकतान्त्रिक बहुमत और इजारेदार पूंजी के बीच जारी विद्वेष एवं विरोध में अत्यंत व्यापक समस्याएं निहित होती है। उनके अंतर्विरोध न केवल सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों तक ही फैले हुए होते हैं, अपितु संस्कृति, विज्ञान, शिक्षा आदि के दायरे मे भी फैल जाते है। इसी कारण मुक्ति आंदोलन की लोकतान्त्रिक और समाजवादी अवस्थाओं के बीच आगे के पुनर्मेल की अनिवार्य प्रवृत्तियां सामने दिखाई देने लगती है। यद्यपि चरित्र, लक्ष्यों और प्रेरणाओं की भिन्नता के बावजूद वे एक-दूसरे से गुथे हुए होते है और एक-दूसरे के पूरक बनते हैं। प्रत्येक देश में, सबसे पहले बुद्धिजीवियों के मध्य खास विचारधारात्मक घटनाक्रियाएं होती हैं—जिनकी विषयवस्तु अंतर्राष्ट्रीय होती है तो जिनका आकार राष्ट्रीय—जो कि इजारेदारी आधिपत्य को लक्ष्य करती है। सब बातो में वह चाहे, सामान्य लोकतांत्रिक समस्याओं का समाधान हो या समाजवादी रूप परिवर्तनों का—वे अनिवार्यतः सर्वहारा और पूंजीवाद के बीच वैचारिक संघर्ष के मोर्चे को व्यापक बनाते हैं और राजनैतिक दृष्टि से, मज़दूर जन-समूह को मार्क्सवादी, लेनिनवादी कार्यक्रम अपनाने की ओर ले जाते हैं।

नवउपनिवेशवाद के खिलाफ़, इजारेदारी-विरोधी सहमेल के लिए

लोकतान्त्रिक और समाजवादी उद्देश्य अधिकाधिक घनिष्ठता के साथ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के क्षेत्र मे भी आपस में अंतर्ग्रथित हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि दमन और हिंसा की विश्व साम्राज्यवादी प्रणाली ने सामाजिक और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की समस्याओ को अविभाज्य बना दिया है।

राजनीतिक स्वाधीनता हासिल कर लेने के बाद पुराने उपनिवेशों ने सामंती संबंधों (कुछ बातों में पूर्व सामंती संबंधों) को समाप्त करने की आवश्यकता के प्रति गंभीर सजगता प्रदर्शित की। यह भी नितांत आवश्यक था कि ऐसे अनेक रूपांतरण किये जाएं जो 18वी और 19वी सदियों में पूंजीवादी जनतान्त्रिक, क्रांतियो के दौरान यूरोपीय जनगण ने किये थे। लेकिन हमारे समय का सामाजिक विकास एक बिल्कुल नयी ऐतिहासिक परिस्थिति में घटित हो रहा है, जनगण की आंखो मे पूंजीवाद का सम्मान समाप्त हो चुका है, और विश्व प्रक्रिया मे समाजवाद एक निर्णायक शक्ति के रूप में उभर रहा है—यह संघर्ष एक नयी अंतर्वस्तु और नयी

आकृतियाँ ग्रहण कर रहा है।

पहले की बूर्ज्वा जनतान्त्रिक क्रांतियों ने केवल पूंजीवाद को मजबूत बनाया जबकि आज के राष्ट्रीय आंदोलन चाहे वे बूर्ज्वा-जनतांत्रिक रूपांतरणों की सीमाओं में ही क्यों न हों, अनिवार्यतः साम्राज्यवाद पर चोट मारते हैं। यूरोप में बूर्ज्वा-जनतांत्रिक क्रांतियाँ मुख्यतया घरेलू प्रतिक्रियावादी ताकतों के विरुद्ध ही निर्देशित थी अर्थात् सामंती प्रभुओं तथा सामंती और महाराजाओं की तानाशाही के विरुद्ध थी। आज के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन स्पष्टतया साम्राज्यवाद और उसकी अन्दरूनी ताकतो—जो कार्यक्रम की दृष्टि से एक दूसरे मे सम्बद्ध है—के विरुद्ध निर्देशित है। अपने क्लासिकी स्वरूप मे, बूर्ज्वा जनतान्त्रिक क्रांतियो ने स्वभावतः मोटे तौर पर भी कभी यह संकेत तक नही दिया कि समाजवादी रूपांतरणों की सभावना है। समसामयिक राष्ट्रीय मुक्ति क्रातियाँ या तो सीधे तौर पर समाजवादी निर्माण के रास्ते की ओर ले जाती हैं, या अपनी समाजवाद की ओर अभिमुखता की घोषणा कर देती है, और कुछ मामलों मे तो जिस किसी तरह समाजवादी उद्देश्यों को लेकर लबी अवधि के कार्यक्रमों की ओर अपने आपको मोड़ देती है। जब तक कि रास्ते का अतिम चुनाव नही हो जाता—कि आगे का सामाजिक-राजनैतिक विकास किस तरह का हो—और जब तक वर्ग शत्रुताएँ नवस्वतंत्र देशो में क़ायम रहती हैं तो राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियाँ शक्तिशाली नव-उपनिवेशवादी और प्रतिक्रियावादी शक्तियों से—अतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद, व्याप्त कंप्राडोर बूर्ज्वा वर्ग और सामंती प्रभुओं से प्रभावित होती रहेगी! कुल मिलाकर ये क्षेत्र सबसे तीखे संघर्ष का अखाड़ा बने रहेगे। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की अवधि में जो साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चा बनता है वह विभिन्न वर्ग-शक्तियों को एकजुट कर देता है जिससे उन देशों में जहाँ बुनियादी सामाजिक समस्याएँ अब भी उलझी हुई हैं, विचारधारात्मक संघर्षों की तीव्रता अनिवार्य हो जाती है।

क्योंकि मजदूर वर्ग एक नेतृत्वकारी शक्ति के रूप मे उभर आया है समूचे आंदोलन को समाजवाद की ओर मोड़ दे सकता है और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में अपनी नेतृत्वकारी भूमिका को क्रमशः सुदृढ़ कर सकता है। किन्तु राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन के बहुत से देशों में यह वर्ग अभी भी छोटा है और उसके पास राजनैतिक संघर्ष के आवश्यक अनुभव का अभाव है। इन देशों में किसानों का जनसमूह, जो आबादी का बहुत बड़ा भाग है, सगठनात्मक दृष्टि से विभाजित है तथा अधिकाश देशो मे वे राष्ट्रीय बूर्ज्वा वर्ग का अनुसरण करते है जिसकी कि बाकायदा दुहरी भूमिका होती है; एक तरफ़ वह साम्राज्यवाद-विरोधी, सामंतवाद विरोधी क्रांति को पूरा करने के लिए वास्तव मे आतुर होता है तो दूसरी ओर साम्राज्यवादियों और सामंती प्रभुओ से सहमेल और समझौता करने में भी लगा रहता है।

अभी तक राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन मात्र अपनी शक्तियों को तैनात कर रहा है तथा अपनी बढ़ती हुई संभावना-सामर्थ्य को उद्‌घाटित कर रहा है। विकासमान देशों को अपनी आर्थिक स्वाधीनता हासिल करने का सबसे कठिन काम अभी भी पूरा करना है। जब साम्राज्यवादी शक्तियों को परिस्थितियाँ मजबूर कर देती हैं कि वे नवस्वतंत्र देशों की प्रभुसत्ता को स्वीकार करें तो, अनुभव बताता है कि, वे शक्तियाँ फुर्ती से ऐसे उपाय करती हैं जिनसे कि पुरानी औपनिवेशिक व्यवस्था नवऔपनिवेशिक प्रणाली के रूप में वापस कायम हो जाये। 'सहयोग' के प्रत्यक्षतः सम्मानजनक स्वरूप के अधीन यह प्रणाली उपनिवेशवादी एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के जनगण के शोषण और लूट को जारी रखने में सहायक हो सकती है। अतः, यह स्पष्ट है कि अंततः विकासमान देशों का आर्थिक स्वतन्त्रता का आंदोलन समाजवाद की ओर अभिमुख होने के निर्णय पर ही अनिवार्य रूप से निर्भर करता है क्योंकि उसी में उनके अधिकारों की समानता सन्निहित होती है।

आर्थिक क्षेत्र मे साम्राज्यवाद के खिलाफ सघर्ष के नये दौर की यही दिशा होगी। सारी सभावना यह है कि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देश ऐसे व्यावहारिक कदम उठाएँगे ताकि साम्राज्यवादी आर्थिक प्रणाली से उनके सबंध टूट जाएँ। निश्चित रूप से यह सबसे कठिन लडाई होगी और इसके लिए यह एक जटिल दौर भी होगा क्योंकि यह सीधे तौर पर विदेशी आधिपत्य के आधार स्तभों पर प्रभाव डालता है तथा वह उन जड़ों पर चोट करता है जिन पर कि इन देशों के राष्ट्रीय संसाधनों की लूट करने वाली साम्राज्यवादी प्रणाली खड़ी हुई है।

विकासशील देशो मे करोड़ों लोगों को समाजवाद मे संक्रमण जैसे महान कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए जरूरी है कि समाजवादी व्यवस्था तथा अतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग—राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों में सलग्न देशों के संदर्भ मे ये दोनो ही शक्तियाँ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मुक्ति आदोलन का हिरावल दस्ता हैं—की घनिष्ठता कायम हो।

यही कारण है कि साम्राज्यवाद के सिद्धांतकार और उनके टटपुँजिया पिछलग्गू इस मैत्री पर हमला करते है। एक समय था जब बूर्ज्वा प्रचारतंत्र यह मानता था कि सामान्यतया औपनिवेशिक देशो मे मुक्ति आंदोलन की अपनी सामाजिक जड़ें नही हैं और वे बाहर से 'कम्युनिस्ट षड्‌यंत्रों' के द्वारा पैदा की गयी है। उसके बाद वे एक बिल्कुल अलग सिद्धांत की ओर घूम गये, अर्थात् मुक्ति आंदोलन को एक भिन्न प्रकार के राष्ट्रीय और जातीय अनन्यता के गुण से मंडित बताने लगे। वे यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि न तो समाजवाद का और न ही पूँजीवादी देशों के मजदूर वर्ग का इससे कोई सरोकार है। तथापि समकालीन

वर्ग शक्तियों के वास्तविक सामान्य सहमेल मे, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन शांति, जनतंत्र और सामाजिक प्रगति के लिए संघर्ष में अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक वर्ग एवं समाजवाद का शक्तिशाली दोस्त होता है।

शस्त्ररहित शांतिमय मार्ग......

अंतर्राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन ने सार्वभौम आयाम प्राप्त कर लिये है; यह अभूतपूर्व गति से आगे बढ़ रहा है और हर जगह सचमुच ऐतिहासिक महत्व के रूप परिवर्तनो के अवसर तैयार कर रहा है। सब महाद्वीपों में, यह आंदोलन वहाँ के विशाल जनसमुदाय को—जो वर्गीय विकास की अलग-अलग अवस्थाओं में है तथा विभिन्न सामाजिक स्तरों से निर्मित है—क्रांतिकारी प्रक्रिया मे खीच रहा है। दुनिया भर का जनसमूह उस सक्रिय राजनैतिक जीवन के प्रति अधिकाधिक चेतना संपन्न हो रहा है, जो समाजवाद और कम्युनिज्म के रूपातरण की ओर अत्यधिक तीव्रगति से बढ़ता चला जा रहा है।

फिर भी, यह हमेशा याद रखा जाना चाहिए कि यह प्रक्रिया इस राजनैतिक संघर्ष के भँवर में ऐसे बहुत से लोगो को भी खीच ले जाती है, जो अभी अभिजात्य प्रभाव से मुक्त नही हुए हैं और अपने साथ मुक्ति आंदोलन मे दकियानूसी दृष्टि-कोणों, भ्रांतियों और मध्यम वर्गीय ढुलमुलपन को भी ले आते हैं। प्रायः एकदम विपरीत, सामाजिक दृष्टि से पंचमेल शक्तियां साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ती हैं, तथा समाजवाद को अपना चरम लक्ष्य घोषित करके इस अवधारणा मे अपने विचार ठूंस देती हैं। कभी-कभी ये विचार उनके आज के निजी संकीर्ण आर्थिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय स्वार्थों के साथ मेल खाते हैं और साफतौर पर यही वह भूमि है जिस पर विभिन्न गैर-मार्क्सवादी सिद्धांत बड़ी लुभावनी अदा से पनपने लगते हैं।

कम्युनिस्टों के लिए इसमें कुछ भी अप्रत्याशित नही है। केवल मताग्रही और संकीर्णतावादी ही यह आशा करते हैं कि जो जनसमूह अभी-अभी क्रांतिकारी आदोलन में सम्मिलित हुआ है वह किसी तरह की मिथ्या 'विचारधारात्मक शुद्धता' का प्रदर्शन करे। बहरहाल, दृष्टिकोण का विकास संघर्ष के दौर में ही होता है, विभिन्न भ्रातिपूर्ण धारणाओं पर विजय तथा विरोधी विचारधारा से श्रमिक मुक्ति के परिणामस्वरूप ही संभव होता है।

लेनिन के मूल्यांकन इस बात को पुष्ट करते हैं—"समाजवादी क्राति··· समस्त विविध प्रकार के दलितों और असंतुष्ट तत्वों के चहुंमुखी जनसमूह में जन आंदोलन के रूप में एक विस्फोट के अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकती। मध्यमवर्ग के अनेक हिस्से और पिछड़े हुए मजदूर इसमें अनिवार्यतः भाग लेंगे, क्योंकि बिना इस प्रकार की भागीदारी के जन संघर्ष असंभव ही है और इसके

बिना कोई भी क्रांति संभव नही है और ठीक इसी तरह अनिवार्य रूप से वे आंदोलन में अपने साथ अपने पूर्वाग्रहों को भी लाएँगे, अपनी प्रतिक्रियावादी भ्रांत कल्पनाओं, अपनी कमजोरियों और गलतियों को भी साथ लाएँगे। किन्तु वस्तुगत रूप से वे पूंजी पर आक्रमण करेंगे, और क्रांति का वर्ग-सचेत हिरावल प्रगतिशील सर्वहारा वर्ग इस विविधरूपा, विशृंखलित, सतरंगे और बाहर से टुकडों मे बँटे हुए उनके वस्तुसत्य को उसी रूप में अभिव्यक्त करते हुए इस जन-सघर्ष में उनको एकजुट करेगा और उनका दिशा निर्देश करेगा।"[1]

आज यह निष्कर्ष आर्थिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक कारकों, सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं और आतरिक और अंतरराष्ट्रीय प्रक्रियाओं की जटिल अंतः-क्रियाओं मे ठोस रूप में प्रकट हो रहा है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों की बढ़ती हुई अंतःनिर्भरता दोनों तरह चाहे वह अलग-अलग देशों के रूप मे हो या एक विश्व व्यापी स्तर पर—आधुनिक युग का प्रमुख लक्षण है। वैज्ञानिक, प्राविधिक और सामाजिक क्रांति की इस वर्तमान अवधि को, मजदूर वर्ग की मुक्ति और उनके जनतांत्रिक लक्ष्यों तथा साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की सामान्य धारा के सभी श्रमिक जनसमुदायों की घनिष्ठता के साथ गुथी हुई एकजुटता के रूप में चित्रित किया जा सकता है।

ऐसे अनेक लक्षण दिखाई दे रहे है जिनके अनुसार पूंजीवादी प्रणाली फिल-हाल गंभीर और तेजी से गहराते हुए सकट की गिरफ्त मे है। इस पर काबू पाना आसान नही है तथा यह निष्ठुरता से पूंजीवादी सामाजिक संबंधो को अंतिम रूप से ढह जाने की ओर ले जा रही है। इससे उबरने का कोई मार्ग निकलता न देख-कर पूंजीवाद के पक्षधर मानवता को सबसे अधिक दु साहसिक कार्यों के लिए भड़काने की तैयारी करते हैं। फ्रांसीसी विद्वान ऐरिक मूरेज़ ने अपनी पुस्तक 'टेस्टामेंट पोअर अन मांद फ्यूचर' में मानवता की मरणासन्नता की रुग्णताभरी निराशापूर्ण तस्वीर को चित्रित किया है। उसके अनुसार, वह या तो भूख की वजह से मृत्यु को प्राप्त होगी या परिस्थितिजन्य संकट से या ऊर्जा स्रोतों के सूख जाने से। मानवता को केवल एक ही वस्तु बचा सकती है और वह है युद्ध। उनकी मान्यता है—"काफ़ी विरोधाभास के बावजूद उपर्युक्त कारकों को, आणविक युद्ध की संभावित घटना ही प्रतिकारक औषधि की तरह संभाल सकती है। इससे न केवल प्राविधिक सभ्यता के उपभोक्ताओं की संख्या मे ही वास्तविक कमी होगी, उनका जीवन-स्तर ही नीचा न होगा और अस्त-व्यस्त वैज्ञानिक प्रगति ही बदनाम न होगी, अपितु 'संतुलित' विनिमय की शर्तों के अधीन यह जीवित प्रकृति का अपेक्षाकृत कम विनाश करेगी, परिस्थिति वैज्ञानिक बंध्याकरण के परिणामस्वरूप

1. वी० आई० लेनिन, "आत्म-निर्धारण पर विवाद का उपसंहार" संकलित रचनाएँ, खंड 22, पृ० 356

होने वाले इसके विकास की तुलना में। इस तरह इससे औद्योगिक अवस्था से पूर्व की स्थितियों वाले युग मे लौटना संभव हो पाएगा अथवा इन स्थितियों एवं नियंत्रित प्राविधिक की अवशिष्ट उपलब्धियों का सयोजन सभव हो पाएगा।"[1]

कम्युनिस्ट एकदम भिन्न विकल्प प्रस्तावित करते हैं। सन् 1976 के ग्रीष्म में बर्लिन (जी० डी० आर०) मे यूरोप की 29 कम्युनिस्ट और मज़दूर पार्टियों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन के दस्तावेज़ मे टिप्पणी की गई कि—"पूंजीवादी समाज का आर्थिक और सामाजिक ढांचा मजदूर वर्ग और सामान्य जनसमुदाय की आवश्यकताओं और सामाजिक प्रगति और जनतांत्रिक राजनैतिक विकास की जरूरतों के साथ अधिकाधिक असगत होता जा रहा है। यूरोप के पूंजीवादी प्रभुत्व वाले हिस्से के मजदूर वर्ग और श्रमिक लोग संकट को हल करने का जनतांत्रिक समाधान प्राप्त करने के लिए सघर्ष कर रहे हैं जो व्यापक जनसमूह के हितो से अनुरूप होगा और समाज के समाजवादी रूपांतरण का मार्ग प्रशस्त करेगा।"[2]

अतः मज़दूर वर्ग शातिपूर्ण तरीकों के द्वारा जनतांत्रिक समाधान के पक्ष मे है। क्या यह संभव है? हाँ, यह सभव है। वैज्ञानिक कम्युनिज़्म का सारा सिद्धांत मानवतावाद का सिद्धात है, ऐतिहासिक आशावाद का सिद्धांत है जो हिंसा—पूंजीवादी हिंसा के विरुद्ध मजदूर वर्ग की आत्मरक्षा का प्रश्न उपस्थित हो जाए तो दूसरी बात है—को अस्वीकार करता है।

इस सबध मे, समाजवादी संक्रमण के शांतिपूर्ण स्वरूपों के प्रश्न से जुड़े हुए तरीकों को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। अपने समय में मार्क्स का विश्वास था कि एक "समाज का संक्रमणकालीन राज्य" हो सकता है जिसके अंतर्गत "एक ओर मौजूदा आर्थिक आधार अभी रूपांतरित नही हो पाया है, तथा दूसरी ओर श्रमिक जनसमूह ने पर्याप्त शक्ति इकट्ठी कर ली है कि वह संक्रमण काल के उपायों—जो कि अंतिम विश्लेषण मे बुनियादी पुनर्गठन को संभव बनाएगे—के क्रियान्वयन को अपरिहार्य बना सके।"[3]

उनकी दृष्टि में इस प्रकार को घटना प्रवाह दूर की ही सही, संभावना अवश्य बना हुआ था। अब, पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण की विश्वव्यापी परिस्थितियों के अंतर्गत तथा स्वयं पूंजीवादी विश्व में वर्ग-शक्तियों का एक भिन्न सहसंबंध उभरने की वजह से इस प्रकार का विकास वास्तविकता बन गया है। यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की बर्लिन कान्फ्रेंस में इस बात की ओर संकेत किया गया—"साम्राज्यवाद की स्थिति, जिसने अपनी प्रकृति में कोई परिवर्तन नही आया है, वह शक्ति-संतुलन मे उत्पन्न परिवर्तनों के फलस्वरूप कमजोर हो चुकी है। यह बात इस तथ्य में व्यक्त होती है कि साम्राज्यवाद न तो समाज-

1. एरिक मूरेज, 'टेस्टामेंट पोअर अन माद फ्यूचर', पेरिस, 1971, पृ० 22
2. 'यूरोप में शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति', पृ०38
3. मार्क्स-एंगेल्स, वर्क्स खंड 16, पृ० 368-69

वाद की ऐतिहासिक उपलब्धियों को ही उलट सकता है, न ही प्रगतिशील ताकतों को बढने से रोक सकता है और न ही लोगों के मुक्ति और स्वाधीनता के लिए संघर्षों पर ही उसका अंकुश लगा सकता है।"[1]

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आज फ़िलहाल मजदूर वर्ग और सब मिलाकर इजारेदारी-विरोधी आदोलन उस स्तर को प्राप्त कर चुका है जहाँ वह शांतिपूर्ण तरीक़ों से समाजवाद की ओर जाने वाले महत्त्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। दरअसल, पश्चिमी यूरोप की कम्युनिस्ट और मज़दूर पार्टियों ने अपने कार्यक्रमो में कुछ ऐसे आधार बिंदु तैयार किए है जैसे—इजारेदारी-विरोधी लोकतंत्र की माँगें, वामपंथी दलों की सामूहिक सरकारो का निर्माण और निःशस्त्रीकरण की नीति—जो समाजवाद के लिए उनके संघर्ष की अंतरिम अवस्थाएँ अथवा उसके संक्रमणकालीन रूप हैं।

निस्सदेह, शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक रूपांतरण के मार्ग का यह कतई अर्थ नही है कि वर्ग-संघर्ष के मंदे पड़ने का आरंभ हो रहा है। इसके विपरीत, पूंजीवाद के खिलाफ़ मज़दूर वर्ग का स्थायी, सक्रिय और शक्तिशाली हमला मात्र ही इस आंदोलन को गतिशील रख सकता है। यह इसलिए कि क्रांति सुधारों का योगफल नही होती और जहाँ तक वर्ग संघर्ष के मुख्य मुद्दे का प्रश्न है अर्थात् शक्ति हथियाने की समस्या या फलस्वरूप उत्पादन के साधनों पर कब्ज़ा करने का प्रश्न—जब तक इसका हल नही होता तब तक किसी भी प्रगतिशील प्राप्ति को स्थायी मान लेना असंभव है। इसलिए, क्रांति के शांतिमय रास्ते का अर्थ है कि प्रत्येक पूंजीवादी देश में और विश्व व्यापी पैमाने पर, दोनों रूपो मे साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनतांत्रिक शक्तियों के राजनैतिक संघर्ष को धीमा न होने दिया। बल्कि और अधिक मज़बूत और तेज़ किया जाय।

जहाँ तक इस समस्या के अंतर्राष्ट्रीय पहलू का संबंध है यह आवश्यक हो जाता है कि युद्ध और प्रतिक्रियावाद की ताकतों का मुकाबला करने वाली जनतांत्रिक शक्तियों के विश्वव्यापी स्तर पर एक मोर्चा बनाया जाय, क्योंकि जैसा कि लेनिन ने कहा था—"जनतंत्र की सबसे अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति युद्ध और शाति के मूलभूत प्रश्न मे निहित होती है।"[2] और जब राष्ट्रीय स्तर पर जनतांत्रिक शक्तियाँ मज़दूर वर्ग और उसके कम्युनिस्ट हिरावल की ओर उन्मुख हो जाती हैं तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उस समाजवादी समुदाय की ओर भी उन्मुख हो जाती हैं जिसका नेतृत्व सोवियत संघ—जो जनगण के बीच शाति और सहयोग के लिए किए जाने वाले संघर्ष की अग्रगामी शक्ति है—करता है।

1. 'यूरोप मे शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति के लिए, पृ० 37
2 वी० आई० लेनिन "अखिल रूस केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के सातवें कन्वोकेशन के प्रथम सत्र मे प्रस्तुत अखिल रूस केन्द्रीय कार्य समिति और जन कमिसार परिषद् के कार्यकलापों पर रिपोर्ट", सकलित रचनाएँ, खड 30 पृ० 319

अध्याय : 8

सामाजिक जीवन से युद्ध को निष्कासित करो

शांति : अतीत के विचारकों ने जिस रूप में इसे देखा

विश्व इतिहास की समकालीन अवधि की समस्त आधारभूत समस्याओ मे युद्ध और शांति की समस्या निश्चित रूप से सबसे अधिक तीव्र एवं प्रासंगिक है। यह राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और वैचारिक जीवन के सभी पहलुओं को एक साथ बाँध लेती है, दो व्यवस्थाओं की मुठभेड़ के आधारो को उद्‌घाटित करती है, तथा बिना अतिशयोक्ति के यह कहा जा सकता है, कि यह सारी मानवजाति के भविष्य को निर्धारित करती है।

जनसमूहो की युगों पुरानी शांति संबंधी आकांक्षा आज व्यावहारिक कार्रवाई की प्रभावशाली योजना मे साकार हो रही है। शांति के लिए सोवियत संघ के संकल्पबद्ध संघर्ष के परिणामस्वरूप, जिसका दुनिया की सभी जनतांत्रिक शक्तियाँ समर्थन करती है—तनाव-शैथिल्य की नीति फिलहाल अपना पहला सुफल देने लगी है। इस शानदार संघर्ष मे शान्ति और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, जनगण की स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता के भावी संघर्ष का कार्यक्रम जिसे सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस मे निर्धारित किया गया—नये क्षितिज खोलता है। यदि इस कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जाता है तो राजनैतिक तनाव-शैथिल्य-सैनिक तनाव-शैथिल्य और राज्यों के बीच व्यापक बहुमुखी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के द्वारा संरक्षित किया जा सकेगा। अंततः शाश्वत शांति अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का मानक बन जायेगी। दरअसल उन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के आगे के विकास में यह मूलभूत काम है जिसे सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने कार्यक्रम के लक्ष्य के रूप मे इस प्रकार परिभाषित किया है—"युद्ध को नेस्तनाबूद करना और पृथ्वी पर स्थायी शांति स्थापित करना कम्युनिज्म का ऐतिहासिक मिशन है।"[1]

1. 'कम्युनिज्म के रास्ते की ओर' मास्को, 1962, पृ० 505

युद्धों को समाप्त करने की समस्या में कुछ विरोधाभास दिखाई दे सकता है, कम-से-कम उतने भर मे जितना कि परवर्ती ऐतिहासिक अनुभव इस संभावना को नकारता है। फिर भी अन्य सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं की तरह इसके समाधान के लिए ऐतिहासिक नज़रिया आवश्यक है। युद्ध कैसे पैदा होता है, इसमे कौन-सी शक्तियों का हित निहित होता है या इसमे कौन अभिरुचि रखता है, क्या मानव जाति बिना युद्ध के जी सकती है, या क्या यह एक ऐसा अभिशाप है जो सदा खून का दरिया बहाने के लिए ही होता है? इन अथवा इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों का जवाब देने के लिए यह आवश्यक है कि कारकों के जटिल संयोग की परीक्षा की जाये—सामाजिक-आर्थिक घटनाओं से लेकर कानूनी तथा अन्य विविध रूपों में अभिव्यक्त और परस्पर अंतःक्रिया में संलग्न—किन्तु स्वभावतया यह भी आवश्यक हो कि यह परीक्षा सटीक स्थितियों के आलोक मे ही हो।

मानवता ने शांति के अपने स्वप्न को सँजोकर रखा है, हज़ारों सालों के इतिहास में लगातार प्रचुर मात्रा मे रक्तरंजित युद्धों के दौर में से गुज़रते हुए भी कई शताब्दियों से शांति के इस दर्शन ने जनगण के जीवन से सशस्त्र संघर्षों को समाप्त करने के मानवतावादी विचारों को पोषित और विकसित किया है। कभी-कभी उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय सबंधों को अधिक समान बनाने वाली मूलभूत और निर्भीक योजनाओं का मूर्त्तरूप भी धारण किया।

दार्शनिक शोधग्रंथों अथवा सत्ताधारियों की घोषणाओं में निरुपित शांति के आह्वान कितने भी प्रभावकारी क्यों न हों, वास्तविकता से तुलना करने पर वे अनिवार्यतः व्यावहारिक दिवालियापन को ही प्रकट करते हैं। या फिर इनके नीचे दबी-ढंकी उनकी स्वार्थपरक योजनाएँ दिखती हैं, जनता के कल्याण को बढ़ावा देने की वास्तविक आकांक्षा से जिनका दूर का भी वास्ता नही है। हिंसा पर आधारित समाज से और क्या आशा की जा सकती थी? दास-स्वामियों ने अधिक दास पाने के लिए युद्ध छेड़े, सामंती प्रभुओं ने सीमा विस्तार और कृषिदारों को बढ़ाने के लिए युद्ध छेड़े, पूँजीपतियों ने, कच्चे मालों के स्रोतो के लिए, व्यापार-क्षेत्र बढाने के लिए—जहाँ वे अपनी पूँजी लगा सकें—और आगे चलकर बढ़े हुए शोषण के द्वारा अधिक समृद्धि अर्जित करने के युद्ध छेड़े। यह अनुमान लगाया गया है कि पिछले 5,500 वर्षों में 14,500 से अधिक युद्ध हुए जिनमे करोड़ों की संख्या में जानें गयी। कितने हैरतअंगेज़ आँकडे हैं ये।

शोषण की व्यवस्थाओं के प्रारंभ से ही युद्ध निरंतर उनसे संबद्ध रहा है। फिर भी, जो सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात है वह यह कि लोगों ने प्रत्येक काल में अनवरत रूप से लगन के साथ शांति की खोज की है। लेकिन जबकि सभी स्कूली पाठ्य-पुस्तक सैनिक हलचलों और युद्धों के वर्णनों से युक्त सामग्री से भरी रहती है, शांति के विचार इस दृष्टि से उतने भाग्यशाली नही बन पाते हैं तथा

आम तौर से गुमनाम रह जाते हैं। तो भी उनके विकास की खोज करना श्रेयस्कर और रुचिकर होगा। इस सबंध में यूरोपीय महाद्वीप के संदर्भ मे शांति की समस्याओं के क्रम में दार्शनिक और राजनैतिक विचारों के इतिहास का अध्ययन विशेषतौर पर शिक्षाप्रद है। इस विषय में यूरोप की प्राचीन, मध्यकालीन और पूंजीवादी युगीन—सभी अवधियों का इस संबंध मे चिंतन अपनी छाप छोड़ता है।

उदाहरण के लिए प्राचीन यूनान के विचारकों में इस सामान्य सिद्धात पर कोई असहमति नही थी कि युद्ध—व्यापक जन-संहार—एक बुराई है, तथा शाति एक वरदान है, किन्तु उन्होंने इसे आंतरिक यूनानी समस्या के रूप में ही देखा। जहाँ तक बाहरी दुनिया का सबध है उन्होंने किसी प्रकार की भ्रांतियो की अनुमति नही दी। "युद्ध सबका पिता और राजा है।"—इस बात पर प्राचीन यूनानी दार्शनिक हेराक्लिटस ने जोर दिया था तथा इस सिद्धात को प्रकृति और समाज दोनों की द्वन्द्वात्मकता के विकास के रूप मे आगे बढाया था। प्लेटो के आदर्श राज्य में शांति का शासन है, किन्तु जिन्होंने युद्ध मे अपनी-अपनी सीमाओं से परे अपने आपको विशिष्ट सिद्ध किया उनका गुणगान किया गया है। अरस्तू ने स्पष्टता के साथ युद्ध के सामाजिक सार का उद्‌घाटन किया जो उनके समय के लिए असाधारण बात थी। उन्होंने युद्ध को 'अधिग्रहण की स्वाभाविक क्रिया' कहकर परिभाषित किया। उनके अनुसार युद्ध का वह कलात्मक अंश, जिसमें 'शिकार करना सम्मिलित' है—पूरी तरह न्याय संगत है। उन्होने कहा कि वह एक कला है जिसका अभ्यास "जंगली पशुओं और आदमियों के विरुद्ध होना चाहिए जिन्हे प्रकृति ने शासित होने के लिए ही बनाया है किन्तु जो समर्पण नही करते।"[1] युद्ध के प्रति यह दृष्टिकोण, जाहिर है, दास प्रथा की प्रकृति से पैदा हुआ था तथा उसकी मानसिकता के अनुरूप था।

चौथी शताब्दी में मकदूनिया के उदय की ठोस परिस्थितियों तथा सिकंदर—जोअरस्तू का शिष्य था—की जीतो के दौरान, युद्धकला के इस प्रकार के मूल्यांकन ने मकदूनिया के विस्तारवाद को तर्कसंगत ठहराया। ईसापूर्व 338 के अगस्त मे चैरोनेआ की लड़ाई के बाद, जिसने मकदूनिया के आधिपत्य के प्रश्न को अंतिम रूप से हल कर दिया था, मकदूनिया के फ़िलिप ने पराजित कोरिंथ में अखिल यूनानी सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमे व्यक्त यूनानी शांति संबंधी विचारों को सुपरिभाषित राजनीतिक अभिव्यक्ति मिली। इस बात पर सहमति हुई कि—प्रथम, यूनानी राज्यों का एक महासंघ बनाया जाये जिनके बीच आपसी युद्धों पर प्रतिबंध लगाया जाये; द्वितीय : महासंघ और मकदूनिया के राजा के बीच स्थायी

---

1. पॉलिटिक्स ऑफ एरिस्टोटल, न्यूयॉर्क, 1899, पृ॰ 12

सुरक्षात्मक और आक्रमणात्मक संधि पर हस्ताक्षर हों, तृतीय, पर्सिया से युद्ध शुरू किया जाये। सिकंदर के बाद के अभियानों ने यह ज़ाहिर कर दिया कि कोरिंथ सम्मेलन के भागीदारों—मकदूनियाई इनमें प्रमुख थे—ने तीसरे बिन्दु को सर्वप्रमुख समझा।

इसका निष्कर्ष है कि कूटनीति के इतिहास के इस प्रथम अंतर्राष्ट्रीय क़ानून की धारा ने साफ़तौर पर एक शोषक समाज की विदेश नीति की मुख्य प्रवृत्ति का निर्धारण कर दिया, जिस प्रवृत्ति का रुख उत्पत्ति के साधनों के प्रसार की ओर था। इसके अलावा इसमें यह इच्छा भी निहित थी कि सबसे अधिक शक्तिशाली भागीदार के साथ मिलकर आधिपत्य को सुदृढ़ बनाया जाये। ज़ाहिर है इस संधि का निशाना सदा अन्य देश एवं जनगण ही बनते।

सदियाँ बीत गयी। साम्राज्य उठे और गिरे, अंतर्राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे बने और टूट गये, किन्तु वास्तव में राज्य की विदेश नीति के लक्ष्य उपरिवर्णित पैटर्न में ही सीमित रहे।

तीसरे देशों की ओर लक्षित क्षेत्रीय मित्रताओं के विचार के पनपने के लिए मध्य यूरोप उपजाऊ जमीन साबित हुआ। उदाहरण के लिए, सन् 1095 में क्लैरमोंट से आयोजित रोमन कैथोलिक चर्च की कौंसिल में इसे आगे विकसित किया गया, जहाँ पोप अर्बन द्वितीय ने सभी ईसाई राज्यों को 'दैवीशांति' का उपदेश दिया और इसके साथ ही उसी समय 'काफ़िरों' के खिलाफ जिहाद छेड़ने का आह्वान किया। होली-सी के प्रधान के पश्चिमी ईसाइयतशाही को अपील की कि वह पूर्वी ईसाइयतशाही को बचाने आये और तुर्कों से जेरूसलम को हथिया ले और इसके साथ ही उनसे वायदा करे कि वे विजेता अपने अच्छे उपयोग के लिए उपजाऊ जमीनें हासिल करेंगे। इस अपील के बाद का परिणाम क्या हुआ—यह सुपरिचित है: जहाँ तक तुर्कों के ख़िलाफ 'पवित्र युद्ध' का संबंध है, ईसाई राज्यों ने कठिनाइयों के बावजूद इस बिन्दु पर एक समझौता किया, जिसके फलस्वरूप चार सदियों की अवधि के दौरान बहुत से और जिहाद छिड़े। किन्तु ईसाई राज्यों के बीच मे 'दैवी शांति' के लिए किये गये आह्वान अपने आप में पूरी तरह असफल सिद्ध हुए।

जिहादों के दौरान तथा उनके पश्चात् यूरोप झगड़ों एवं परस्पर संहारक युद्धों की विभीषिका मे फँसा रहा। उसकी सीमाओं से परे संयुक्त 'मुक्ति' मिशन यूरोप को शांति के अधिक निकट नही ला पाया। फिर भी, जब सन् 1453 में तुर्कों के आघातों के परिणामस्वरूप बिजेंटाइन साम्राज्य धराशायी हो गया तथा ईसाई राज्य वास्तव मे एक समान शत्रु के विरुद्ध खड़े हुए, तब भी यूरोपीय एकता की अपीलें बहरे कानों से ही टकराकर रह गयी। सन् 1459 में पोप पीयस द्वितीय द्वारा शांति कौंसिल के लिए ईसाई राजाओं को सम्मिलित करने का प्रयास

नितांत असफलता मे समाप्त हुआ। उसे किसी ने गंभीरतापूर्वक नही लिया। और जब वह मंतुआ पहुँचा, तो कांग्रेस के लिए प्रस्तावित जगह पर उसे वहाँ न तो कोई राजा मिला और न ही उनके प्रतिनिधि।

फिर भी, ईसाई राज्यों के सहमेल का विचार, जिसकी जडे सभ्य जनगण के मध्य राजनैतिक शाति की प्राचीन अवधारणा मे निहित थी—आगे के बहुत से वर्षों तक यूरोपीय राजनीतिज्ञों के दिमाग़ों को आंदोलित करता रहा। साथ ही, वे दूसरे देशों के विरुद्ध लक्षित सैनिक और राजनैतिक सहमेल के अलावा यूरोपीय शांति के लिए किसी अन्य रूप की कल्पना तक नही कर पाये।

उदाहरण के लिए, 17वी शताब्दी मे बहुचर्चित, मैक्सीमिलीन सली की महत्वाकाक्षी योजना यही थी। प्रमुख फ्रांसीसी राजनेता तथा किंग हेनरी चतुर्थ के सलाहकार ड्यूक डे सल्ली ने उदीयमान फ्रासीसी तानाशाही के हितों की वकालत की और एक साथ दो समस्याओं को सुलझाने का भरसक प्रयत्न किया। सबसे पहले उसने हैप्सबर्ग राजाशाही को कमज़ोर करने की कोशिश की, जो फ्रास का शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी था, और फिर उसने पश्चिमी यूरोपीय राज्यों को इस दृष्टि से एकताबद्ध करने की कोशिश की कि बल्कान से तुर्कों को बाहर निकाला जाये। अप्रत्यक्षतः यह योजना मस्कोवी के बढते हुए प्रभाव को समाप्त करने के लिए भी निर्धारित की गयी थी, जो जार इवान चतुर्थ के अधीन बहुत मजबूती से स्थापित हो चुका था और दृढ़ता के साथ शक्ति अर्जित कर रहा था।

अपनी योजना के समर्थन में एक दलील के रूप में सली ने सीमांत प्रदेशों की 'प्राकृतिक' धारणा को प्रस्तुत किया, जिसके बारे में उनका विश्वास था कि यह सभी पश्चिमी यूरोपीय देशों के लिए, प्रसगानुसार समझौतों के आधार पर (योजना यह थी कि पूर्वी यूरोप को 15 समान शक्तिशाली राज्यों मे विभाजित किया जाय) स्थापित किया जाना था। इन देशों को एक महासंघ के चौखटे में फिट किया जाना था अर्थात् 'ईसाई गणतंत्र' के रूप में, जिसकी मुखिया सशस्त्र सेना युक्त एक महासंघीय कौंसिल होती तथा जो गृहयुद्धों तथा धार्मिक युद्धों को रोक सकती। यदि यह महान् योजना व्यवहार में उतार दी जाती, तो फ्रास के 'प्राकृतिक सीमांत प्रदेशों' का विस्तार दक्षिण मे पिरेनीज़ तक हो जाता और उत्तर और पूर्व मे आल्प्स और राइन तक। बोरबोन हैप्सबर्गों के प्रभाव को क्षीण करके 'ईसाई गणतंत्र' पर आधिपत्य स्थापित कर लेते। सल्ली की प्रायोजना का यह प्रमुख लक्ष्य था। जहाँ तक उसके तुर्की विरोधी उन्मुखता का संबध है, इसे समान ख़तरे को सामने रखकर प्रस्तावित सहमेल को सुदृढ करना था और उस भूमिका को सुदृढ करना था जो इसमें फ्रांसीसी ताज द्वारा अदा की जानी थी।

यद्यपि सली की योजना की प्रकृति काल्पनिक थी, फिर भी यह एक अग्रगामी क़दम था क्योंकि यूरोपीय सैटलमेंट की नीव रखने की ऐसी कोशिश थी जिसका

आधार 'प्राकृतिक सीमांत प्रदेशों' की तर्कसंगत धारणा थी तथा शक्ति संतुलन के एक प्रकार के समझौते की प्रक्रिया जिसे पुष्ट करती थी। यह कहना अनावश्यक है कि सली की प्रायोजना कार्यरूप लेने मे असफल रही, क्योंकि यूरोप मे 'प्राकृतिक सीमांत प्रदेशो' के सिद्धात को कोई समर्थक नही मिला। किंतु सार्वभौमिक शांति के विचारो के सामान्य विकास में इसका अपना स्थान है। इस महान् योजना मे निहित कुछ विचार बहुत बाद में प्रबोधन के बहुत से चिंतकों की रचनाओं मे प्रतिध्वनित होते रहे जिन्होंने दरअसल शांति की समस्या को गंभीर दार्शनिक अध्ययन की एक विषयवस्तु बना दिया।

प्रबोधन और उसका शांति का आदर्श

विनाशकारी सैनिक संघर्षों की ताजा लहर यूरोपीय महाद्वीप में बूर्ज्वा सबंधो की स्थापना का प्रतीक थी इन्होने भूतपूर्व सभी युद्धों—जिनमे 'सप्त वर्षीय युद्ध', 'तीस वर्षीय युद्ध' और 'सौ वर्षीय युद्ध' शामिल हैं—की तुलना मे बहुत अधिक मात्रा मे विनाश किया। राष्ट्रीय सत्ताएँ स्थापित हुई तथा तोप और तलवार से उपनिवेश जीत लिये गए। साथ ही, नए युग के परिवर्तन की ताजा लहर ने ऐसे अतर्राष्ट्रीय संबंधों की खोज की प्रेरणा पैदा की जो और अधिक स्वीकार्य हों। ऐसा प्रतीत हुआ कि यूरोप मे राजनैतिक क्रियाकलाप शाति के आदर्शों से जितना दूर होते गए, विश्व व्यापी समझौते की दिशा में प्रगतिशील चिंतन की कोशिशें लगातार उतनी ही अधिक तेज होने लगीं। तात्कालिक परिणाम के रूप में सतत शांति के लिए संधि का विचार सामने आया। अपने समय के महान् विचारकों—थॉमस हॉब्स, जॉन लॉक, विलियम पेन, चार्ल्स सेंट पियरे, ज्यां-जैक्स रूसो, और अंततः इम्मान्युअल कांट—सबने इस विचार को अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवदान दिया।

बहुत से दशकों तक सतत विश्व शाति के लिए सधि करने का विचार, प्राकृतिक विधान और सामाजिक अनुबध की सामान्य धारणा के घटक के रूप मे प्रबोधन के दार्शनिक अध्ययनों पर छाया रहा। यह अपनी सादगी और मानवी चिंतन पर आस्था के कारण लोगों को आकर्षित करता था। उनकी सुरक्षा और संपत्ति के प्राकृतिक अधिकार को आश्वस्त करने के उद्देश्य से प्रबोधन के चिंतक यह दलील देते थे कि लोगों को एक ही राज्य के निर्माण हेतु एक समझौता करना होगा। आखिर राज्यों को ऐसा करने से अर्थात् सुरक्षा को आश्वस्त करने और पारस्परिक विनाश को टालने का समझौता करने से कौन-सी बात रोकती थी?

उदाहरण के लिए, विलियम पियरे—जो अपनी रचनाओं में लॉक और हॉब्स के विचारों पर भरोसा करते थे और जो जितना अधिक दार्शनिक थे उतना ही अधिक राजनीतिज्ञ थे—ने अपनी पुस्तक 'एन एसे टुवार्ड्स द प्रेज़ेंट एंड फ्यूचर पीस आफ यूरप' में लिखा—"शांति न्याय से कायम रहती है, जो कि सरकार का

एक प्रतिफल है जैसे कि सरकार समाज का और समाज सहमति का प्रतिफल होता है।"[1] पेन के अनुसार, कानून की शक्ति ही लोगों में निहित शांति और न्याय की आकाक्षा को प्रतिबिंबित करती है तथा इसे यूरोपीय राज्यों के सामान्य सहमेल और सर्वोच्च संगठन के अपने क्रियाकलाप के आधार रूप मे भी निहित रहना चाहिए। यह संगठन विवादपूर्ण प्रश्नों* को हल करने की दृष्टि से गठित कांग्रेस हो सकती है अथवा संसद। पेन सल्ली को महान् योजना का अपने शोधग्रंथ मे उल्लेख करते हुए पश्चिमी यूरोप के राज्यो के अलावा रूस और तुर्की को भी सम्मिलित करते हुए संभावित सहमेल की भौगोलिक सीमाओं को और अधिक विस्तार देते है।

प्रबोधन के प्रारंभिक काल के फ्रांसीसी दार्शनिक और कूटनीतिज्ञ चार्ल्स द सेंत-पियरे ने अपनी मौलिक रचना 'प्रोजेत द पेक्स पर्पिच्युएल'—जो उत्रेख्त में सन् 1712 की वेस्टफालियन कांग्रेस के शीघ्र बाद में प्रकाशित हुई थी—में समान-धर्मा विचार प्रकट किए गए थे। उत्रेख्त की शांति ने स्पैनिश सक्सैशन के युद्ध को समाप्त कर दिया। सल्ली की ग्रेट डिज़ाइन से भिन्न सेंत-पियरे की महाद्वीपीय राज्यों के सहमेल की प्रायोजना मे सीमाओं के परिवर्तनों का प्रावधान नही था, लेकिन मौजूदा सीमांत प्रदेशों के आधार को कायम रखते हुए उन्हें भविष्य के लिए एकजुट करने को प्रस्तावित किया गया था। उनका प्रस्तावित सहमेल किसी राज्य के विरुद्ध निर्देशित नही था; उन्होंने प्रबोधन के तत्त्वों अर्थात् विवेक, न्याय और क़ानून को लोगों के शांतिपूर्ण विकास की गारंटी देने वाले आदर्शों के रूप मे घोषित किया था।

उदीयमान बूर्ज्वा वर्ग तथा 'थर्ड एस्टेट' के विचारधारात्मक नेताओं ने निस्सदेह मानवता की सेवा की, किंतु इसलिए नही कि उन्होने अतर्राष्ट्रीय संबंधों (जो सदा कपोल कल्पित साबित हुए) की एक या दूसरी योजना को ईजाद किया। महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक विधान और सामाजिक अनुबंध के सिद्धांत से संबद्ध होने की वजह से ये योजनाएँ धरती पर टिकी हुई थी और न्याय के लिए अपनी खोज मे, वे तर्क पर आधारित थी भाग्य एवं विधाता की ओर उन्मुख नही। बजाय इसके कि वे राजाओं और सामंतों की अनुकंपा पर भरोसा करते, उन्होंने सार्वभौम शांति को लोगों के स्वयं के अविभाज्य अधिकार के रूप में घोषित किया। शांति की समस्या को हल करने के तमाम प्रयत्नों—जो पहले के मध्य काल में किए गए थे—की तुलना में शांति के इन नए प्रयत्नों मे अपेक्षाकृत अधिक महान बुद्धि तथा सच्चा लोकतन्त्र निहित था।

अठारहवी सदी के दार्शनिकों और विशेषतया फ्रांसीसी प्रबोधन के प्रति-

1. "यूरोप की वर्तमान और भावी शांति के निमित्त—एक [illegible] द्वारा लिखित 'यूरोप की शांति' : 'शांति के फल' और [illegible], न्यूयॉर्क, पृ० 6

अपने शासकों की ओर बढाने चाहिए और उन्हें ताजोतख्त से नीचे उतरकर हमारे बराबर आने के लिए बाध्य करना चाहिए। इसमे वे इंकार नही करेंगे ज्यों ही वे अपनी स्थिति की तुलना समानता की स्थिति के साथ करेंगे।"[1]

शांति के प्रश्न के प्रस्तुतीकरण मे प्रबोधन के दार्शनिकों द्वारा उठाये गये नये अग्रगामी कदम ने निश्चित रूप से जड़ता को तोड़ा था। किन्तु यह किसी व्यावहारिक निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए नितात अपर्याप्त था। यूरोप और अमरीका मे जो दुर्दान्त घटनाएँ घटित हुईं उनके फलस्वरूप विवेक की विजय की आशा की भी वही गति हुई जो कि विधाता की इच्छा पर आश्रित अन्य बड़ी आशाओं की हुई थी।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संघटन से सबधित प्रबोधन के विचार सन् 1776 के स्वाधीनता के उस घोषणापत्र मे सीधेतौर पर प्रतिध्वनित हुए जिसने संयुक्त राज्य अमरीका के निर्माण की घोषणा की थी। थॉमस जेफरसन द्वारा लिखित इस घोषणापत्र—जिसे मार्क्स ने 'मानव के अधिकारो की प्रथम घोषणा'[2] की सज्ञा दी थी—पर स्पष्टतया फ्रांसिस बेकन, मौंटेस्क्यू, डिडेरोत तथा लॉक का प्रभाव था।

लेकिन यदि हम संयुक्त राज्य अमरीका की तत्काल निर्मित विदेश नीति के क्षेत्र से संबंधित व्यावहारिक क्रियाकलाप की ओर घूम कर देखें तो पाएँगे कि ज्यो ही उन्होंने स्वाधीनता प्राप्त की वैसे ही उन्होंने तथाकथित 'शक्ति संतुलन' की नीति के अन्तर्गत उन प्रगतिशील विचारों को त्याग दिया। बूर्ज्वा वर्ग के उन कट्टर विशेषज्ञो—जैसे जार्ज वाशिंगटन, एलेक्जेंडर हैमिल्टन, जॉन एडम्स, ज़ॉन जे और अमरीकी राज्य के अन्य जनकों—के हाथो मे शक्ति संतुलन की नीति दुनिया मे सबसे अधिक जनसंहारक लड़ाइयों का अधिकतम लाभ उठाने की इच्छा के रूप मे परिवर्तित हो गयी। समुद्र पार का यह गणतंत्र एक ऐसे राज्य की नींव रख रहा था जो देश में सदियों तक असम्मानजनक गुलामी की संस्था को संरक्षित कर सके और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विस्तारवाद की नीति का अनुसरण करे और विश्व शाति के प्रति कतई चिंतित न हो।

प्रबोधन के विचारों का फासीसी क्रांति के कार्यक्रम पर—जो सन् 1789 का मानव और नागरिक अधिकारों का घोषणापत्र कहलाता है—और भी अधिक प्रभाव पड़ा। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांतों को प्रतिपादित करते हुए इसकी दूसरी धारा मे कहा गया था—"प्रत्येक राजनैतिक संगठन का उद्देश्य मानव के

1. डोम डिसकैंप्स, पूर्वोक्त पृ० 185
2. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, चयनित रचनाएं तीन खडो में, खड 2 मास्को, 1973, पृ० 22

प्राकृतिक और अविभाज्य अधिकारों को सुरक्षित करना है। ये है स्वतन्त्रता, संपत्ति, सुरक्षा तथा दमन का प्रतिरोध।"[1]

अमरीका से भिन्न, क्रांतिकारी फ्रांस में जैकोबाइनी तानाशाही के पास ऐसा बल था जो कि इन सिद्धांतों को जीवन में क्रियान्वित करने के लिए प्रस्तुत था। सैनिक पराजयों के समय जबकि प्रतिक्रियावादी यूरोप की सेनाएँ फ्रांस के पास चारों ओर से छाई हुई थी, तथा हस्तक्षेपवादियों के ऊपर प्रथम विजयों के बाद, दोनों ही बार, जैकोबियनों ने दृढ़ता से क्रांतिकारी युद्ध की रणनीति लागू की। राष्ट्रीय सम्मेलन में अपने विवरणों में मैक्सिमिलियन रौब्सपियरे ने साफ तौर पर घोषणा की कि किसी भी परिस्थिति में फ्रांसीसी गणतंत्र अपनी प्रभुसत्ता का समर्पण नहीं करेगा और अपने आंतरिक मामलों में किसी को हस्तक्षेप करने की इजाजत ही देगा। साथ ही, यह भी कि अपनी राजनीतिक प्रणाली को किसी दूसरे देश पर हथियारों की ताक़त से थोपने का उसका कोई इरादा न था।

जैकोबियनों की मान्यता थी कि ये सिद्धांत केवल तात्कालिक रणनीतिक नारे ही नहीं है, किन्तु ये विदेश नीति के आधारभूत सिद्धांत है और उन्होंने सभी देशों से अपील की कि वे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में विवेक एवं न्याय के सिद्धांतों पर ज़ोर दें। तब मे जैकोबियन मानवता के सभी हितों का पक्ष लेते रहे। रौब्सपियरे ने एक बार कहा कि यदि फ्रांस की स्वतंत्रता नष्ट होती है तो प्रकृति कफन से ढक जाएगी और मानव ज्ञान, अज्ञान, बर्बरता तथा तानाशाही की ओर वापस लौट पड़ेगा जो कि असीम सागर की भांति समूची दुनिया की तबाही के कारक बनेंगे। उनके शब्द एकदम सटीक भविष्यवाणी साबित हुए। 9वीं थर्मीडोर के प्रतिक्रांतिकारी राज्य-विप्लव ने जैकोबियनों के क्रियाकलाप की हत्या कर दी और इसके साथ ही अंतर्राष्ट्रीय मामलों मे न्यायसंगत सिद्धांतो पर दिया जाने वाला बल भी समाप्त कर दिया गया।

इमानुअल कांट की 'चिरंतन शांति'

सार्वभौमिक शांति का विचार समाप्त नहीं हुआ। इसके विपरीत, नैपोलियनी युद्धों के प्रारंभ में यह और आगे विकसित हुआ; इस बार फ्रांस के बाहर ऐसा हुआ। जिस व्यक्ति ने इसका अध्ययन प्रारंभ किया तथा प्रबलता से इसका प्रचार किया वह था जर्मनी के पौराणिक दर्शन का संस्थापक इमानुअल कांट। उनकी विश्व दृष्टि, मार्क्स के शब्दों मे, फ्रांसीसी बूर्ज्वा क्रांति पर आधारित जर्मन सिद्धांत थी।

उस महान दार्शनिक ने अपने पूर्ववर्ती विचारकों के शांति प्रयत्नों के निराशाजनक परिणामों का तथा उनकी व्यावहारिक सिफ़ारिशों की असफलता का

1. सारोस, पृ० 970

विश्लेषण किया। वह अन्य किसी पूर्ववर्त्ती की तुलना मे समस्या की संपूर्ण जटिलता को अधिक गहराई से समझने की क्षमता से सपन्न थे। संभवत: यही कारण है कि उन्होंने अपने शोधग्रंथ का आरंभ सदेह भरे प्रश्न को उठाकर किया—'चिरंतन शांति'। इसका निर्णय हमें नही करना है कि वह डच सराय वाले की कब्र पर लिखे इस व्यंग्यात्मक अभिलेख का निशाना समूची मानवता है, अथवा वे शासक है जिनकी युद्ध पिपासा सहज शांत होने वाली नही है, अथवा वे दार्शनिक जो मधुर स्वप्न देखते है।"[1]

तथापि काट स्वय शाति के इस स्वप्न को ऐसा नही मानते थे जिसे पूरा नही किया जा सकता। इसके विपरीत, वह स्थायी शाति को आवश्यक समझते थे और इससे भी अधिक उसको ऐतिहासिक विकास का एक अपरिहार्य परिणाम मानते थे। उनका तर्क था कि लोगों के बीच के सबधो के सारतत्व मे ही निहित तात्विक अंतर्विरोधों का फ़ायदा उठाकर प्रकृति उन्हे उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर आगे बढाती है ताकि कालावधि में मानव जाति कानून के तत्वाधान में एकजुट हो जाए।

प्रकृति ने लोगो को पृथ्वी पर आबाद किया है। वह ऐसे हालात भी पैदा करती है ताकि पारस्परिक संबद्ध भिन्न इकाइयाँ उस जीवन की अच्छी बातों का विनिमय करें, जो जीवन लोगों को राज्य के रूप मे एकताबद्ध करता है। जो पहले शत्रुता और झगडे मे अस्तित्वमान थे, उन्हे राज्यो के लोगो को सहमेल के रूप मे रहने के लिए प्रकृति के द्वारा प्रेरित किया जाएगा। अपनी एक अन्य रचना मे कांट ने लिखा—"चाहे यह विचार कितना ही स्वप्निल क्यों न लगे और चाहे अब्बे द सेंत पियरे और रूसो की कितनी ही हँसी क्यों न उडी हो (शायद इसलिए कि उनकी आस्था वे इसके तुरत क्रियान्वयन में थी।) फिर भी, यही वह अनिवार्य समाधान है जो लोगों को पारस्परिक विध्वंसात्मक प्रयत्नो की स्थिति में डुबकी लगाने से बचा सकता है।"[2]

चिरंतन शांति पर अपनी शोध रचना मे काट ने उन सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया जिनके बारे में उन्हें विश्वास था कि वे इस उद्देश्य की प्राप्ति में हमे आगे बढ़ाएँगे। उनमे ये हैं—(1) उस संधि को वैध नही समझा जाएगा जिसमें भावी युद्ध के लिए मौन या गुप्त सामग्री निहित है; (2) कोई भी स्वतंत्र राज्य पर चाहे वह छोटा हो या बड़ा—विरासत, विनिमय—क्रय या दान के आधार पर अन्य किसी राज्य का आधिपत्य कायम नही हो सकता (3) मौजूदा सेनाएँ (लगातार मीलों में व्याप्त) समयानुसार क्रमशः पूर्णतया समाप्त कर दी जाएँगी; (4) राष्ट्रीय ऋणों को राज्यों के बाहरी विभाजन के आधार पर अनुबंधित नही किया जाएगा;

---

1. इम्मानुअल काट, 'स्थायी शांति' स: लेविस, व्हाइट बेक, न्यू यॉर्क, 1957, पृ० 3
2 काट्स गेसाम्मेल्ट श्रिफ़्टन, खंड VIII बर्लिन, 1912, पृ० 24

(5) कोई भी राज्य ताकत के ज़ोर पर दूसरे राज्य के विधान या उसकी सरकार मे हस्तक्षेप नही करेगा; (6) कोई भी राज्य, युद्ध के दौरान शत्रुता के कारण कोई ऐसे जघन्य कार्य नही करेगा जो आगे की शांति में पारस्परिक विश्वास को असंभव बना दें; जैसे कातिलों की नियुक्ति, विषैले पदार्थों का उपयोग, संधिपत्र का उल्लघन और विरोधी राज्य में देशद्रोह के लिए भड़काना।[1]

ये सब सिद्धात जो प्रबोधकों के विचारों को सूत्रबद्ध करते हैं, और बहुत-सी बातों में उन सीमाओं से परे भी जाते हैं, एकदम जनतांत्रिक हैं—यदि उनको इस रूप मे समझा जाए कि ये उस समय सूत्रित किए गए थे जबकि संयुक्त राज्य अमरीका ने स्वाधीनता हासिल की ही थी और फ्रांसीसी गणतंत्र प्रतिक्रियावाद के खिलाफ़ क्रांतिकारी युद्धो मे व्यस्त था।

यह जनतांत्रिक प्रवृत्ति खासकर अंतिम तीन बिन्दुओं में स्पष्टतया अभिव्यक्त हुई है जिनमे कांट ने स्थायी शाति को सुरक्षित करने के लिए शर्तें क़ायम की हैं। उनकी राय में शाति के लिए मुख्य सामाजिक-राजनैतिक पूर्वशर्त स्वतंत्रता एवं क़ानून पर आधारित सरकार का गणतंत्रीय रूप है, जिसके अंतर्गत नागरिक स्वयं युद्ध और शाति के प्रश्नों को तय कर सकें। अतर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत यह राज्यों के ऐच्छिक सहमेल—जहाँ महासंघ के चौखटे के भीतर प्रत्येक राज्य राष्ट्रीय संप्रभुता के अधिकार का उपभोग कर सके—पर आश्रित होगी। आचरण और नीति संबंधी शर्त यह होगी कि राज्यों के बीच ऐसे संबंधों का निर्माण किया जाये जिनके अंतर्गत कोई भी राज्य अन्य राज्यों की सीमाओं को हथिया नही सके।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कांट ने एक आदर्श गणतंत्र के लोकतांत्रिक क़ानूनों का अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र तक विस्तार करने के प्रयास किए। उनके अनुसार जनगणों की एक विशाल मैत्री—जिसमें हर राज्य को उसकी सुरक्षा और उसके कानून के प्रति सम्मान की गारंटी होगी—क़ानून के सिद्धांतों पर आधारित आंतरिक नागरिक व्यवस्था की अंतर्राष्ट्रीय समतुल्य होगी।

जनगणों के सहमेल का अर्थ 'जनगणों के राज्य' की स्थापना नही थी, अर्थात् सहमेल का अर्थ किसी एक राज्य पर दूसरे राज्य का किसी छिपे रूप मे आधिपत्य होना नही था। वास्तविकता मे यह ऐच्छिक सहमेल का वह रूप था जो स्वतंत्रता और शाति की स्थिरता के लिए निर्मित किया जाना था। काट ने इसे जिस रूप मे देखा, स्पष्ट है कि, उसके पीछे महासंघ बनाने का इरादा था; उनकी समझ यह थी कि यह सहमेल "क्रमशः तमाम राज्यो तक फैल जाएगा और इस प्रकार स्थायी शांति की ओर ले जाएगा," यह एक वस्तुगत यथार्थ हो जाएगा। "क्योंकि यदि भाग्य निर्दिष्ट करता है कि एक शक्तिशाली और प्रबुद्ध जनगण अपने आप को एक

1. देखिए—इम्मानुअल काट, 'चिरस्थायी शांति', पृ० 3-7

गणतंत्र में विकसित कर सकता है, तो वह अपने स्वभाव के अनुरूप स्थायी शांति की ओर भी अपने आप को प्रवृत्त कर सकता है—यह दूसरे राज्यों के साथ महासंघ का आधार निर्मित करता है ताकि वे इससे सबद्ध रह सकें और राष्ट्रों के क़ानून की धारणा के अधीन स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें। यह महासंघ ऐसे अधिक-से-अधिक संघों के द्वारा क्रमशः व्यापक होता जाएगा।"[1]

कांट ने स्थायी शाति को एक मधुर स्वप्न या दार्शनिकों की एक हवाई आशा के रूप में ग्रहण नही किया। मानवता इसे स्वैच्छिक महासंघ के रूप में ही प्राप्त करती है जहाँ कि अततः कानून और न्याय ही सर्वोच्च शासक होंगे। कांट ने उन मूलभूत सिद्धांतों को परिभाषित किया जो कि ऐसे समुदाय की नीव का निर्माण करेंगे। अब केवल यह प्रश्न शेष रहता है कि इस उद्देश्य को व्यवहार में कैसे प्राप्त किया जाए और क्या यह सचमुच प्राप्य भी है। कांट का जवाब है—"स्थायी शाति की गारंटी महान् कलाकार प्रकृति से किसी भी रूप में कम नही है। अपनी यात्रिक प्रक्रिया मे प्रकृति को हम देखते हैं कि उसका लक्ष्य मनुष्यों के बीच मे तारतम्य पैदा करना है—उनकी इच्छा के विरुद्ध और वास्तव मे उनके बीच मतभेदों के होते हुए भी उनमे तारतम्य लाना है।"[2] और कांट एकदम निश्चित है कि "प्रकृति दृढ़तापूर्वक यह चाहती है कि अंततः सत्य की विजय हो। जिस काम की हम उपेक्षा करते हैं वह अपने आप ही होता है।"[3]

तो यह है कांट का जवाब। यह आसानी से देखा जा सकता है कि कोनिग्स्बर्ग का संत डिसकैप्स से दूर नही गया है। वस्तुतः, हकीक़त इससे उल्टी है। डिसकैप्स ने कम-से-कम शक्तियों से अपील करने की राय दी थी कि न्यायसंगत बनो और उन्हे न्याय के सामने झुकाओ, जबकि कांट की राय है कि हर बात प्रकृति पर छोड दी जानी चाहिए, उनके अनुसार प्रकृति ही इस प्रश्न का सबसे बढ़िया समाधान खोज निकालेगी।

बूर्ज्वा चिंतन की बंद गलियाँ

हमारे ख़याल मे कांट की 'चिरंतन शाति' अपने युग के दार्शनिक विचार को अंतिम विचारणीय देन थी जो अंतर्राष्ट्रीय कानून और अंतर्राष्ट्रीय संबंधो के क्षेत्र उदीयमान बूर्ज्वा वर्ग के युग का प्रतिनिधित्व करती थी। यह कहा जा सकता कि उन्होंने न्याय और विवेक (इन पारिभाषिक शब्दों के बूर्ज्वा विश्लेषण के रूप मे) के सिद्धांतों पर आधारित संबंधो की लंबे समय की खोज को एक निष्कर्ष दिया और, साथ ही उन्हें चुकता भी कर दिया। कांट के बाद अभिजात्य चिंतन ने

1. इम्मानुअल काट, 'स्थायी शाति', पृ० 18-19
2 वही, पृ० 24
3. वही, पृ० 31

आधारतः कोई नई बात नहीं पैदा की, और जो कुछ उसने पैदा किया उससे मानवता को स्थायी शांति के अधिक निकट नहीं लाया जा सका। एंगेल्स ने नोट किया—"विवेक पर आधारित राज्य पूरी तरह ढह गया। प्रतिश्रुत शाश्वत शांति विजय के अनंत युद्ध में परिवर्तित हो गई।"[1]

पूंजीवादी समाज का इजारेदारी अवस्था में प्रवेश की विशिष्टता व्यापक प्रतिक्रियावाद और विश्व युद्धों के ऐसे खूनी अतिरेक रहे है इतिहास मे जिनकी मिसाल नही मिलती। तब से सैन्यवाद एक ऐसा स्थायी कारक बन गया है जो पूंजीवादी देशों के सभी क्षेत्रों में फैल गया है। फ्रांस प्रशा युद्ध के बाद एंगेल्स ने लिखा—"सैन्यवाद का आधिपत्य है और वह यूरोप को निगल रहा है।" उससे पहले उन्होने लिखा था—"सेना राज्य का मुख्य उद्देश्य हो गया है और अपने आप मे एक अंतिम लक्ष्य भी, लोगों के समुदाय केवल सैनिकों की भर्ती देने और उनको खिलाने के लिए ही रह गए हैं।"[2] वस्तुतः नई जीतों की तैयारी के लिए।

सैन्यवाद की बढोतरी के साथ युद्ध की मात्रा मे भी बढोतरी हुई। यह अनुमान लगाया जा चुका है कि 17वी शताब्दी में यूरोप मे हुए युद्धो मे 30 लाख लोगो ने अपनी जानें गँवाई; 18 वी शताब्दी में 50 लाख से अधिक जाने गई; 19वी सदी मे लगभग 60 लाख जानें गई और 20वी सदी मे प्रथम विश्वयुद्ध मे एक करोड़ तथा द्वितीय विश्व युद्ध में पाँच करोड़ से अधिक जानें गई। सैन्यवाद के मद्योत्सव की अनवरत बाढ और आक्रमण बूर्ज्वा चिंतन की सामान्य प्रवृत्ति हो गई जो इन परिस्थितियो के अधीन समस्या के किसी सकारात्मक समाधान को खोजने मे नितांत असमर्थ साबित हुआ या उसने वास्तव में युद्ध का गुणगान करना चालू कर दिया।

कांट के बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध दार्शनिक जिन्होंने इस विषय-वस्तु पर चिंतन किया वह थे, जोहन गोटफ्राइड बोन हर्डर और जोहन गोटलीब फ़िक्टे। कांट के साथ तुलना करने पर ज्ञात होता है कि हर्डर ने रूसो की तरह एक क़दम आगे बढाया। वह जनसमुदाय की रचनात्मक भूमिका पर आस्था रखते थे। फ़िक्टे ने अपने तईं जनगण के सहमेल बनाने के कांट के विचार का विकास किया। उनका विश्वास था कि ज्योंही यह सहमेल सारी दुनिया में फैल जाएगा—"चिरंतन शांति का आगमन हो जाएगा तथा मात्र वह ही राज्यों के बीच के वैध साहचर्य को संभव बनायेगी।"[3] किंतु, क्योकि उन्होंने कांट के कुछ विचारों को मात्र विकसित और जोर-शोर से प्रसारित किया, हर्डर और फ़िक्टे दोनों ने ही इस समस्या के

---

1. फ्रेडरिक एंगेल्स, ड्यूहरिंग मतखंडन, पृ० 303
2. वही पृ० 204
3. जोअन गोटलीब फिक्टे, वर्क औशवॉल इन सैक्स बांडन ज्वैंटर बैंड पंडलेज डेस नेचरेटरस। डास सिस्टस डेर सिटेनलेहर (1798)" पृ० 386

समाधान के रूप में कोई नई बात पैदा नहीं की, और जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह यह कि उनके विचारों के आह्वान का अपेक्षाकृत उससे भी बहुत कम प्रभाव पड़ा जितना कि उनके प्रसिद्ध पूर्ववर्ती के अनेक विचारों का पड़ा था।

जहाँ तक 'चिरंतन शांति' की अन्य प्रायोजनाओं का संबंध है—मुख्यतया उदार शांतिवादी प्रकृति की—जो उस समय और बाद में फिर समूची उन्नीसवी सदी में दिखाई दी, वे प्रायः बहुत अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुईं। दर्शन की विभिन्न शाखाओं की संकीर्ण शास्त्रीय सीमाओं में बंधी हुई होने के कारण वे कोई व्यापक सामाजिक हलचल पैदा नहीं कर पायीं। यही नहीं, सैन्यवाद एवं आक्रमण के खिलाफ़ बूर्ज्वा उदारवादियों के सकोची विरोध वस्तुतः अनेक छद्म-वैज्ञानिक सिद्धांतों—जो जाहिराना तौर पर सैन्यवाद और हमले को न्यायसगत बताते थे—ने दबा दिया।

बूर्ज्वा चिंतन का यह कायापलट इस रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है कि यह अब शासक वर्ग के नये सामाजिक कानून के अनुरूप बन गया था। ज्यों ही पूँजीवाद ने साम्राज्यवाद की अवस्था में प्रवेश किया वैसे ही बूर्ज्वा वर्ग की शांति में रुचि घटने लगी, इसने अपने सारे प्रयत्नों को उपभोक्ता बाजारों तथा पूँजी विनियोजन के क्षेत्रों को विभाजित और पुनर्विभाजित करने में लगा दिया। इसकी व्यावहारिक सक्रियता इस प्रकार चालित होने लगी ताकि वह कच्चे माल के स्रोतों पर विचार करके जहाँ भी संभव हो वहाँ अधिक-से-अधिक जमीन हथिया सके। उसे इस बात का डर भी था कि कहीं ऐसा न हो कि मुक्त भूमि अथवा विभाजित भूमि के पुनर्विभाजन के भयंकर संघर्ष में वह पीछे रह जाय।[1] इसके मूल मंत्र का उद्घोष युद्ध की वकालत करने वाले जनरलों ने किया न कि विवेक एवं न्याय के आधार पर विश्व का पुनर्गठन करने का आह्वान करने वाले दार्शनिकों ने।

हेलमथ वोन मोल्ट्के, जो जर्मन सैन्यवाद के स्तंभों में से एक था तथा कैसर विल्हैल्म और 'लौह चांसलर' बिस्मार्क का प्रिय था, ने युद्ध की पूर्व संध्या पर जोर दिया कि समस्त विभाजित ज़मीनों को पुनर्विभाजित किया जाए। उनके अनुसार चिरंतन शांति मात्र एक स्वप्न था, और वह भी गुलाबी नहीं। उनकी राय में युद्ध ईश्वर के द्वारा स्थापित विश्व व्यवस्था का एक तत्व है जिसमें मनुष्यों के सबसे श्रेष्ठ गुण अपने आप प्रकट हो जाते हैं, उनका आरोप था कि बिना युद्ध के विश्व का अधःपतन हो गया होता तथा वह भौतिकवाद के दलदल में लुप्त हो गया होता।

---

1 वी० आई० लेनिन, "साम्राज्यवाद . पूँजीवाद की सर्वोच्च अवस्था" सकलित रचनाएँ खड 22, पृ० 262।

उन वर्षों में बूर्ज्वा सामाजिक चिंतन अनेक भिन्न-भिन्न धारणाओं में बिखर गया, इनमें से प्रत्येक अलग रूप में युद्ध को अपरिहार्य सिद्ध करने की कोशिश करने लगा। इस दृष्टि से कुछ बूर्ज्वा विद्वानों ने सामाजिक विकास के सामाजिक नियमों के स्थान पर कुत्सित सामाजिक डार्विनवाद ('अस्तित्व के लिए संघर्ष' 'सबके खिलाफ सबका युद्ध') अथवा नव माल्थसवाद के नाम पर ('युद्ध अतिरिक्त जनसंख्या का परिणाम है') जैवीय नियमों को चलाने की कोशिशें की। अन्य कुछ विद्वानों ने युद्ध के कारणों को उपचेतनीय सहजातवृत्तियों मे ढूंढा जिन्हे उनके अनुसार स्वयं प्रकृति ने मूलतः मानवीय मानसिकता के रूप में निर्मित किया है। तीसरे प्रकार के लोगो ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि "युद्ध की घटनाक्रियाओं" की अज्ञेयता भी एक सामाजिक घटनाक्रिया तथा इसे मानव जाति पर लटकते हुए एक रहस्यमय प्रारब्ध की संज्ञा दी।

उन्नीसवी सदी के पूंजीवादी विचारों के व्यापक वर्णक्रम मे विश्व के भविष्य के विषय मे निराशावादी भविष्यवाणियों का स्पष्टतया वर्चस्व था। इसमे कुछ वस्तुगत तर्क भी था। सभ्यता के विनाश के काले चित्र, चाहे आंतरिक बुराइयो की वजह से हों अथवा उन अनिवार्य युद्धों के परिणामस्वरूप हों, दार्शनिकों की रचनाओ मे या उपन्यासो में पृष्ठ दर पृष्ठ पर खिचे मिलते है, बूर्ज्वा चिंतन के गंभीर संकट को ही प्रतिबिंबित करते है और उस गतिरोध को दर्शाते हैं जिसमे इसने अपने आपको फँसा दिया था। इस परिस्थिति ने इस तथ्य को भी प्रतिबिंबित कर दिया कि मानवता का सामान्य पतन और उसका आत्मविनाश ऐतिहासिक दृष्टि से अनिवार्य हो सकता था, और रहेगा, यदि दुनिया केवल पूंजीवाद के नियमो के अनुसार ही जीवित रहती रही, और यदि दुनिया के समाजवादी रूपातरण के अपने कार्यक्रम को लेकर मजदूर वर्ग इतिहास के रंगमच पर प्रकट नही हुआ।

कल्पनालोक से एक वैज्ञानिक कार्यक्रम और राजनैतिक आचरण तक

मानवता का समस्त पूर्वानुभव अकाट्यता से सिद्ध करता है कि सार्वभौमिक शांति के विचार तब तक जड़ नही पकड़ सकते जब तक समाज शोषण पर आधारित है। इस आकर्षक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समस्त विविध प्रायोजनाओं—जिन्होंने बहुत सी सदियो तक दार्शनिकों की कल्पना को उत्तेजित किया और राजनीतिज्ञों के दिमागों को घेरे रखा—में तीन सामान्य लक्षण थे। किसी-न-किसी रूप में वे सब वर्गीय समाज के शासकीय उच्च स्तर के हितों को ही प्रतिबिंबित करते थे; जिसके परिणामस्वरूप वे सब संकीर्ण और अस्थिर थे और न तो वे जनसमुदाय तथा नीचे के लोकतांत्रिक तबके को अपील करने का साहस ही कर सकते थे और न उन्होंने ऐसा किया ही; और अंतिम निष्कर्ष यह निकला कि उन्होंने अपने आपको दिवालिया साबित कर दिया।

अतः इससे क्या नतीजा निकाला जाय ? क्या इससे उस पुराने निराशावादी दृष्टिकोण की पुष्टि होती है कि इतिहास केवल एक ही बात सिखाता है अर्थात् यह कि इसने कभी किसी को कुछ भी नही सिखाया ? या इसके विपरीत, यह कि सार्वभौम शाति का विचार केवल तभी सच्चाई मे बदला जा सकता है जबकि सामाजिक शक्तियो के द्वारा निर्धारित निश्चित ऐतिहासिक परिस्थितियाँ निर्मित कर दी गई हो ? अतः इसमे कोई आश्चर्य नही कि पिछली पीढ़ियों के विचारक शांति का रास्ता ढूँढने मे असफल रहे और इस विषय पर कई दफ़ा उन्होंने एकदम मासूमी भरे विचार प्रकट किए। फिर भी, जो आश्चर्यजनक है वह यह कि असीम युद्धों मे खून मे लथपथ लोग निराश नही हुए, निरुत्साहित नही हुए और शाति की निर्णायक विजय मे उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा।

कम्युनिस्ट इतिहास को जीवन का एक महान् शिक्षक मानते है बशर्ते उसके अनुभव को सही रूप मे समझा जाय और लागू किया जाय। युद्ध और शाति की समस्या के सदर्भ में भी यही कहा जा सकता है। किसी भी विगत् युग ने इस समस्या का आमूल समाधान प्रस्तुत नही किया है क्योंकि इस विषय मे उनका दृष्टिकोण सकीर्ण था तथा उसमे पूर्वापेक्षाओ का व ऐसी सामाजिक शक्तियो का अभाव था जो शाति के कार्यक्रम को वास्तव मे कार्यरूप देने मे समर्थ हों। ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार का समाधान समकालीन युग में सभव बन चुका है जबकि अब पूँजीवाद समाज की अगुवाई मे नही है, बल्कि मज़दूर वर्ग वह समाजवादी हिरावल दस्ता है जिसका अंतर्राष्ट्रीय जीवन मे अधिक वर्चस्व है। इन स्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधो की नई प्रणाली की स्थापना के लिए पूर्वापेक्षाएँ बढ जाती है। तथा वैज्ञानिक कार्यक्रम—जो स्थायी लोकतात्रिक शांति की ओर उन्मुख है—का वास्तविक प्रारूप तैयार कर लिया गया है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने युद्ध और शाति की समस्या के प्रस्तुतीकरण मे मौलिक रूप से नये तत्व पैदा किए हैं। इस समस्या का विश्लेषण एक या दूसरे वर्ग के नीति संबंधी लक्ष्यों के प्रसंग में किया गया और इस प्रकार पहली बार एक सचमुच वैज्ञानिक आधार प्राप्त कर लिया गया है। इस विषय मे लेनिन के द्वारा एक विशिष्ट भूमिका अदा की गई, जिन्होंने सार्वभौम शाति की प्राप्ति को समाजवादी क्राति के कामों के साथ जोड़ा।

सैन्य सिद्धातकार कार्ल वॉन क्लॉज़विट्ज के इस दृष्टिकोण "युद्ध अपने स्वयं के मुख्य लक्षणो मे एक नीति है जिसने कलम को तलवार में बदल दिया है"[1] से सहमति व्यक्त करते हुए लेनिन ने "सरकारों तथा वर्गों की नीतियों मे कटकर युद्ध को सड़क के अबोध व्यक्ति की युद्ध संबंधी अवधारणा का डटकर विरोध किया

1. वौम क्रीग, हिटरलैसन्म वर्क डैस जनरल्स कार्ल वॉन क्लॉज़विट्ज, एर्लाटर्ट डर्च डब्लू, वोम शेर्फ़, ड्रैस्डेन, 1885, पृ० 572

जिसके तहत युद्ध को शांति पर एक सामान्य हमले के रूप में देखने के प्रयास किए जाते है तथा इसके बाद उस भंग शांति को पुनर्स्थापित करने के प्रयास किए जाते हैं। इस संदर्भ में टिप्पणी करते हुए लेनिन ने केवल यह कहा : "वे लड़े, और फिर उनमे मेल हो गया।"

यह पूर्णतया अज्ञान से भरा हुआ दृष्टिकोण है, ऐसा जिसे अनेक वर्षों पहले छोड़ दिया गया था, और युद्धो के किसी ऐतिहासिक युग के किसी भी कमोवेश सावधानीपूर्ण विश्लेषण के जो तिरस्कार योग्य है।

और तब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला—"युद्ध अन्य जरियों से अपनाई गई नीति का सिलसिला है। सभी युद्ध उन राजनैतिक व्यवस्थाओं से अभिन्न होते हैं जो उनको पैदा करती हैं। वह नीति जिसे किसी राज्य, राज्य के किसी संबंधित वर्ग विशेष के द्वारा युद्ध से पहले से अपनाया जाता रहा है उसी को अनिवार्यतः युद्ध के दौरान भी जारी रखा जाएगा, कार्यवाही का रूप मात्र अकेला बदलता है।"[1]

समस्या के इम प्रकार के प्रस्तुतीकरण ने युद्ध को एक 'अज्ञेय घटनाक्रिया' की रहस्यमय महिमा से वंचित कर दिया और इसे मानव जाति के 'युगों पुराने अभिशाप' की संज्ञा से मुक्त कर दिया। अन्य सामाजिक घटनाक्रिया की तरह यह इतिहास की अन्य घटनाक्रियाओं की कतार मे रख दिया गया जो 'सार्वभौम शांति' एक भावना मात्र थी उसे मजदूर वर्ग के आंदोलन के व्यावहारिक काम के स्तर तक ऊपर उठा दिया गया। अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा और सामाजिक विकास की समस्याएँ उनके आंगिक अंतःसंबंधो के प्ररिप्रेक्ष्य मे परखी गईं। मार्क्सवादी-लेनिनवादियों ने शांति मात्र की अवधारणा का एक नितांत नया विश्लेषण प्रस्तुत किया, उन्होने इसे किसी नीति के परिणाम और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के रूप में देखा, जो एक राष्ट्र द्वारा दूसरे पर दमन करने को बिना शर्त अस्वीकार करते हों। इस सिद्धात का तात्पर्य यह है कि सारे जनगणो के हितो का सम्मान किया जाय और उनके उस पवित्र अधिकार को माना जाय जिसको प्राप्त कर वे आज़ादी से अपने सामाजिक-राजनैतिक संघटन की अपनी व्यवस्था का चुनाव कर सकें।

यह मौलिक रूप से नया दृष्टिकोण पुरानी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संघटन सबधी पूर्ववर्ती धारणाओं के लिए चुनौती था। सदियों और सहस्राब्दियों के दौरान जबकि सत्ता पर शोषको का कब्जा था, जनसमुदायों के हित निरंतर कुचले जाते रहे। और इतिहास के पास अंतर्राष्ट्रीय मसलों को हल करने के लिए ताकत के अलावा अन्य कोई साधन नही था। राजनैतिक नक्शा बार-बार खीचा जाता, मिटाया जाता और दुबारा खीचा जाता रहा—उन शोषक सत्ताधारियो की इच्छा के अनुसार जो अपने पक्षधरों की शक्ति के जोर से अन्य सीमाओं पर चढ बैठते थे, या प्रभाव

1. वी० आई० लेनिन, "युद्ध और क्राति", सकलित रचनाएँ, खंड 24, पृ० 339-400

के नए क्षेत्रों पर दावा करते थे, या अन्य जनगण या राज्यों की कीमत पर अपनी अन्य सुविधाएँ बटोरते थे।

अंतर्राष्ट्रीय संतुलन की एकमात्र गारंटी ताकत के इस्तेमाल मे समायी हुई थी, जो दरअसल साधारणतया हिंसा और आतंक का संतुलन मात्र था। इस प्रकार की स्थिति के पीछे वे अनवरत युद्ध थे जिनकी वजह से असुरक्षा की नींव पर टिका कोई भी राजनैतिक संयुक्त मोर्चा देर-सवेर अपनी अस्थिरता जाहिर कर देता और इसे सशोधित करने का मौका प्रस्तुत कर देता। साथ ही, जनगण के विशाल हितों और अधिकारों के हड़पे जाने के कृत्यों ने और नए अंतर्राष्ट्रीय झगड़ो और सशस्त्र लड़ाइयों को उभारा।

यद्यपि कुछ राज्यों द्वारा दूसरे राज्यों को गुलाम बनाने के लिए अपनाए गए साधन तथा उनके मुक्का-कानून के सूत्र सदियो तक कई बार बदलते रहे, फिर भी शोषक समाज मे पैदा हुए अंतर्राष्ट्रीय सबधों का सार वही रहा, क्योंकि वे निश्चित रूप से ताकत के जोर वाली नीति पर टिके हुए थे। और कूटनीति में भी अपने राजनैतिक उद्देश्यों के अनुरूप साधनों और तरीकों का अनुसरण किया जाता था। मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा—"अब तक समस्त विद्यमान शासकों और उनके कूटनीतिज्ञों ने अपने कौशल और प्रयासों का प्रयोग एक राष्ट्र को दूसरे के विरुद्ध करने मे ही लगाया है तथा एक राष्ट्र का उपयोग दूसरे को अपने अधीन करने के लिए किया जाता रहा है; इस प्रकार तानाशाही शासन को ही कायम किया जाता है।"[1]

हर युग अंतर्राष्ट्रीय सबधों की अपनी व्यवस्था पैदा करता है। समकालीन अवधि मे, जबकि मजदूर वर्ग और उसके मित्र सामाजिक विकास की प्रभावकारी शक्ति बन रहे हैं, अतर्राष्ट्रीय मामलों में लोकतांत्रिक सिद्धांत पहले से कहीं अधिक बडी भूमिका अदा कर रहे है। लेनिन ने लिखा—"उस पुरानी दुनिया के मुकाबले, जो राष्ट्रीय दमन, राष्ट्रीय कलह और राष्ट्रीय पृथकता की दुनिया है—मजदूर एक नए ससार का प्रतिरूप प्रस्तुत कर रहे हैं, एक ऐसे संसार का जो सारे राष्ट्रों के श्रमिक जनसमूहों की एकता का संसार होगा, एक ऐसे संसार का जिसमें विशेषाधिकार नही होंगे, आदमी के द्वारा आदमी का दमन नही होगा।"[2] यह आधारभूत सिद्धांत-सूत्र मजदूर वर्ग की विदेश नीति के सार तत्त्व को ही अभिव्यक्त करता है और साफतौर पर स्थायी, लोकतांत्रिक शांति की सचमुच की कारगर गारंटियों को

1 कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स, "जर्मनी की विदेश नीति" सकलित रचनाएँ, खड 7, पृ० 165

2. वी० आई० लेनिन, "मजदूर वर्ग और राष्ट्रीय प्रश्न" सकलित रचनाएँ, खड 19, पृ० 92

परिभाषित करता है।

साफ़तौर पर दिखाई देता है कि शांति सामाजिक प्रगति से अलग नहीं की जा सकती। जैसे ही सामाजिक रूपांतरणों की आवश्यकता परिपक्व हो जाती है यह उनके लिए प्रवेश द्वार खोल देती है। किसी भी देश के विकास के ठोस रास्ते का एकमात्र निर्णायक जो उसे परिभाषित कर सकता है, और करना चाहिए, वह है वहां का जनगण जिसके पास सर्वसत्तात्मक अधिकार है कि वह स्वयं अपने भविष्य का निर्णय करे और इसमें किसी बाहर के हस्तक्षेप को घुसपैठ न करने दे। न तो क्रांति का निर्यात, न प्रतिक्रांति का निर्यात, और न ही राष्ट्रों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप—यह वह नींव है जिस पर अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की एक स्थायी व्यवस्था का भवन खड़ा किया जा सकता है। मात्र यह प्रवृत्ति मानवता को शांति, सुरक्षा और सहयोग की परिस्थितियों के अंतर्गत आगे की सामाजिक प्रगति की असली संभावना एवं क्षमता प्रदान कर सकती है।

शांति, लोकतंत्र, सामाजिक प्रगति। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की समग्र अवधारणा को ध्वस्त किए बिना इस त्रयी में से एक भी तत्त्व को बाहर नहीं किया जा सकता। साफतौर पर यही वह धारणा है जिसे कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद की अंतर्राष्ट्रीय दादागीरी, लूट और हिंसा की नीति का प्रतिरोध करते हुए जवाबी नीति के रूप में प्रस्तुत करते है। यह नीति समकालीन ऐतिहासिक युग की आवश्यकताओं के समाधान के रूप में उदित हुई है और मजदूर वर्ग और समाजवादी हिरावल दस्ते की बिना पर घोषित की गई है। यह धारणा ऐतिहासिक प्रक्रिया के आधारभूत क़ानूनों का पूरा विश्लेषण करती है और उन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कामों का—जो लोकतंत्र और स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत मुख्य प्रेरक शक्तियों से संबंधित हैं—अपने में समावेश करती है।

इसकी ठोस अभिव्यक्ति राज्यों के शांतिपूर्ण सह-सस्तित्व की नीति में होती है चाहे उन राज्यों की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाओं में भिन्नता ही क्यों न हो। जैसा कि विश्व के दो व्यवस्थाओं में विभाजित होने से पहले ही लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध रचनाओं—'यूरोप के संयुक्त राज्यों के लिए नारे पर (1915)' और 'सर्वहारा क्रांति सैनिक कार्यक्रम (1916)' में सैद्धांतिक आधार पर इसे सूत्रबद्ध कर दिया था।

साम्राज्यवादी युग की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करते हुए लेनिन इस नतीजे पर पहुँचे कि आर्थिक एवं राजनैतिक विकास में विषमता होने के कारण समाजवाद कुछ देशों अथवा किसी एक देश में ही पहले-पहल विजयी हो सकता है। फलस्वरूप समाजवाद और पूंजीवाद के समानांतर अस्तित्व का इतिहास की कमेबिश लंबी अवधि तक कायम रहना संभव और स्वाभाविक दोनों ही है।

जहाँ तक इस अवधि में भिन्न व्यवस्थाओं वाले राज्यों के आपसी संबंधों का

सवाल है, 'शांति संबंधी आज्ञप्ति'—जोकि सोवियत राज्य की विदेशनीति से संबंधित पहला दस्तावेज़ है—मे मजदूर वर्ग की स्थिति को साफ़तौर पर प्रतिपादित कर दिया गया था। इसे लेनिन ने निर्धारित किया था और समाजवादी क्राति की विजय के बाद दूसरे दिन अर्थात् 8 नवंबर 1917 को अखिल-रूसी सोवियत कांग्रेस मे इसे स्वीकार कर लिया गया था। सोवियत सरकार ने सभी युद्धरत राज्यों और राष्ट्रो का आह्वान किया कि वे बिना किसी लेनदेन, और समामेलन तथा अर्थदान के न्यायसंगत जनतात्रिक शाति की स्थापना के सदर्भ मे वार्तालाप चालू करे। इसमे सभी राष्ट्रों का आह्वान किया गया था और विशेष तौर पर ब्रिटेन, फ्रास और जर्मनी के मजदूर वर्ग का और सभी सरकारो का। यह आज्ञप्ति सभी राष्ट्रों की समानता को मान्यता देने पर आधारित थी चाहे वे बड़े हो या छोटे और इसमे किसी एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र पर किसी भी प्रकार के दमन को अस्वीकार कर दिया गया था। इसने विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों मे शातिपूर्ण सहअस्तित्व की नीव डाली।

अक्तूबर क्राति द्वारा निरूपित इन सिद्धातो ने, बिना अतिशयोक्ति के यह कहा जा सकता है कि, अतर्राष्ट्रीय सबधो के इतिहास मे एक नए युग का सूत्रपात कर दिया। सोवियत राज्य अभी अस्तित्व मे आते ही लेनिन द्वारा प्रतिपादित ये सिद्धात, निरतर सोवियत विदेश नीति की आधारभूमि रहे हैं।

समाजवाद के विरोधी इस बात पर जोर देते है कि अंतर्राष्ट्रीय तनाव और उसके फलस्वरूप युद्ध की आतक भरी अभिव्यक्ति का एक कारण, चाहे वह मुख्य कारण न भी हो, यह तथ्य ही है कि समकालीन दुनिया दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ मे विभाजित है। यह खीच-तान किया हुआ आधारहीन तर्क है। यह या तो मार्क्सवाद की उनकी गलत समझ की वजह से है, या इस विषय में अपने अज्ञान को मार्क्सवादियों पर थोपने की उनकी इच्छा की वजह से है।

निस्सदेह, सोवियत राज्य का उदय, इसकी उपलब्धियाँ, विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थापना, तथा इसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का समेकीकरण क्रांतिकारी प्रक्रिया को गति देता है तथा मज़दूर वर्ग के लोगों की चेतना के निर्माण को प्रेरित करता है—ये सब दुनिया-भर मे वर्ग-सघर्ष को प्रेरित और तीव्रतर करते है। तथापि विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के सहअस्तित्व की नीति से इनका कोई वास्ता नही है। क्या हज़ारों वर्षों के मानव इतिहास की रक्तरंजित युद्धो की शृंखला वस्तुत: विचारधारात्मक संघर्षों का ही परिणाम है? ये चाहे सैद्धांतिक प्रवृत्तियों में ढके हुए हों अथवा नही, उनका मुख्य कारण सदा से ही शोषक वर्गों की और अधिक दौलत मंद होने की लालसा रही है।

अनेक उदाहरण यह ज़ाहिर करते है कि सामाजिक व्यवस्थाओं और सिद्धांतों की भिन्नता ने राज्यो को एक-दूसरे के साथ शातिपूर्वक सहअस्तित्व का निर्वाह

करने से नही रोका। हमारा कार्यक्रम कल्पनालोक से परे है—यह पूरी तरह राजनैतिक क्रियाकलाप से परिपुष्ट हो चुका है।

समाजवाद और अंतर्राष्ट्रीय शांति अविभाज्य हैं

विश्व-समाजवाद की सुदृढ़ता और हमारे इस ग्रह पृथ्वी पर समाजवादी दृष्टिकोण का फैलाव कम-से-कम युद्ध के आतंक को तो तेज नही ही करते हैं, इसके विपरीत, समाजवादी देशों की विदेश नीति के आधार का निर्माण करने मे यह विश्व दृष्टिकोण अपनी शातिपूर्ण प्रकृति को निर्धारित करता है और इस प्रकार यह एक शाति का कारक बन जाता है जो अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को पुख्ता करता है।

शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धात सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राज्य की विदेश नीति की अलंघनीय आधारभूमि है। हेलसिंकी सम्मेलन की अंतिम धारा मे सजीव तथा व्यापक रूप से व्याख्यापित, यह सिद्धांत सोवियत गणतंत्र के नये संविधान में प्रतिष्ठापित किया गया है जिसमें कहा गया है—

"संयुक्त समाजवादी सोवियत गणतंत्र के दूसरे राज्यों के साथ संबंधों का आधार निम्नांकित सिद्धातों का अनुपालन है—सर्वसत्तात्मक समानता; ताकत के उपयोग अथवा उसकी धमकी का पारस्परिक परित्याग; सीमाओं की अलंघनीयता का पालन; राज्यो की सीमा संबंधी अखंडता; झगड़ों का शांतिपूर्ण निपटारा; आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप; मानवाधिकारों और मौलिक स्वाधीनताओं के प्रति आदर; जनगणो के समान अधिकारों और अपनी नियति के आत्म-निर्णय का अधिकार; राज्यों के बीच में सहयोग; और सामान्यतया स्वीकृत सिद्धांतों, अंतर्राष्ट्रीय क़ानून के नियमों, और यू एस एस आर द्वारा हस्ताक्षरित अंतर्राष्ट्रीय संधियों से उत्पन्न कर्तव्यों को सुदृढ़ आस्था के साथ पूरा करना।"[1]

यदि ये आधार सूत्र सार्वभौम मान्यता प्राप्त कर लें और सभी राज्यो के लिए निर्विवाद रूप से इनको विदेशी संबंधों का मानदंड समझ लिया जाय, तो लगभग 90 प्रतिशत तनाव के लिए उत्तरदायी कारण—जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को बिगाडते हैं—स्वत: समाप्त हो जायेंगे। समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मामलो में खड़ी होने वाली सर्वाधिक उलझन भरी राजनैतिक समस्याओं के शांतिपूर्ण निपटारे की विश्वसनीय गारंटी होगी।

जहाँ तक सोवियत सघ और दूसरे देशों का सबध है ये सिद्धात उनकी सामाजिक व्यवस्था से सहज रूप से पैदा होते हैं। कारण यह है कि उन्होंने उन जड़ों को ही नष्ट कर दिया जो आक्रमण को पालती है : उत्पादन के साधनो पर निजी पूंजीवादी स्वामित्व को तथा उन ताक़तों को जो उन्हे संगठित करती है—जैसे शोषक वर्गों को जो युद्ध मे अपना हित समझते है और अपनी दौलत के साधनों को बढ़ाने

1. सविधान (मौलिक कानून)—सोवियत सघ, मास्को, 1977, पृ॰ 32

के उद्देश्य से दूसरे जनगणों को गुलाम बनाने मे रुचि रखते है। इस अकेले सिद्धात ने समाजवादी देशों को अन्य देशों के साथ उनके सवंधों के क्षेत्र में ऐसे विशिष्ट स्थान पर ला खडा किया है पिछली पीढियो को जिसका ज्ञान तक नही था।

सोवियत संघ के जनगण तथा अन्य देशों के जनगण के हितों में आपस में, एक-दूसरे से कही भी टकराव नही होता, बल्कि इसके विपरीत ये मूलतः एक-दूसरे से मेल खाते हैं। समाजवादी देशो और तमाम दुनिया के बाकी देशों के श्रमिक जन-समुदायों के बीच की सुदृढ़ एकजुटता वर्गहीन समाज के निर्माण के उनके समान लक्ष्य पर तो निर्भर करती ही है, दमन एवं आक्रमण का विरोध करने वाले साम्राज्यवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे को मज़बूत करने की समान इच्छा पर भी आधारित है।

सोवियत सघ और दूसरे देशो, जहाँ मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियाँ सत्ता मे है---ने अपने लिए कभी भी, और कही भी किसी प्रकार की खास रियायतो की तलाश नही की। वे इस बात को पक्के तौर पर मानते है कि अंतर्राष्ट्रीय सबंधों की वास्तविक सुदृढ लोकतांत्रिक प्रणाली तभी बनाई जा सकती है जबकि सभी राष्ट्रों और राज्यों के वैध हितों का, चाहे वे बड़े हों या छोटे, अमीर हो या गरीब, औद्योगिक हों या विकासमान—पूरी तरह ख़याल रखा जाए।

अपनी विदेश नीति का निर्धारण करने और उसको लागू करने मे समाजवादी देश अपने आपको पूरी तरह यथार्थ के ठोस विश्लेषण पर आधारित करते है न कि मनमाने लक्ष्यों को दृष्टिगत रखकर। इससे वे इस योग्य हो जाते हैं कि वे प्रत्येक अवस्था की वस्तुगत आवश्यकताओ का लेखा-जोखा ले सकें और अपने आपको तदनुकूल कदम उठाने के लिए अभिमुख कर सकें।

समाजवाद की विदेश नीति सुसगत एवं निरतर गतिशील है तथा वह अवसर-वादी टेढे-मेढ़ेपन की शिकार नही है। भिन्न सामाजिक व्यवस्था वाले राज्यो के साथ अपने सबधों मे समाजवादी देश पर्याप्त लचीलापन काम मे लेते हैं और जब आवश्यकता होती है तो आपसी हित के मामलों पर समझौता करने से इन्कार नही करते। किन्तु इन समझौतों में किसी भी तरह से, तीसरे देशों की कीमत पर, खीच-तान करके, किसी प्रकार का लाभ उठाने की लालसा की गंध तक नही आती।

इतिहास मे सोवियत सघ ही ऐसा पहला राज्य था जिसने साफ़तौर पर अपनी विदेश नीति के लक्ष्यो की घोषणा की, वही वह पहला राज्य था जिसने न तो कोई बात अपने देशवासियो से छिपायी और न ही दूसरे देशों के लोगो से। इसके विपरीत, वह इन लक्ष्यों की अधिकाधिक जानकारी सारी दुनिया के श्रमिक जन-समुदाय को देने मे हमेशा से ही अभिरुचि रखता रहा है। जितना अधिसंख्य जनसमुदाय सोवियत विदेश नीति से परिचित होगा और उसके असली उद्देश्यों को और अच्छी तरह समझेगा, उन अन्य देशों मे उसके उतने ही अधिक पक्षधर हों

जाएँगे।

समाजवादी क्रांति समकालीन युग की वस्तुगत प्रक्रिया है। इसमें कम्युनिस्ट अपने इस विश्वास को गुप्त रहस्य बनाकर नही रखते कि आगे चलकर एक अवधि मे पूँजीवादी व्यवस्था को एक वर्गहीन समाज के लिए जगह खाली करनी पड़ेगी। और स्पष्टतया इसलिए कि यह समाज के आंतरिक विकास की एक उपज है, जैसा कि लेनिन ने संकेत दिया कि कोई भी क्रांति किसी दूसरे देश में किसी आदेश या किसी समझौते से फूटकर पैदा नही हो सकती।[1] यह एक प्रकार के जुए की तरह होगा कि सामाजिक परिवर्तन को कृत्रिम रूप से उत्तेजित किया जाए, बाहर से क्रांति को उभारा जाए या मानो उन्हें ताकत से थामे रखा जाए। जहाँ तक विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के राज्यों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की स्थितियो का संबंध है तो वे, जैसा कि सुज्ञात है, किसी भी देश मे सरकार के वर्गीय सार तत्व को नही छूती। कम्युनिस्ट कभी और किसी भी परिस्थिति मे शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का फायदा नही उठाते कि दूसरे देशों के वर्ग-संघर्ष में हस्तक्षेप किया जाए, चाहे इसीलिए कि "कोई भी शक्ति पूँजीवाद को नष्ट नही कर सकती थी यदि इतिहास के द्वारा इसे निचोडा और नष्ट नही कर दिया होता।"[2]

इस प्रकार दीर्घकालिक लोकतांत्रिक शांति के लिए संघर्ष के कामों को मजदूर वर्ग के आजादी के संघर्ष के कामो के साथ जोड़ते हुए, समाजवाद की विदेश नीति वर्तमान क्रांतिकारी युग के मौलिक कानूनों के चहुँमुखी मूल्यांकन और इसकी वस्तुगत आवश्यकताओं पर आधारित होती है और प्रमुख संचालक शक्तियों के हितो को प्रतिबिंबित करती है। इसका अर्थ है कि समाजवाद के जन्म, तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार मे उसकी विदेश नीति के सिद्धातों के प्रवेश मात्र ने विश्व शांति के लक्ष्य को प्रथम बार विश्वसनीय आधार प्रदान किया है। समाजवाद हजारो वर्षों की आक्रामक और अतर्राष्ट्रीय डकैती की नीति के मुकाबले प्रतिरूप के रूप मे लेनिन द्वारा सार रूप मे प्रस्तावित करता है—"युद्धो का अंत, राष्ट्रों मे शांति, लूट और हिंसा की समाप्ति—यही है हमारा आदर्श।"[3]

छ: दशको के दौरान कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राष्ट्र ने इस महान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अधिकतम दृढ संकल्प के साथ काम किया है। समाजवाद की विदेश नीति के सैद्धांतिक आधार के बतौर यह धारणा जो लेनिन द्वारा अक्तूबर क्राति से पूर्व सूत्रबद्ध की गई थी—प्रमुख तत्व थी और सोवियत राज्य की उसकी

1. वी. आई. लेनिन—"मॉस्को की ट्रेड यूनियनो और फैक्टरी कमेटियो की चौथी कांग्रेस" संकलित रचनाएँ, खंड 27, पृ॰ 480
2. वी. आई. लेनिन, 'युद्ध और क्रांति' संकलित रचनाएँ, खंड 24, पृ॰ 417
3. वी. आई. लेनिन, 'शांति की समस्या' संकलित रचनाएँ, खंड 21, पृ॰ 293

पहली विदेश नीति के राजनैतिक उद्देश्य के रूप में उल्लिखित की गई थी। यह लेनिन की शांति आज्ञप्ति थी। व्यावहारिक योजना के तौर पर। फिर भी, यह अवधारणा लम्बे अरसे तक सर्वहारा द्वारा राज्य सत्ता पर कब्ज़ा करने के बाद भी विकसित नहीं की जा सकी।

इसके विपरीत, सोवियत गणतंत्र के आरंभिक वर्षों के दौरान कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने क्रियाकलाप को इस समझ पर आधारित किया कि साम्राज्यवाद के साथ नये संघर्ष अपरिहार्य बन गये थे। "हम युद्धों के एक काल से गुजर चुके हैं, और हमें दूसरे के लिए तैयारी करनी आवश्यक हो गई है"[1]—लेनिन ने सन् 1920 में कहा था। उन दिनों दुश्मन से घिरे हुए उस नवजात समाजवादी राज्य ने युद्ध के प्रज्ज्वलित घेरे को तोडने तथा थोडी राहत प्राप्त करने पर सबसे पहले अपना ध्यान केन्द्रित किया। और जब तक वहाँ साम्राज्यवाद के साथ सशस्त्र संघर्ष की अनिवार्यता बनी रही, उसका काम दरअसल दम लेने की अवधि को यथासंभव लम्बा करने तक सीमित रह गया था। अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के इस सामान्य मूल्यांकन के सहीपन को घटनाओं ने सही साबित कर दिया और उस विदेश नीति के सहीपन को भी जिसका कि पार्टी ने इस मूल्यांकन के आधार पर अनुसरण किया था।

अभी भी बहुत सा मार्ग तय करना बाकी था : सोवियत संघ में समाजवाद की संपूर्ण विजय को सुरक्षित करना था, द्वितीय विश्व युद्ध में साम्राज्यवाद की आक्रामक ताकतों को पराजित करके खदेड़ना बाकी था। यह अनिवार्य था कि सबसे पहले विश्व मंच पर शक्तियों के संतुलन को आमूलतः बदलकर समाजवाद के पक्ष में लाया जाय, इससे पहले कि कम्युनिस्ट पार्टी हमारे युग के व्यावहारिक कार्य के रूप में समाज के जीवन से युद्ध को बाहर निकालकर समाप्त करने के ऐतिहासिक काम को अंजाम देने की व्यवस्था कर सके। इसके साथ ही यह भी जोड़ा जाना चाहिए कि हमारे समय में समस्या का इस प्रकार का स्पष्ट प्रस्तुतीकरण वस्तुतः समूची मानवता की सच्ची और विशाल आवश्यकता को संघटित करता है।

---

1. वी॰ आई॰ लेनिन, "सोवियतों की आठवीं अखिल-रूसी कांग्रेस" संकलित रचनाएं, खंड 31, पृ॰ 501।

अध्याय : 9

आज का मूल मुद्दा

"···युद्ध अथवा मानवता के अंत का प्रारंभ।"
—जॉन बर्नाल

युद्ध नई शक्ल में सामने आ रहा है

युद्ध और शांति की समस्या का मूल्यांकन करने के लिए यह बुनियादी तौर पर जरूरी है कि अपने समय और इस युग की दो आधारभूत प्रक्रियाओं का लेखा-जोखा किया जाय : मजदूर वर्ग के मुक्ति और जन-तांत्रिक आन्दोलन का फैलाव तथा वैज्ञानिक नव प्राविधिक क्रांति का तीव्र विकास। दोनों तथ्य इस समस्या के प्रस्तुतीकरण और समाधान मे बहुत महत्वपूर्ण संशोधन प्रस्तुत करते हैं।

निस्संदेह, युद्ध सदा से ऐसी नीति रहा है जिसने कलम की जगह तलवार को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। जब तक पूंजीवाद कायम है इसके आक्रामक केंद्रो का राजनैतिक प्रवाह युद्ध के आतंक को अनिवार्यतः उत्पन्न करेगा।

तथापि पिछले दिनो युद्ध एक नयी शक्ल में सामने आ चुका है, और युद्ध विरोधी शक्तियां इस हद तक विकसित एवं मजबूत हो चुकी हैं कि आज कोई भी आक्रमण-कारी अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर उनके प्रभाव की उपेक्षा नही कर सकता। आक्रामक द्वारा कतिपय आर्थिक अथवा राजनैतिक लाभों की आशा करना एक बात है, जबकि शत्रु को हराकर रेगिस्तान, जो रहने योग्य भी न हो—पर कब्जा कर पाने की काल्पनिक संभावना की गणना करना एकदम दूसरी बात है। जब युद्ध विरोधी शक्तियां कमजोर, असगठित और असुरक्षित हो तो यह एक बात है तथा तब एकदम दूसरी जबकि वे सैद्धांतिक एवं संगठनात्मक—दोनो आधारो पर स्वयं को संगठित करके समाजवादी देशों के समुदाय की शक्ति पर भरोसा करके संघर्ष चलाते है। यह भी एक बात है कि जबकि विगत समय में, तमाम भयानकताओं, अत्या-चारो, सकटों और कष्टों—जो अनिवार्य रूप से युद्धों के साथ उभरते है—के

बावजूद, उनमें से कुछ "प्रगतिशील थे अर्थात् उन्होंने हानिप्रद और प्रतिक्रियावादी संस्थाओं के नष्ट करने मे मदद करते हुए मानवता के विकास को लाभ पहुंचाया।"[1] और आज यह एकदम दूसरी बात है जबकि उन समस्याओं, जो इस समय की और भविष्य की पीढ़ियो के सामने दिखाई दे रही हैं, का चरित्र इतना बदल चुका है कि कोई भी सैनिक सघर्ष उन्हे हल नही कर सकता। इन समस्त कारको ने वस्तुतः युद्ध की भूमिका को ही बदल दिया है तथा समाज के जीवन मे इसके स्थान को भी।

सबसे पहले हमे समस्या के वैज्ञानिक एव प्राविधिक पहलू की जाँच कर लेनी चाहिए। विगत दशकों और खासतौर से द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद से तेजी से हुए आर्थिक विकास के फलस्वरूप इस क्षेत्र मे चौकाने वाले परिवर्तन हो चुके हैं। एगेल्स ने लिखा है—"आर्थिक पूर्वापेक्षाओ पर स्पष्टतया सेना और नौसेना से अधिक कोई भी अन्य वस्तु निर्भर नही करती, हथियारबदी, संरचना, संघटन, कार्यनीति और रणनीति ये सब राज्य के उत्पादन और संचार व्यवस्था की तत्कालीन अवस्था पर निर्भर करते हैं।"[2] पूंजीवाद ने एक ओर तो उत्पादक *शक्तियों को बहुत ऊँचाई तक विकसित किया है—पूर्ववर्ती सामाजिक सरचनाएँ* जिसकी कल्पना तक नही कर सकती थी—वहाँ साथ ही सशस्त्र सेनाओं का आमूल पुनर्गठन भी अत्यत व्यापक स्तर पर किया है।

दुनिया के नक्शे को ताकत के जरिए बदलने और उसे नये सिरे से बनाने के काम को अपने लिए निर्धारित करते हुए पूंजीवादी शक्तियो ने अपने सैन्य-संगठन मे नये लक्षण पैदा किये है। अब सेनाएँ केवल युद्धकाल के लिए ही नही बढ़ायी जाती, किन्तु यह वृद्धि स्थायी और व्यापक हो गई है और नियमित सैनिकों से निर्मित होती है न कि भाड़े के सिपाहियों, भाड़े के सेनानायकों, भर्ती किये हुए लोगों से, जैसा कि पहले रिवाज था। पहले सेनाएँ सार्वत्रिक अनिवार्य सैनिक भर्ती से निर्मित होती थी। उद्योगों और संचार साधनों का विकास उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप था। सैन्यवाद पूंजीवादी दुनिया का एकनिष्ठ साथी बन गया।

युद्धक्षेत्रों मे सैनिक कार्रवाइयो का परिणाम अब नये हथियारों और नई रण-नीतियो पर निर्भर करता है। एगेल्स की राय मे सन् 1870-1871 का फ्रैंको-प्रशियन युद्ध युद्धकला मे मोड़ का बिन्दु था। उन्होंने लिखा—"सर्वप्रथम, जो हथियार काम में लाये गये वे इतनी पूर्णता को प्राप्त कर चुके है कि आगे की सारी प्रगति...आगे के सारे सुधार रणभूमि की दृष्टि से बहुत कम महत्व के रह जाते हैं। इसलिए इस दिशा मे विकास का युग समाप्त हो चुका है। दूसरे, इस युद्ध ने सभी महाद्वीपीय शक्तियों को इस बात के लिए विवश कर दिया है कि कठोरता के साथ

1. वी. आई. लेनिन, सकलित रचनाएँ, खड 21, पृष्ठ 299
2. एफ. एंगेल्स, ड्यूरिंग मतखडन, पृष्ठ 200

प्रशा की सशस्त्र सैन्य प्रणाली अपनायी जाय और, इसके साथ ही सेना का ऐसा भार भी जो कुछ ही वर्षों में उनके विध्वंस का कारण बन जायगा।"[1]

वस्तुतः सन् 1914-18 के प्रथम विश्वयुद्ध ने यद्यपि युद्धरत घटकों से सारे आर्थिक संसाधनों को अभूतपूर्व आयामों में एकत्रित करने की माँग की, तथापि उनकी सशस्त्र सेनाएँ फ्रैंको-प्रशियन युद्धकाल की सेनाओं से कुछ मायनो में ही भिन्न थी तथा उनकी रणनीतियाँ व्यवहारतः अपरिवर्तित रहीं। सैन्य उपकरणों ने निस्सदेह एक कदम आगे बढाया, किंतु यह परिवर्तन गुणात्मक न होकर मात्र परिमाणात्मक ही अधिक था। यद्यपि सेनाओं के युद्धाभ्यास और बारूद शक्ति में कई गुना वृद्धि हुई, मूलतः नये किस्म के हथियारों—उदाहरण के लिए विषैली गैसों—की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नही रही। टैंक और विमानन युद्ध के अंतिम दिनों में ही दिखाई दिये। युद्ध मे फौजों की कार्रवाई अपेक्षाकृत तग अग्रिम-दस्ते के स्तर पर केंद्रित रहती थी जो देश की नागरिक आबादी से साफतौर पर अलग होती थी।

समय के परिवर्तन के साथ, हथियारों का और अधिक आधुनिकीकरण हो जाने से और खासतौर से विमानन के विकास के कारण युद्ध अपने मैदानी चरित्र को न्यूनाधिक खोने लगा। वायुक्षेत्रों के घने जाल, पर्वतीय मार्ग, रेडियो स्टेशन और सभी प्रकार के भीतरी और बाहरी सैन्य-प्रकृति के संचार साधनों की उपलब्धि मोर्चे के आगे और पीछे की पारंपरिक अवधारणा पर आघात करती है। और जब द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हुआ तो इसने मोर्चे से सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तक के लाखो लोगो को तत्काल अपनी खूनी भँवर में फँसाकर उनका खून चूस लिया।

सबसे पहले द्वितीय विश्वयुद्ध ने इस बात को ज़ाहिर किया कि गत दो दशकों में हथियारों के विकास में कितनी बड़ी तरक्की हुई। सेनाओं का यांत्रिकीकरण, तोपखाने की बारूद शक्ति मे वृद्धि, राकेट छोड़ने वाले तोपखाने का प्रकट होने और बैलिस्टिक और क्रूज़ प्रक्षेपास्त्रों के प्रथम नमूनों का दिखाई देने और वायुसेना के व्यापक उपयोग ने लाखो लोगो के लिए और भी बड़े संकट को पैदा कर दिया।

जब द्वितीय विश्वयुद्ध का अंत हुआ तब तक और भी भयकर जनसंहारक हथियार दुनिया की देहलीज़ पर प्रकट हो चुके थे। एटम बम के नाम से ज्ञात इस हथियार का विस्फोट युद्ध के आखिरी दिनों मे हिरोशिमा पर डाल कर किया गया था।

आणविक शस्त्रो तथा इनके छोड़ने के तरीकों के विकास ने युद्ध की पारंपरिक धारणा तथा उसकी प्रकृति मे आमूल चूल बदलाव ला दिया। आगे-पीछे की मोर्चा-बंदी, फ़ौज और नागरिक जनसख्या की प्रचलित धारणाएँ, रणनीतियों और

1. एफ एंगेल्स, पूर्वोक्त, पृष्ठ 204

कार्यनीतियों के साथ 'मैदानी युद्ध' आदि सब आणविक विस्फोटों में भस्म हो गये और अब सैनिक इतिहास के संग्रहालय में रखे जा सकते हैं।

प्रमुख अमरीकी समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री पॉल फ्रॉसर ने ठीक ही कहा है, कि आणविक प्रक्षेपास्त्र रूपी नये हथियार के उदय के साथ ही सैनिक उपकरणों का विकास एक निश्चित विकट रेखा के पार चला गया है। जो कोई देश आणविक-प्रक्षेपास्त्र की चपेट में आयेगा वह पृथ्वी की सतह से साफ़ हो जायेगा।

न केवल ताप-नाभिकीय युद्ध के परिणाम महत्वपूर्ण है, किंतु सैनिक क्रिया-कलाप का प्रभावित रास्ता भी है। यह कई दृष्टियों से आवश्यक हैं, जिसमें स्वभावतः नीतिगत उपकरण के रूप में आधुनिक युद्ध का मूल्यांकन भी शामिल है।

पश्चिम में, ढेरों साहित्य है जिसमें आणविक युद्ध के ख़तरों को चित्रित किया गया है। इसके निकृष्टतम मृत्यु-परक पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। एक बार छिड़ जाने पर यह सामाजिक जीवन को तत्काल विखंडित कर देगा, जिससे संचार साधन, यातायात और उत्पादन शून्य बिन्दु तक पहुँच जाएँगे। प्राचीन कालीन किलेबंदी का स्थान राडार चौकियाँ ले लेंगी जोकि समूचे क्षेत्र को घेर लेंगी। दबे-ढके आणविक मिसाइल छोडने वाले उपकरण उपयोग के लिए तैयार हैं, और कोई भी राष्ट्र नही जानता कि कौन कब उस पर हमला करने वाला है। सभी प्रक्षेपास्त्रों और प्रति-प्रक्षेपास्त्रों से, आक्रामक और प्रत्याक्रामक दोनों रूपों में हथियारबंद है। सैकड़ों किलोमीटर तक फैली हुई आबादियों पर रासायनिक-तकनीकी युद्ध लडे जाएँगे तथा उनकी आवाज पृथ्वी के लोगों तक नही पहुँच सकेगी। समय-समय पर एक आक्रमणकारी आणविक मिसाइल अपने लक्ष्य को चीरती हुई निकलेगी और तब चाहे लंदन हो, पेरिस हो या न्यू यॉर्क—वह धूल और धुएँ का विशाल गुब्बार बनते हुए बाहर किलोमीटर ऊपर हवा में उड़ जाएगा। अब कोई भी युद्ध विशारद संभवतः नही जान सकता कि मैदान मे और उससे ऊपर सीमा के आर-पार क्या हो रहा है, कौन रक्षात्मक है और कौन आक्रामक। युद्ध की अनवरत संकटमय हलचल जारी रहेगी जब तक कि अंतिम प्रयोगशाला छोटे-छोटे टुकड़ों मे नहीं उड़ा दी जाएगी इत्यादि। आणविक विभीषिका इस प्रकार के डरावने के चित्र जो अत्यधिक बारीकी से खींचे गए है— निस्संदेह आतंकपूर्ण प्रभाव पैदा करते है।

आणविक हथियारों के युग में वे युद्ध की सर्व-सत्यानाशी प्रकृति को रेखांकित करते हुए ये चित्रण इस विचार को भी उद्घाटित करते हैं कि समकालीन विकास के फलस्वरूप अस्त्र-शस्त्र मनुष्य के नियंत्रण से बाहर हो रहे है। भूतकाल मे कोई भी राजनीतिज्ञ और सेनानायक युद्ध मे जाकर, संभावित त्रुटिपूर्ण गणनाओं और

भूलों के बावजूद, इसके परिणामों का मूल्यांकन कर सकता था और सुनियोजित क्रियाकलापों के लिए मार्ग-दर्शन कर सकता था। वह हमेशा घटनाओं में हस्तक्षेप भी कर सकता था और यदि आवश्यक होता तो सैनिक कार्यवाहियों के जारी रहने को रोक सकता था। आधुनिक हथियार इस सबको एकदम कठिन या नितांत असभव भी बना देते हैं। किसी जिन को बोतल से बाहर निकाल दिया जाय तो वह स्वय अपनी ज़िन्दगी जीने लगता है। और यह अकारण नही था कि ब्रिटेन के भौतिकी वैज्ञानिक और चिंतक जॉन बर्नाल ने सही वक़्त पर चेतावनी दी कि एटम बम का विकास "या तो युद्ध के अंत के आरंभ को, या मानवता के अंत को चिह्नित करता है।"[1]

आणविक हथियारों के विषय में इतना ही काफ़ी है। उनका विकास कई दशकों से चल रहा है : उनकी विनाशक क्षमता लगातार तेज़ी से बढ रही है और बहुत से देशों के शस्त्रागार फिलहाल हथियारों के भयानक जख़ीरे बने हुए हैं। हथियारों की दौड को तत्काल नही रोका गया तो दुनिया के संभावित हालात की भविष्यवाणी कोई नही कर सकता।

इतना होने पर भी सैन्य-औद्योगिक समूह हठपूर्वक तथा हृदयहीनता के साथ अपनी आणविक-प्रक्षेपास्त्र क्षमता की वृद्धि को जारी रख रहा है, तथा अन्य जन-संहारक और विध्वसक साधनों की खोज मे लगा हुआ है। हथियारों की नित नई क़िस्मे और नए तरीके पैदा करने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है।

उस समय जबकि हिरोशिमा और नागासाकी विध्वंस की आग में जल ही रहे थे और आणविक बमबाजी के शिकार रेडियेशन की रुग्णता से मर ही रहे थे, फ़ासीसी जनरल चासिन एक नरभक्षी प्रस्ताव लेकर सामने आया। उसने लिखा—"आज तक, युद्ध लोगों के मारने का एक कमज़ोर साधन साबित हुआ है। यदि इस तड़ित-युद्ध मे तीन करोड़ रूसी लोग अपनी ज़िन्दगी खो भी बैठें—जिसकी सभावना की जाँच हम कर चुके हैं…तो भी अन्य पन्द्रह करोड़ बच जाएँगे और दस सालों मे उनकी जनसंख्या फिर पहले के स्तर पर पहुँच जाएगी। अब, यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि युद्ध का कोई ऐसा तरीका निकाला जाए जो इमारतो को नुकसान पहुँचाए बिना लोगों को मारना संभव बना दे, किन्तु फिर इसी के साथ इस बात की सभावना भी न रहे कि बचे हुए लोग उनका उपयोग कर सकें। निश्चय ही, इसका तरीका रेडियोधर्मी बादलो का उपयोग ही हो सकता है। निस्संदेह, वर्तमान में यह तरीका पूरी तरह विकसित नही हो सका है और, जो विशेष रूप से महत्वपूर्ण है वह यह कि, इसका प्रयोग बहुत व्ययसाध्य है। तो भी, इसके विषय में गंभीरता से सोचा जा रहा है।"[2]

1. जे० डी० बर्नाल, 'वर्ल्ड विदाउट ए वार' लदन, 1958, पृ० 7
2. जीन बॉमीयर के 'डे हिटलर ए ट्रू मैन' पेरिस, 1950, पृष्ठ 97 से उद्धृत।

सैन्य-औद्योगिक समूह के रणनीतिज्ञ जीवाणविक हथियार के विकास को बढाने के लिए भी बडे लालायित हो रहे है। सचमुच, सन् 1972 मे जीवाणविक (जीववैज्ञानिक) और जीवविषैले हथियारो के विकास, उत्पादन और भंडारण पर प्रतिबंध लगाने के निमित्त एक अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया और उसमे हस्ताक्षर लिये गए, और तब से इस पर सौ से अधिक देशो ने हस्ताक्षर कर दिये हैं। किन्तु पश्चिम मे बहुत से राजनैतिक सट्टेबाज अब भी जीववैज्ञानिक हथियारों के विकास पर ज़ोर देते है। हाल के वर्षो मे जीवशल्य के क्षेत्र मे सफलताओ के बाद ये समस्याएँ फिर से सार्वजनिक ध्यानाकर्षण की वस्तु बन गई है, जो अनेक ऐसी सभावनाएँ पैदा करती है जिनसे उत्पत्ति संबंधी विकास की असीम संभावनाएँ खुली है, और साथ ही यह संभावना प्रबल होती जाती है कि एक अवयव के जीस को दूसरे अवयव के सैल मे प्रत्यारोपित कर जीवाणु को 'पुनर्निमित' किया जाए।

वैज्ञानिको की माँग है कि इस क्षेत्र मे होने वाली शोध पर कड़ा नियंत्रण रखा जाए। पश्चिमी जर्मनी के पत्र 'स्टर्न' के वैज्ञानिक टिप्पणीकार अलरिक शिपक इस बात का स्मरण दिलाते है कि किस प्रकार जेनोआ के व्यापारियों द्वारा यूरोप मे अचानक प्लेग के कीटाणु ले आने से सन् 1348-1350 की महामारी तेज़ी से फैल गई और उसने सारे महाद्वीप को द्वितीय विश्व युद्ध से भी अधिक विनाश की चपेट मे ले लिया। उनकी टिप्पणी के अनुसार—"शोधकर्त्ता इस मनहूस संभाव्यता से अधिकाधिक घबरा रहे है कि वे स्वय परख नली में जीवाणु के निर्माण के जरिए सारी दुनिया में छूत फैलाकर उसे नष्ट करने का निमित्त बन सकेंगे। मनुष्य को परेशान करने वाले एक सौ साठ विभिन्न प्रकार के जीवाणु ऐसे हैं जिनका परिणाम रोग और मृत्यु होता है। हाल ही मे वैज्ञानिक नये कीटाणुओ को सयुक्त करने की स्थिति मे भी आ गए है जिनको उन्होने स्वय ने अदृश्य सूक्ष्म जीवित अवयवो की इस विविधता मे पैदा कर दिया है। वे जीस के साथ परि-चालित कर उन्हे सुधारते है और इस प्रकार जीवित कृत्रिम अवयवो को प्राप्त करते हैं…। इसके प्रतिफल के रूप मे जो वस्तु अस्तित्व मे आती है, वह इतनी नई है कि वैज्ञानिक स्वयं इसके विषय मे भविष्यवाणी करने में असमर्थ है कि वे क्या बनाएँगे।"[1]

अब हम जिस स्थिति मे हैं वह बड़ी विचित्र है: प्रकृति के ऊपर आदमी की जितनी बड़ी शक्ति है, वह अपने हित में उसका उपयोग करने में उतना ही अधिक असमर्थ है। इसे सिद्ध करने के लिए अनेक उदाहरणों में से एक उदाहरण दिया जा रहा है। बहुत वर्षो से विश्व स्वास्थ्य संगठन चेचक से लड़ता आया है और अब

1. 'स्टर्न', दिसम्बर 1970, पृष्ठ 59-60

इसके प्रयास लगभग उन्हें सफलता का सेहरा पहनाने को है। सन् 1976 की वसंत मे दुनिया भर में केवल चेचक के 13 रोगियों के मामले दर्ज किए गए थे, जबकि औषधियों के आविष्कार से पूर्व इस छूत की बीमारी से लाखो की जिन्दगी नष्ट हो जाती थी। ये सब रोगग्रस्त इथोपिया के पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं। यदि और कोई मामले दर्ज नही किए गए तो सन् 1978 मे विश्व स्वास्थ्य संगठन यह घोषणा कर देगा कि दुनिया भर में चेचक का पूर्ण उन्मूलन हो गया। यह विज्ञान की महान विजय है।

किन्तु आज जब बहुत से देशों के डाक्टरो के पास उपयोगार्थ टीके की दवाइयाँ और सर्वाधिक आधुनिक तकनीकी साधन है—जिनमें हैलिकॉप्टर, देश पार के वाहन—और साथ ले जाए जा सकने वाले रेडियो आदि के साधन है—तथा वे इथोपिया के पहाड़ो मे चेचक से लड़ रहे हैं (बहुत से विशेषज्ञों का विश्वास है कि वह इस रोग का पालना है), उधर पश्चिम में प्रयोगशालाएँ कृत्रित रूप से अब अधिक भयंकर कीटाणुओं को करोड़ो लोगों को मारने के लिए तैयार कर रही है। क्या यह हमारे युग का विरोधाभास नही है?

जबकि कुछ वैज्ञानिक भयंकर कीटाणुओं और सैन्यवाद के बीच के अशुभ सह-मेल के विरुद्ध चेतावनी दे रहे हैं, पश्चिम में ऐसे वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ है जो फ़िलहाल इसके संभावित लाभों का मूल्याकन कर रहे हैं। लॉर्ड रिची-काल्डर, जो हथियारबंदी में ब्रिटेन के विशेषज्ञ हैं, का विश्वास है कि बहुत-सी बातो में छूतरोग एटम बम की अपेक्षा अधिक वांछनीय होगा। क्योंकि मौतों की संख्या की दृष्टि से यह आणविक हमले की आसानी से बराबरी कर सकता है और इसमे खर्च भी कम होता है।

पश्चिमी अनुमानों के अनुसार लगभग 2500 करोड़ डालर हथियारों के शोधकार्य पर प्रतिवर्ष खर्च किए जाते है तथा उक्त कार्य मे 400,000 इंजीनियर और शोधकर्त्ता लगे हुए है।[1] और, निस्संदेह ये विशाल प्रयत्न शुद्ध मानवीयता को दृष्टिगत रखकर नही किए जा रहे।

पश्चिमी राजनीतिज्ञों द्वारा वास्तविक या सभाव्य शत्रु को हानि पहुँचाने के निमित्त पर्यावरण को कृत्रिम रूप से प्रभावित करने की व्यक्त संभावना को केवल वैज्ञानिक परिकल्पना मात्र नही समझा जा सकता। 'मौसम विज्ञान जन्य युद्ध' के विषय में चर्चा है, दुश्मन पर आक्रमण करने के साधनों के विकास के रूप में कृत्रिम भूकंपों, समुद्री तूफ़ानो, बवंडरों और विनाश तरगो आदि पर काम हो रहे हैं। और अंटार्कटिका और ग्रीनलैंड में बर्फ़ के घनत्वों की भारात्मक अस्थिरता पर नजर है

1. नि शस्त्रीकरण या विनाश? शस्त्रीकरण और निःशस्त्रीकरण, स्टॉकहोम अतर्राष्ट्रीय शाति शोध सस्थान, स्टॉकहोम, 1975, पृष्ठ 8

कि यदि उनको पिघला दिया जाय, चाहे अंशतः ही सही, व गतिशील कर दिया जाय और महासागर में धकेल दिया जाय तो दुश्मन की सीमा एक भयानक बाढ की चपेट मे आ जाएगी। दरअसल, समकालीन हथियारो की दौड़ मे संलग्न उन्मत्तों की मनोकल्पनाओं की कोई सीमा नही है।

विज्ञान एवं प्रविधि द्वारा सभव बनाए गए अवसरों के अपराधपूर्ण दुरुपयोग के अतिरिक्त जनसंहार की समस्त प्रायोजनाओ का एक सामान्य लक्षण है जो उनकी मुख्य कमजोरी भी है : वे सब सभ्यता को विनाश तथा मानवता को विध्वंस की ओर ले जाएँगे, बजाय किसी राजनीतिक उद्देश्यो की प्राप्ति के। जनसंहार के हथियारों के नए प्रकार और नई प्रणालियाँ, विश्वव्यापी और अनियंत्रित जनसंहार के हथियार (दोनों प्रकार से—सीधे परिणामों की दृष्टि से और विशेषतया उनके निष्कर्षों के दृष्टिकोण से) आवणिक युद्ध की तुलना मे चाहे मात्रा में उससे भी अधिक घातक क्यो न हों—विदेश नीति के महत्वपूर्ण यंत्र नही रह गए है। नीति के अस्त्र के रूप मे हटकर वे विनाश के साधनो मे बदल रहे हैं।

पश्चिम में यथार्थवादी विचारो के लोग इस स्पष्ट निष्कर्ष की अपेक्षा नही कर सकते। स्वयं जनरल डगलस मैकार्थर जिन्हें अन्य किसी अमरीकी सैन्य कमाडर की तुलना में जापान पर गिराए गए परमाणु बम के नतीजों को देखने का अधिक उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ था, ने संयुक्त राज्य अमरीका की सेनेट को बताया—"महानुभावो, मैं आपको बताता हूँ कि इसने उन मूलभूत धारणाओ को ही अवैध घोषित कर दिया जिनके आधार पर युद्ध को अतिम आदेश के रूप मे अपनाया जाता था, जब अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों का निपटारा करने मे राजनीति असफल हो जाती थी। अब उसकी असफलता इसमें अंतर्निहित हो गई है।"[1]

निस्संदेह, यह कहा जा सकता है कि सामान्य समझ सैनिक जुओं के विरुद्ध कभी भी पर्याप्त प्रभावकारी गारंटी नही रही। और यह सच भी होगा, किंतु यह भी सत्य है कि कोई भी राजनीतिज्ञ, जो वस्तुगत तथ्यों को स्वीकार करता है, ताप-नाभिकीय महाविपत्ति के आतंक की उपेक्षा नही कर सकता।

इससे यह नतीजा निकलता है कि जब हथियारों का विकास एक निश्चित स्तर मे ऊपर उठता है तो राजनैतिक स्थिति तदनुकूल परिवर्तित हो जाती है। विज्ञान एवं प्रविधि के वस्तुगत विकास की दृष्टि से एक समय आता है जब मानवता के सामने युद्ध के विरुद्ध युद्ध की अनिर्वार्यता पेश आती है। व्यवहार मे ऐतिहासिक मच पर यह नई स्थिति तब पैदा हुई जब सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका एक 'आणविक गतिरोध' की अवस्था में पहुँच गए, यद्यपि सिद्धांततः

1. सुदूर पूर्व मे सेना की स्थिति, 'विदेशी सबधो पर समिति के सामने सुनवाइयाँ', सं० रा० सीनेट, 82 कांग्रेस, प्रथम सत्र, भाग 1, वाशिंगटन, 1951, पृष्ठ 148

यह संभावना काफी पहले सामने आ चुकी थी।

क्लॉजविट्ज ने पहले ही इसे संभव मान लिया था कि हथियारों की विनाशात्मक शक्ति के बढने के फलस्वरूप राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति और युद्ध छेड़ने के साधनों के बीच अंततः दरार दिखाई देगी। उन्होंने लिखा—"यदि युद्ध राजनीति का एक भाग है, तो परिणामतः यह उसके गुण-धर्म को भी ग्रहण करेगा। राजनीति की महिमा एवं शक्ति मे वृद्धि के साथ युद्ध भी उसी पथ का अनुसरण करता है; और यह वृद्धि उस ऊँचाई तक पहुँच सकती है जब युद्ध की छवि निरंकुश बन जाय।"[1] दूसरे शब्दों में, युद्ध अपने ही नियमो के अनुसार जीना शुरू कर देता है राजनीतिक सीमाओं मे जिसकी संगति नही बैठती।

अपने संस्मरणो में नादेज्दा क्रुप्सकाया ने लेनिन के इस सुप्रसिद्ध वक्तव्य को उद्धृत किया है—"आज आधुनिक उपकरण तेजी के साथ युद्ध के विनाशात्मक चरित्र को बढाते हैं। लेकिन एक समय आयेगा जब युद्ध असंभव हो जायेगा।"[2] वर्तमान पीढ़ियाँ इस काल के उस बिंदु तक पहुँच चुकी हैं या अभी पहुँच रही हैं, यह बहुत महत्वपूर्ण नही है। यह अभी से स्पष्ट है कि जन-विध्वस के आधुनिक साधनों (जो संख्या मे तेजी से बढ़ रहे है और लगातार जिन्हे पूर्णता तक पहुँचाया जा रहा है) ने मानव के सामने यह विकल्प रख दिया है या तो शातिपूर्ण सहअस्तित्व या आत्मविध्वंस।

फिर भी, जो विशेष महत्वपूर्ण है वह यह कि हमारे समय में यह सिद्धात अब कोई अमूर्त नैतिक श्रेणी का विचार नही रहा, किंतु समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधो का निर्माण करने वाले राजनैतिक तथ्यों में उसका महत्व बढ़ता जा रहा है। ये हालात बड़ी मात्रा में मौजूदा दुनिया के जनमत को निर्धारित करते है, शाति के लिए संघर्ष मे व्यापक जनप्रयासों को प्रेरित करते है और बहुत से पश्चिमी राजनीतिज्ञ भी औपचारिक रूप से शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति के समर्थन मे एक बड़ी दलील के रूप में इसे स्वीकार करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के भूतपूर्व विदेश मंत्री हेनरी किसिंगर ने कहा—"रणनीतिक आणविक संतुलन के युग मे—जब दोनो पक्ष सभ्य जीवन को बरबाद करने की क्षमता रखते है, तो सह अस्तित्व का कोई विकल्प ही नही है। ऐसी स्थितियों में शाति की आवश्यकता अपने आप में एक नैतिक आदेश है।"[3] और जैसाकि अमरीकी राष्ट्रपति जॉन कैनेडी ने इसे व्यक्त किया था कि अंतिम निष्कर्ष के रूप मे जो सूत्र हमें सबको जोड़ता है वह यह

---

1. वॉम क्रीज, हिंटरलेंस वर्क इस जनरल्स कार्ल वॉन क्लॉजबिट्ज, एलटिंट इकं डब्लू वॉन डोर्फ, ड्रेस्डन' 1885' पृ. 567
2. एन के क्रुप्सकाया, लेनिन के सबंध मे' मॉस्को' 1960' पृ० 40 41 (रूसी भाषा मे)
3 द न्यूयॉर्क टाइम्स, जुलाई 16, 1975

है कि हम सब इस छोटे से ग्रह के निवासी हैं। हम सब एक ही हवा में सांस लेते हैं। हम सबको अपने बच्चों के भविष्य की चिंता है। और हम सब मरणशील है।

सभी अमरीकी प्रतिनिधियों के सोचने का तरीका यही नही था। एक ऐसा समय था कि वे अपनी आणविक इजारेदारी का उपयोग सोवियत संघ को डराने के इरादे से करते थे और समूची दुनिया पर अपने आधिपत्य के दभ को 'न्याय सगत' करार देते थे। समाजवाद को शक्ति के इस असतुलन को ठीक करना पडा। यह तब हुआ जब सोवियत सघ ने अपने स्वयं के आणविक और हाइड्रोजन हथियारों का विकास कर लिया। साधनों के रूपानतरण और इसके फलस्वरूप युद्ध के चरित्र ने भी अतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के प्रयासों को भी संशोधित किया।

शान्तिकामी शक्तियों के पक्ष में : तनाव-शैथिल्य को दृढ समर्थन

महत्वपूर्ण होते हुए भी यह तथ्य अपने आप इस मुद्दे को समाप्त नही कर देता। लोगों के जीवन से युद्ध का निष्कासन बहुत बडे प्रयासों की माँग करता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना आवश्यक है जहाँ उन शक्तियों की बात मे दम हो, और उन्ही की चले भी जो तात्कालिक मुद्दों के शातिपूर्ण समाधान के लिए प्रयत्नशील हैं और वैसा करने की योग्यता भी रखती है।

कम्युनिस्टों को पक्का भरोसा है कि ऐसा समय आयेगा जब दास-स्वामित्व प्रणाली व्यवस्था की भाँति युद्ध भी अतिजीवित रहकर समाप्त हो जाएँगे। तब और अधिक युद्ध नही होंगे। यह आस्था दुनिया के विकास की कम्युनिस्ट संभावना से पैदा होती है, जिसके लक्षण वर्तमान युग मे स्पष्टतया दिखाई देने लगे है—आज की ठोस वास्तविकताओं के रूप में।

दरअसल, आज उन देशों—जहाँ मजदूर वर्ग के हाथ में सत्ता है, और जो युद्ध की पहल क़तई नही करते—की अंतर्राष्ट्रीय मामलों मे दृढ़ भूमिका लगातार तेजी से बढ रही है। उनके कार्य व्यापार का अर्थ एवं अतर्वस्तु, सामाजिक, आर्थिक सैद्धातिक तथा अन्य लक्ष्यों का समुच्चय—उन्होंने यह सब युद्ध के लिए नही, बल्कि शाति के अनिवार्य आह्वान के लिए व्यवस्थित किया है। अपने प्रयासों को केवल रचनात्मक कामों पर ही केंद्रित करते हुए, समाजवादी देशों ने शाति के लिए मजदूर वर्ग के सघर्ष के इतिहास मे एक नये बुनियादी अध्याय की शुरुआत कर दी है। और आज यह मात्र मानवीय लक्ष्य ही नही है, किंतु समाज की वस्तुगत ऐतिहासिक आवश्यकता भी है। इतिहास में पहली बार पूर्णतया एक परिस्थिति का विकास हो चुका है जिसके तहत दूसरे लोगों के खिलाफ़ आक्रमण हमेशा के लिए प्रतिबंधित किया जा चुका है, तथा बहुसख्यक राज्यों के राजनीतिक शस्त्रागार से निष्कासित किया जा चुका है—उन देशों की आंतरिक व्यवस्थाओं तथा उनके विकास के वस्तुगत नियमों के अनुरूप।

समाजवादी समुदाय और इसकी घरेलू और विदेशी नीतियाँ दुनिया भर की नैतिक और राजनैतिक स्थिति पर अपना असर बढ़ाती चली जा रही है। समाजवाद ने राजनैतिक संघर्ष के सामने ऐसे ज्वलंत मुद्दे पेश किये है जैसे कि शोषण की समाप्ति और सब प्रकार के शोषण तथा राष्ट्रीय दमन का उन्मूलन, असली जनतंत्र की प्राप्ति और व्यक्ति की स्वतंत्रता की उपलब्धि, तथा मानव की भलाई के लिए विज्ञान और प्रविधि की उपलब्धियो का उपयोग। ये मुद्दे आधुनिक पीढ़ियो की ऐतिहासिक प्रगति के लिए केंद्रीय महत्व के है। फिर भी, समाजवाद ने व्यवहार में उतारकर दिखा दिया है कि इन कामों को कैसे पूरा किया जा सकता है।

सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों ने यह प्रस्तावित किया है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को सुसंगत जनतात्रिक सिद्धांतों के आधार पर टिका हुआ होना चाहिए। उन्होने व्यवहार मे यह दिखा दिया है कि शांति को मजबूत करने के लिए क्या किया जाना है तथा उनकी सुरक्षा और जनगण के सहयोग को कैसे प्रबल बनाया जाना है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस मे रखी गयी केंद्रीय समिति की रिपोर्ट मे महासचिव एल० आई० ब्रेझनेव ने इस बात पर जोर देते हुए कहा—"आज समाजवाद दुनिया भर के अरबों लोगों के विचार और उनकी भावना पर जबरदस्त प्रभाव डाल रहा है। यह श्रमिक लोगों को उनकी स्वतंत्रता उनके सच्चे जनतांत्रिक अधिकार, उनका कल्याण, व्यापकतम संभव ज्ञान और सुरक्षा की एक सुदृढ़ चेतना को प्रदान करने का भरोसा दिलाता है। यह शांति सभी देशों की सर्वसत्ता के प्रति सम्मान की भावना और समान, अंतर्राज्यीय सहयोग को जन्म देता है अपनी स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता के लिए संघर्ष मे जनगण की सहायता में स्तंभ की भूमिका अदा है। निकट भविष्य में समाजवाद की असीम क्षमताओं एवं संभावनाओं का निस्संदेह रूप से उदय होगा जो पूँजीवाद की तुलना मे उसकी ऐतिहासिक श्रेष्ठता को प्रमाणित कर देंगी।[1]

पूँजीवाद पर समाजवादी ताकतों की बढती हुई प्रबलता, और विश्वक्रांतिकारी प्रक्रिया का तेज्ञ विकास समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति को रूपांतरित कर रहे हैं। यह तथ्य सामाजिक-वर्गीय प्रेरणाओं के मजबूत होने, जनसमूह की भूमिका के उच्चतर होने में तथा जनसमूह की सामान्य जनतात्रिक लक्ष्यों की ओर अभिमुखता में अभिव्यक्त होता है, तथा साथ ही सामान्य जनतात्रिक लक्ष्यों व मुक्ति संघर्ष के लक्ष्यों, जोकि अंतर्राष्ट्रीय फ़लक पर श्रमिक वर्ग के लिए चुनौती बने हुए हैं, मे भी व्यक्त होता है।

इजारेदार पूँजीवादी शासन के युग मे जो अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष पैदा हुए, पूँजीवाद के विभिन्न राष्ट्रीय दलों की ताकत के आधार पर ही उनका हल हो पाया।

1 दस्तावेज और प्रस्ताव, सोसकपा की 25वीं कांग्रेस, मॉस्को, 1976, पृ० 14

और वह भी साम्राज्यवादी के आपसी अंतर्विरोधो की सीमाओं में आज दो व्यवस्थाओं के संघर्ष की स्थिति में तथा मुक्ति आंदोलन की मुख्यधारा मे विकसित ये अंतर्विरोध एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक-वर्गीय अतर्वस्तु को ग्रहण कर रहे हैं। समकालीन अंतर्राष्ट्रीय सबंधो के क्षेत्र मे उत्पन्न संकटों के काल मे न केवल एक दूसरे राज्य के हित आपस मे टकराते है। (यद्यपि स्वभावत. उन्हें नकारा नही जा सकता), किंतु अनिवार्यत: प्रगतिशील विश्व शक्तियाँ और प्रतिगामी ताक़तें भी टकराती है। यह महत्वपूर्ण प्रश्न यह ही नही कि शोषक आपस मे स्थान बदल रहे हैं बल्कि शोषण की प्रणाली की स्थितियों को ही बचाने का प्रयन्न कर रहे हैं। साधारणतया यह केवल किसी एक या दूसरे राष्ट्र की आज़ादी का ही प्रश्न नही है, अपितु सामाजिक प्रगति की सभावना का सवाल भी है।

विगत दशको का सबसे बडा सशस्त्र सघर्ष वियतनाम की लड़ाई का था जो एक विचारणीय बिंदु है। वे कौन-सी शक्तियाँ थीं जो वहाँ एक-दूसरे के आमने-सामने थी और उनके उद्देश्य क्या थे? वास्तव मे दुनिया की प्रतिगामी शक्तियों और प्रगतिशील ताकतों के बीच के एक ऐतिहासिक सघर्ष का दृश्य हिन्द चीन मे घटित हुआ, यह उपनिवेशवाद और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के बीच का सघर्ष था और यह पूँजीवाद और समाजवाद के बीच का संघर्ष था। वियतनामी लोग अपनी राष्ट्रीय मुक्ति के लिए लड़े तथा वे अपनी चुनी हुई समाजवादी प्रणाली के लिए लड़े। वियतनाम की मजदूर पार्टी की केंद्रीय समिति के प्रथम सचिव ले दुआन ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस मे कहा—"हमारी पार्टी ने दो झंडों को ऊँचा उठाया, एक राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति का झडा और दूसरा समाजवादी क्राति का झंडा, तथा हमारी सारी जनता को सघर्ष मे उतारने के लिए राष्ट्रीय आज़ादी के आंदोलन को समाजवादी शक्ति के साथ एक प्रवाह के रूप मे संयुक्त कर दिया। इसने राष्ट्र की शक्तियों को हमारे समय की क्रांतिकारी शक्तियों के साथ जोड़ दिया, आंतरिक शक्तियों को अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों के साथ जोड़ दिया और दुश्मनों की क़तारों के विभिन्न अंतर्विरोधों का लाभ उठाया। इस प्रकार आक्रामक के ऊपर विजय हासिल करने के लिए एक विशाल संगठित शक्ति पैदा कर दी।"[1]

दक्षिण-पूर्व एशिया मे जहाँ संयुक्त राज्य अमरीका और उसके दोस्तों ने वियतनामी लोगो को समाजवादी उपलब्धियों को छोड़ने के लिए मजबूर करने की कोशिश की थी, जबकि मध्य-पूर्व मे साम्राज्यवाद अरब देशों के प्रगतिशील शासनों को समाप्त करना चाहता है; अंगोला में जहाँ प्रतिक्रियावाद ने उस नव गणतंत्र के आतरिक मामलो में एक सशस्त्र हस्तक्षेप किया, और इसी तरह बहुत से दूसरे

1. 'हमारे दोस्त कहते हैं', मॉस्को, 1976, पृ० 20

अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष जो हमारे समय मे हो रहे हैं तथा जिनमे कोई भी व्यक्ति सामाजिक-वर्गीय संघर्ष की उस अंतर्वस्तु को महसूस कर सकता है जो ठोस स्थितियों के मुताबिक विभिन्न रूपों में व्यक्त होती हैं।

इसका अर्थ यह है कि अतर्राष्ट्रीय विरोधों की गाँठें और भी अधिक उलझ रही है, बाहरी हस्तक्षेप का जनप्रतिरोध बढ रहा है और इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय पारस्परिक विरोधों को हल करने के लिए सैनिक उपकरण जो सामाजिक विरोधों से गुँथे हुए होते है, कम-से-कम उपयोग योग्य बनते जा रहे है।

वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की वर्गीय प्रकृति की ताजा तुष्टि तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया मे मिलती है। समाजवाद के पक्ष मे शक्ति संतुलन को और अधिक बदल जाने के परिणामस्वरूप, अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य विश्व की सामाजिक प्रगति का परिणाम भी है और भावी विकास के लिए प्रेरणादायक तत्त्व भी। आवश्यकरूप से इसका मतलब यथास्थिति के बना रहना नही है और न यह क्रांतिकारी संघर्ष को बाधा नही पहुँचा सकता, जैसा कि कई बार जोर देकर कहा जाता है, किंतु इसके विपरीत इसका अर्थ राजनीतिक और सामाजिक प्रगति की व्यापक संभावनाओं के द्वार खोलना है। यह निर्विवाद है कि तनाव-शैथिल्य के विरोधी, वस्तुगत स्थिति को अनदेखा करके, इस पर स्वयं की व्याख्या थोपने के प्रयास करते है कुछ इस बात पर आमादा हैं कि वे इसे 'क्रेमलिन चाल' की संज्ञा दें, एक ऐसी 'एकमार्गी सड़क' कहे जिस पर चलने वाले लोग एकमात्र समाजवाद की ओर ही अग्रसर होते हैं, आदि।

विश्व की प्रगतिशील शक्तियाँ अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य को अच्छे-पड़ौसी-संबंधों को स्थापित करने के शक्तिशाली साधन और आपसी विश्वास और समझ को मजबूत करने के उपाय के रूप में मानती हैं। इस दिशा में यूरोप मे सुरक्षा और सहयोग के विषय पर आयोजित हेलसिंकी सम्मेलन के सर्वसम्मत समझौते इस दिशा मे महत्वपूर्ण कदम है। तनाव-शैथिल्य की गतिशीलता विभिन्न कारकों के कारण हर जगह एक जैसी नही है। किंतु हर बात इसके सकारात्मक नतीजो को सुरक्षित रखने और गुणात्मक वृद्धि को मद्दे नजर रखते हुए की जानी चाहिए। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के महासचिव लियोनिद ब्रेझनेव ने कहा—"हम सब जानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य को प्राप्त करने मे बहुत बड़े प्रयत्न करने पड़े हैं। इसी तरह तनाव-शैथिल्य की संचित पूँजी को सुरक्षित रखना भी आसान नही है। किंतु कोई भी कठिनाई, कोई भी बाधा हमे वापिस लौटने को मजबूर नही कर सकती। शांति को शाश्वत और अविनाशी बनाने के लिए किए गये काम की तुलना में कोई भी अन्य कार्य अनिवार्य, आवश्यक और महान् नही हो सकता।"[1]

1. प्राव्दा, 19 जनवरी 1977

शाति दरअसल अविभाज्य है और अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य इसे मजबूत करता है। इस विषय में पूंजीवादी सिद्धातकारों द्वारा अटकलबाजी के लिए कोई स्थान नहीं है। तथ्य स्वय बोल रहे है।

यूरोप मे यह सभी को ज्ञात है कि, अतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य की स्थिति मे ही समाजवादी देशो ने अपनी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को और अधिक मजबूत किया, जर्मन जनवादी गणतन्त्र—जर्मनी की भूमि पर दुनिया के प्रथम मजदूरों और किसानों के राज्य ने—अंतर्राष्ट्रीय कानून मे मान्यता प्राप्त की, ग्रीस मे काले कर्नलों का किला ढह गया, पुर्तगाल मे फ़ासिज्म को शिकस्त दी गयी, सेना ने चारो ओर राजनैतिक परिवर्तन की एक नयी तूफ़ानी लहर चल पडी, और प्रगतिशील ताकतो ने फ्रास, इटली व अन्य देशों मे नयी व बडी जीतें हासिल की।

स्वभावतः यह कोई निरा सयोग ही नही था कि तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया का उदय हुआ और यूरोप मे ही इसका विकास हुआ, जो कि अतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट आदोलन का पालना तथा समाजवाद का जन्मस्थान रहा है। दो विश्वयुद्धो की त्रासदी से उबरकर और फ़ासिज्म के मुकाबले विजय हासिल करके यूरोप के लोग म्यूनिख् समझौतावादियो की समर्पणवादी नीति को नही भूल सकते, तथा हमेशा ओरेड्योर और कोवेन्ट्री, बूकेनवाल्ड और ओस्विसिम को सदा याद रखेंगे।

यही नही, यूरोपीय राज्य—अन्य महाद्वीपो के किसी भी देश की तुलना मे दुनिया के बाकी भागों से जिनके हज़ारों आर्थिक, व्यापारिक, राजनैतिक और सास्कृतिक संपर्क है—वे इस ग्रह पर होने वाले परिवर्तनों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले पहले राज्य है।

एशिया मे यह तनाव-शैथिल्य के युग मे ही हुआ कि वियतनामी लोगो ने अपनी मातृभूमि की संपूर्ण स्वाधीनता और उसके एकीकरण के संघर्ष मे निर्णायक जीत हासिल की। लाओस के लोक जनतात्रिक गणराज्य और जनवादी कपूचिया का निर्माण किया गया।

अफ्रीका मे तनावशैथिल्य के युग में ही इस महाद्वीप मे औपनिवेशिक साम्राज्यों के अंतिम अवशेष समाप्त हुए तथा नये स्वाधीन राज्यों का समूह—अंगोला, मोजाबिक और गिनी-बिसाऊ—अस्तित्व मे आया।

सभी महाद्वीपो से, हर जगह, तनाव-शैथिल्य सामाजिक प्रगति के साथ-साथ चलता है। आधुनिक यथार्थ के दोनो तत्व बहुधा एक-दूसरे की परिपूर्ति करते है और उनको सुदृढ करते है।

एक जमाना था जब कई सदियों तक अंतर्राष्ट्रीय सघर्ष प्रायः स्थानीय महत्व के हुआ करते थे तथा तीसरे देशों के हितों को ये सीधे तौर पर प्रभावित नहीं करते थे। इस परिस्थिति ने अनेक 'पृथकतावादी' नीतियो को बढावा दिया और बहुत से

मामलो मे तीसरे देशों के विरोधों का लाभ उठाने का तथा उनमे झगडा कराने का लालच प्रस्तुत किया। आज कोई भी अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति वास्तव में पृथक नही हो सकती, और कोई भी विस्फोटक संघर्ष विश्वयुद्ध की धमकी से कम नही माना जाता।

दोनो विश्वयुद्ध इस बात के चौकाने वाले प्रमाण हैं। तब से अंतर्राष्ट्रीय संबंधो के बढते हुए दायरे, और सबमे बढ़कर, सत्यानाश करने वाले विश्वव्यापी ताप-नाभिकीय युद्ध के आतंक ने देशों तथा जनगणो की पारस्परिक निर्भरता को वस्तुगत रूप से गहनतर बना दिया है। वस्तुतः सभी देशों की विदेशनीतियाँ पारस्परिक हितो और विरोधों के अविभाज्य समुच्चय का निर्माण करती हैं।

आज कोई भी विरोध या संघर्ष अनिवार्यतः विश्वनीति के अन्य स्नायु केंद्रों को प्रभावित करता है। कोई यदि सोवियत संघ और अमरीका के बीच के सशस्त्र सघर्ष की कल्पना करता हुआ उसे 'दो चीतो' की लड़ाई कहे, जैसाकि राजनैतिक लोक कथा में कहा गया है, जिसमें एक बाहरी दर्शक पहाड़ की चोटी पर बैठा हुआ सुरक्षित रूप से युद्ध को देखता दिखाया गया है, तो ऐसा करना यथार्थ की अपनी समस्त समझ एवं चेतना को खोना होगा। यह मानना अधिक तर्कसंगत होता कि यदि आक्रामक तीसरे विश्वयुद्ध को भड़काने की कोशिश में सफल हो गये तो उसे किन्ही निश्चित सीमाओं के भीतर सीमित रखना असंभव होगा।

'आक्रमण को मोड़ देना', 'सीमित सशस्त्र संघर्ष' और 'स्थानीय युद्ध' जैसी धारणाएँ भूतकाल के गर्भ मे जा रही हैं, वापस कभी नही आएँगी। वास्तव में, अब यह अधिक आसान है कि तलवार को वापस म्यान में डालने की बजाय उसे क़लम की जगह रख दिया जाए। और जॉन फुलर की यह चेतावनी निर्विवाद रूप से तर्कसंगत थी—"बुराई बुराई को पैदा करती है, और यदि तुम सैमसन की तरह अंधे हो जबकि तुम अपने दुश्मन के घर के खंभों को नीचे गिरा देते हो, तो इसके खंडहर तुम्हे कुचल देंगे।"[1] जब हर वस्तु इस तरह आपस मे जुड़ी हुई है कि केवल एक ही चिनगारी सारे विश्व को जलाकर महा अग्निकुंड मे बदल देगी—ऐसी स्थिति मे केवल विश्वशांति ही लोगों की असली सुरक्षा गारंटी हो सकती है।

विश्व राजनीति के अग्रिम मोर्चे पर जन शक्तियों का उभार

इन परिवर्तनो का कारण और तदनुरूप परिणाम, वह बढ़ी हुई भूमिका है जो विशाल जनसमूहो के द्वारा अदा की जाती है। पहले शोषक देशों का विशिष्ट शासक वर्ग जनसमुदाय के बिखराव और उसकी राजनीतिक अज्ञानता का उपयोग, उनकी पीठ के पीछे से बहुत से अंतर्राष्ट्रीय सवालो का समाधान निकालने और उन पर अपनी इच्छा लादने के लिए किया करता था। आज इस प्रकार के किसी

1. जे. एफ. सी. फुलर, 'द्वितीय विश्व युद्ध' 1939-45, लंदन, 1948 पृष्ठ 412

उपाय को अपनाना एक कालदोष कहलाता है। सोवियत गणतंत्र पहला देश था जिसने उस गोपनीयता को तोड दिया जो कभी विदेश नीति को घेरे हुए होती थी। इसने जार सरकार द्वारा की गयी गुप्त संधियों को सार्वजनिक रूप से प्रकट कर दिया और ऐसी कूटनीति को जन्म दिया जो सोवियत लोगों और विश्व के जनगणों दोनों के लिए खुले रूप से जाहिर हो। शांति संबंधी आज्ञप्ति के वादविवाद को समेटते हुए लेनिन ने कहा था "हम किसी प्रकार की रहस्यात्मकता नही चाहते। हम ऐसी सरकार चाहते हैं जो हमेशा अपने देश के जनमत के सीधे निरीक्षण मे काम करे।"[1] यह गुप्त कूटनीति पर उसको तोडने वाली चोट थी। विदेशनीति, पेशेवर विशिष्ट वर्ग के संकीर्ण दायरे का क्षेत्र नही रही। राष्ट्राध्यक्षीय पहलों और मंत्रियों के दफ्तरो से पैदा होने वाली नीतियाँ सडकों पर आ गईं, इन्होंने नए आयाम ग्रहण किए और वे सब लोगों के सरोकार बन गईं।

आज करोड़ों श्रमिक लोग न केवल राजनैतिक मामलो पर अपना प्रभाव डालना चाहते हैं, अपितु कारगर ढंग से प्रभाव डालने में समर्थ भी है। 8 नवम्बर सन् 1917 को शाति के विषय मे प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में लेनिन ने कहा—"हमे ···जनगण को युद्ध और शांति के प्रश्नों पर हस्तक्षेप करने देने के लिए उनकी मदद करनी पड़ेगी।"[2] आज यह उद्देश्य एक यथार्थ बन चुका है, तथा इसने अन्य मामलों के अतिरिक्त हाल के वर्षों मे शाति आदोलन द्वारा अर्जित दायरे में अभिव्यक्ति पाई है।

इस आदोलन का इतिहास स्वयं इस तथ्य को उजागर करता है। युद्धोत्तर शातिनायकों का आंदोलन एक ऐसी विशाल हलचल के परिणामस्वरूप पैदा हुआ था जिसके दौरान आणविक शस्त्रों पर प्रतिबंध लगाने के आह्वान की स्टॉकहोम अपील पर पचास करोड़ लोगों ने हस्ताक्षर किए थे। औपचारिक रूप से यह आंदोलन अप्रेल 1949 मे पेरिस मे आयोजित काग्रेस मे शुरू हुआ था। शाति योद्धाओं का अपनी अगली काग्रेस एक साल बाद शैफील्ड मे करने का इरादा था। लेकिन ब्रिटेन की लेबर सरकार ने, जिसके प्रधान क्लिमेंट एटली थे—उसकी इजाजत न दी। उस निर्णय के पीछे क्या कारण थे? सब प्रकार की व्याख्याएँ प्रसारित की गईं: कुछ लोगों का कहना था कि कांग्रेस मे 'पर्याप्त प्रतिनिधित्व' का अभाव था, अन्य कुछ लोगों का आरोप था कि इस काग्रेस मे विभिन्न प्रश्नो पर इसका नजरिया 'पूर्वाग्रह पूर्ण' होने की संभावना थी, कुछ अन्य लोगो के लिए यह एक 'कम्युनिस्ट अभियान' था। जनता को भड़काने वाली ये चालाकियाँ उतनी

1. वी. आई. लेनिन 'द्वितीय अखिल रूसी मजदूरो और सैनिक डेप्यूटीज की काग्रेस', सकलित रचनाएँ, खंड 26, पृष्ठ 254

2 वही, पृष्ठ 252

महत्वपूर्ण नही थी, जितना कि यह कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी ग्रेट ब्रिटेन के शासक गिरोह ने शांति आंदोलन के लक्ष्यों के प्रति असम्मान प्रदर्शित करने को राजनैतिक दृष्टि से श्रेयस्कर एव उपयोगी माना। बहुत अरसे के बाद जब उसकी सारी थोथी दलीलें चुक गईं, तो ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर प्रतिबंध ही लगा दिया गया वैज्ञानिक फ्रेडरिक जूलिएट-क्यूरी को डोवर में गिरफ्तार कर दिया गया तथा उन्हे देशनिकाला दे दिया। बाद मे वह कांग्रेस वारसा में संपन्न हुई।

इसके ठीक दो दशक बाद मे शांतिकामी शक्तियो का विश्व सम्मेलन मॉस्को मे (अक्तूबर 1973 में) संपन्न हुआ। वस्तुतः इसमें विश्व के शांतियोद्धाओं की उस एकजुटता का प्रतिनिधित्व व्यक्त हुआ। जो बहुत से दूसरे आधुनिक जनतांत्रिक आदोलनों के साथ कायम हो चुकी थी। यद्यपि जनतांत्रिक आदोलन शांति के संघर्ष के समस्त विचारो को उसी रूप मे नही अपनाते, तो भी वे इसके प्रस्तावकों को सहयोग देने की इच्छा रखते हैं। मॉस्को कांग्रेस में एक हजार से अधिक राष्ट्रीय पार्टियो, संगठनो और आदोलनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया जो 143 देशों और 120 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का प्रतिनिधित्व करते थे। इस मंच पर यह इतना व्यापक प्रतिनिधित्व था कि अपने सामाजिक सम्मान की परवाह करने वाला कोई विरला ही ऐसा राजनेता होगा जो शांति आंदोलन के प्रति खुल्लम-खुल्ला एक ऐसा नकारात्मक रुख अपनाने का दुस्साहस करे जैसाकि पच्चीस साल पहले क्लिमेंट एटली ने अपनाया था।

वर्तमान में शांति शक्तियों के आदोलन के आयाम विशाल हो गए हैं और उसने सचमुच ही जन आदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया है किन्तु इसके परिमाणात्मक परिवर्तनों की अपेक्षा गुणात्मक परिवर्तन और अधिक महत्वपूर्ण है। सामान्य रूपरेखा के अनुसार ये है—पहला, समकालीन शांति आदोलन सारे समाजवादी समुदाय के शक्तिशाली भौतिक आधार और उसकी सक्रिय विदेश नीति पर भरोसा करता है; दूसरा, आज, पहले से कही अधिक यह एक संगठित शक्ति के रूप मे काम करता है जिसके पास सार्वभौम लोकतांत्रिक शांति के लिए एक समान मंच है; तीसरा, इसके पास अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के पूरे विश्लेषण पर आधारित स्पष्टतया परिभाषित कार्यक्रम है।

ये सब तथ्य शांतिप्रिय शक्तियों के पक्ष मे अंतर्राष्ट्रीय जीवन के स्वरूप को संशोधित करते है। उनमें अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य की ओर क्रमिक अभिमुखता और बदलाव का कारण प्रमुख रूप से अंतर्निहित है। जैसे-जैसे यह प्रक्रिया सबल होती जाती है, जनतांत्रिक लक्ष्य और श्रमिक लोगों की मुक्ति के बीच का घनिष्ठ अंतःसंबंध—घरेलू मामलों और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में—दोनों मे तेजी से मुखर होता जाता है। कमोबेश लंबी अवधि तक अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रखते हुए सामान्य जनतांत्रिक, राष्ट्रीय मुक्ति और दूसरे साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन

जनसमुदाय को, क्रमशः समाजवाद को चुनने की ओर ही आगे बढाते है। हमारे समय मे जनतांत्रिक आंदोलन ने अपने जनाधार को व्यापक करने के लिए अतुलनीय बड़े अवसर प्राप्त किए हुए है और साथ ही ये आदोलन बुनियादी सामाजिक परिवर्तन के लिए सर्वहारा के द्वारा किए जाने वाले सघर्ष के नजदीक आ रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व समाजवाद ने अपने लिए युद्धो को रोकने का लक्ष्य निर्धारित किया है। (जो वास्तव मे सामान्य लोकतांत्रिक माँगों का हिस्सा है) और, इसके साथ ही सारी मानवता को, पूंजीवाद से समाजवाद के रूपातरण के लिए सर्वोत्तम सभव पूर्वापेक्षाओ को प्राप्त करने के निमित्त स्वय को प्रयत्नशील बना रखा है। आज की परिस्थितियो मे उस पूँजीवाद को विवश करने का प्रश्न है, जो हमेशा बाहर प्रसार करने की नीति का अनुसरण करता है, ताकि लोगो के उस अधिकार को मनवाया जा सके जिसके तहत स्वयं के भविष्य के विषय में स्वय निर्णय लेने के अधिकार का उपयोग किया जा सके। दूसरे शब्दो मे, यह आज के युग के प्रमुख वर्गीय अतर्विरोध के समाधान की संभावनाओं का प्रश्न है अर्थात् मजदूर और पूंजी के बीच का, और बिना ताप-नाभिकीय युद्ध के भावी सामाजिक प्रगति का प्रश्न है—शांति के हालात में परिवर्तन की समस्या का एक प्रश्न।

लियोनिद् ब्रेझनेव ने नोट किया था—"सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने हमेशा इस बात को माना और अब भी मानती है कि दो व्यवस्थाओ—पूँजीवाद और समाजवाद के—के बीच का सघर्ष आर्थिक, राजनैतिक तथा वैचारिक क्षेत्र मे भी जारी रहेगा। यह अपेक्षित ही है समाजवाद और पूंजीवाद के वर्गीय दृष्टिकोण परस्पर विरोधी हैं तथा इनमे मेल सभव नही है। किन्तु हम ऐतिहासिक दृष्टि से अनिवार्य इस संघर्ष को एक ऐसे रास्ते पर मोड देंगे जो युद्ध के विध्वंसो से मुक्त हो, जो खतरनाक युद्धों से दूर हो तथा जो एक अनियंत्रित हथियारों की दौड़ या होड से परे हो।"[1]

साम्राज्यवाद ने अपने तई अपनी विदेश नीति की मुख्य दिशा के आर्थिक, राजनैतिक और वैचारिक क्षेत्रों में समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष में बदल रखा है। फिर भी, विश्व समाजवाद का अस्तित्व ही साम्राज्यवादियो को मजबूर करता है कि वे सामान्य रूप से अधिक सचेत हों और विस्तार के युद्ध जैसे उग्रवादी रूप को टाल दें। शक्तिशाली प्रगतिशील ताकतों द्वारा हमला किए जाने पर तथा अपनी ताक़त को मोर्चाबंदी में लगाने से पहले वह इस तथ्य पर गौर अवश्य करता है। कुछ दशकों पूर्व तक साम्राज्यवादी शक्तियो के शासक गिरोह अपने विरोधो को युद्ध से सुलझाने का साहस करते थे। यदि सोवियत संघ और समाजवादी समुदाय नही

1. एल. आई. ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण करते हुए' मॉस्को, 1975 पृष्ठ 94-95

होता तो पूंजीवादी शक्तियां, विशेषतया संकटों के दौर में, हथियारों की ताकत से दुनिया का पुर्नविभाजन करने की पुनः कोशिश कर सकती थी। अब यह एकदम असंभव है। पूंजीवाद और समाजवाद के बीच के संघर्ष के साथ यदि तुलना की जाए तो साम्राज्यवादी खेमे के आतरिक अंतर्विरोध गौण महत्व के हैं। फलस्वरूप, समाजवाद पहले से ही अपना प्रभाव न केवल पूंजीवादी देशों के साथ सीधे संबंधो के क्षेत्र तक बढ़ा रहा है, अपितु अप्रत्यक्ष रूप से, उनके आपसी संबंधों तथा संपूर्ण अतर्राष्ट्रीय जीवन को भी प्रभावित कर रहा है।

शांतिपूर्ण सहयोग की बढ़ती हुई आवश्यकता

एक अन्य कारक का उल्लेख करना आवश्यक है: अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की अवधारणा पहले कहीं अधिक व्यापक तथा अधिक समावेशी हो रही है। आज, जबकि मजदूर वर्ग का मुक्ति संघर्ष वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति की पृष्ठभूमि का परिप्रेक्ष्य विकसित हो रहा है, पुरानी 'शास्त्रीय कूटनीति' की सीमाएँ अधिक-से-अधिक सिकुडती चली जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में ऐसी नई बड़ी समस्याएँ प्रविष्ट हो रही है, मानवता जिन्हें साझे प्रयास के जरिए अधिक तर्कसंगत श्रमविभाजन और व्यापक अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की स्थापना करके ही सुलझाने में सक्षम होगी। यह बात व्यापार, विज्ञान और सांस्कृतिक सम्पर्कों और क्षेत्रीय तथा विश्व के पैमाने पर संयुक्त प्रायोजनाओं के विकास पर भी लागू होता है।

लियोनिद ब्रेझनेव ने शांतिकामी शक्तियों के विश्व सम्मेलन मे दिए गए भाषण में इस मुद्दे को बहुत साफ़ तौर पर सामने प्रस्तुत किया—"व्यापार ने जनगणों और देशो को अति प्राचीन समय से जोड़ रखा है। हमारे समय में भी यही सच है। किन्तु आज आर्थिक सहयोग को सिर्फ़ व्यापार तक सीमित रखना अलाभकारी एव अतार्किक ही माना जाएगा। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति की आवश्यकताओं और क्षमताओं को समान आधारो पर बाँट लेने और समय के साथ-साथ कदम मिलाकर आगे बढने के लिए एकमात्र आधार व्यापक रूप से अंतर्राष्ट्रीय श्रमविभाजन का लागू करना है। मैं कहूँगा कि अब यह स्वतः सिद्ध है। इसलिए पारस्परिक लाभदायक दीर्घकालिक और प्रचुर मात्रा में आर्थिक सहयोग, द्विपक्षीय और बहुपक्षीय, दोनों रूपों में, नितांत आवश्यक है। निस्सदेह यह केवल यूरोप पर ही लागू नही होता, अपितु सभी महाद्वीपों, तथा आज के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की संपूर्ण व्यवस्था पर लागू होता है। एक अन्य कारण जिसकी वजह से हम ऐसे सहयोग की वकालत करते हैं, यह है कि हम इसे राज्यों के बीच शांतिपूर्ण संबंध को भरपूर मजबूत करने का विश्वसनीय साधन मानते है।[1]

1. एल आई. ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण करते हुए' मॉस्को, 1975, पृष्ठ 311-313

पर्यावरण और प्रकृति का संरक्षण, ऊर्जा स्रोतों की समस्या का समाधान, प्राकृतिक विपत्तियों, महामारियों और व्यापक रूप से फैली हुई बीमारियों के खिलाफ संघर्ष बाह्य अंतरिक्ष के अन्वेषण और विश्व महासागर की सपदाओं और बहुत-सी विश्वव्यापी समस्याओं की खोजबीन और उनका समाधान अंतर्राष्ट्रीय सबंधों की प्रणाली के संशोधन के लिए आह्वान करती है। उनका तुरत समाधान पहले से ही सारी मानवता के हित मे है, तथा उनका महत्व निरतर बढता ही जाएगा। इनमे से कुछ समस्याएँ तो ऐसी है जो हाल ही मे मानवता के सामने उपस्थित हुई हैं, जबकि दूसरी कुछ बहुत विकट हो चुकी है तथा अब वे और अधिक समय तक समाधान की प्रतीक्षा नही कर सकती, क्योंकि समाज की उत्पादक शक्तियों के समकालीन विकास से उत्पन्न होने की वजह मे वे इसकी बुनियादी आवश्यकताओं को प्रतिबिम्बित करती है और बहुत-सी बातों में सारे ग्रह के भविष्य को निर्धारित करती हैं।

इन समस्याओं को सुलझाने की ऐतिहासिक आवश्यकता उस सघर्ष के साथ मेल रखती है जो दरअसल आर्थिक संबधों की समूची व्यवस्था को पुनर्गठित करने के लिए किया जा रहा है। यह दुनिया मे अधिक समतावादी अर्थव्यवस्था कायम करने का प्रश्न है ताकि वह उस असमानतापूर्ण व्यवस्था का स्थान ग्रहण कर सके जो देशो को अति विकसित और अविकसित-जैसी असम्मानजनक श्रेणियों मे विभाजित करती है तथा जो साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक प्रणाली की ही विरासत है।

साम्राज्यवाद के खिलाफ़ राजनैतिक आज़ादी के लिए दृढ संघर्ष—जिसमें सशस्त्र संघर्ष भी शामिल है—एशिया और अफ्रीका के युवा राज्यों द्वारा स्वतंत्रता हासिल करने के बाद राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष ने एक भिन्न प्रकार का चरित्र ग्रहण किया। अब आर्थिक और सास्कृतिक पिछड़ेपन को समाप्त करने के उद्देश्य से किया जाने वाला सामाजिक रूपातरण इसका मुख्य ध्येय है। राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के लिए उनके संघर्ष की इस अवस्था मे विकासमान देशो को जो काम करने हैं वस्तुतः उनकी प्रकृति ही यह माँग करती है कि अतर्राष्ट्रीय श्रमविभाजन में नए सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाए। ये सिद्धांत व्यवहारतः विकासमान देशों की आर्थिक और सास्कृतिक प्रगति को सुनिश्चित करेंगे, और प्रमुखतया उनके प्राकृतिक संसाधनों की व्यवस्था करने के उनके सप्रभु अधिकार की गारंटी करेंगे।

यह एक बहुत बड़ा जटिल काम है जो एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के देशों की नवउपनिवेशवादी व्यवस्था की बुनियादों से सीधा संबंध रखता है। इसके समाधान से साम्राज्यवादी आधिपत्य से जनगण के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का उद्देश्य पूरा होगा। आकस्मिक नही है कि पिछले दशकों के अधिकांश सशस्त्र

संघर्ष अथवा स्थानीय युद्ध राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के क्षेत्र में ही भड़के। उनसे साम्राज्यवाद के उन प्रयासों की झलक भी मिलती है जिनका लक्ष्य किसी भी कीमत पर उनकी आज़ादी के सुदृढ़ीकरण की गति को धीमा करना था। किंतु औपनिवेशिक प्रयासों का दादागिरी के प्रतिरोध एक दूसरी प्रवृत्ति के द्वारा किया जा रहा है—अर्थात् विकासमान देशों के द्वारा किए जाने वाले सक्रिय शांति-संघर्ष और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के द्वारा ताकि दुनिया में एक न्यायसंगत आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हो सके। इस बात पर ज़ोर देने के सभी आधार है कि यह प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ती जाएगी ज्यों-ज्यों एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के स्वतंत्र राज्य अधिकाधिक आत्मविश्वास के साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता और सामाजिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ते चले जाएँगे।

पश्चिमी यूरोप के देशों, उत्तरी अमरीका और जापान—जो कि विश्व पूँजीवाद के गढ़ है—में भी विशाल जनसमूहों का जनतांत्रिक संघर्ष एक नई अंतर्वस्तु धारण कर रहा है। यह सार्वजनिक सक्रियता के पहले से अधिक व्यापक क्षेत्रों में फैलता जा रहा है और मुक्ति आंदोलन के समाजवादी लक्ष्यों के साथ घनिष्ठता से गुँथता जा रहा है। औद्योगिक देशों में इजारेदारी विरोधी आंदोलनों के अग्रिम मोर्चे पर मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट पार्टियाँ हैं। व्यापक जन-तांत्रिक और सामाजिक रूपांतरणों के उनके कार्यक्रमों में इजारेदारी के आधिपत्य को कुचलना और शांति और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा को आश्वस्त करना जैसी बुनियादी माँगें हैं।

धक्काशाही का दिवालियापन

कठोर वर्ग-संघर्षों के दौर में विकसित होने वाले उपर्युक्त परिवर्तन पश्चिमी रणनीतिज्ञों को इस बात के लिए मजबूर करते हैं, चाहे वे इसे पसंद करें अथवा नहीं, कि वे अपने पहले की कसौटियों और अनुमानों की समीक्षा करें और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए नए उपाय सोचें। इसकी अभिव्यक्ति अन्य बातों के अलावा अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव की कोटि के रूप में शक्ति की अवधारणा के पुनर्मूल्यांकन में होती है।

इस प्रकार के पुनर्मूल्यांकन के लिए बूर्ज्वा राजनीतिक चिंतन को एक लंबे टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर चलना पड़ा। सदियों से पूँजीवादी राज्यों ने अपनी विदेश नीति के लक्ष्य ताकत के ज़रिए प्राप्त किए हैं—या तो दूसरे देशों पर अपना प्रभुत्व थोपा है या स्वयं पर ऐसे आधिपत्य की संभावना के ख़िलाफ़ लड़ते रहे है। इस परिस्थिति ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति की विशेष धारणा को उभारा और किसी संबंधित राज्य की ताकत को एक विशेष अर्थ प्रदान किया। वस्तुतः यह सशस्त्र शक्ति के बराबर मान लिया गया। "बड़ी बटालियनें सदा ठीक होती हैं।" बहुत वर्षों तक पूँजीवादी देशों के सैनिक और राजनीतिक नेता नेपोलियन जिसने—'शक्ति' को

सैन्यशक्ति के समरूप मान लिया था—की इस सारगर्भित परिभाषा को, नितांत अकाट्य मानते रहे थे।

सिद्धाततः अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को सुलझाने संबंधी साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रयासों में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी कोई गंभीर परिवर्तन नही हुआ। यूँ भी, प्राथमिकता के आधार पर सैन्यशक्ति का निर्माण, ताकि दूसरे देशो पर दबाव डाला जा सके, अपनी समस्त विविधताओ में वह बदनाम नीति थी जिसे 'जन प्रतिकार' की संज्ञा दी गई थी, तथा उन वर्षों मे जिसे अमरीकी साम्राज्यवाद ने लागू करने की कोशिश की थी। इस समस्या के सैद्धांतिक अनुसंधानो के सबंध मे वे इन्ही धारणाओं के चक्र मे घूमते रहे।

किसी राज्य की युद्ध की क्षमता के रूप में उसकी 'शक्ति' के निर्माण मे कौन-कौन से घटको का योग होता है इसे उस क्षेत्र के प्रसिद्ध अमरीकी अधिकारी हेस मौर्गेन्थॉ ने चित्रित किया। तदनुसार ये घटक है : देश की भौगोलिक स्थिति, उसके प्राकृतिक संसाधान, औद्योगिक क्षमता और सैनिक तैयारी—जिसमे शस्त्रीकरण के विकास का स्तर, सैन्य नायको की प्रकृति और सशस्त्र सेनाओं की संख्या और उनकी कुशलता शामिल है। इनमें जनसंख्या और उसका राष्ट्रीय चरित्र (युद्ध के प्रति रुख) भी शामिल हैं, प्रचलित राष्ट्रीय रीति-रिवाज़ (सरकारी नीतियों के संबंध मे रुख), और कूटनीति की कुशलता—जिसे देश की शक्ति का महत्वपूर्ण तत्व बताया गया है—आदि भी शामिल हैं। निष्कर्षतः "राष्ट्रीय शक्ति के विभिन्न तत्वों द्वारा प्रत्यक्षतः राष्ट्रीय हित से संबंधित, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के मुद्दो पर अधिकतम प्रभाव डलवाने की कला" को भी ये अपने दायरे मे ले लेते है।[1]

फिर भी, जैसे समय गुज़रा, यह फ़ार्मूला यथार्थ के साथ एक स्पष्ट विरोध के रूप मे सामने आया। विदेश नीति के मुख्य हथियार के रूप में सशस्त्र बल प्रयोग की परंपरागत धारणा अपनी प्रासंगिकता खोने लगी। और 'विशाल बटालियनो' की सर्वशक्तिमत्ता पर सबसे पहले संदेह प्रकट करने वालों मे सबमे अधिक शक्तिशाली साम्राज्यवादी देश संयुक्त राज्य अमरीका प्रमुख था।

शीत युद्ध के वर्षो के दौरान संयुक्त राज्य अमरीका ने हथियारों की दौड़ और जंगखोरी के सट्टे मे 10,000,000 लाख डालर से ऊपर की विशाल धनराशि का व्यय किया। इसने महाविशाल युद्ध यंत्र का निर्माण किया, जैसाकि अन्य कोई देश आज तक नही कर पाया, और एक कल्पनातीत सैनिक क्षमता का निर्माण किया जोकि पृथ्वी पर से सारे देशों का सफ़ाया करने में सक्षम है। किंतु क्या इससे दुनिया मे उसका प्रभाव बढा, या क्या कम-से-कम इससे वह अपनी विदेश नीति के उद्देश्यों को पूरा कर सका? इस प्रश्न को इस बात के प्रमाण के रूप में

1. हेस जे० मौर्गेन्थॉ, "राष्ट्रो के मध्य राजनीति, शक्ति और शांति के लिए संघर्ष", न्यूयॉर्क 1966 पृष्ठ 139

ही पेश करना पर्याप्त होगा कि हमारे युग मे कइयों ने सशस्त्र सेनाओं के निर्माण का अर्थ यह मान लिया है कि इससे स्वतः राजनैतिक प्रभाव बढ़ जाता है।

यह सामान्य सत्य उस समय जाहिर हो गया जब वियतनाम में अमरीकी आक्रमण की पराजय के बाद सबके सामने यह स्पष्ट हो गया कि संयुक्त राज्य अमरीका की शक्ति का किसी तरह यह अर्थ नही है कि वह सारी दुनिया पर थानेदारी या स्कूल मास्टरी कर सके।

वियतनाम मे लगभग तीस साल तक लड़ाई चली। इसमे लगभग बीस लाख से अधिक जाने गईं, अन्य लाखों लोग अपंग हो गए और लाखों अपने पीछे अनाथ और शरणार्थी छोड गए, शहर और गांव ध्वस्त हो गए तथा भूमि जहरीली बना दी गयी व क्षत-विक्षत कर दी गयी।

साम्राज्यवादी शक्तियो मे पहले फ्रांस और बाद में संयुक्त राज्य अमरीका ने दुराग्रह के कारण हिंदचीन के जनगणो के स्वाधीनता अपनी पसंद की समाज व्यवस्था बनाने के उनके अधिकार को मानने से इनकार किया। संयुक्त राज्य अमरीका की महाविशाल सैन्य मशीनरी और पूंजीवादी विश्व की नेतृत्वकारी शक्ति के रूप में इसकी प्रतिष्ठा पर इसके परिणामस्वरूप आघात लगा।

संयुक्त राज्य अमरीका को वियतनाम पर हमला करने की वजह से भारी कीमत चुकानी पड़ी। इस युद्ध में सरकारी आँकडों के अनुसार अमरीका का सीधा खर्चा 1,410,000 लाख डालर से ऊपर था। संयुक्त राज्य की वायुसेना ने 70 लाख टन से अधिक बम गिराए, या द्वितीय विश्व युद्ध मे सभी मोर्चों पर पश्चिमी मित्र देशों के द्वारा जितना बम भार गिराया गया उससे तीन गुना से अधिक बम लंबे समय से पीड़ित हिंद चीन की धरती पर गिराए गए। यह भी याद रखने योग्य है कि सन् 1968 के अंत तक वियतनाम में संयुक्त राज्य अमरीका के इन सैन्य अभियान दलो मे 580,000 से अधिक सैनिक भाग ले चुके थे।

इन प्रयासों का परिणाम सुपरिचित है। आज अधिकाधिक संख्या में राजनैतिक एवं लोक-नेता इस बात को मानने लगे हैं कि विदेश नीति के हथियार के रूप में सेना की ताकत अब प्रासंगिक नही रही। दरअसल, हमने दक्षिण पूर्व एशिया में फ़ौजी हस्तक्षेप का न केवल परास्त होना देखा है, अपितु सन् 1947 में ट्रूमैन नीति के तहत लागू की गई अमरीका की विश्वनीति का दिवाला भी देख लिया।

वियतनाम युद्ध के सबक, और मुख्यतया संयुक्त राज्य अमरीका के शासकीय गिरोह और दूसरी साम्राज्यवादी ताक़तों के द्वारा अपनाई गई सोवियत संघ के प्रति आणविक ब्लैक मेल की नीति की निष्फलता की बढ़ती हुई मान्यता ने इस आवश्यकता को बढ़ा दिया है कि विदेश नीति में सैन्य शक्ति की धारणा और उसकी भूमिका के स्थान पर दूसरे उपाय किए जाएँ। अमरीका के राजनैतिक

पर्यवेक्षक यह नतीजा निकालते हैं कि न तो अब, और न भविष्य में ही, सैन्य कुशलता और क्षमता को राजनैतिक लाभों की एकमात्र गारंटी मानी जा सकती है। अमरीकी विद्वान् राल्फ एन० क्लों निम्नांकित अनुभव प्रकट करते हैं—"बड़ी ताकतों ने, कुछ हिचकिचाहट के साथ इस बात को मानना शुरू कर दिया है कि राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों के रूप में सैन्यशक्ति की उपयोगिता घटती जा रही है।"[1] वह आगे नोट करते हैं कि बिल्कुल ऐसी संभावना है कि भविष्य में भी ऐसी ही स्थिति कायम रहेगी, "दुनिया को अभी आगे के उस सैन्यशक्ति के पतन को और अधिक देखना है जिसे विदेश नीति के हथियार और दुनिया में सम्मान के मापदंड के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है।"[2]

अनेक पश्चिमी रणनीतिज्ञों ने इन विचारों को स्वीकार कर लिया है। उनका विश्वास है कि सैन्यशक्ति हमेशा राजनैतिक प्रभाव के बढ़ने की गारंटी नहीं होती। एक समय, फौजी ताकत में नगण्य ढोतरी भी ठोस राजनैतिक लाभ में रूपांतरित हो सकती थी किंतु अब यह असंभव है।

यह तथ्य बेहद लाक्षणिक है कि पश्चिमी राजनीतिज्ञ अब उस समीकरण चिह्न को हटा रहे हैं जिसे साधारणतया 'शक्ति' और 'सैन्यशक्ति' तथा 'सैन्यशक्ति' और 'अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव' के बीच लगाया जाता था। इससे यह जाहिर होता है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में नए और अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण पर क्रमशः जोर दिया जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में इनका जितना अधिक क्रियान्वयन होगा, इनका उतना ही अधिक स्वागत होगा।

इस प्रकार 'ताकत' कूटनीति, पर आधारित जो समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में धक्काशाही या मुक्काशाही के रूप में लाई जाती रही है, दिवालियापन की ओर बढ़ रही है। यह अकाट्य तथ्य सभी क्षेत्रों में जाहिर होता है: वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति के विकास में, अथवा समाज के जीवन में सामाजिक-राजनैतिक रूपांतरणों में। दुनिया उस युग में पहुँच गई है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति की माँग है कि विश्व की तत्कालिक आवश्यक समस्याओं को सुलझाने के लिए नए मानदंड अपनाए जाएँ।

---

1. राल्फ एन० क्लों, पूर्वी एशिया और संयुक्त राज्य सुरक्षा, वाशिंगटन, 1975, पृ० 1
2. वही, पृ० 70

अध्याय : 10

अमिट शांति के आसार : मार्ग और प्रगाढ़ मैत्रियाँ

"क्या आप कृपा करके मुझे यह बताएँगी कि मैं यहाँ से किस ओर जाऊँ?"

"यह तो इस पर निर्भर करता है कि तुम कहाँ पहुँचना चाहते हो।" बिल्ली ने कहा।

लेविस केरोल : "ऐलिसेज़ एडवेंचर्स इन वंडरलैंड"

सैन्य-उद्योग समूह : मानवता के लिए एक चुनौती

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के इतिहास में 1970 का दशक शांतिप्रिय शक्तियों के पक्ष में गंभीर परिवर्तनों का काल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव शैथिल्य जो शान्ति के लिए संकल्पबद्ध जन-संघर्ष का प्रतिफल है—हमारे इस वर्तमान समय की अग्रगामी प्रवृत्ति बन चुकी है।

इन हालात में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी अपने शान्ति प्रयासों को पहले से अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान कर रही है। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस ने शांति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा जनगणों की स्वाधीनता और स्वतंत्रता के लिए आगे के संघर्ष के कार्यक्रम को सूत्रबद्ध किया। निःशस्त्रीकरण की समस्या उसका मर्म है :

—हथियारों की दौड़ समाप्त करो;
—सभी आणविक हथियारों के परीक्षण बंद करो;
—रासायनिक हथियारों पर प्रतिबंध लगाओ और उन्हें नष्ट करो;
—जनसंहार के हथियारों के नए प्रकारों और उनकी नई प्रणालियों के विकास पर प्रतिबंध लगाओ;
—सैनिक खर्चों में कटौती करो;
—अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में सैन्य-शक्ति का उपयोग न करने की विश्व संधि

को अंतिम रूप दो।

ये ठोस माँगें नि.शस्त्रीकरण की समस्या को व्यावहारिक स्तर पर ले आती हैं और समस्त मानवता के लिए सही मायने मे टिकाऊ शान्ति के मार्ग को प्रशस्त करती हैं। जनसंहार के हथियारों से भरपूर इस दुनिया मे इसके जरिए राजनैतिक तनाव-शैथिल्य से सैनिक-तनाव शैथिल्य की स्थिति में मानवता के रूपांतरण, सैन्यवाद पर अंकुश लगाने, युद्ध के भौतिक आधार को नष्ट करने और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की भरोसेमंद गारंटी के निर्माण के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

किन्तु शक्तिशाली ताकतें अभी भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य का विरोध करती हैं। सैन्य-औद्योगिक समूह, जो सैन्यवादियों और कारखानेदार उत्पादक इजारेदारियों का अपवित्र गठजोड है, आज भी युद्ध के हथियारों पर लगातार ज़ोर दे रहा है। साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद का प्रभावशाली गिरोह निरंतर पूंजीवादी देशों को आक्रामक कार्यवाही के लिए भडकाता है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के अनेक अड्डे—जो दुनिया के कई हिस्सों मे सुलग रहे हैं—किसी भी क्षण सशस्त्र संघर्षों के रूप में भड़क सकते हैं। कभी भी वे सैन्य मुठभेड़ों के रूप में, चाहे मध्यपूर्व मे, साइप्रस में, अंगोला मे या दूसरे क्षेत्रों या देशों में आग की लपटों मे बदल सकते हैं। हमलावर ताकतें तनाव को और अधिक बढ़ा रही हैं, हथियारों की दौड़ को तेज़ कर रही है, लड़ाइयों को भड़का रही हैं और पुराने प्रतिक्रियावादी सैन्य शासनों को सहायता और समर्थन दे रही हैं।

1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में एक विरोधाभास की स्थिति पैदा हो गई। शान्ति काल में—और वह भी तब जबकि संयुक्त राज्य अमरीका के शासक और अन्य पूंजीवादी देशों के शासनतंत्र सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार कर रहे थे कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य एक तथ्य है—संयुक्त राज्य अमरीका का सैनिक बजट द्वितीय विश्व युद्ध व कोरिया तथा वियतनाम के युद्धों के दौरान किये गये कुल सैनिक व्यय को पार कर गया। यह अमरीका के दो सौ वर्षों के अस्तित्व में की कभी इतना ऊँचा नही रहा और अब उसका रुझान स्पष्टतया और अधिक वृद्धि की ओर ही दिख रहा है। सन् 1976 मे वह बजट 114 बिलियन डॉलर था, और वाशिंगटन की भविष्यवाणी के अनुसार 1980 तक 150 बिलियन डॉलर और सन् 1985 तक वह 200 बिलियन डॉलर से अधिक हो जाएगा।[1]

यदि तुलना की दृष्टि से एक लंबी अवधि को लिया जाय, तो हम पाएँगे कि संयुक्त राज्य और दूसरे पूंजीवादी देशों के सैन्य खर्चों में तेज़ वृद्धि की यह सामान्य प्रवृत्ति और अधिक वृद्धि की ओर सुनिश्चित रूप से मुखरित हो रही है।

---

1. वाशिंगटन पोस्ट, 3 अप्रेल 1976

इसका अनुमान लगाया गया है कि संयुक्त राज्य अमरीका ने अपनी स्थापना के बाद के 150 वर्षों में, जिसमें प्रथम विश्व युद्ध के वर्ष भी शामिल हैं, सैनिक उद्देश्यों (इस अवधि के अंतिम दशक में वह पहले से ही सफलतापूर्वक बाहरी प्रसार और सैन्यवाद में यूरोपीय शक्तियों से मुकाबला कर रहा था) पर 30 बिलियन डॉलर खर्च किए। सन् 1976 के आरंभ में प्रतिनिधि सभा को संबोधित करते हुए कांग्रेस के सदस्य जॉन सिबर्लिंग (डैमो० ओहियो) ने कहा कि केवल पिछले तीन दशकों में ही, जबकि कहीं से भी संयुक्त राज्य की सुरक्षा को ख़तरा नहीं था, वाशिंगटन ने अपने भिन्न-भिन्न शस्त्रीकरण कार्यक्रमों पर 1.6 बिलियन डॉलर खर्च किए। ऐसे सभी संकेत हैं कि भविष्य में यह वक्र और अधिक ऊँचाई तक पहुँच जाएगा। सन् 1980 में समाप्त होने वाले पाँच वर्षों में संयुक्त राज्य अमरीका सैनिक उद्देश्यों पर कम-से-कम 630 बिलियन डॉलर खर्च करना चाहता है।

संयुक्त राज्य अमरीका के साथ और प्रायः इसके सीधे दबाव में, अन्य पूँजीवादी देश भी शस्त्रीकरण पर अपने खर्चों को निरंतर तेजी से बढ़ा रहे हैं। यह कहना पर्याप्त होगा कि सन् 1974 तक अपनी स्थापना के बाद के 25 वर्षों के दौरान नाटो के सैनिक खर्चे सीधे तौर पर सात गुना से अधिक बढ़ गए।

क्या इस मानव श्रम के दुरुपयोग, उत्पादन क्षमताओं और भौतिक साधनों के अपव्यय का कोई अंत भी हो सकता है? आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति ने हथियारों की दौड़ को 'विशाल बटालियनों' की संख्या बढ़ाने के स्तर से स्थानांतरित करके हथियारों की गुणात्मकता को सुधारने और सुपर-बम की खोज करने की स्थिति में पहुँचा दिया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि सैनिक खर्चों की वृद्धि लगभग गुणोत्तर होती जा रही है।

विज्ञान और प्रविधि की प्रगति ने सैद्धांतिक अनुसंधान और उसकी क्रियान्वित—आविष्कार और उसके प्रयोग—के बीच के अंतराल को बहुत कम कर दिया है। सैन्य-औद्योगिक इजारेदारियों ने अपने लिए इस बात की गाँठ बाँध ली है कि किसी भी उपलब्धि का हथियारों के उत्पादन में यथासंभव उपयोग किया जाय। बारूद का उपयोग इसके आविष्कार के सैकड़ों वर्ष बाद। पहले-पहल युद्ध में किया गया था। और आग्नेयास्त्रों को पूर्ण करने में लगभग तीन सौ वर्ष लगे। अब, यह तकनीकी तौर पर संभव है कि बिना किसी अपवाद के किसी वैज्ञानिक आविष्कार को तत्काल प्रयोग में लाया जा सके। भूतकाल में सशस्त्र सेनाओं का विकास नागरिक क्षेत्रों के विकास से आमतौर पर पिछड़ जाता था जबकि अब मामला इसके एकदम विपरीत है: युद्ध के साधनों को प्राथमिकता दी जाती है और आमतौर पर वे तीव्र गति से विकसित होते हैं। इस प्रकार विज्ञान अपने आपको युद्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति उपकरण के रूप में अनुभव करता है।

समकालीन अवधि के इस लक्षण पर जॉन फ़ुलर—जिन्होंने द्वितीय विश्व-युद्ध का अध्ययन किया था—ने ध्यान दिया था। उन्होंने लिखा—"इसका क्या अर्थ है? कि विज्ञान से जुड़कर नागरिक संगठन की बजाय सैन्य-संगठन ने नेतृत्व हथिया लिया···

"इस प्रकार विज्ञान को युद्ध द्वारा अनुशासित कर दिया गया ताकि युद्ध राज्य की पुख़्ता नीवें डाली जा सकें—शान्ति-राज्य मे इसे जितना अनुशासित किया गया था उससे कही अधिक। यदि लगातार ऐसा ही चलता रहा, और निस्सदेह ऐसा ही होगा भी, तो यह सभ्यता को उस स्थायी आधार पर टिका देगा जिसे 'युद्धपरता' कहा जा सकता है; ऐसी स्थिति में आदमी की प्रतिभा का केन्द्रविन्दु रचना नही विनाश होगा।"[1]

वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति का हथियारों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का दूसरा पहलू यह है कि वह उनके अप्रचलन व अनुपयुक्तता का कारक बनता है। आदमी ने धनुष को हज़ारो वर्षों तक काम मे लिया था, राइफ़लों को सदियो तक और एक ही प्रकार के टैंकों, हवाई जहाज़ों और युद्धपोतो का सशस्त्र सेनाओं द्वारा कई दशकों तक उपयोग किया जाता रहा। किन्तु आज ऐसा नही है, आधुनिक हथियार वँस्तुत: कुछ ही वर्षों में अनुपयोगी हो जाते है। उदाहरण के लिए लड़ाकू वायुयानों और मिसाइलों की औसत जीवन-अवधि पाँच से सात साल से अधिक की नही होती।

अत: समकालीन स्थितियों में हथियारों को उसी तेजकदमी से परिष्कृत करना पडता है, और ऐसा लगभग सभी क्षेत्रों में करना होता है, उसी तीव्र गति से जिसमें विज्ञान एवं प्रविधि विकसित हो रहे है। आज जब दर्जनों और सैकड़ों उद्योग सब प्रकार के हथियारों के विकास मे भाग ले रहे हैं, यह अत्यन्त कठिन होता जा रहा है और कभी-कभी तो असंभव-सा कि उत्पादन की नागरिक और सैनिक शाखाओं के बीच स्पष्ट रेखा खीची जा सके। युद्ध-उद्योग आधुनिक उत्पादन के सभी क्षेत्रों मे घुसपैठ कर रहा है, अपने हिस्से की आदेशात्मक माँग कर रहा है और हर जगह ऊपर की मलाई हड़प रहा है।

परिणामस्वरूप सैन्य-उपकरण—जिसे विज्ञान तथा प्रविधि के तीव्र विकास के साथ कदम मिला कर चलना पड़ रहा है—की कीमत मे भीमकाय वढ़ोतरी हो रही है। अस्त्रो को रद्दी धातु में बदल जाने से रोकने के लिए इसे लगातार अपनी आधुनिकतम उपलब्धियों को आत्मसात करना पड़ रहा है—धातुकर्म और प्रकाशतंत्र

1. जे० एफ़० सी० फुल्लर, 'द्वितीय विश्वयुद्ध', 1939-45 पृ० 409

से इलैक्ट्रोनिक्स और साइबरनैटिकी तक ।[1]

कुछ वर्ष पहले यूनेस्को 'कूरियर' ने लिखा था कि संयुक्त राज्य अमरीका की त्रिशूली पनडुब्बी सन् 1979 में पूरी कर दी जायगी जिसकी क़ीमत 18,000 लाख डालर होगी, जो मोरक्को के वार्षिक बजट के दुगने के क़रीब होती है ।[2]

आज भी हालात ऐसे ही है। सन् 1976 तक दुनिया में सेना का खर्च कुछ स्रोतों के अनुसार 250 बिलियन डालर तथा अन्य के अनुसार 300 बिलियन था। दोनों में से एक भी संख्या अफ्रीका, दक्षिणी एशिया और मध्यपूर्व के देशों की सारी राष्ट्रीय आय को एक साथ मिलाने पर भी उससे अधिक ऊँची रहेगी। और आगे के दस, बीस या तीस वर्षों में ये खर्चे कितने बढ जाएँगे ? यदि हथियारों की दौड़ को समाप्त नही किया गया तो भावी पीढ़ियों के लिए कितनी खराब जिन्दगी हिस्से में आएगी ?

पूंजीवादी देशों में सैन्यवाद का वर्तमान क्रोधोन्माद इजारेदारियों द्वारा प्रेरित है, सबसे बढ़कर संयुक्त राज्य अमरीका के औद्योगिक समूह द्वारा, जिसकी भूख शांत ही नही होती। यह एक साधारण-सी बात है कि शस्त्र उद्योग के लाभ नागरिक उद्योग शाखाओं की अपेक्षा दुगुने ऊँचे है या वे उनसे आधे है। खून सूंघने वाले हिंस्र जीवों की तरह, पूंजीपति अपने मुनाफ़ों को बढाने के लिए कोई मौका पाते ही झपट पडता है, तथा युद्धादेशों के लिए पापमय घिनौने प्रतियोगी संघर्ष में घुस जाता है। स्वभावतः अधिक शक्तिशाली निगम सबसे ऊपर आ धमकते है, इसलिए कि हथियारों का निर्माण बडे पैमाने की पूंजी वाला प्राथमिकता प्राप्त प्रभाव क्षेत्र बन चुका है। और यही वह ताकत है जो संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य साम्राज्यवादी शक्तियो की सरकारो पर और उनकी घरेलू तथा विदेशी नीति पर सबसे अधिक प्रभाव रखती है।

विश्व का प्रेस संयुक्त राज्य अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति ड्वाइट डी०

---

1. निम्नांकित आंकडे हथियारों की कीमत के गतिविज्ञान को जाहिर करते हैं—

प्रकार	53 218	1972 (1,000 डालर)	वृद्धि (कितना गुना)
लड़ाकू विमान	70	12,000	226
बमवर्षक विमान	4,700	30,000	138
टैंक	8,700	900	13
सबमैरिन	55,000	175,000	37
विध्वसक	1945	200,000	23
विमान वाहक	(1,000 डालर)	900,000	18

देखिए : जी० एम० कुज़मिन, 'सैन्य-औद्योगित सस्थान', मॉस्को, 1974, पृ० 91
(रूसी में)

2. यूनेस्को कूरियर, दिसबर 1975

आइजनहावर के उस विदाई भाषण को प्रायः उद्धृत करता है जो जनवरी 1961 मे दिया गया था और जिसमे उन्होंने निम्नांकित अनुभव प्रकट किया था—"विशाल सैन्य प्रतिष्ठान तथा बड़े शस्त्र उद्योग का संयोजन अमरीकी अनुभव मे एक नई चीज है। इसके कुल प्रभाव—चाहे आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक ही क्यों न हों—को हर शहर मे महसूस किया जा रहा है, हर राजकीय भवन और संघीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय मे महसूस किया जा रहा है। हम इसके विकास की आदेशात्मक आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। तो भी हमे इसके गंभीर निहितार्थो को समझने मे भूल नही करनी चाहिए...।

"सरकार की परिषदों मे हमें इसके अनुचित प्रभाव की उपलब्धि के खिलाफ़ चेतावनी देनी चाहिए, चाहे सैनिक-औद्योगिक समूह के द्वारा इसे चाहा गया हो अथवा न चाहा गया हो।"[1] और जब इस वक्तव्य का हवाला दिया जाता है तो लगभग प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से दूरदृष्टि से संपन्न तथा निरर्थक मानता है।

संयुक्त राज्य अमरीका का सैन्य-औद्योगिक समूह जो तेज़ी से विगत पन्द्रह वर्षो से बढ रहा है, ने एक ऐसी राष्ट्रव्यापी घटनाक्रिया के रूप मे विकास कर लिया है जो वस्तुतः अमरीकी राष्ट्र के जीवन के समस्त क्षेत्रों में घुस जाती है। इसने अभूतपूर्व आयाम तथा स्वायत्त स्वरूप ग्रहण कर लिया है। यह अपने ही कानूनों के अनुसार जीवित रहता है, इससे भी अधिक यह कि वह सारे समाज पर उन्हे थोपने की कोशिश करता है। लियोनिद् ब्रेझनेव ने इस सम्बन्ध मे नोट किया—"व्यावसायिक सैन्यवादियों और इजारेदारियों का अपवित्र गठबंधन युद्ध के हथियारों की बदौलत भाग्यों का निर्माण कर रहा है, जिसे आम तौर पर सैन्य-औद्योगिक समूह के नाम से पहचाना जाता है, इन देशो मे वह एक तरह से 'राज्य के भीतर अलग राज्य' बन चुका है और उसने ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिसे आत्म निर्भर कहा जा सकता है।"[2]

संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य पूंजीवादी देशो मे सैन्यवाद की बढ़ोतरी ने सैन्य-औद्योगिक समूह के दबाव के अधीन अभूतपूर्व सवेग प्राप्त कर लिया है।

किन्तु यह वृद्धि फिलहाल उस अवस्था को पहुँच रही है जहाँ तख्ती पर सकेत है जो कहता है—"ठहरो, सडक बन्द।" समकालीन सैन्यवाद का अतिप्राचीन आयाम, तथा हथियारों की दौड़ की निरर्थकता आपस में मिलकर—सैन्य-औद्योगिक समूह के निरन्तर गहराते सकट वातावरण ही बनाते हैं।

अपने अन्तर्राष्ट्रीय लक्ष्यों की दृष्टि से साम्राज्यवाद की सैनिक क्षमता फ़िल-

---

1. ड्वाइट डी० आइजन हावर 'द व्हाइट हाउस इयर्स, वेजिंग पीस 1956-1961, लदन पृ० 616

2. एल० आई० ब्रेझनेव 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण' मास्को, 1975 पृ० 320

हाल उन सीमाओं को पार कर गई है, जिनमें रहकर अपने वर्चस्व के लिए संघर्ष मे उनका उपयोग कर सकती थी, तथा राजनैतिक लक्ष्यों की सीमाओं से भी परे चली गयी है । समकालीन पूंजीवाद ने एक ऐसी तलवार निर्मित की है जिसे वह न तो खीच सकता है और न ही उठा सकता है, बशर्ते वह स्वयं को नष्ट करने की जोखिम ही मोल न ले ले । एक वार नेपोलियन ने इच्छा व्यक्त की थी कि कितना अच्छा होता यदि उसके पास तोपखाने की जगह विद्युत होती । आज जब प्रबल शत्रुओं के पास आणविक मिसाइलें है और एक-दूसरे को कई बार नष्ट कर सकने की सामर्थ्य है तो आगे के लिए हथियारों की दौड़ बेतुकी हो जाती है ।

हथियारों की दौड़ के आंतरिक पहलू क्या हैं ? एक निश्चित अवस्था मे सैन्यवाद अनिवार्यत: आर्थिक सीमाओं तक पहुँच जाएगा जिनके परे उसका भावी विकास राज्य की आतरिक सुदृढ़ता को एक खतरा बन जाएगा । जैसाकि ड्वाइट डी० आइजनहावर ने कहा है—"सैनिक प्रतिष्ठान, जो स्वयं में उत्पादक नहीं होता, निश्चित रूप से देश की ऊर्जा, उत्पादकता और विचारशक्ति को अपने उपभोग की वस्तु बनाता है और यदि वह बहुत ज्यादा हड़प लेता है, तो हमारी कुल शक्ति घट जाती है ।"[1] तब से अमरीका का सैन्य-औद्योगिक समूह कैंसर की गाँठ के समान फूल कर मोटा हो गया है तथा सारे आर्थिक ढांचे को पीडित कर रहा है—सम्पूर्ण पूंजीवादी बाजार मे, इसके साथ ही, कर-वृद्धि तथा मुद्रा-स्फीति एवं मुद्रा-संकटों की वृद्धि परिलक्षित होने लगी है । अब अधिकाधिक अमरीकी वैज्ञानिक अपने आपसे पूछते है कि क्या वह समय आ गया है, या ठीक नज़दीक आ रहा है, जब सैनिक आबंटनों की वृद्धि का देश की आर्थिक स्थिति पर अधिकतम हानिकारक प्रभाव अनुभव किया जा सकेगा ।

इस समस्या का सामाजिक-राजनैतिक पहलू भी बहुत विचारणीय महत्त्व रखता है । श्रमिक जन-समूह अनिश्चित काल तक इस तथ्य को बर्दाश्त नहीं कर सकता कि उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताएँ सैन्य-औद्योगिक समूह —जो राष्ट्र के खून को बहाता है—की बलिवेदी पर चढ़ाई जाती रहें ।

अत: सैनिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक कारक सैन्यवाद को वस्तुतः सीमित करते है और नि:शस्त्रीकरण के पक्ष में काम करते है । अब प्रश्न यह है कि दुनिया की राजनीति की विशिष्ट समस्याओं पर उनका प्रभाव कितनी तेजी से बढ़ेगा ।

इस विषय मे लियोनिद ब्रेझनेव के शान्ति शक्तियों के विश्व सम्मेलन मे अपना अनुभव व्यक्त करते हुए कहा—"कहना न होगा कि साम्राज्यवाद के हमलावर गिरोहों द्वारा इधर हथियारों की दौड़ का विस्तार किया जा रहा है तथा अन्त-

1 'इंटर्नेशनल एफेयर्स' अंक 6, 1970, पृ० 82

राष्ट्रीय तनावशैथिल्य—जो अब शुरू हो चुका है—दो प्रक्रियाएँ हैं जो विपरीत दिशाओं मे गतिशील हो रही हैं। वे अनन्त काल तक समानान्तर रेखाओं की तरह साथ-साथ विकास नही कर सकती।"[1]

अब चूंकि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के राजनैतिक सुधार की दिशा मे प्रथम गंभीर क़दम उठाए जा चुके हैं, मुख्य समस्या—जो दुनिया के भविष्य पर विचारणीय प्रभाव डालती है—वह है हथियारों की दौड़ को समाप्त करना। आज अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को सुदृढ़ करने का अन्य कोई रास्ता नही है सिवाय राजनैतिक तनाव-शैथिल्य मे सैनिक तनाव-शैथिल्य को और बढ़ाना और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर सर्वतोमुखी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाना। यही स्पष्टत: वह नीति है जिसका सोवियत सघ और दूसरे समाजवादी देश अनुसरण कर रहे हैं।

रणनीतिक प्रचुरता की धारणा

वे पश्चिमी विद्वान, जो यह भ्रम पाले हुए हैं कि वे डरा-धमका कर या धौंस-पट्टी से अपने राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते है, एक भिन्न किस्म की मुद्रा धारण कर लेते हैं। हाल ही मे पिछले दिनों यह स्पष्ट हुआ कि उनमे से अधिकांश की 'युद्ध' शब्द में कोई रुचि नही है तथा वे घोषणा करने लगे है कि यह आवश्यक हो गया है 'संघर्ष से हटकर बातचीत के युग में' प्रवेश किया जाय। तो भी सैनिक कार्रवाइयाँ जो ताकत की स्थितियों द्वारा निर्धारित नीति के नतीजे हैं—दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में भड़क उठती हैं। भिन्न-भिन्न बहानों के अधीन दबाव का उपयोग किया जाता है, अन्तरराष्ट्रीय कानून और प्रतिबद्धताएँ रौंद दी जाती हैं तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ हठपूर्वक एकतरफा लाभों के लिए लड़ रही होती है। हथियारों की दौड—जोकि युद्ध की बुनियाद है—निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा मे जारी रह रही है।

जनवरी सन् 1976 में संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति गेराल्ड फ़ोर्ड ने अपने सघीय संदेश मे कहा—"हमारी सैन्य शक्तियाँ क्षमतावान और तैयार है···। हम लगातार अपनी सैनिक शक्तियों की कुशलता को बढाने की दृष्टि से ही अपनी अर्थव्यवस्थाओ को बनाते हैं। जो बजट मैं प्रस्तुत करने जा रहा हूँ उसमें अमरीकी शक्ति की वह आवश्यकता व्यक्त हो रही है जो कि उस वास्तविक दुनिया के लिए आवश्यक है जिसमे हम रहते है।"[2]

कुछ समय बाद उन्होंने एक साक्षात्कार मे अपने वक्तव्य के तात्पर्य की व्याख्या की—"अब मैं 'तनाव-शैथिल्य' शब्द का प्रयोग कतई नही करता, मैं सोचता

1. एल० आई० ब्रेझनेव 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण' 1975, पृ० 319
2. द न्यूयार्क टाइम्स, 20 जनवरी 1976

हूँ कि हमे जो कहना चाहिए वह यह कि संयुक्त राज्य महान् शक्तियों—सोवियत संघ, जिसके साथ चीन और अन्य देश होंगे—के साथ मिलेगा और तनावों को शिथिल करने की कोशिश करेगा ताकि **हम शान्ति की नीति को ताकत के माध्यम से जारी रख सकें।**"[1]

(ज़ोर मेरा—वी० के०)

यह पारिभाषिक शब्दावली का प्रश्न नही है। आखिर, यदि किसी खास कारण से राष्ट्रपति फोर्ड 'तनाव-शैथिल्य' शब्द को पसन्द नही करते थे तो वह उसकी जगह और दूसरा शब्द काम मे लेने के लिए स्वतंत्र थे। फिर भी जो समानार्थी शब्द प्रयोग किये गये वे थे—"शान्ति की नीति, ताकत के माध्यम से।"

इस कथन का क्या मतलब है ? पश्चिम मे 'भय के संतुलन' के माध्यम से शांति का कुख्यात विचार शीत युद्ध के अर्थ में समझा जाता है। यहाँ कुछ उदाहरण हैं जो तथाकथित यथार्थवादी राजनैतिक पर्यवेक्षकों की मौलिक रचनाओं से उद्धृत किए गए हैं, जो प्रत्यक्षतः अन्तर्राष्ट्रीय तनावशैथिल्य का समर्थन तो करते हैं, फिर भी हथियारों की दौड़ को जारी रखने की वकालत करते है।

"डराना-धमकाना तनाव-शैथिल्य का विलोम नही है, जैसी कि मौलिक परिवर्तनवादी विचारको की राय है, किन्तु इसकी पूर्वापेक्षा है। यदि तनाव-शैथिल्य के लिए प्रयत्न करने में डराने को अस्वीकार कर दिया जाता है तब यह केवल पूर्वगामी व्यवस्था को ही हानि पहुँचाएगा।"[2]

एक और दृष्टिकोण है, जो भी ठीक उतना ही विरोधाभासपूर्ण है, "हथियारों की होड तनाव-शैथिल्य का एक स्थायी लक्षण रहेगा।...अभी तक मोटे तौर पर बराबरी कायम हो पाई है तथा तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया तेज़ हो गई है, किन्तु एक हल्का-सा अप्रत्याशित असंतुलन भी राजनैतिक तनावों को पैदा कर देगा जिसके परिणामस्वरूप यह नाज़ुक प्रक्रिया खतरे में पड जाएगी।"[3]

दो अन्य अमरीकी राजनीतिज्ञों, मस्की और ब्रोक, का विश्वास है कि तनाव-शैथिल्य शक्तिशाली सुरक्षात्मक क्षमता की आवश्यकता को समाप्त नही करता, जिसका मतलब है कि संयुक्त राज्य अमरीका को ऐसा करना पड़ेगा।

यहाँ 'नई' यथार्थवादी नीति के प्रतिपादक, या 'यथार्थवादी निरोध' के सिद्धांतकार पुरानी कहावत के अनुसार ठीक तरह से वर्णित किए जा सकते हैं—"नही जानते हुए कि क्या किया जाना है, वे वही कर रहे है जो वे जानते हैं।" ये

1. द न्यूयार्क टाइम्स, 2 मार्च 1676
2. वोल्फ़ंग वॉन गेरन, शिकरहीट इम स्पानुग्स्फ़ैल्ड डर इन्टस्पानुग, बोन, 1972 पृ० 55
3. लॉरिस एल व्हैटन, "कंटेपोरेरी अमेरिकन फॉरेन पालिसी, मिनिमल डिप्लोमेसी, डिफेंसिव स्ट्रेटेजी, एंड डिटेन्ट मैनेजमेंट" लेक्सिंग्टन, मासाचुसेट्स टोरन्टो, लंदन, 1974, पृ० 216, 217

'यथार्थवादी चिंतक' विश्व राजनीति में नए दृष्टिकोणों को अपना समर्थन व्यक्त करने की कितनी ही कोशिश क्यों न करें, वे, दरअसल, पुराने दृष्टिकोणों से ही चिपके रहना चाहते है, क्योकि सैनिक शक्ति का उपदेश देकर वे वास्तव में धक्का-शाही के युग में लौट जाने की ही वकालत करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य के जवाब में, हाल ही के वर्षों में उभरी 'यथार्थ-वादी निरोध' की अवधारणा—अमरीका एवं अन्य पूंजीवादी देशों के बहुत-से राजनीतिज्ञ जिसके पक्षधर है—मूलतः अंतर्विरोधों से भरी हुई है।

साम्राज्यवाद के 'परमाणविक इजारेदारी' से 'परमाणविक महानता' मे और 'परमाणविक महानता' से 'परमाणविक समता' में अर्थात् एक हद तक समाजवाद के साथ सशस्त्र शक्ति के सतुलन मे संक्रमण ने अतर्राष्ट्रीय सबंधो के क्रमिक समेकीकरण को चिन्हित किया। सशस्त्र शक्तियों के संतुलन मे परिवर्तन, प्रमुखतः सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका के बीच मे सतुलन का परिवर्तन, तेज़ी से साम्राज्यवाद की हमलावर प्रवृत्तियों को बढ़-चढ़कर नियंत्रित करता है और संयुक्त राज्य अमरीका के शासक गिरोह को मजबूर करता है कि वह 'विशाल प्रतिरोध' की खुली जंगखोर नीति को 'उदार प्रत्युत्तर' की नीति के रूप में तब्दील करे, जिसे कि नई स्थिति मे और अच्छी तरह लागू किया जा सकता है। यह संतुलन उन्हें 'यथार्थवादी निरोध' के रूप में व्यक्त नवीनतम अवधारणा का स्थानापन्न खोजने के लिए भी विवश करता है।

दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की सुदृढता की प्रक्रिया अभी तक पर्याप्त मात्रा में समेकित नही हो पायी है तथा नितांत अतर्विरोधी और अनिश्चित बनी हुई है। 'यथार्थवादी निरोध' की नीति (जिसे 'डराने-धमकाने के माध्यम' से सफलतापूर्वक प्राप्त किया जाना है) को किसी भी तरह अंतर्राष्ट्रीय संबंधो के विकास के लिए स्वीकार्य आधारभूमि के रूप में नही माना जा सकता। दरअसल यह उसी 'आतंक के संतुलन' की नीति की निरंतरता ही है।

वर्तमान परिस्थिति ऐसी नही है इतिहास मे जिसके समतुल्यों का अभाव हो। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है जबकि विशिष्ट क़िस्म की परिस्थितियो के कारण, नीति विशेष ने अपना खुद का संवेग प्राप्त कर लिया, तथा उसे जन्म देने वाले कारणों के अस्तित्वहीन हो जाने के लंबे समय बाद, जो कार्य रूप मे परिणत हो पाई। यथार्थ का विरोध करते हुए इस प्रकार की नीति प्रायः ऐसे अंतर्राष्ट्रीय गतिरोधों में बदल गई जिन्हें युद्ध के द्वारा ही सुलझाया जा सका। राजनीतियों ने हठपूर्वक जितना अधिक इस मार्ग का अनुसरण किया, इसका दुखद परिणाम उतना ही अधिक संभाव्य बनता गया।

हमारे आणविक युग में अंतर्राष्ट्रीय विरोधों को सैनिक उपायों से सुलझाने की बात ज़ाहिरा तौर पर मनुष्य के अस्तित्व के लिए ही खतरा

है। 'यथार्थवादी दिशा' के प्रतिनिधि यह स्वीकार करते हैं। ऐसा लगता है कि परिणामस्वरूप वे परंपरागत 'शक्ति की नीति' को पूरी तरह संशोधित कर लेंगे तथा निःशस्त्रीकरण की तरफ़ मुड़ जाएँगे। तो भी, अभी वे 'यथार्थवादी' इस स्थिति से ऐसे आवश्यक निष्कर्ष निकालने को तत्पर नहीं दिखते। असामंजस्यपूर्ण विरोधी तत्वों को समन्वित करना उनका लक्ष्य है : एक ओर तापनाभिकीय युद्ध को समाप्त करने की महती आवश्यकता को स्वीकार करना और उसके साथ ही हथियारों की दौड़ को जारी रखने का समर्थन करना।

'यथार्थवादी' नीति के प्रतिपादकों के विचारों से कम-से-कम दो नतीजे निकाले जा सकते है। सर्वप्रथम, वे विचार पूँजीवादी राजनैतिक चिंतन के विकास की उस अवस्था से जुड़े है जो 'परमाणविक गतिरोध' से उलझी हुई है, और दूसरे, वे समस्या के सकारात्मक समाधान की खोज की निरर्थकता को प्रमाणित करते हैं।

अपने समय मे हेनरी किसिंजर, तब तक जो हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अल्प-ख्यात प्रोफ़ेसर मात्र थे, ने उस विरोधाभास वाली स्थिति का मूल्यांकन करने मे अन्योक्ति का सहारा लेते हुए उसे 'अतिमार क्षमता' कहकर परिभाषित किया था। दो वैमनस्यपूर्ण आदिवासी जन-जातियाँ जहरीले तीरों से लैस एक गहरी घाटी में आमने-सामने रहती है और दोनों ही दुश्मन पर मरणातक चोट करने की सामर्थ्य से संपन्न है। किन्तु इससे पहले कि चोट खाए दुश्मत पर जहर का असर हो दूसरी जनजाति भी प्रत्याक्रमण कर सकती है। इसका अर्थ यह है कि पहले हमला करने वाला मैदान मार नही पाएगा। विनाश दोनों का होगा।

फिर भी, सारा सकेत इस ओर है कि साम्राज्यवाद इस निष्कर्ष को मानने से इन्कार करता है। वह घुमावदार रास्तों की तलाश करता है ताकि वह अपने आपको किसी प्रकार से अधूरी स्वीकृतियो तथा आधे मन से किये गये प्रयासों—जो संपूर्ण समस्या का हल कर ही नही सकते—तक सीमित रख सके। वह पुरानी नीति को जारी रखने के लिए नए अवसर ढूँढता है।

किसिंजर को भी विश्वास है कि अमरीका अपनी सारी योजनाओं का आधार इस मान्यता को नही बना सकता कि युद्ध, यदि शुरू हो जाय तो वह सार्वभौम होगा, अतः उनका कहना है कि एक ऐसी रणनीतिक धारणा की खोज की जानी चाहिए जो अमरीका के कूटनीतिज्ञों को अधिकाधिक कार्य स्वतंत्रता प्रदान करे और साथ ही इस बात का पता लगाने में मदद करे कि आणविक युग क्या वास्तव में भयाक्रांत ही रहेगा।

पश्चिमी रणनीतिज्ञो ने, इन नए मौकों की इस रूप में खोज **तथाकथित सीमित** युद्ध नीति के रूप मे की, तथा 1960 के दशक के आरंभ में इसका बेहद व्यापक प्रसार हुआ। इसके सिद्धांतकार यह सलाह देते थे कि शक्तिशाली दुश्मन की

सहज बुद्धि पर भरोसा किया जाय। उनका कहना था कि चूंकि एक संपूर्ण युद्ध आत्मविनाश की आशंका को व्यक्त करता है, इसके काल्पनिक भागीदारों मे यह पर्याप्त समझ होगी कि वे उसे सम्पूर्ण विनाश की ओर न ले जाएँ। यह सभव है कि उसे बीच में ही रोक दिया जाय और छोटे-से युद्ध (आणविक हथियारों के 'सीमित मात्राओं मे प्रयोग पर आधारित') से सन्तुष्ट रहा जाय। उनका दावा था कि ऐसे छोटे युद्धों को, आणविक संघर्ष की तुलना में, नियंत्रित किया जा सकता है।

यह स्पष्ट है कि 'सीमित युद्ध' की धारणा केवल एक ऐसा उपेक्षाभाव है जो आणविक युग की नई गुणात्मक परिस्थिति को अनदेखा करता है। इस प्रकार इससे यह भ्रम पैदा किया गया कि शोषक वर्ग की परम्परागत नीति—जो दादागीरी, ब्लैकमेल और हिंसा की नीति है—को बिना किसी गम्भीर सशोधन के आगे भी जारी रखा जा सकता है। इस नीति के समर्थन मे जो दलीलें दी गयी थी वे केवल भद्र पुरुषों के अलिखित समझौतो के सदर्भ—दोनो अतिवादी छोरो से बचने से सम्बन्धित—तक सीमित थी, क्योंकि अस्त्र सार्वभौम विनाश का भय ही अंतर्राष्ट्रीय नीति में शक्ति के विवेकशील प्रयोग को जन्म दे सकता है। ऐसी तर्क-संगति को कैसे आश्वस्त किया जा सकता था, और वह क्या आकार ग्रहण करती, और कौन-सी ऐसी प्रभावशाली गारंटियाँ थी कि जिनसे आणविक शक्तियाँ इसका समर्थन करेंगी—ये सब महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जिन्हें अनुत्तरित छोड़ दिया गया है।

अतः कोई आश्चर्य नही कि 'सीमित युद्ध' की अवधारणा का बचाव करना बेहद कठिन सिद्ध हुआ—खासकर इसलिए भी कि 1960 के दशक मे ही, सैनिक रणनीति एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के पश्चिमी विशेषज्ञ इसे पर्याप्त संदेह की दृष्टि से देखने लगे थे। उदाहरण के लिए, जार्ज केनन की टिप्पणी बेहद विवेकसम्मत थी, "यह मानना कि परमाणविक युद्ध की स्थिति मे दुश्मन के साथ हथियारों की विनाश क्षमता तथा उनके निशानो (जहाँ वे मार करेंगे) के बारे मे किसी प्रकार का अलिखित अथवा कामचलाऊ समझौता सम्भव हो पायेगा, मुझे एकदम क्षीण तथा शेख़चिल्ली की जैसी आशा प्रतीत होती है।[1]

प्रतिष्ठित अमरीकी विद्वान हेस मोर्गेन्थों ने भी सीमित युद्ध की नीति की आलोचना की थी। महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रारंभ मे इस विचार के प्रति उनके मन में आस्था थी। किंतु इससे दूर जाते-जाते अंत मे वह इसके विरोधियों के खेमे में पहुँच गये। उन्होने ठीक ही नोट किया कि परमाणविक युद्ध कोई शतरंज का खेल तो है नही जहाँ हर स्थिति को शांति से धैर्य से परखा जाता है। इसकी हल-चल किन्ही खास स्थायी नियमों के अधीन नही होती ज्यों ही यह शुरू हुई कि

---

1. ज्योर्ज एफ. केनन 'रशा, दि एटम एड द वेस्ट' न्यूयोर्क, 1958, पृ० 57-58

होगी। किसिंजर ने लिखा था—"अस्थिरता तब अधिक होगी जबकि दोनों पक्षों के पास दस-दस मिसाइलें हों, इसकी तुलना-संतुलन उस समय ज्यादा मजबूत हो जायगा, यदि प्रतिपक्ष के पास मानो 500 मिसाइलें हों।"[1]

तर्क पद्धति की इस धारा का निहितार्थ यह है कि हथियारों की दौड़ कोई बुराई नहीं है बल्कि यह एक वरदान है जो स्थिरता क़ायम करने की सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करती है, एक प्रकार की शांति की गारंटी है। संक्षेप में, हथियारों की दौड़ को निःशस्त्रीकरण के समतुल्य विकल्प के रूप में घोषित किया जाता है। यह तर्क न केवल खतरनाक है, बल्कि आत्मघाती भी है। किन्तु इससे 'यथार्थवादियों' को एक मौका मिल जाता है ताकि वे शांति और राजनैतिक तनाव-शैथिल्य के पक्ष में बोल सकें और साथ ही और किसी भी ऐसे प्रस्ताव का विरोध कर सकें जो सैनिक तनाव-शैथिल्य और निःशस्त्रीकरण को आगे बढ़ाने वाले हों। इससे यह संभव हो जाता है कि चिंतन के स्तर पर जन भावना की कद्र करने के साथ ही सैन्य-औद्योगिक समूह के हितों की हिफ़ाजत भी की जा सके।

हमें यह पूछने का हक है कि क्या मानवता इस तर्क को गंभीरता से ले सकती है। क्या हम इस तथ्य से तसल्ली प्राप्त कर सकते हैं, जैसाकि सेवानिवृत्त फ्रांसीसी एडमिरल मार्क द जॉयबेयर लिखते हैं—"आणविक शक्तियाँ, वे इसे पसंद करें अथवा नहीं, व्यापक संघर्ष—जिसमें अस्वीकार्य अदृश्य जोखिम निहित है—को टालने की दृष्टि से एक-दूसरे के साथ शांतिपूर्वक रहने को अभिशप्त हैं।"[2] क्या जनसाधारण ऐसी शांति को शांति के रूप में स्वीकार कर सकता है? इसका केवल एक ही उत्तर है, नहीं, हरगिज नहीं।

'आणविक शांति' को अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा की गारंटी के रूप में देखना असंभव है। पॉल क्रॉसर इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि कभी भी ऐसी स्थिति उभर सकती है जब दो आणविक शक्तियाँ, सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका एक-दूसरे को बन्दूकों की नलियों में से देखने लगें। उस दशा में चुनाव करने की कोई गुंजाइश नहीं होगी : कि आतंक-ग्रस्त होकर शत्रु द्वारा हमले की पहल का इन्तजार किया जाय, या आतंक की दशा में बटन दबा दिया जाय तथा बड़े पैमाने पर आणविक आक्रमण शुरू कर दिया जाय। शत्रुओं में से किसी एक द्वारा, दूसरे शत्रु को स्तब्ध करने के उद्देश्य से किये गये हमले के साथ ही ख़तरा क्रमशः बढ़ जायगा। वस्तुतः 'आणविक शांति' का निर्मम सार तत्त्व यही है।

'यथार्थवादियों' द्वारा अभिशंसित अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के पैटर्न के अनुसार,

---

1 हेनरी ए किसिंजर, 'द नैसेसिटी फॉर चॉइस' प्रोस्पैक्ट्स आफ अमेरिकन फॉरेन पॉलिसी, लंदन, पृ० 217

2 मार्क द जॉयबेयर, ला पेक्स न्यूक्लियर, पेरिस, 1975, पृ० 65

गारण्टियां है ही नही। दूसरी तरफ, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जनसंहारक हथियार की विनाशात्मक शक्ति में और अधिक वृद्धि किसी भी देश की सुरक्षा के लिए सी खतरे को बढ़ा देता है।

अतः 'यथार्थवादी दिशा' के व्याख्याकार आज की सर्वाधिक ज्वलन्त समस्‍ के समाधान के रूप में कोई भी जवाब नहीं दे सकते। स्थायी शान्ति और सहयो की सम्भावनाओं के स्थान पर वे जो प्रस्तुत करते हैं वह दरअसल शीत युद्ध की ः अंशतः संशोधित किस्म है। दूसरी तरफ, इस बात पर गौर किया जाना चाहि कि 'यथार्थवादी दिशा' बूर्ज्वा राजनैतिक और सैन्य चिंतन के द्वारा विश्व ष घटनाओं की सही अवस्था पर अधिक ध्यान देने की बदली हुई प्रवृत्ति का संके देती है।

सामान्यतया 'यथार्थवादी दिशा' को संक्रमण काल—जब पश्चिमी रणनीति विदेश नीति की कतिपय पारम्परिक रूढ़ियों को त्यागने को विवश तो हैं कि मौजूदा दौर के परिवर्तनों को समझने को पूरी तरह प्रस्तुत नहीं हैं—के सिद्धा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। संक्रमण काल की एक स्पष्ट प्रवृ 'यथार्थवादी दिशा' एक तरफ़ तो विरोधी शक्तियों के नितांत विरोधी प्रभाव प्रति संवेदनशील है, और दूसरी ओर यह स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के विकास संभावनाओं के सब प्रकार के मनमाने कामचलाऊ प्रबन्ध के लिए अनुकूल प स्थितियां पैदा करती है।

शीतयुद्ध की खंदकों में

विचारधारात्मक और राजनीतिक प्रवृत्तियों का वर्गीकरण कितना ही सा क्यों न हो, तनाव-शैथिल्य के मौजूदा विरोधियों को दो मुख्य श्रेणियों में विभा किया जा सकता है : वे जो कि तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया को शून्य तक प देना चाहते है और वे जो इसे अपने संकीर्ण स्वार्थी हितों की दृष्टि से इसकी व्या करते हैं तथा इस तरह लोकतंत्र और समाजवाद को नुकसान पहुँचाते हैं।

उनका वस्तुतः इसी प्रकार का दृष्टिकोण था, धुर दक्षिणी पार्श्व में शीत के ऐसे कट्टर डायनासॉर है जो हिंसा एवं आक्रमण की पूजा करने का उपदेश हैं, इनके पंथ को मान्यता देते है। सम्राट फ़र्डिनैंड द्वितीय—जो यह कहा करते कि "विधर्मियों के शासन वाले देश से तो रेगिस्तान ही बेहतर है"—के दर्शन वस्तुतः इन लोगो का दृष्टिकोण पूरी तरह मेल खाता है : समाजवादी समुदा साथ शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व से तो युद्ध की आशंका ही बेहतर है। रीगन, वा मीनी, गोल्डवाटर, जैक्सन, श्लैसिंजर तथा सोवियत-विरोध के अन्य समर्थक चाहे वे अमरीका में हों या पूंजीवादी दुनिया में अन्यत्र—या तो तनाव-शै को तथ्य के रूप मे मानने से इन्कार कर देते है या उसे इस रूप में प्रस्तुत कर

जो इसे केवल शीत युद्ध के सशोधित रूप में ही परिणत कर देता है। वे आश्चर्य-जनक अड़ियलता के साथ यथार्थ के तथ्यो की उपेक्षा करते हैं तथा गुज़रे हुए समय के अपने दृष्टिकोणो पर अडे हुए है।

इस प्रकार 1960 के दशक के मध्य मे अमरीका के वामपंथी नेताओं मे प्रमुख, बेरी गोल्डवाटर, समस्त सड़कों-चौराहों पर चिल्लाते फिरे कि वह कम्युनिस्टो की जीत के हालात मे जीवित रहने से बेहतर तो यही मानेंगे कि दुनिया मे राजशाही वापस कायम हो जाय। तब से पुलों के नीचे बहुत-सा पानी प्रवाहित हो चुका है। ह्वाइट हाउस में राष्ट्रपति की कुर्सी के असफल उम्मीदवार अपने मंत्रोच्चार से अमरीकी जनता को न तो मनवा सके और न ही डरा सके। तनाव-शैथिल्य एक तथ्य बन गया और सोवियत अमरीका सम्बन्धों मे विचारणीय प्रगति हुई।

किन्तु गोल्डवाटर तथा उनके साथी—साम्राज्यवाद के 'ब्लैक हण्ड्रेड्स' से सम्बद्ध—समाजवाद के प्रति इसके अलावा किसी अन्य रुख को अपनाने को तैयार नही है। उनका आदर्श वाक्य है—"कार्थेज का सत्यानाश करो।" दुनिया पर आधिपत्य करने वाले आज के दावेदारों की समाजवादी देशों के बारे मे इसके अलावा और कोई नज़रिया हो ही नही सकता। इन्ही गोल्डवाटर ने सन् 1976 के चुनाव अभियान के दौरान, तथा हाल के वर्षों मे अन्य पश्चिमी दक्षिणपंथी राजनीतिज्ञों ने इस सम्बन्ध में अपना रुख बिल्कुल साफ़ रूप मे, बिना किसी लाग-लपेट के, सबके सामने रख दिया। अमरीकी विदेशी सम्बन्धो के विशेषज्ञ रॉबर्ट स्ट्रास्ज-ह्यूप, विलियम किंटनर और स्तेफ़ान पोस्सोनी ने अपनी पुस्तक 'अमरीका के लिए एक अग्रगामी रणनीति' मे लिखा—"हम उस राजनीतिक व्यवस्था का जीवित रहना बर्दाश्त नही कर सकते जिसमें स्वयं के विकास की निरन्तर विकासमान सामर्थ्य एवं हमारे विनाश का निष्ठुर संकल्प, दोनों ही निहित हो। हमारे पास इसके अलावा और कोई विकल्प नही कि हम दुश्मन को ध्वस्त करने के लिए 'केटोवादी' रणनीति अख्तियार करें।"[1] दस वर्ष पश्चात्, सन् 1970 मे पोस्सोनी ने, इस बार जे० पॉर्नेल्ले के सहयोग से, जो नीति प्रतिपादित की उसमें उनके पुराने युद्धोद्घोष की गूँज सुनाई पड़ती है। 'प्रविधि की रणनीति' नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा: "हमे अपने दुश्मन को आणविक शक्ति के द्वारा अन्तरिक्ष युद्ध में पराजित करने की सामर्थ्य हासिल करनी ही होगी।"[2]

निस्संदेह, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सामान्यीकरण के विरोधियो मे सभी

---

1. रॉबर्ट स्ट्रॉस्ज-ह्यूप, विलियम आर० किंटनर और स्तेफान टी० प्रोस्सोनी 'ए फॉरवर्ड स्ट्रेटेजी फॉर अमेरिका, न्यूयार्क, 1961, पृ० 405-06
2 'द स्ट्रेटेजी ऑफ टेक्नालॉजी, विनिंग द डिसाइसिव वार' कैंबिज, 1970

इतने स्पष्टवक्ता नही हैं। वे जो अपने सम्मान को गोल्डवाटर या प्रोस्मोनी मे ऊँचा समझते हैं अपने सार्वजनिक वक्तव्यों में अधिक सतर्कता बरतते हैं। वे अनिवार्यतः तनाव-शैथिल्य का सीधा विरोध नही करते, किन्तु साथ ही, वे इसके आगे के विकास को अनेक सीमाओं और शर्तों को बाँध देते हैं, जिसमे यह या तो बिल्कुल अर्थहीन हो जाता है या साम्राज्यवाद को वे लाभ पहुँचाते हैं जिनसे वह 'ताक़त के ज़ोर' की नीति के माध्यम मे प्राप्त करने में असफल रहा था।

प्रायः दो सिद्धान्त—जिनमे से प्रत्येक दूसरे को काटता है—सूत्रबद्ध किये जाते हैं। एक ओर, इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि तनाव-शैथिल्य को सम्भव बनाने का सारा श्रेय 'दबाव' को जाता है—'स०रा० अमरीका का सैनिक श्रेष्ठता', 'नाटो की बढ़ी हुई शक्ति' इत्यादि को। इसका श्रेय कुछ आर्थिक कठिनाइयों, जो समाजवाद को घेरे हुए हैं, को भी दिया जाता है जिन्होंने सोवियत संघ को मजबूर कर दिया कि वह शांतिपूर्ण मुद्रा धारण करे। दूसरी तरफ़, हर प्रयास ऐसा प्रभाव पैदा करने के लिए किया जाता है कि सोवियत संघ और समूचे समाजवादी समुदाय का, पूंजीवादी देशों की अपेक्षा तनाव-शैथिल्य मे अधिक फ़ायदा होगा, कि तनाव-शैथिल्य एकमार्गी सड़क है, और यह बात भी कि, समाजवादी देश इसके लाभों का बड़ा हिस्सा हज़म कर जाते हैं। इस विचित्र तर्क से तो यह अर्थ निकलता है कि दो व्यवस्थाओं के आपसी मुकाबले में, साम्राज्यवाद ने समाजवादी देशों को ऐसी अच्छी स्थिति में पहुँचा दिया है उन्हें जहाँ कि 'एक तरफ़ा' फ़ायदे मिल रहे हैं।

यह ज़ाहिरा तौर पर बेतुकेपन की हद है। किन्तु शीतयुद्ध के बाज़ या तो अपनी तर्क-पद्धति के बेतुकेपन से अपरिचित हैं अथवा जानबूझकर उसे स्वीकार करने से इन्कार कर रहे हैं। वे अपनी सोवियत-विरोधी नीति को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं और हथियारों की दौड़ को बरकरार रख सकते हैं। यदि सोवियत सघ ताकत से सामने झुक सकता है, तो यह जरूरी है कि दबाव बढ़ाया जाय और अमरीका की सैनिक श्रेष्ठता को और बढ़ाया जाय; तथा यदि सोवियत संघ तनाव-शैथिल्य में रुचि रखता है और पश्चिम के साथ आर्थिक, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक सम्बन्धों का विकास करना चाहता है तो उसे इस बात पर मजबूर किया जाना चाहिए कि यह सब प्रकार की रियायतें 'अदा' करे। उनके आधारसूत्र कुछ भी क्यों न हों, निष्कर्ष निश्चित रूप से वही है: अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद के सोवियत-विरोधी मोर्चे को हर सम्भव तरीके से मज़बूत किया जाना चाहिए।

अतीत की तरह ही, अब भी वे 'सोवियत धमकी', 'लाल ख़तरे' तथा 'क्रेमलिन प्रसारवाद' (उनका आरोप है कि यह अकेला तत्त्व ही उनकी विदेश नीति की असफलताओं तथा समूची पूंजीवादी दुनिया के संकटों के लिए जिम्मेदार

है) के नारे उछालकर अपने दृष्टिकोण एवं नीति को तर्क-संगत सिद्ध करते हैं। और यह घिसा-पिटा सिद्धांत एक नये प्रश्न को जन्म देता है। क्या वह समय नहीं आ गया है जबकि सं० रा० अमरीका और इसके नाटो दोस्त 'सोवियत संघ को नियन्त्रित करके' विश्व व्यवस्था की यथास्थिति की रक्षा करने की ओर उन्मुख हों ? इस प्रकार, वस्तुतः जो कुछ हमारे सामने है वह ताकत की जोर-जबरदस्ती की कुख्यात नीति का एक नया संस्करण मात्र है। शीतयुद्ध की खंदकों में तंग होकर बैठे हुए लोगों की मानसिकता इसी तरह की है।

यूरोप में तनाव-शैथिल्य के विरोधियों को वर्तमान समय के चीनी नेतृत्व से भी सक्रिय समर्थन प्राप्त हो रहा है। यही नहीं, दुनिया में चीन ही एक ऐसा राज्य है जिसका नेतृत्व तृतीय विश्वयुद्ध के पक्ष में खुला समर्थन करता है और पेकिंग का रुख, उसका निकृष्ट सोवियत-विरोधवाद पूंजीवादी विश्व के उन राजनैतिक और सैद्धांतिक रणनीतिज्ञों के लिए चिंतन का आधार साबित हो जाता है जो तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया को जानबूझकर बारूद से जलाकर राख कर देना चाहते हैं।

'बहुध्रुवी' विश्व और 'वृहत् राजनीति'

ताकत के जोर वाली नीति की छाया लगातार पश्चिमी राजनीतिज्ञों—जब वे समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की प्रवृत्ति पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को थोपने का प्रयास करते है और इन सम्बन्धों के विकास की भविष्यवाणी करते है—को अक्सर प्रभावित करती है। इसका एक संकेत तो ऐसे अनेक प्रतिरूपों में मिलता है जिन्हें बहुध्रुवी विश्व की संज्ञा दी जाती है तथा जिनके बारे में यह दावा किया जाता है कि वे उन अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के वर्तमान सहमेल का स्थान ले लेंगे जो दो 'महाशक्तियों' के बीच की प्रतिस्पर्द्धा द्वारा निर्धारित है।

इस धारणा को परिपुष्ट करने के लिए साम्राज्यवाद के सिद्धांतकार तथ्यों के साथ बाजीगरी करते हैं। वे उस, दो सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाओं में सम्पन्न विश्व-विभाजन की जगह—जिन व्यवस्थाओं मे उनके सम्बन्धों की जटिलता निहित है, तथा जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पैदा हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की द्वि-ध्रुवीय आकृति के रूप मे साधारणतया अभिव्यक्ति है—उस धारणा को स्थापित करना चाहते हैं जो सम्पूर्ण समस्या को तोड़-मरोड़कर इसे संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के बीच के संघर्ष के रूप में चित्रित एवं प्रस्तुत करते है।

जैसे-जैसे व्यक्तिगत देशों या क्षेत्रीय समूहों की शक्ति बढ़ी, सोवियत-अमरीकी संघर्ष क्रमशः दूसरे केन्द्रों की प्रतिद्वन्द्विता के जरिए काफी बढ़ गए। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के द्विध्रुवीय स्वरूप को जिसके बारे में जोर देकर कहा

जाता है कि जड़ से उखाड़कर उसकी जगह जिस बहुध्रुवीय स्वरूप ने ले ली थी, उसकी सीमाओं मे, अधिक-से-अधिक विरोधी देशों तथा गठबधनो की प्रतिस्पर्द्धा है, दो व्यवस्थाओं—समाजवाद तथा पूंजीवाद—के बीच की प्रतियोगिता नही है। पश्चिमी सिद्धान्तकार इस धोखेभरे सूत्र का उपयोग अनेक प्रकार के मनमाने तात्पर्यों और अर्थो के निर्माण के लिए करते हैं। किन्तु जैसे-जैसे बहुध्रुवीय विश्व की धारणा नित नई किस्में पैदा करता है (अमरीका-रूस-चीन : 'प्रतिस्पर्द्धा का त्रिकोण'; अमरीका-पश्चिमी यूरोप-जापान; 'सहयोग का त्रिकोण'; पश्चिम मे अमरीका-पश्चिमी यूरोप-सोवियत सघ का एक त्रिकोण, पूर्व मे अमरीका-सोवियत संघ-चीन-जापान का चतुष्कोण आदि)। वैसे-वैसे उसका खुल्लमखुल्ला प्रतिक्रिया-वादी आधार और इस विचारधारा का शीतयुद्ध की नीतियों से सीधा रिश्ता तेजी के साथ अभिव्यक्त हो रहा है।

वस्तुत: 'बहुध्रुवीय' विचारधारा के आलोक में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की संरचना ही 'शक्तिकेन्द्रों' के स्थायी वैमनस्यपूर्ण सघर्ष का रूप ग्रहण कर लेती है। साथ ही, पश्चिम में इस तथ्य को किसी तरह नही छुपाया जाता कि यह केवल उनके आर्थिक और राजनैतिक सघर्ष का ही प्रश्न नही है, अपितु हथियारों मे शक्ति संतुलन का भी प्रश्न है, जिसमे आणविक हथियार भी शामिल हैं, क्योंकि यह मान लिया गया है कि देर-सबेर तमाम 'शक्ति केन्द्र', 'आणविक क्लब' के सदस्य बन जाएँगे।

शीतयुद्ध परम्परा को जारी रखते हुए, 'बहुध्रुवीय' नीति के प्रतिपादक इस मान्यता के आधार पर कार्य करते हैं कि प्रस्तावित 'शक्ति संतुलन' मे आधिपत्य की भूमिका संयुक्त राज्य अमरीका को अदा करनी चाहिए। 'सर्वे' भविष्यवाणी करता है कि "संयुक्त राज्य अमरीका निकट भविष्य में ही, दो निर्णायक त्रिभुजों के शिखर पर खड़ा होगा। अमरीका-सोवियत संघ-चीन त्रिभुज—जो कि शान्ति, युद्ध, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, नि:शस्त्रीकरण तथा हथियारो पर नियंत्रण के लिए बेहद महत्वपूर्ण है तथा अमरीका-जापान-पश्चिमी यूरोप त्रिभुज—जो कि विकसित दुनिया के साथ अन्तर्क्रियाओं तथा अधिकाश राष्ट्रों की समृद्धि की दृष्टि से एकदम महत्वपूर्ण है—के शिखर पर खड़ा होगा।

दरअसल क्लों की 'पूर्व एशिया और सं० रा० अमरीका की सुरक्षा' मे भी हमे यही विचार मिलते हैं। क्लों का विश्वास है कि दुनिया के इस हिस्से मे सुनिश्चित करने के लिए यह अनिवार्य है कि सोवियत संघ को चतुर्भुज मे 'शक्ति संतुलन' कायम हो। निर्णायक के रूप मे को अन्य भागीदारो के बीच के सघर्ष का पूरा लाभ [illegible]

1. सर्वे, वसंत 1973 खंड-19, अंक-2 पृ० 125

2 राल्फ एन० क्लो, ईस्ट एशिया और यू.एस. सिक्योरिटी,

शीतयुद्ध की मानसिकता को बनाये रखते हुए कई विदेशी लेखक यह प्रस्तावित करते है कि विश्व की बहुध्रुवीय संरचना को वस्तुतः सोवियत संघ को सैनिक और राजनैतिक रूप से घेरने के लिए ही काम मे लिया जाना चाहिए। विलियम किटनर अपनी योजना का खुलासा करते हुए लिखते हैं—"एक बार पांच शक्तियों का विश्व उदित हो जाय तो इसकी अन्तर्निहित सुदृढ़ता के लिए तर्क संगति बिठायी जा सकती है। पहली बात तो यह है कि सोवियत संघ, और चीन प्रसारवादी शक्तियां हो सकती हैं। उनकी शत्रुता—उनके आपस के गहरे एवं व्यापक संघर्षों से उत्पन्न—ही पूर्ण रूप से समाप्त हो जाय तो बात अलग है, वर्ना उनकी महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाया जा सकता है। उन पर इसलिए भी अंकुश लगाया जा सकेगा कि दूसरे शक्ति केन्द्र पास ही स्थित हैं जैसे, पश्चिमी यूरोप जो सोवियत यूनियन के पास है, और जापान जो चीन और सोवियत संघ दोनों के पास है। द्विपक्षीय झगड़ों के खड़े होने पर, जैसे पश्चिमी यूरोप और सोवियत संघ, चीन और जापान या सोवियत संघ और जापान के बीच में, ऐसी स्थिति में दोनो अर्थात् पश्चिमी यूरोप और जापान के लिए यह विचारणीय प्रेरणा होगी कि वे संयुक्त राज्य अमरीका का अघोषित समर्थन प्राप्त कर सकें।"[1] इस प्रकार कोई भी आकृति बने, और कितने ही 'ध्रुव' उभरें, संयुक्त राज्य अमरीका को महान् 'निर्णायक पंच' होने का सम्मानजनक रुतवा स्वतः मिल जाता है, और सोवियत संघ की नियति संघर्षपूर्ण पक्षों में से एक होकर अत्यन्त विनीत भूमिका निभाने की बन जाती है।

वास्तव में 'बहुध्रुवीय' धारणा का उद्देश्य मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विश्व के दो सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओ वर्ग विभाजन के सिद्धात की जगह विभिन्न 'शक्ति केन्द्रों' के अस्तित्व के विषय में मनमाने प्रबन्ध के सिद्धांत को घोषणा है। उनके अनुसार ये शक्ति केन्द्र इस अवस्था में होंगे कि एक-दूसरे से लगातार संघर्ष मे रहेंगे और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय तनाव चलता रहेगा तथा शीतयुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का स्थायी प्रतिमान बन जाएगा।

पहली नज़र में यह एक भिन्न और विपरीत सूत्र प्रतीत होता है जिसने 'बृहत् राजनीति की धारणा को या 'अटलांटिक अन्त.निर्भरता' की रणनीति—जो सं० रा० अमरीका और पश्चिमी यूरोप में बहुत लोकप्रिय हो रही है—को उभारा तथा आगे बढ़ाया है। इस धारणा को प्रकट करने के लिए इसके लेखक बूर्ज्वा सिद्धांतकारों की सामान्य पद्धति का सहारा लेते है। कुछ उपलब्ध प्रक्रियाओ को

---

1. साल्ट—इम्लीकेशंस फॉर आर्म्स कंट्रोल इन द 1970—सम्पादित डब्लू० आर० किटनर और आर० एल० फाल्ट्जग्राफ़, जे० आर० यूनिवर्सिटी ऑफ पिट्सबर्ग प्रेस, 1973, पृ० 179

इकर लिखते है कि विश्व अर्थव्यवस्था को एक ऐसे संगठन के निर्माण की जरूरत है जो समूची मानवता के कल्याण मे रुचि रखता हो, और जो अपने खुद के लक्ष्यों का अनुसरण करते हुए दुनिया की सारी अर्थव्यवस्था के लिए काम कर सके। उसका विश्वास है कि ऐसा सगठन बहुराष्ट्रीय विश्व व्यवसाय संघ ही हो सकता है।

इसके साथ ही यह स्पष्ट है कि अमरीकी इजारेदारियाँ दुनिया मे सबसे अधिक शक्तिशाली होने के कारण सबसे ज्यादा दूरगामी योजनाओं को मन में रखती हैं। अमरीकी वैज्ञानिक सेयोम ब्राउन इस बिन्दु पर किसी सन्देह की गुंजायश नही छोड़ते। उनका विश्वास है कि विशाल इजारेदारियाँ, जिनमें प्रमुख अमरीकी इजारेदारियाँ हैं, विश्व राजनीति मे पहले से कही बड़ी भूमिका अदा करेंगी। और अधिराष्ट्रीय सम्पर्कों की एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करेंगी जो कि अन्य कड़ियों तथा राज्यों को अपने अधीन बना लेंगी।[1]

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर इसी प्रकार के विचार एक अन्य अमरीकी अध्येता प्रोफेसर रिचर्ड स्टर्लिंग ने, जो 'मैक्रो पालिटिक्स : इंटरनेशनल रिलेशंस इन ए ग्लोबल सोसायटी' पुस्तक के लेखक भी हैं, ने प्रकट किए हैं। वह कठोरता से, और बहुधा औचित्यपूर्ण ढंग से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में ताक़त के उपयोग की धारणा की आलोचना करते हैं। वह लिखते हैं—"राजनीतिज्ञ की सर्वोच्च कुशलता हिंसा का प्रबन्ध करना नही है लेकिन ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना है जिनमे हिंसा की संभावना न्यूनतम हो।"[2] वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सिद्धान्त एवं व्यवहार को संचालित करने वाले दृष्टिकोण के रूप मे सूक्ष्म राजनीति के विस्थापन की चर्चा यह कहते हुए करते हैं कि इस प्रकार के लक्ष्यों की पूर्ति उतनी ही महत्वपूर्ण और युगांतरकारी होगी जितनी (भौतिकी के क्षेत्र मे) कापरनीकस द्वारा की गयी क्रान्ति।

स्टलिंग पूंजीवादी देशों की 'विश्वस्तरीय एकजुटता' के विचार को प्रत्यक्षतः वस्तुगत वैज्ञानिक फ़ार्मूलों का जामा पहनाते है जबकि रोबर्ट क्लीन स्पष्ट शब्दों में इसके राजनैतिक सार को उद्‌घाटित करते है। इस तथ्य पर अफ़सोस व्यक्त करते हुए कि अमरीका की सैन्य शक्ति का क्षय प्रारम्भ हो गया है, वह इस स्थिति के निदान के लिए संयुक्त राज्य के नेतृत्व में एक नये सैन्य गठबंधन—जिसमें कनाडा, यूनाइटेड किंगडम, एफ़० आर० जी० (जर्मन गणसंघ), फ्रांस, इटली, नीदरलैंड्स, इज़रायल, जापान, ताईवान, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड शामिल हों—का निर्माण प्रस्तावित करते हैं। क्लीन का विश्वास है कि इसमें मैक्सिको, स्पेन, ईरान, टर्की, मिस्र, सऊदी अरब, भारत, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, सिंगापुर, दक्षिणी कोरिया, ब्राज़ील, नाईजीरिया और दक्षिण अफ्रीका भी इसमे सम्मिलित हो सकेंगे। यह स्पष्ट नही है कि वह दक्षिण अफ्रीका पर ही आकर क्यों रुक गये तथा इस सूची मे उन्होंने अन्य दो दर्जन देशो के नाम क्यों नही जोड़ दिये, किन्तु यह एकदम स्पष्ट है कि वह शीत युद्ध की अवधि की विश्व आधिपत्य की अखिल अमरीकी नीति को वह चमका-दमका कर प्रस्तुत करना चाहते हैं।

इस प्रकार अपने आधारभूत लक्ष्यों की दृष्टि से 'वृहत् राजनीति' या 'परस्पर निर्भरता' की अवधारणा सार रूप में 'बहुध्रुवीय' विश्व के प्रति रूपों के साथ मेल खाती है। यहाँ हमें एक ऐसी इच्छा का आभास मिलता है जो पूंजीवादी देशों और नवस्वतंत्र राज्यों के एक समूह के निर्माण के उद्देश्य को समर्पित है: सं० रा० अमरीका के नेतृत्व मे तथा सोवियत सघ और समूची समाजवादी दुनिया के प्रतिरोध के लिए।

वैचारिक संघर्ष या मनोवैज्ञानिक युद्ध

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बूर्ज्वा चिंतन के कुछ प्रतिनिधि, वे जो अभी तक पुराने दकियानूसी विचारो से चमत्कृत है, शीतयुद्ध के ध्वस्त गढ़ों की मरम्मत करने के मौक़े की तलाश में है। वे अन्तर्राष्ट्रीय तनावशैथिल्य के प्रतिरोध के लिए अंतर्राष्ट्रीय संबंधो के पूर्णतया भिन्न पैटर्न प्रस्तुत करते है। साथ ही, अन्य पश्चिमी सिद्धान्तकार तथा राजनीतिज्ञ तनावशैथिल्य के झंडे के नीचे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं तथा इस प्रकार 1950 और 1960 के दशको के कम्युनिस्ट विरोधी छद्म-उदारवादी रुझान को कायम रखने की फ़िराक में है।

भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओ के देशों के बीच में व्यापक संपर्क कायम करने के नाम पर इस रुझान के पोषक तनावशैथिल्य की प्रक्रिया [illegible]
हितो के पक्ष में व्याख्यायित करने की कोशिश करते है। [illegible]
नियतिवाद' और 'दो व्यवस्थाओ के अभिसरण' [illegible]

अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों व सहयोग का फैलाव उनके लिए पूंजीवादी और समाजवादी विश्वों के बीच की वर्ग-विभाजक रेखा को काटने तथा समाजवादी देशों के भीतर अपने सैद्धान्तिक प्रभाव को जमाने के साधन मात्र हैं।

विल्हैल्म ग्रेव—जो जर्मन गणराज्य के भूतपूर्व चांसलर कोनरड एडिनावर के भूतपूर्व सहायक थे तथा जो शीतयुद्ध के उत्साही प्रचारक थे—टिप्पणी करते हुए कहते हैं—"आगे चलकर तनावशैथिल्य की नीति संशोधित लक्ष्यों और तरीकों की ओर संक्रमण का प्रतिबिंब बन जाती है : वह उन सारे अल्पकालिक प्रयासों की अस्वीकृति है जो पूर्वी यूरोप के जनगणों को कम्युनिस्ट शासनतंत्र से मुक्ति दिलाने के लिए किए जाते हैं···। यह आवश्यक है कि पूर्वी ब्लॉक में आंतरिक परिवर्तन की दीर्घकालिक प्रक्रियाओं की ओर मुड़ा जाय, जिसके दौरान पूर्वी राज्यों की सामाजिक-राजनैतिक प्रणाली के क्रमिक पुनर्गठन की दृष्टि से हरसंभव सहायता दी जायगी।"[1]

समाजवादी समुदाय में राजनैतिक विकृति पैदा करने की दूरगामी योजनाओं के अनुसरण में, और इसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की समूची प्रणाली की विकृति में, पश्चिमी रणनीतिज्ञ प्रमुखतः राष्ट्रवाद पर भरोसा करते हैं। यह मात्र संयोग नहीं है कि हाल के वर्षों में अमरीका तथा अन्य पूंजीवादी देशों में बहुत से विदेश नीति विशेषज्ञ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में, खास कर तनाव-शैथिल्य के क्षेत्र में, बार-बार राष्ट्रीय कारक की ओर मुड़ते रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के इतिहास के ब्रितानी प्रोफ़ेसर एफ़० एच० हिंस्ले ने एक पुस्तक प्रकाशित की: 'राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था' लेखक की राय में राष्ट्रवाद ऐतिहासिक विकास की प्रमुख संचालन शक्ति है। अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य के आलोक में इस सिद्धान्त का उनका विश्लेषण, काफ़ी दिलचस्प है।

पूंजीवादी विद्वानों के बहुमत से अलग हट कर, हिंस्ले राष्ट्रवाद को एक ऐतिहासिक श्रेणी के रूप में देखते हैं, किन्तु अन्य विद्वानों की तरह वह भी राष्ट्रवाद की सामाजिक वर्ग-प्रकृति को दृढ़तापूर्वक नकारते हैं। इस बात पर ज़ोर देते हुए कि किसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था के समाज में, अगर वह अत्यधिक विकसित है तो, राष्ट्रवाद अन्तर्निहित होता है, वह अपने इस सिद्धान्त का विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की सीमा तक कर देते है। इससे भी बढ़कर वह राष्ट्रवाद को शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के घटक के रूप में चित्रित करते हैं क्योंकि उनका मानना यह है कि व्यक्तिगत, राष्ट्रीय हितों के सही, मूल्यांकन को सामान्य सूचकांक के रूप में घटित कर दिया जाय तो, इससे 'शक्ति संतुलन' पैदा होने के

---

1. विल्हैल्म जी० ग्रेव, 'स्पेल डेर क्राफ्ट इन डेर वेल्ट पोलिटिक, थ्योरी अंड प्रैक्सिस डेर इटरनेशनालेन दे जी हुगन, डूसैलडोर्फ, वीन,' 1970, पृ० 614

कारण, यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सुदृढ करता है।[1]

हिंस्ले तनावशैथिल्य का अपने ही तरीके से पक्ष लेते है। उनका कहना है कि समकालीन युग मे "इतिहास मे पहली वार उनके (आणविक शक्तियो के) पास इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नही कि वे, अपने स्वयं के बीच हो सकने वाले आगे के युद्ध से अपने आपको इसलिए अलग रखे ताकि काबू न की जा सकने वाली हिंसा को टाला जा सके।"[2] लेकिन वह यह नही मानते कि इस उद्देश्य को भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओ वाले राज्यो के शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है, तथा उनका दावा है कि समस्याओ का समाधान राष्ट्रीय हितों —जो उनकी दृष्टि मे असपृक्त एवं आत्मनिर्भर शक्ति है—पर सर्वाधिक ग़ौर करने पर निर्भर करता है।

अतः, निकट से जाँच करने पर हिंस्ले का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रतिरूप जो राष्ट्रवाद के झंडे के तले दुनिया मे सामाजिक-राजनीतिक यथास्थिति बनाये रखने के प्रयास का ही दूसरा नाम है।

पिछले दिनों पश्चिम मे एक अन्य सिद्धान्त जो व्यापक रूप से प्रचारित हुआ है वह यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय तनावशैथिल्य और 'दुनिया की राजनीति के विसैनिकीकरण' के माध्यम से ही अन्ततः 'विराजनैतिकीकरण' हो सकता है। उदाहरण के लिए, इसी प्रश्न की जाँच सेयोम ब्राउन की पुस्तक 'विश्व राजनीति मे नई शक्तियाँ' मे की गई है। लेखक इस मान्यता को लेकर आगे बढता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की नई व्यवस्था जो 'शीतयुद्ध के भूराजनैतिक और सैद्धान्तिक आधारो की समाप्ति की परिस्थितियों में' फिलहाल नई शक्ल धारण कर रही है, पूर्ववर्ती द्विध्रुवीय व्यवस्था से समुचित रूप से भिन्न होगी, प्रमुखतया उसके बहुकेन्द्रवाद की दृष्टि से उन्होने लिखा—"अटलांटिक के दोनों ओर तथा जापान के राजनेताओं के सामने यह सिद्ध हो चुका है, कि 1950 के दशक का जकडबंद गठबंधनों का प्रतिरूप बेटिकाऊ है और 1960 के दशक के ढीले-ढाले सम्बन्ध भी बहुत से मुद्दों पर छिन्न-भिन्न हो रहे है। गठबंधन अधिकाधिक एक बड़े जाल में रूपांतररित हो रहा है जिसमें शत्रुतापूर्ण और सहयोगपूर्ण सम्बन्ध आपस में एक-दूसरे को काटते रहते है। और यह जो बाद वाला लक्षण है वह आगे बढकर कम्युनिस्ट क्षेत्र के बाहर की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की धुन को परिभाषित और व्यवस्थित करता है।"[3] ब्राउन की मान्यता है कि कम्युनिस्ट विश्व भी उसी अपकेन्द्रीय प्रवृत्ति से कमोवेश

---

1. एफ़.-एच. हिंस्ले, 'नेशनलिज्म एंड दि इंटरनेशनल सिस्टम, लदन, सिडनी, ऑक्लैंड, टोरन्टो, 1973, पृ० 147
2. वही, पृ० 154
3. सेयोम ब्राउन, 'न्यू फोर्सेज इन वर्ल्ड पालिटिक्स', पृ० 44

मात्रा में प्रभावित होता है।

तब शीतयुद्ध की अवधि के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की व्यवस्था की जगह कौन-सी प्रणाली लेगी? नहीं, यह बहुध्रुवीय विश्व नहीं होगा जिसमें अधिक तथा कम मजबूती वाले 'शक्तिकेन्द्रों' का सम्मिश्रण हो। ब्राउन की राय में यह एक ऐसा विश्व होगा जोकि विभिन्न मुद्दों के इर्द-गिर्द बने विभिन्न गठबंधनों (एक-दूसरे को काटते हुए) से निर्मित होगा, एक प्रकार का "बहुतन्त्र जिसके प्रति समर्थन व निष्ठा व्यक्त करने में राष्ट्र-राज्य, उपराष्ट्रीय दल और पारराष्ट्रीय विशेष हित और समुदाय आदि सब आपस में होड़ करेंगे, तथा इसके अन्तर्गत विरोधों का समाधान, परिवर्तनशील शक्ति-सम्बन्धों के संदर्भ में अस्थायी सौदेबाज़ी के आधार पर होगा।"[1] इस प्रकार की तार्किकता का सैद्धान्तिक पूर्वाग्रह स्पष्ट है। दरअसल, यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की 'विसैद्धांतिकीकरण' वाली धारणा की एक नई व्याख्या मात्र है तथा इसे असंदिग्ध रूप से राष्ट्रीय रंग दे दिया गया है।

पूँजीवाद और समाजवाद के वर्ग विभाजन को धुँधलाने के लिए बूर्ज्वा सिद्धांतकार इन दिनों खासतौर से उन तथाकथित सार्वभौम समस्याओं के बारे में अटकलें लगा रहे हैं जो प्रायः कृत्रिम रूप से भड़कायी हुई भावुकताओं के लिए आधारवस्तु बन जाती है। और यहाँ आकर दोनों—खुले कम्युनिस्ट-विरोधी और पूँजीवादी चिंतन में उदार-समीक्षात्मक रुचि वाले—चिंतक प्रतिनिधि बड़े चाव से 'आधुनिक सभ्यता' के पापों का भंडाफोड़ करने वालों की भूमिका अदा करते हैं। वे मानवता की उन विनाशों से रक्षा करने के लिए तैयार रहते है जो परिस्थिति-जन्य संकट, जनसंख्या विस्फोट, अति शहरीकरण इत्यादि के द्वारा पैदा होते हैं। इन तथा इसी तरह की अनेक अन्य समस्याओं को उनके ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ से काट दिया जाता है तथा बूर्ज्वा प्रचारतंत्र द्वारा अतिशक्तिपूर्ण तरीके से इन्हें अधिराष्ट्रीय अधिसामाजिक स्वरूप वाली प्राकृतिक विपदाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ये ही दलीलें इसलिए काम में ली जाती हैं कि समाजवाद को सैद्धांतिक आधार पर पूँजीवाद के साथ समझौता करने के लिए प्रभावित और प्रेरित किया जा सके और वह भी इस बार हमारे ग्रह को बचाने के बहाने से। सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देश इस बात के लिए लांछित किए जाते है कि उनमें सैद्धांतिक 'पूर्वाग्रह', 'असहनशीलता' तथा मानवता को एक ऐसे समय 'विभाजित' करने की प्रवृत्ति है; जब उसे एक करने की आवश्यकता है चाहे सामाजिक व्यवस्थाओं में भिन्नता की उपेक्षा भी करनी पड़े, ताकि, उनके कथनानुसार विनाशकारी प्राविधिक विकास से उत्पन्न होने वाले समान खतरों से संघर्ष किया जा

---

1. सेयोम ब्राउन, उपरोक्त, पृ० 186

सके। अतः यह सूत्र 'समभिमुखता' सिद्धात की ही वह नई किस्म है जो 'विसैद्धाति-कीकरण' के समर्थन मे नई दलील के रूप मे काम करने के लिए प्रस्तुत की जाती है।

किन्तु शायद अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो का कोई दूसरा ऐसा पहलू नही है जो कि प्रचार की व्यापक अटकल बाजियो का उस सीमा तक विलय हो जितना कि अंत-र्राष्ट्रीय सपर्को का व्यापक होना तथा सूचना का आदान-प्रदान है। प्रायः काफ़ी समाजवाद के विरोधी प्रायः यह काल्पनिक विश्वास पैदा करते हैं कि पश्चिमी शक्तियाँ समाजवादी विश्व के साथ सभी प्रकार के सपर्को का विस्तार करना चाहती है; लोगों और विचारो के एक 'स्वतंत्र' विनिमय के वे पक्ष मे है। समाज-वादी देशों, जिन्हे 'बंद समाज' कहा जाता है, पर उसका विरोध करने का आरोप लगाया जाता है। यही कारण है कि समाजवादी देशों पर दवाव बढ़ाने की अपीलें की जाती है ताकि वहाँ की आवादी को, अन्तर्राष्ट्रीय तनावशैथिल्य के झंडे के नीचे लाकर, पश्चिमी विचारधारात्मक मूल्यो को आत्मसात करने का प्रेरित किया जा सके।

फिर भी, इस प्रश्न पर सोवियत संघ का दृष्टिकोण नितात स्पष्ट है जिसमे निरी अटकलबाजो के लिए को स्थान नही है। लियोनिद् ब्रेझनेव ने इस विषय में कहा—"यह अक्सर सुनने मे आता है कि पश्चिमी देश सास्कृतिक क्षेत्र में सहयोग को महत्त्व देते हैं, और खासतौर पर विचारों के आदान-प्रदान, सूचना-प्रसार और राष्ट्रों के बीच संपर्क को विशेप महत्त्व देते है। हमे अपने तहेदिल से यह घोषणा करने की इजाजत दें, कि हम भी इसके पक्ष मे हैं, बशर्ते यह सहयोग एक-दूसरे की संप्रभुता, कानून और उसके रीति रिवाजो के प्रति सम्मान रखकर कायम किया जाय तथा इसमे की जनगणो पारस्परिक आध्यात्मिक समृद्धि, पारस्परिक विश्वास तथा शांति के विचारो और अच्छे-पड़ौसीपन की भावना को बढावा मिले।"[1]

यह दृष्टिकोण भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के राज्यों के बीच लेनिन की शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति से ही उभरा तार्किक रूप है। यह समकालीन सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रो—अर्थव्यवस्था, राजनीति एवं विचारधारा—को अपने में समेटता है तथा उनके विशेष लक्षणों को भी प्रतिविंवित करता है। आर्थिक क्षेत्र मे कारगर सहयोग के विकास की आधारशिला रखना पारस्परिक लाभ का सिद्धांत है। राजनीति मे इसका मुख्य लक्षण एक-दूसरे के मामलों में अहस्तक्षेप का है; प्रत्येक देश के स्वाधीनता के सप्रभु अधिकार के प्रति सम्मान रखना ताकि वह बिना किसी बाहरी दबाव के अपनी घरेलू समस्याएँ सुलझा सके। विचारधारा के

1. एल. आई. ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण', मास्को, 1975, पृ० 90-91

क्षेत्र मे—जहां समझौते के लिए कोई गुंजायश नही है—'शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का अर्थ है। व्यापक सास्कृतिक सहयोग, सूचना का आदान-प्रदान और प्रत्येक देश की सप्रभुता तथा सभी जनगणो के रीति-रिवाजो के प्रति आपसी सम्मान के आधार पर विभिन्न सपर्क।

सोवियत संघ और अन्य सामाजवादी देश न तो अपनी विचारधारा और न ही अपनी सस्कृति को किसी अन्य पर थोपते हैं, किन्तु वे अनिवार्यतः इस पक्ष में हैं कि सारी मानवता की पहुंच के भीतर सास्कृतिक मूल्यो को लाया जाय। वही एक केन्द्रीय और अत्याज्य शर्त है जो विश्वप्रगति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा का उत्स है, क्योंकि सच्ची संस्कृति दूसरे देशो के सांस्कृतिक क्रिया व्यापार, प्रगति और परंपराओ को दवाती नही है, वल्कि उन्हे समृद्ध करती है, वह लोगो को आपस मे विभाजित नही करती, अपितु उन्हे निकटतर लाती है।

दुनिया मे ऐसा दूसरा कोई भी देश नही है जहाँ चिंतन और संस्कृति सम्बन्धी सभी लोगो की सर्वकालिक सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियो को इतना ऊँचा मूल्यांकन प्राप्त हो तथा उनका इतना व्यापक प्रसार किया गया हो जितना कि सोवियत संघ मे हुआ है। दुनिया के प्राचीन आदर ग्रथ और समसामयिक रचनाएँ सोवियत सघ मे करोडो प्रतियो के संस्करणों मे छापी जाती है। सोवियत नाट्य-गृहों के रंगमंचो पर अनेक विदेशी लेखकों के नाटक खेले जाते है, देश के सिनेमाओ और टी० वी० पर दुनिया के जाने-माने कलाकार और मचीय व्यक्तित्व प्रदर्शित होते हैं। सोवियत सघ मे तथा अन्य समाजवादी देशो मे अन्तर्राष्ट्रीय सूचना के आदान-प्रदान व जनगणों के पारस्परिक संपर्क को प्रोत्साहित किया जाता है। केवल सन् 1975 मे ही 580 लाख से अधिक विदेशी यात्रियों ने पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के सदस्य राज्यों की यात्रा की और लगभग 350 लाख समाजवादी समुदाय के लोगों ने विदेशी राज्यों की यात्राएँ की। अतः 'बंद समाज' की चर्चा का क्या अर्थ हो सकता है ?

जून सन् 1976 मे यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो के सम्मेलन मे लियोनिद् ब्रेझनेव ने कहा था—"नही, समाजवादी देश एक 'बंद समाज' नही है, हम प्रत्येक सच्चे और ईमानदार व्यक्ति के लिए खुले हैं, और हम हर प्रकार से संपर्क का विस्तार करने के लिए तैयार है, तनावशैथिल्य की अनुकूल परिस्थितियो का उपयोग करने मे अग्रणी हैं। किंतु युद्ध, हिंसा, जातिवाद और घृणा को प्रचारित करने वाले प्रकानों के लिए हमारे दरवाजे हमेशा बंद रहेगे। और इससे भी अधिक विदेशी गुप्तचर सेवाओं के सदेशवाहकों और उनके द्वारा खड़े किये किये सोवियत विरोधी घुसपैठिये संगठनों के लिए भी ये हमेशा बंद रहेगे। संपर्कों की 'स्वतंत्रता' की चर्चा के वहाने पश्चिम ... कभी गंदी ... के लिए

स्वतंत्रता प्राप्त करने की कोशिश करते है।"[1]

अब यह स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय संपर्कों तथा सूचना के क्षेत्र में क्या स्थिति है। लेकिन सारत: इस सरल मुद्दे को अधिक-से-अधिक भ्रमपूर्ण बनाने की इच्छा की वजह से बूर्ज्वा प्रचार तंत्र प्राय: 'वैचारिक सघर्ष' और 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' की धारणाओं को एक साथ मिलाने की कोशिश करता है। प्रश्न को जितना सलीके से प्रस्तुत किया जाता है उतना ही वह अस्वाभाविक लगता है : या तो वह वैचारिक संघर्ष का परित्याग या 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' की निरंतरता। सिद्धांतत: इस प्रकार का प्रस्तुतीकरण दिवालियापन ही प्रदर्शित करता है *तथा व्यवहार मे वह किसी-न-किसी* रूप में जनगणों के बीच मे शान्ति और सहयोग की प्रक्रिया को नुकसान पहुँचाता है।

वैचारिक संघर्ष ऐतिहासिक प्रक्रिया की हमेशा एक वस्तुगत-घटनाक्रिया बनी रहेगी। यह तब तक अनिवार्य है जब तक कि विरोधी वर्ग कायम रहते है। किन्तु *यदि किसी के लिए यह सभव नही कि वह 'वैचारिक सघर्ष को समाप्त कर दे'* तो इसके लिए वे सरकारें और शासकीय राजनैतिक पार्टियां, जिनके ऊपर इसे अंजाम देने की जिम्मेवारी है, सोचें और चुनें कि उन्हे क्या साधन और कौन से तरीके काम में लेने होंगे। यह एक बात है कि विचारो का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, उनके लाभों को सिद्ध किया जाय और व्यावहारिक अनुभव को इस दृष्टि से फैलाया जाय कि जनमत को जीता जा सके (वैचारिक सघर्ष) तथा इससे पूरी तरह भिन्न बात यह है कि जनता को गलत सूचनाएँ दी जाएँ, दूसरे देशों को लाछित किया *जाय और उनकी वर्तमान व्यवस्था मे सैद्धातिक दृष्टि से तोड़-फोड़ की जाय* (मनो-वैज्ञानिक युद्ध)।

तनावशैथिल्य किसी भी रूप में वैचारिक संघर्ष के ह्रास का सूचक नही होता। यह नितांत आवश्यक है कि ऐसे ठोस सिद्धांत और निर्धारित किए जाएँ जो बिना-शर्त 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' के तरीकों को प्रतिबंधित कर दें क्योंकि मनोवैज्ञानिक युद्ध के इन तरीकों ने लम्बे समय से अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को जहरीला बना रखा है।

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य पूंजीवाद और मजदूर वर्ग की प्रकृति को और न उनके उद्देश्यों को ही संशोधित करता है। पूंजीवाद और समाजवाद के बीच का संघर्ष अनिवार्य है।

लियोनिद ब्रेझनेव ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस में इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया—"विश्व की घटनाओं और तनाव-शैथिल्य मे सकारात्मक

---

1 यूरोप में शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति के लिए, पृ० 16

परिवर्तन समाजवादी विचारों के व्यापक फैलाव के लिए अनुकूल अवसरों का निर्माण करते हैं। लेकिन, दूसरी ओर दो व्यवस्थाओं के बीच का वैचारिक मुकाबला पहले से कहीं अधिक तीखा, तथा साम्राज्यवादी प्रचार पहले से कहीं अधिक धूर्ततापूर्ण होता जा रहा है।"[1]

प्रतिक्रियावाद के अड़ियल प्रतिरोध के बावजूद विश्व में वैचारिक और राजनैतिक वातावरण लोकतांत्रिक शक्तियों के पक्ष में परिवर्तित हो रहा है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 24वीं कांग्रेस के निर्णयों के आधार पर सोवियत संघ द्वारा शक्तिशाली शान्ति प्रयासों के तेज किये जाने, शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा जनमुक्ति संघर्ष के लिए आगे का संघर्ष कार्यक्रम—सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस में स्वीकृत किया गया था—तथा सोवियत संघ द्वारा युद्ध शुरू किये जाने की सारी चर्चा की कलई खोल दी थी। इस परिस्थिति ने सोवियत-विरोध के सबसे महत्त्वपूर्ण वैचारिक मूलाधार—कम्युनिज्म की आक्रामक प्रकृति के बारे में प्रचारित मिथक—की धज्जियाँ उड़ा दी।

यह बहुत महत्त्व की बात है कि व्यापक जनमत के द्वारा समर्थित तनावशैथिल्य का मार्ग दुनिया भर मे राजनैतिक सक्रियता को प्रेरित और त्वरित करता है। नितात भिन्न सैद्धांतिक और राजनैतिक उन्मुखताओं से अधिकाधिक संयुक्त जनशक्तियाँ शान्ति के लिए विशाल और व्यापक संघर्ष में सम्मिलित हो रही हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक सचमुच की लोकतांत्रिक प्रणाली के निर्माण हेतु एक समान कार्यक्रम के आधार पर एकता कायम करने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे है। इसमे प्रतिक्रियावादियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक और राजनैतिक काम गहनता से जटिल बन जाता है, अर्थात् प्रतिक्रियावादियों द्वारा विकट राजनैतिक समस्याओं के समाधान मे जनभागीदारी को यथासंभव रोकने के काम और संयुक्त साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चे मे लोकतान्त्रिक शक्तियों की एकजुटता को भटकाने या बिखराने के काम को प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है।

साथ ही, दुनिया के मजदूर वर्ग की समझ मे यह आने लगा कि अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा राष्ट्रीय मुक्ति और सामाजिक प्रगति से अलग नहीं की जा सकती। व्यवहार मे दुनिया के सभी हिस्सों के नए जनगण इस बात से सहमत हो रहे हैं कि वास्तविक सतत शांति-असली लोकतांत्रिक आधार पर ही टिकी रह सकती है अर्थात् उन सिद्धांतों पर जिन्हें हमेशा कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों ने मान दिया है। इस सत्य की चेतना और सतर्कता उस व्यापक सिद्धांत को काट देती है, जिसे पूँजीवादी प्रचार ने बहुत वर्षों से इस्तेमाल किया है,

---

1. दस्तावेज और प्रस्ताव, सो स क पा की 25वीं कांग्रेस, पृ० 89

कि शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति की 'अंतर्विरोधी' प्रकृति और इसके शांति के नारों और वर्गीय क्रांतिकारी उद्देश्यों मे 'असंगति' है।

ये सब तथ्य समकालीन वैचारिक सघर्ष मे गम्भीर परिवर्तन पैदा करते है। इसके केन्द्र मे युद्ध और शांति, अंतर्राष्ट्रीय सबंध और भिन्न सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के प्रश्न है—यह एक ऐसा तथ्य है जिसे इस युग की नियमितता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। संसार के विकास की हरेक अवस्था एक या दूसरे प्रकार के सघर्ष को आगे बढा देती है अथवा एक विशेष समस्या को उपस्थित कर देती है जो अधिकतम मात्रा मे सारी मानवता के हितों से सम्बन्धित होती है। वर्तमान परिस्थितियो मे इस प्रकार का मुख्य मुद्दा शांति के लिए सघर्ष और आन्दोलन है जो प्रमुख रूप से सामाजिक प्रगति और मानवता के अस्तित्व की ही सभावनाओ को निर्धारित करता है। अतः यह स्वाभाविक है कि सबसे अधिक भयंकर वैचारिक सघर्ष इस पर लड़े गए है और लड़े जाते है।

तनाव-शैथिल्य के माध्यम से

तनाव-शैथिल्य की नीति ने अब तक जटिल अंतर्राष्ट्रीय समस्याओ को सुलझाने में कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया है। इससे इस सच्चाई की पुष्टि होती है कि हथियारों की दौड़, विरोधी पक्षो के किसी अस्थिर 'सतुलन' के निर्माण अथवा अंतर्राष्ट्रीय सबधो के 'सैद्धांतिकीकरण' के जरिए शांति की सुरक्षा और उसकी सुदृढ़ता के महान् कार्य को पूरा किया जा सकता, बल्कि यह सब भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धातों के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। समकालीन विश्व मे शक्तियो के वास्तविक सहसम्बन्ध को प्रतिबिंबित करते हुए मात्र यही सिद्धांत ऐतिहासिक प्रगति की महान् आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

बहुत बार पश्चिम मे इस प्रकार की बातें करने वाली आवाज़ों को सुना जाता है कि तनाव-शैथिल्य से पूँजीवाद की अपेक्षा समाजवाद को अधिक फ़ायदा पहुँचता है।

किन्तु वे इसे चाहे या न चाहे, यह दावा कम्युनिस्ट-विरोधियों द्वारा प्रसारित एक बुनियादी झूठ को ही उलट कर रख देता है, और वह है समाजवाद की तथाकथित आक्रामकता से संबंधित है। बहुत-से दशको तक पूँजीवादी सिद्धातकार सोवियत 'प्रसारवाद' और 'सोवियत ख़तरे' के बारे मे बढ़-चढ़कर बातें करते रहे। दर असल यह वही सिद्धात था जिसे ताकत के ज़ोरवाली स्थितियों की रीति और अनेक शीत-युद्ध के दौर की साम्राज्यवादी जगखोरी नीतियों को एक सैद्धांतिक दलील के रूप मे काम मे लिया जाता रहा। अब यह इस रूप में उलट गया कि

समाजवाद शांति के विषय में अधिक चिंतित है और वह पूँजीवाद से अधिक इससे फायदा उठाता है। अंतर्विरोध बिल्कुल स्पष्ट है।

कम्युनिस्टों ने अपनी शान्ति की इच्छा को कभी छिपाकर नहीं रखा है। इसके साथ ही उन्होंने हमेशा इस धारणा को बनाए रखा है कि शांति और अंतर्राष्ट्रीय तनाव शैथिल्य आवश्यक है और सारे ही राष्ट्रों के लिए फायदेमंद है। हेलसिंकी सम्मेलन के निष्कर्षों को आधार बनाते हुए, लियोनिद ब्रेझनेव ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि शांति का सुदृढ़ीकरण एक ऐसा उद्देश्य है जिसके लिए, न तो विजेता न ही पराजित, मैदान मारने वाले या मैदान खोने वाले महत्त्वहीन हैं। यह विवेक की जीत है। हरेक लाभान्वित होगा : पूर्व और पश्चिम के देश, समाजवादी और पूँजीवादी राज्यों के सभी लोग, चाहे गठबन्धनों में शामिल हों या तटस्थ, चाहे बड़े हों या छोटे। यह उन सबके लिए फायदेमंद है जो हमारे ग्रह पर शांति और सुरक्षा की भावना को अपने हृदय में धरोहर के रूप में बनाए रख रहे हैं।"[1]

यह वक्तव्य इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि मानवता का शांतिपूर्ण विकास, जो युद्ध का एक विकल्प है, केवल एक आकांक्षा ही नहीं है किन्तु वह इतिहास की एक आवश्यकता भी है और एक ऐसा उद्देश्य है जिसे प्राप्त किया जा सकता है। इसे अनवरत और दृढ़ उपायों की एक ऐसी ठोस योजना का स्वरूप दिया गया है, जो परिणामतः अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक नई प्रणाली का निर्माण कर सकती है और उसे करना चाहिए।

उदाहरण के लिए, हेलसिंकी के सुझावों और निष्कर्षों ने यूरोप के वातावरण को सुधारने के लिए बहुत कुछ किया। सम्प्रभु अधिकारों के प्रति पारस्परिक सम्मान और राज्यों की सीमा सम्बन्धी एकसूत्रता के प्रति आदर, जो हेलसिंकी सम्मेलन के भागीदारों की मूल भावना थी, ने उनके घरेलू और विदेशी मामलों में अहस्तक्षेप और शक्ति के उपयोग तथा धमकी के परित्याग आदि ने अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण पर अनुकूल प्रभाव डाला। सभी यूरोपीय राज्यों की सीमाओं की अलंघनीयता पर हुई सहमति ने यूरोपीय सुरक्षा को आश्वस्त करने में विशेष भूमिका अदा की। विज्ञान, प्रविधि, संस्कृति और कला के विभिन्न क्षेत्रों में बहुविध सहयोग स्वभावतः उपयोगी और लाभदायक है।

इस प्रकार हेलसिंकी सम्मेलन के पश्चात् का यूरोप यह जाहिर करता है कि शीतयुद्ध के अवशेष को समाप्त किया जा सकता है। इस प्रक्रिया का गहरा होना इस बात को संभव बना देगा कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में से पृथकतावाद और संदेह को दूर किया जा सके और ऐसा करना सारी मानवता को लाभ पहुँचाएगा।

1. एल० आई० ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण', मास्को, 1975, पृ० 582

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी सबसे बढ़कर इस बात को महत्व देती है कि राजनैतिक तनाव-शैथिल्य के लिए संघर्ष को जारी रखना इस दृष्टि से आवश्यक है कि तनावों की शेष स्थितियों को समाप्त किया जा सके, अन्तर्राष्ट्रीय विरोधों का न्यायसंगत हल प्राप्त किया जा सके तथा आपसी समझ और विश्वास को मजबूत किया जा सके। यह आवश्यक है। ब्रेझनेव ने कहा, "ससार में ऐसा वातावरण बनाने के लिए, जिसमें शक्तिशाली हमलावरो—जो तलवारें खीचने और दुःसाहस करने मे खुशी महसूस करते है—का मुकाबला करने के लिए प्रत्येक जनगण संकल्पबद्ध हो, तथा जिसमें विश्व के सभी भागो के अधिकाधिक जनगण के लिए शांति, सुरक्षा और एक शातिपूर्ण भविष्य में विश्वास एक यथार्थ बन जायेंगे।"[1]

इस समस्या का समाधान बहुत महत्वपूर्ण है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की नई व्यवस्था के निर्माण में सिर्फ पहली अवस्था है। आज गुणात्मक रूप से नए दौर की आवश्यकता जहाँ राजनैतिक तनाव-शैथिल्य का पूरक सैनिक तनाव-शैथिल्य हो तेजी के साथ व्यक्त हो रही है। हथियारों की दौड को समाप्त करना अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का अहम मसला बन रहा है, क्योकि मानवता और अधिक युद्ध के प्रसार तथा उसके भौतिक आधार के पुख्ता करने को सहन नही कर सकती। तनाव-शैथिल्य की आगे की प्रगति हथियारों मे कटौती और क्रमशः सार्वभौम और पूर्ण निःशस्त्रीकरण पर निर्भर करती है। लियोनिद ब्रेझनेव ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस को बताया—"आज, यह उद्देश्य पहले से कही बहुत बडा है।"[2]

इस दिशा मे पहलकदमी की जा चुकी है। तीन स्तरों में आणविक हथियारो पर प्रतिबन्ध लगाने की सन्धि पर हस्ताक्षर करने, उनका आगे उत्पादन न करने, रणनीतिक, सुरक्षात्मक और आक्रामक हथियारों के परिसीमन पर सोवियत-अमरीकी समझौतों का निष्कर्ष और आणविक युद्ध को रोकने, युद्धकारक आक्रामक हथियारो के परिसीमन पर नई सन्धि का प्रारूप तैयार करने पर सहमति और इसी प्रकार के दूसरे कामों को निःशस्त्रीकरण के मार्ग पर एक सफलतापूर्वक आरम्भ माना जा सकता है तथा यह एक अच्छा उदाहरण भी है कि इस जटिल और तात्कालिक आवश्यकता वाली समस्या को जिसने अपने आपको इससे पहले कभी मानवता के सामने भयंकर रूप से प्रस्तुत नही किया था किस प्रकार हल किया जा सकता है।

निष्कर्षतः, राजनैतिक और सैनिक तनाव शैथिल्य को आगे चलकर तमाम देशों के बीच समानता, सम्प्रभुता और एक-दूसरे के आतरिक मामलों मे हस्तक्षेप के आधार पर उपयोगी सहयोग की स्थापना करने की ओर अग्रसर होना चाहिए। यह इस प्रकार का सहयोग है जो उस अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की नई प्रणाली की मूल

1. एल० आई० ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण', मास्को, 1975, पृ० 547
2. दस्तावेज और प्रस्ताव, 'सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वी कांग्रेस', पृ० 27

अन्तर्वस्तु का निर्माण करता है जिसे सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी स्थापित देखना चाहती है।

यह सीधा किंतु शानदार परिदृश्य आर्थिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक सहयोग के लिए, सांस्कृतिक मूल्यों के आदान-प्रदान के लिए और आज की और भविष्य की विश्वव्यापी समस्याओं को सुलझाने हेतु संयुक्त प्रयासों के लिए भरपूर अवसर प्रदान करता है।

शांति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की यही सम्भावना है। किन्तु वर्ग-शांति से इसकी कहीं समानता नहीं है न यह और किसी भी प्रकार से, सिद्धांतों और राज्य की राजनैतिक प्रणालियों की मौलिक भिन्नताओं को मिटाती ही है। इसकी क्रियान्विति का यह क़तई अर्थ नहीं है कि मजदूर वर्ग का पूँजीवादी प्रणाली के दमन के साथ किसी भी प्रकार का समझौता या मेल हो जाय। इसके विपरीत यह एक वर्गहीन समाज के निर्माण के उनके वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जन-समुदाय को सर्वाधिक अनुकूल अवसर प्रदान करती है और इसके साथ ही ताप-नाभिकीय युद्ध की लपटों में अपने आत्म-विनाश की आशंका को दूर करती है।

इस सम्भावना को न पलटी जा सकने वाली सम्भावना होना है, क्योंकि यह इस समसामयिक युग की—जो मानवता के पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण का युग है—अन्तर्वस्तु को अभिव्यक्त करती है।

अध्याय : 11

भविष्य की दे

"सभी आदमियों की जिन्दगियों में होता है एक इति
युगों की प्रकृति को अंकित करते हुए; उसे समझकर को
भविष्यवाणी कर सकता है लगभग सटीक, घटनाओं के
की जीवन में अभी तक अघटित, जो अपने बीजों में,
प्रारम्भों में, पड़ी अन्न पोषित !
काल इन घटनाओं को सेता है···जन्म देता है···"

—विलियम शेक्सपीयर—'हेन्री

नहीं किया गया तो। एक वस्तुगत और सर्वग्राह्य अर्थात् वैज्ञानिक पूर्वानुमान से सामाजिक प्रगति को अलग नहीं किया जा सकता। आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि भविष्यवाणी करने की सामर्थ्य अर्जित की जाय और आज के लिये हुए निर्णयों के सम्भावित परिणामों का लेखा-जोखा लिया जाय।

इसका मतलब है कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति के युग ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि जिसमें लोगों के लिए यह लाजिमी हो गया है कि वे न केवल भूत और वर्तमान के आधार पर भविष्य का नक्शा तैयार करें, अपितु भविष्य की अपनी पूर्वदृष्टि के आधार पर वर्तमान को परिभाषित करें। मानवता की वैज्ञानिक एव प्राविधिक क्षमताएँ इतनी विशाल हो चुकी है कि उनकी अधिकतम एवं निरापद सिद्धि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन गया है।

निस्सन्देह, यह प्रश्न भूतकाल में भी उपस्थित हुआ था, लेकिन उतना तीव्रता के साथ पहले कभी सामने नहीं आया था, जितना कि आज, क्योंकि मनुष्य पहले कभी इतना शक्तिशाली नहीं था जितना कि वह आज है। दूसरी तरफ़, दशकों और सदियों मे फैले हुए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन ने कई पीढियों के जीवन को अपने में समेट लिया। इसके बदले में इसने व्यक्तियों के सामाजिक उत्तरदायित्व को उनके वंशजों की तुलना में कम कर दिया। अपनी सक्रियता से सीधे आर्थिक फायदे हासिल करने की शीघ्रता में हमारे समय से पूर्व के लोगो ने इस तथ्य पर कोई ध्यान ही नहीं दिया कि उनकी भूलों और उनके त्रुटिपूर्ण अनुमानों की कीमत आखिर भावी पीढ़ियों को चुकानी पड़ेंगी। सदियों बाद उक्त क्रियाकलाप के परिणाम मानवता पर प्राकृतिक विपत्तियों के समान आ पड़े। फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता' मे लोगो के ऐसे क्रियाकलापों के अप्रत्याशित परिणामों के कई उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जोकि उन्होने मात्र तत्काल फल प्राप्ति की क्षणिक प्रेरणा के वशीभूत होकर किये थे।

"उन लोगों ने, जिन्होंने मैसोपोटामिया, ग्रीस, एशिया माइनर में तथा अन्यत्र जगलो को इसलिए नष्ट कर दिया था कि उन्हें उपजाऊ जमीन मिल जाय, कभी स्वप्न मे भी नही सोचा था कि वे इन देशो की मौजूदा दयनीय स्थिति की आधार-शिला रख रहे थे।...वे जिन्होंने यूरोप मे आलू फैलाया यह नही जानते थे कि इन माँड़युक्त कन्दों के साथ वे गंडमाला भी फैला रहे हैं।...जब अरबों ने स्पिरिटों का भबका लगाना सीख लिया, यह उनके मस्तिष्कों मे नही आया कि ऐसा करके वे उस समय तक अज्ञात अमरीकी महाद्वीप की आदिवासी जातियो के जन-सहार के हथियारों में से एक प्रमुख हथियार का निर्माण कर रहे हैं।"[1]

इसका परिणाम यह होता है कि सीधा भौतिक लाभ उठाने की फिराक में

---

1. एंगेल्स, 'प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता', मास्को, 1976, पृ० 180-81

लोगों ने, केवल प्रारम्भिक और स्पष्टतम परिणाम पर ही ध्यान देकर, इस आदिम सिद्धान्त को ही निर्देशक आधार बनाया था कि "मेरे जीवन भर के लिए काफ़ी है", तथा इसे सहजवृत्ति से स्वीकार कर लिया था।

समकालीन युग इस दर्शन को हमेशा के लिए उलट देता है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति, जो समाज के विकास को एक असाधारण मात्रा मे बढा रही है, ने मानवता को इन्कलाबी तूफान के बीच मे डाल दिया है—जैसा कि अमेरिकन विद्वान् एल्विन टॉफ़लर का मानना है। एक बार जिसके प्रकट होने मे सदियाँ लग जाती थी, अब उसी के व्यवस्थित होने मे दशक या केवल कुछ वर्ष ही लगते हैं। लोग तेजी से यह जानने लगे है कि वे स्वय, न कि उनके वंशज, अपने क्रियाकलाप के फलो का भोग करेंगे।

हेगेल ने एक बार यह विचार प्रकट किया था—"विश्व-इतिहास मे यह अवसर घटित होता है कि सामान्यतया मानवीय क्रियाकलाप से भिन्न परिणाम भी उत्पन्न होते है, बजाय उनके जिन्हें कि लोग हासिल करना चाहते हैं और दर-असल जिन्हे हासिल करते हैं, बजाय उन परिणामों के जिन्हे वे सीधे तौर पर जानते हैं और उनके जिन्हें वे चाहते हैं; वे अपने हितो को प्राप्त करने की व्यवस्था कर लेते हैं, किन्तु इससे और आगे के नतीजो को भी पैदा करते हैं—ऐसे जो उनमे छिपे हुए थे, किन्तु जिसके विषय मे उन्हे अन्दाज तक नही था और जो उनकी योजनाओं में ही निहित नही थे।"[1] यह आधार वाक्य कुछ अर्थ रखता है जो किसी भी अर्थशास्त्री, परिस्थिति वैज्ञानिक, समाज-वैज्ञानिक आदि के लिए स्पष्ट होना चाहिए, खास कर आज के समकालीन गतिशील युग के आलोक मे तीव्र गति से हो रहे विश्व-विकास तथा मनुष्य की बढी हुई शक्ति की स्थिति मे लोगों ने अपने क्रियाकलाप में वह भी देखना प्रारम्भ कर दिया है 'जोकि उनमे छुपा हुआ है'—उनकी प्रारम्भिक योजनाओ में जो परिणाम सम्मिलित नही होते।

इन परिस्थितियों मे भविष्य में अभिरुचि को मौजूदा कार्य व्यापार की अन्तिम स्वीकृति के रूप में मान लेने की बात अब अटकलबाजी का प्रश्न नही रहा और सबसे बढकर वह प्रतिदिन की जिंदगी के लिए व्यावहारिक महत्त्व का आर्थिक मुद्दा बन चुका है। हमारी दुनिया मे जबरदस्ती घुसकर सामाजिक-आर्थिक तथा वैज्ञानिक शिखर पर बैठा भविष्य, एक प्रकार से, समकालीन पीढ़ियो को अपनी तथा आगे आने वाली पीढ़ियो, दोनों की, नियतियों की सामाजिक रूप से जिम्मेवारी सौंपता है।

---

1. हेगेल, 'फिलासाफी डर जेशिष्त', खड 2, स्टुगर्ट 1928, पृ॰ 56-57

जर्मनी के विद्वानों, हेगेन वेनहॉर और अर्न्स्ट श्माक ने लिखा—"जिस दुनिया में हम रहेंगे, कोई 'प्रतिश्रुत भूमि' नहीं होगी। यह सोचना अक्षम्य भ्रम होगा कि भविष्य के कई सकारात्मक पहलू, जो हमारे सामने 1970 के दशक की देहलीज़ पर प्रकट हो रहे है, हमारे कामो और फैसलों के लिए हमें जिम्मेवारी से बरी कर सकते है। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम विज्ञान एवं प्रविधि के द्वारा दिये गये अवसरो का लाभ उठाने के लायक भी रहेगे कि नहीं। भविष्य प्रत्येक व्यक्ति, समूह, राज्य और राष्ट्र को समान रूप से ज़िम्मेवार बनाता है।"[1] यहाँ स्वाभाविक रूप से हम यह जोड़ना चाहेंगे कि हमारे समय में भविष्य के विषय मे चिंतन पहले से कही अधिक बड़े आयाम प्राप्त कर रहा है। पहले की तुलना मे कही अधिक पक्ष इसमे निहित है तथा यह निरन्तर जटिल बनता जा रहा है। यह चिंतन प्रमुखतया सामाजिक समस्याओ पर केन्द्रित है।

भविष्यविज्ञान एवं विचारधारा

सन् 1817 मे जब रौबर्ट ओवन[2] ने—जो एक 46 वर्षीय सफल कारखानेदार उत्पादक थे, जिन्हें लन्दन के सर्वाधिक विशिष्ट घरानों में जिनमे बकिंघम पैलेस भी सम्मिलित है, सम्मान दिया जाता था—'टाइम्स' के पृष्ठों के माध्यम से और उस शहर की मीटिंगों में, जो शहर व्यापारिक दुनिया का हृदय था, अपने कम्युनिस्ट कल्पना लोक की घोषणा की थी, तो उसे व्यापक प्रचार मिला, किन्तु व्यावसायिक समुदाय ने उसकी योजना को आकस्मिक पागलपन की एक क्रिया मात्र माना।

यह नया डॉन क्विक्ज़ोट कौन था? एक भद्र और उदार हृदय व्यक्ति, या एक ऐसा व्यवसायवादी जो लोगों की आत्माओं के ऊपर प्रसिद्धि और शक्ति की अपनी प्यास को शात करना चाहता हो? या एक पागल आदमी जिसने अपने आपको खुदा या एक पैगम्बर के रूप मे कल्पित कर लिया हो? व्यवसायी दुनिया ने स्वयं को असमंजस मे पाया। इसमे आश्चर्य की बात थी ही क्या? बुर्ज्वा वर्ग तब एक उभरता हुआ वर्ग ही था, अभी तो ठीक अपनी क्षमताओ का दोहन शुरू

---

1. हेगेन एच० वेनहॉर/अनर्स्ट श्माक, 'फ़ाहर प्लान इन डाई जुकुनफ्त डाइजेस्ट', 1970, पृ० 11
2. रावर्ट ओवन—उस कल्पनावादी समाजवाद के संस्थापक जो एक सामाजिक शिक्षा के रूप में मार्क्सवाद के सैद्धांतिक स्रोतो मे से एक था। पूंजीपति उत्पादक ओवन ने अपने कारखाने मे कुछ प्रगतिशील सुधार लागू करने की कोशिश की। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने आगे मान लिया कि मज़दूरो की दशा सुधारने के लिए केवल सुधार लागू कर देनी ही काफी नहीं है बल्कि जीवन की सारी प्रणाली का पुनर्गठन आवश्यक है।

ही कर रहा था। उत्पादन करो, उत्पादन करो और फिर बार-बार उत्पादन करो : उन दिनों मे बडे व्यापार का यही आधारभूत सिद्धान्त था तथा व्यापारी-वर्ग वर्तमान मे इतना तल्लीन था कि भविष्य के बारे मे वह सोच ही नही सकता था। उसके फलस्वरूप तमाम पूर्व कथनो और भविष्यवाणियों को समय की बरबादी समझा जाता था तथा यह माना जाता था कि उनका निजी उद्योग के हितो के साथ कोई सम्बन्ध नही था। ओवन के विचारों को गम्भीरता से नही लिया गया, मानो वे किसी स्वप्नदृष्टा या पागल आदमी के अनर्गल प्रलाप हो।

स्थितियां बदल चुकी है, तथा कोई आधुनिक व्यापारी विशुद्ध राजनैतिक मामलों और सामाजिक जीवन के व्यापक क्षेत्रों, दोनो मे आँखे मूंदकर या भविष्य-कथनो की उपेक्षा करके व्यवसाय करने को पागलपन ही मानेगा। दीर्घकालिक पूर्वकथन प्रतियोगितात्मक संघर्ष का एक हिस्सा है जो इजारेदारियो के क्रिया-कलापो में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक रुझानो का मूल्याकन और आगे की सम्भावनाओं का पूर्वानुमान एक साधन है जिसके आधार पर अनुकूल अवसरो का उपयोग किया जाता है तथा जहां कही सम्भव हो, अप्रत्याशित स्थितियों का मुकाबला किया जाता है।

बहुत-सी बातों में आज का स्पर्द्धापूर्ण संघर्ष उससे भिन्न है जिसका एगेल्स ने अपनी पुस्तक 'इग्लैंड मे मजदूर वर्ग की दशा में वर्णन किया है—"यद्यपि कारखानेदार उत्पादक जान सकता है कि प्रत्येक देश मे वार्षिक तौर पर प्रत्येक वस्तु की कितनी मात्रा की खपत होती है," उन्होने लिखा, "वह यह नही जान सकता कि किसी भी समय वहा कितना माल उपलब्ध है, तथा यह जानने की सम्भावना तो और भी कम है कि उसके प्रतिद्वंद्वियों ने वहां कितना निर्यात कर दिया है। वह कीमतों में लगातार उतार-चढाव के आधार पर लगा सकता है, वस्तुओं की उपलब्ध मात्राओं और उस समय की आवश्यकताओ के आधार पर अनिश्चित एवं कामचलाऊ अन्दाज ही लगा सकता है। उसे अपने माल के निर्यात मे भाग्य पर ही भरोसा करना पडता है। अपने हर काम मे वह अनुमान—जोकि संयोग पर आश्रित होता है—को आधार बनाता है।"[1]

यह स्थिति—जो कि इजारेदारी पूर्व के पूंजीवाद की लाक्षणिक है—आज भिन्न नजर आती है। कोई भी व्यापारी आंख मूंद कर—सब कुछ सयोग पर छोड़ कर—धन विनियोजित नही कर सकता। वे चोटी पर पहुँचने के लिए उत्पादन के विषय में पूर्व कल्पना करनी होगी और बाजार की आवश्यकताओं और भावो के उतार-चढावों को पूर्वानुमानित करना होगा। इन समस्याओ को कमोबेश सही रूप से सुलझाने के लिए अनेक कारको को मद्दे नजर रखना होगा, और न केवल विशुद्ध

1. मार्क्स-एगेल्स, सकलित रचनाए, खड 4, पृ० 381-82

आर्थिक कारकों मात्र को ही, अपितु व्यापक सामाजिक प्रकृति के कारको को भी। इसका अर्थ है कि इजारेदारियां दोनों प्रकार की—आर्थिक और सामाजिक—भविष्यवाणियो में अभिरुचि रखती है।

यहां एकाधिकार पूर्व के पूंजीवाद से भिन्न, जिसका चारित्रिक लक्षण उस क्षण की आवश्यकताओं की ओर उन्मुखता था, आज का समकालीन एकाधिकारवादी पूंजीवाद, इसके अतिरिक्त, भविष्य को दृष्टि मे रखकर भी अपनी गणना लगाता है। इसकी अभिव्यक्ति सामाजिक-आर्थिक पूर्वानुमान के लिए बूर्ज्वा राज्यो द्वारा तेज़ी से बढाए जाने वाले आवंटनों मे दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, सयुक्त राज्य अमरीका मे लगभग 9 करोड़ डॉलर वार्षिक इस उद्देश्य के लिए एक दशक पहले खर्च किए जाते थे। ज़ाहिर है, यह कोई संयोग नही था कि इजारेदारियो द्वारा सब प्रकार के पूर्वानुमान—जिसमें आर्थिक व सामाजिक भी सम्मिलित थे—से सम्बन्धित अनेक समूह, आयोग, संस्थान और एजेंसियां इजारेदारियो द्वारा स्थापित किये गये थे।

अतः सामाजिक पूर्वानुमान सबसे पहले इजारेदारियो की व्यावहारिक आवश्यकताओ के रूप मे दिखाई दिए, और समकालीन पूंजीवाद की भविष्योन्मुखता के लिए भी बुनियादी कारण यही है।

कम्युनिज़म का उठता हुआ ज्वार, जिसके आगमन को पूंजीवाद अधिकाधिक स्पष्टतया महसूस करने लग गया है, उत्पादन के पुराने सम्बन्धो की सारी प्रणाली को ही साफ़ कर देगा, यह मान कर पूंजीवादी दुनिया 'पानी के नीचे सांस लेने' तथा भविष्य की चुनौतियो का सामना करने के भीषण प्रयत्न कर रही है। यह सामाजिक क्राति के पूर्वाभास था जिसने पूंजीवाद को अपने भविष्य के विषय में सोचने को विवश कर दिया और; यदि सम्भव हो तो, कम्युनिस्ट भविष्य के विरुद्ध 'पूर्वाधिकार हेतु युद्ध' छेड़ देने की स्थिति बना दी ताकि वह अपने अस्तित्व को अधिकतम सीमा तक लम्बा कर सके।

एक ओर, पश्चिमी समाजशास्त्री वैज्ञानिक कम्युनिज़म के विश्वसनीय विकल्प, जो वस्तुतः बूर्ज्वा व्यवस्था का भविष्य मे प्रक्षेपण मात्र रह जाता है, की सरगर्मी से खोज कर रहे हैं। दूसरी ओर वे कम्युनिस्टों से सामाजिक प्रगति के लोकहितकारी विचारों को उधार लेने की चेष्टा करते हैं और यह भ्रामक विश्वास पालते हैं कि उन्हे पूंजीवादी समाज में ही क्रियान्वित किया जा सकेगा। भविष्य विज्ञान के प्रति सनक कम्युनिस्ट-विरोधी कार्यनीतियों में अपेक्षाकृत नया लक्षण है। ऐतिहासिक विकास के प्रवाह को बहुधा को अज्ञेय और अननुमेय अथवा पूर्व अकथनीय माना जाता था, तथा मार्क्सवाद के सामाजिक विकास के पूर्व कथन की सम्भावना के विचार को कल्पनालोक की धारणा कहकर तिरस्कृत किया जाता था। पहले भविष्य विज्ञान शब्द का ही, जिसकी अब सराहना करते हुए उसे

आसमानों तक पहुँचाया जाता है—बिल्कुल भिन्न अर्थ था और उसका निशान 'मार्क्सवादी कल्पनालोकी चिंतन' था। इसी सन्दर्भ मे 'भविष्य विज्ञान' शब्द का प्रचलन अमरीकी विद्वान, ओस्सिप फ्लैकथीम द्वारा प्रारम्भ किया गया। भविष्य विज्ञान के आविष्कारक समस्त घटनाओं के ऐतिहासिक प्रवाह की भविष्यवाणी करने के सारे प्रयत्नों को 'छद्म वैज्ञानिक' कहकर अभिशप्त करते थे। उन्होने लिखा—"चाहे किसी भी दृष्टिकोण से कोई इतिहास की प्रक्रिया को पूरी तरह तर्कसंगति देने की कोशिश करे, उसे ईश्वरीय शास्त्र प्रमाण के रूप मे निर्मित करना असम्भव होगा। इसकी अपेक्षा हमें मनुष्य के इतिहास को मानव जातियो की एक अनन्त भ्रमण यात्रा के रूप मे चित्रित करना पड़ेगा वह इधर-उधर यात्रा करते हुए बार-बार अपरिचित समुद्री किनारो पर उतरा।"[1] इसको सरलता से प्रस्तुत करने के चक्कर मे फ्लैकथीम ने न केवल सामाजिक पूर्वकथन की सम्भावना को ही त्याग दिया है, अपितु इतिहास की प्रक्रिया के नियतिवाद को भी त्याग दिया है।

1970 के दशक मे इस चित्र में काफ़ी हद तक परिवर्तन आया। समाजवादी देशो की आर्थिक उपलब्धियो और पूंजीवादी अन्तर्विरोधो के बढ़ने मे न केवल समाज की बढती हुई शक्ति का ही प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत किया, अपितु दूसरो को अपने से सहमत करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि कम्युनिस्टो का ऐतिहासिक भविष्यकथन सही रहा है। इन तथ्यों के प्रकाश मे पूंजीवाद के ऐतिहासिक परिदृश्य से सम्बन्धित प्रश्न नई शक्ति के साथ उभरा। इस विषय में जर्मन विद्वान् ऐरिक फ्रोम ने चिल्लाकर कहा—"पश्चिमी दुनिया एक अन्धी गली में है, इसने अपने बहुत-से आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया है और जीवन मे अपनी सार्थकता और लक्ष्य को खो दिया है। बिना इस लक्ष्य के पश्चिमी समाज को भूतकाल के अन्य किसी समाज की तरह अपनी तेजस्विता और आन्तरिक शक्ति को भी खोने को मजबूर होना पड़ेगा।"[2]

इस 'तेजस्विता और आंतरिक शक्ति' को वापस प्राप्त करने के प्रयास मे, पश्चिमी सिद्धांतकार भविष्य-विज्ञान का सहारा लेते हैं तथा पूंजीवाद और समाजवाद के बीच के ऐतिहासिक विरोध को भविष्य में स्थानांतरित कर देते हैं। पहले यह कहा जाता था कि इतिहास के प्रवाह के विषय मे कोई भविष्यवाणी नही की जा सकती, वह असम्भव है और इसलिए दुनिया के लिए कम्युनिस्ट परिदृश्य स्वप्नदृष्टाओं के आविष्कार से अधिक और कुछ नही, और इसलिए कम्यु-

---

1. ओस्सिप के० फ्लैकथीम, 'हिस्ट्री एण्ड फ्यूचरोलॉजी, मैसेनहेम, 1966, पृ० 60
2. एरिक फ्रोम, डेर माडर्न मेस्क अंड सेन ज़ुकुंफ्त, फ्रेंकफ़र्ट, 1969, पृ० 323

निस्टो पर विश्वास नही किया जा सकता क्योंकि भविष्य को पहले से नही देखा जा सकता। अब इस बात पर जोर दिया जाता है कि मानवता के भविष्य के विषय मे पूर्वकथन सम्भव है, बशर्ते, किसी तरह 'कम्युनिस्ट कल्पनालोकों' को नकार दिया जाय और पूर्वानुमान या भविष्यवाणियाँ पूजीवादी प्रतिमानो के आधार पर की जाएँ।

इन प्रतिबन्धों के साथ भविष्य-विज्ञान कम्युनिस्ट-विरोधी धारणाओं को सूचित करने में अपनी भूमिका अदा करता है। जहाँ कि पहले भविष्य की खोज-बीन करना किसी व्यक्ति विशेष कल्पना विहारियो का क्षेत्र माना जाता था, आज भविष्य-वैज्ञानिक अध्ययन व्यापक और सुव्यवस्थित आधार पर किया जाता है। रिचर्ड निक्सन ने एक बार यह घोषणा की थी कि : "अमरीका का स्वप्न इतना महत्वपूर्ण है कि उसे स्वप्नदर्शियों के हवाले नही छोड़ा जा सकता है।"

अब लगभग सभी पूजीवादी देशों में भवितव्यता ज्ञान की दर्जनों सरकारी और निजी संस्थाओं में धूम मची है तथा इससे जुड़े हुए कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ रही है।

संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसे अध्ययन हडसन संस्थान, स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय, दि अमेरिकन एकेडेमी ऑफ आर्ट्स एंड साइंसेज़ कमीशन ऑन दि इयर 2000 (सन् 2000 पर कला और विज्ञान आयोग की अमरीकी अकादमी)। रिसोर्सेज फ़ार द फ्यूचर, रैंड निगम तथा अन्य मे; फ्रांस मे—ल, एसोसिएशन इंटरनेशनल द फ्यूचरिबल्स, वकिंग ग्रुप फ़ॉर द ईयर 1985 ब्रिटेन; में—मैनकाइंड—2000, कमिटी फ़ॉर द नेक्स्ट थर्टी ईयर्स; जर्मनगण परिसंघ में—गेसेलशेफ्ट फ़र जुकुंफ्ट्स्फ़े जन एण्ड म्यूजिक और टर्यूबिजन में भविष्य-विज्ञान के संस्थानों आदि में किये जा रहे है।

रोम, वियना, टोक्यो, ओस्लो और अन्य नगरों में भी ऐसे केंद्र है जो भविष्य की समस्याओं का अध्ययन कर रहे है। अकेले संयुक्त राज्य अमरीका 600 से अधिक भविष्य विज्ञान के संगठन हैं।

इन संगठनो—जिन्हे राज्य तथा शक्तिशाली इजारेदारियों की आर्थिक सहायता प्राप्त है—के समस्त ससाधन कम्युनिस्ट भविष्य के विकल्प तथा पूंजीवाद के 'भविष्य-वैज्ञानिक औचित्य' की खोज पर संकेंद्रित कर दिये गये हैं। कम्युनिज़्म-विरोध के विचारकों ने अनेक ऐमे सिद्धांतों का सूत्रपात किया है जिनके बारे में यह दावा किया जाता है कि ये भविष्य के वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। ये वस्तुतः पूंजीवाद के समर्थन मे प्रचारात्मक मूल्य ही रखते हैं।

पूंजीवादी-भविष्य-वैज्ञानिक इन उद्देश्यों को छिपाते नही। जैसे उनमें से एक ओटिस डडले डंकन, "जब सामाजिक विश्लेषण की कोई रचना जो—भविष्य के

से मुक्त है—आस्था जगाती है तो वह विचारधारा बन जाती है; इसमे आस्था 'वाले लोग इसके बौद्धिक एवं नैतिक कैदी बन जाते है।"[1] इन सिद्धांतों मे छ तो आशा को बनाए रखते है, तथा कुछ लोगों में भ्रम पैदा करते है; तीसरे ह दृष्टि से उनको हताश करते है, जबकि कुछ और है जो आतंकित करने के काम मे लाये जाते हैं। किंतु उन सबका उद्देश्य मजदूर वर्ग को आध्यात्मिक े निहत्था कर देना है।

एच० जी० वेल्स के भावुक नायक जो शुद्ध उत्सुकतावश अपनी 'टाइम मशीन' ख़तरे से भरी यात्रा आरम्भ करता है, से भिन्न आधुनिक पूंजीवादी भविष्य- वास्तव में बडे व्यावहारिक होते हैं। वे भविष्य में अपने भ्रमणों पर हमेशा तैयारशुदा फार्मूला साथ रखते है जिसके अनुसार वे अपनी कम्युनिस्ट-विरोधी लबाजियों को प्रमाणित कर सकें। भविष्य की वैज्ञानिक भविष्यवाणियाँ के बहाने वे आमतौर पर या तो सामाजिक यथास्थितिवाद का पूर्वानुमान हैं या समाजवादी आदर्शों की हार के विषय मे भविष्यवाणियाँ बघारते

इस भ्रम में तसल्ली तलाश करते हुए कि किसी तरह भविष्य में बहिर्वेशित -इजारेदारी पूंजीवाद कम्युनिज्म के विरोध में खड़ा करके सामाजिक क्रांति ागमन को विलम्बित किया जा सकेगा, पूंजीवादी विज्ञान एक बार फिर ाश करता है कि भविष्य के विषय मे क्रांतिकारी मार्क्सवादी शिक्षण को चुनौती ाय।

लेकिन इन प्रयत्नो के माध्यम से पूंजीवादी विद्वान एक ख़तरनाक साहसिक , जो पहले ही उनमे से कुछ के लिए गम्भीर घबराहट पैदा कर चुका है, अपने पर ले लेते है।

ाहासिक प्रक्रिया का पूर्वानुमान

बहुत से लोगों ने भविष्य को पढने की कोशिश की है। केवल बहुत ही कम त् विचारक वास्तव में घटनाओं के क्रम का पूर्वानुमान करने मे समर्थ हो सके ाबकि एक अनिश्चित संख्या के सभी प्रकार के पूर्वानुमान मृतजात भविष्य- ायों के रूप मे प्रकट होकर समाप्त हो चुके है।

एल्विन टॉफलर ने अपनी पुस्तक 'फ्यूचर शॉक' मे कुछ उदाहरणों को सूचीबद्ध ा है। "सन् 1865 में एक अखबार के सम्पादक ने अपने पाठकों को बताया सुविज्ञ लोग जानते है कि तारों के माध्यम से आवाज को प्रसारित करना म्भव है'''।' मुश्किल से एक दशक बाद मिस्टर बेल की प्रयोगशाला से

---

[1] 'द पब्लिक इंटरेस्ट', अंक 17, 1969, पृ० 107

निस्टो पर विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि भविष्य को पहले से नही देखा जा सकता। अब इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि मानवता के भविष्य के विषय में पूर्वकथन सम्भव है, बशर्ते, किसी तरह 'कम्युनिस्ट कल्पनालोकों' को नकार दिया जाय और पूर्वानुमान या भविष्यवाणियाँ पूंजीवादी प्रतिमानों के आधार पर की जाएँ।

इन प्रतिबन्धों के साथ भविष्य-विज्ञान कम्युनिस्ट-विरोधी धारणाओं को सूचित करने मे अपनी भूमिका अदा करता है। जहाँ कि पहले भविष्य की खोज-बीन करना किसी व्यक्ति विशेष कल्पना विहारियों का क्षेत्र माना जाता था, आज भविष्य-वैज्ञानिक अध्ययन व्यापक और सुव्यवस्थित आधार पर किया जाता है। रिचर्ड निक्सन ने एक बार यह घोषणा की थी कि : "अमरीका का स्वप्न इतना महत्वपूर्ण है कि उसे स्वप्नदर्शियों के हवाले नही छोड़ा जा सकता है।"

अब लगभग सभी पूंजीवादी देशों में भवितव्यता ज्ञान की दर्जनों सरकारी और निजी संस्थाओं मे धूम मची है तथा इससे जुड़े हुए कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ रही है।

संयुक्त राज्य अमरीका मे ऐसे अध्ययन हडसन संस्थान, स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय, दि अमेरिकन एकेडेमी ऑफ़ आर्ट्स एंड साइंसेज कमीशन ऑन दि इयर 2000 (सन् 2000 पर कला और विज्ञान आयोग की अमरीकी अकादमी)। रिसोर्सेज फ़ार द फ़्यूचर, रैंड निगम तथा अन्य मे; फ्रांस में—ल, एसोसिएशन इंटरनेशनल द फ़्यूचरिवल्स, वर्किंग ग्रुप फ़ॉर द ईयर 1985 ब्रिटेन; में—मैनकाइंड—2000, कमिटी फ़ॉर द नेक्स्ट थर्टी ईयर्स; जर्मनगण परिसंघ मे—गेसेलशेफ़्ट फर जुकुंफ्ट्स्फ़े जन एण्ड म्यूजिक और ट्यूब्रिजन में भविष्य-विज्ञान के संस्थानों आदि में किये जा रहे है।

रोम, वियना, टोक्यो, ओस्लो और अन्य नगरों में भी ऐसे केंद्र हैं जो भविष्य की समस्याओं का अध्ययन कर रहे हैं। अकेले संयुक्त राज्य अमरीका 600 से अधिक भविष्य विज्ञान के संगठन हैं।

इन संगठनों—जिन्हे राज्य तथा शक्तिशाली इजारेदारियों की आर्थिक सहायता प्राप्त है—के समस्त संसाधन कम्युनिस्ट भविष्य के विकल्प तथा पूँजीवाद के 'भविष्य-वैज्ञानिक औचित्य' की खोज पर संकेंद्रित कर दिये गये हैं। कम्युनिज़्म-विरोध के विचारकों ने अनेक ऐसे सिद्धांतों का सूत्रपात किया है जिनके बारे मे यह दावा किया जाता है कि ये भविष्य के वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। ये वस्तुतः पूँजीवाद के समर्थन मे प्रचारात्मक मूल्य ही रखते है।

पूँजीवादी-भविष्य-वैज्ञानिक इन उद्देश्यों को छिपाते नही। जैसे उनमें से एक ओटिस डडले डंकन, "जब सामाजिक विश्लेषण की कोई रचना जो—भविष्य के

चित्र से मुक्त है—आस्था जगाती है तो वह विचारधारा बन जाती
रखने वाले लोग इसके बौद्धिक एवं नैतिक कैदी बन जाते है।"[1]
से कुछ तो आशा को बनाए रखते है, तथा कुछ लोगों में भ्रम पैदा
नैतिक दृष्टि से उनको हताश करते है, जबकि कुछ और है जो आत
लिए काम मे लाये जाते हैं। किंतु उन सबका उद्देश्य मजदूर वर्ग को
रूप से निहत्था कर देना है।

एच० जी० वेल्स के भावुक नायक जो शुद्ध उत्सुकतावश अपनी 'टा
पर खतरे से भरी यात्रा आरम्भ करता है, से भिन्न आधुनिक पूंजीवाद
ज्ञानी वास्तव में बड़े व्यावहारिक होते है। वे भविष्य में अपने भ्रमणो प
एक तैयारशुदा फार्मूला साथ रखते है जिसके अनुसार वे अपनी कम्युनिस्ट
अटकलबाजियों को प्रमाणित कर सके। भविष्य की वैज्ञानिक भविष्य
करने के बहाने वे आमतौर पर या तो सामाजिक यथास्थितिवाद का पूव
करते हैं या समाजवादी आदर्शों की हार के विषय मे भविष्यवाणियाँ ब
है।

इस भ्रम में तसल्ली तलाश करते हुए कि किसी तरह भविष्य में वहिवें
राज्य-इजारेदारी पूंजीवाद कम्युनिज्म के विरोध मे खड़ा करके सामाजिक क्र
के आगमन को विलम्बित किया जा सकेगा, पूंजीवादी विज्ञान एक बार फि
कोशिश करता है कि भविष्य के विषय मे क्रांतिकारी मार्क्सवादी शिक्षण को चुनौत
दी जाय।

लेकिन इन प्रयत्नों के माध्यम से पूंजीवादी विद्वान एक खतरनाक साहसिक
कार्य, जो पहले ही उनमे से कुछ के लिए गम्भीर घबराहट पैदा कर चुका है, अपने
सिर पर ले लेते हैं।

ऐतिहासिक प्रक्रिया का पूर्वानुमान

बहुत से लोगों ने भविष्य को पढ़ने की कोशिश की है। केवल बहुत ही कम
महान् विचारक वास्तव मे घटनाओं के क्रम का पूर्वानुमान करने मे समर्थ हो सके
हैं, जबकि एक अनिश्चित संख्या के सभी प्रकार के पूर्वनुमान मृतजात भविष्य-
वाणियों के रूप मे प्रकट होकर समाप्त हो चुके है।

एल्विन टॉफलर ने अपनी पुस्तक 'फ्यूचर शॉक' मे कुछ उदाहरणों को सूचीबद्ध
किया है। "सन् 1865 में एक अखबार के सम्पादक ने अपने पाठकों को बताया
कि 'सुविज्ञ लोग जानते हैं कि तारों के माध्यम से आवाज को प्रसारित करना
असम्भव है...।' मुश्किल से एक दशक बाद मिस्टर बेल की प्रयोगशाला मे

1. 'द पब्लिक इंटरेस्ट', अंक 17, 1969, पृ० 107

टेलीफोन की आवाज़ फूट निकली और उसने दुनिया को बदल दिया।

"उसी दिन जबकि राइट बन्धुओं ने उड़ान भरी, अख़बारों ने उस घटना की रिपोर्ट देने से इन्कार कर दिया क्योंकि उनके सम्पादक—जो गम्भीर व विवेकशील थे तथा जिनके पाँव जमीन पर टिके हुए थे—आसानी से इस बात पर विश्वास नहीं कर सके कि ऐसा हो चुका है। क्योंकि कुछ दिनों पूर्व ही तो एक प्रसिद्ध अमरीकी खगोलज्ञ, साइमन न्यूकोम्ब, ने संसार को भरोसा दिलाया था कि 'ज्ञात वस्तुओं का कोई भी सम्भव मिश्रण, मशीनरी के ज्ञात स्वरूप और शक्ति के ज्ञात स्वरूप को किसी भी व्यावहारिक यंत्र में एक जगह इस रूप में संयोजित व व्यवस्थित नहीं किया जा सकता कि उसका उपयोग करके आदमी लम्बी दूरियों तक उड़ पाए।"

"इसके कुछ समय बाद ही एक दूसरे विशेषज्ञ ने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि घोड़ाविहीन गाड़ी के चलन के प्रयोगों से किसी प्रकार की अपेक्षा कमजोर दिमाग वाले ही कर सकते हैं। छ: साल बाद दस लाखवीं फ़ोर्ड एक एसेम्बली लाइन पर चल पड़ी।"[1]

वैज्ञानिकों को प्रकृति विज्ञान और प्रविधि में एक या दूसरी प्रवृत्ति की सम्भावनाओं का सही मूल्यांकन करने से और भविष्य की झलक प्राप्त करने से वैज्ञानिकों को किसने रोका है?

सर्वप्रथम, उनकी आत्मपरकता तथा उनके व्यावहारिक पूर्वाग्रह ने रोका है जो भविष्य के भीतर प्रक्षेपित हैं। वे अनिवार्यत: भूतकाल की धारणाओं के वशीभूत हैं, उन मतांधों के, जो प्रतिदिन की वास्तविकता के द्वारा थोपे गए हैं और मानसिकता के कुछ प्रतिरूपों को निर्धारित करते हैं।

इसे पहले से देख पाने के लिए यह आवश्यक है कि आत्मपरकता को और पुरानी रूढ़ियों को दूर फेंका जाय, अन्यथा पूर्वकथन और भविष्यवाणी के सारे प्रयास घोर असफलता में समाप्त हो जाएँगे।

यह प्रकृति विज्ञान और तकनीकी ज्ञान और उत्पादन के विकास पर तो लागू होता ही है, किन्तु इससे भी अधिक समाज के जीवन पर भी लागू होता है जहाँ पूर्वानुमान के प्रयासों में बहुत सारे तथ्यों का विश्लेषण आवश्यक बन जाता है, तथा जो काफी अधिक मुश्किल काम है।

भविष्य केवल उनके लिए खुलता है जो वास्तविकता की समूची जटिल यंत्रविधि को समझने की योग्यता रखते हैं, उसके दृश्य और अदृश्य उत्तोलकों का ज्ञान रखते हैं।

सामाजिक प्रगति के सन्दर्भ में इस पद्धति का विकास मार्क्स, एंगेल्स और

1. एल्विन टॉफलर, 'फ्यूचर शॉक', न्यूयॉर्क, 1970, पृ० 191

लेनिन द्वारा किया गया। इतिहास उनके विचारों एवं उनकी धारणाओं की विजय को प्रमाणित करता है और उनकी पद्धति के सही होने की पुष्टि करता है। जो बात बड़े-से-बड़े विज्ञान कथालेखकों की आँखों से छिपी रही उसे यह पद्धति प्रकाश में ले आती है।

लेनिन के साथ अपनी मुलाकातों, तथा रूस के भविष्य के सम्बन्ध मे उनके विचारों का स्मरण करते हुए, एच० जी० वेल्स ने अपनी पुस्तक 'रशा इन द शेडोज' में लिखा—"गहरे स्फटिक सरीखे रूस मे मुझे उस तरह का घटित होता कुछ नहीं दिखता जो कि क्रेमलिन मे बैठे इस छोटे से आदमी को दिखता है : वह देखता है कि सड़ी गली रेलों की जगह नए विद्युत् यातायात के साधन लगाए जा रहे हैं, वह देखता है कि नई सड़को का जाल सारे देश की धरती पर पूरी तरह फैल रहा है, वह देखता है कि फिर से एक नया और अधिक खुशहाल कम्युनिस्ट औद्योगिकीकरण उदित हो रहा है।"[1] क्रांति के नेता ने उससे भी काफ़ी दूर तक देखा : बीस साल गुजरे और सोवियत संघ दुनिया के औद्योगिक उत्पादन के कुल परिमाण की दृष्टि से दूसरे नंबर पर पहुँच गया।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी पूर्वानुमान भूत और वर्तमान के वस्तुगत नियमों और प्रवृत्तियों की गहन वैज्ञानिक समझ से प्रस्फुटित होता है। लियोन लावाली, जो 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' को सामाजिक भविष्यवाणी का उदाहरण मानते हैं, की मान्यता है कि "मार्क्स और एंगेल्स ने, इसके मूलभूत सिद्धांतों को (भूतकाल के) पूर्वगामी समाजों के अध्ययन, तथा पूंजीवादी समाज—वे जिसमे जी रहे थे (वर्तमान) के विश्लेषण के आधार पर सूत्रबद्ध किया था।" इसके बाद वह आगे कहते हैं—"इस आधार पर उन्होंने उन नियमों की खोज की जो एक नीचे की सामाजिक अवस्था से ऊपर की सामाजिक अवस्था मे संक्रमण को संचालित करते हैं, और इस प्रकार उन्होंने पूंजीवाद की समीक्षा निर्मित की तथा सामाजिक विकास के विज्ञानसम्मत मार्ग पर चलकर उन्होंने सामाजिक विकास की अगली अवस्था—कम्युनिज्म—की भविष्यवाणी की।[2]

अपने समय के पूंजीवादी समाज की ऐतिहासिक प्रक्रिया और सामाजिक घटनाक्रम का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करते हुए, मार्क्स और एंगेल्स ने उत्पादक शक्तियों के विकास की सामान्य प्रवृत्ति को उद्घाटित किया जो देर-सबेर उत्पादन के पूंजीवादी सम्बन्धों को अनिवार्यतः समाप्त कर देगी। इसके मायने हैं कि कम्युनिज्म एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है।

---

1. एच० जी० वेल्स, 'रशा इन द शेडोज', लंदन, पृ० 135-36
2. लियोन लावाली, 'पोअर अन कसेप्शन मार्क्सिस्ट दे ला प्रॉस्पेक्टिव, पेरिश, 1970, पृ० 25

अतः मार्क्सवाद की सामाजिक भविष्यवाणी के वैज्ञानिक आधार यथार्थ के अभिज्ञान की द्वन्द्वात्मक और भौतिकवादी पद्धति के लागू करने में निहित हैं। यह पद्धति किसी भी अध्येता से अपेक्षा रखती है कि सामाजिक घटना क्रियाओं की पड़ताल उनके विकास की प्रक्रिया में ही की जाय। लेनिन ने लिखा—"कौन नहीं जानता कि किसी भी सामाजिक घटना-क्रिया की, उसके विकास की प्रक्रिया मे, परीक्षा करेंगे तो उसमें अतीत के अवशेष, वर्तमान की बुनियाद तथा भविष्य के बीज अनिवार्य रूप से प्रकट होंगे।"[1]

उन उत्पादक शक्तियों का जिन्हे उनके विकास की प्रक्रिया में पूंजीवादी समाज ने एकत्रित किया, अध्ययन करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह बताया कि कम्युनिज्म न तो एक कल्पनालोक है और न ही एक स्वप्न, किन्तु उनके विकास का चरम लक्ष्य तथा आवश्यक परिणाम है।

लेनिन के शब्दों में, "मार्क्स का सिद्धांत विकास के सिद्धांत—जोकि सर्वाधिक सुसगत, सम्पूर्ण, सुविधारित एवं सारगर्भित रूप मे प्रस्तुत है—का आधुनिक पूंजीवाद के सन्दर्भ मे व्यावहारिक रूप है। मार्क्स के सामने स्वाभाविक तौर पर जो प्रश्न था वह पूंजीवाद के अवश्यंभावी अधःपतन तथा भावी कम्युनिज्म के भविष्य के सन्दर्भ मे इस सिद्धांत के उपयोग से जुड़ा हुआ था।[2]

लेनिन की दृष्टि में ये इस बात मे निहित है कि कम्युनिज्म ऐतिहासिक रूप से पूंजीवाद से विकसित होता है तथा यह पूंजीवाद से उत्पन्न सामाजिक शक्ति के कार्य-व्यापार का परिणाम है। भविष्य के बारे में मार्क्स ने कोई अटकलबाजी नही की। उन्होंने कम्युनिज्म की समस्या को एक प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता के तरीकों से प्रस्तुत किया जो जैवीय संरचना के विकास का अध्ययन इस आधार पर करता है कि यह कैसे पैदा हुई और किस दिशा मे विकसित हो रही है।

मार्क्स और एंगेल्स, दोनों, ने ज़ोर देकर कहा कि उनकी भविष्य सम्बन्धी धारणाएँ अपने समय की तथ्यात्मक, ऐतिहासिक, भौतिक एवं सामाजिक घटना-क्रियाओ के वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है—"हमारे दृष्टिकोण तथा समकालीन समाज और भविष्य के ग़ैर-पूंजीवादी समाज की भिन्नता को प्रकट करने वाले लक्षण स्पष्टतया वे निष्कर्ष हैं जो ऐतिहासिक तथ्यों और *विकास की प्रक्रियाओं से निकाले गए है, तथा उनका कोई भी सैद्धांतिक या व्याव*हारिक मूल्य नहीं है यदि इन प्रक्रियाओं के सन्दर्भ से हटाकर नंगे रूप में अलग से

---

1. वी० आई० लेनिन 'लोगों के दोस्त कौन हैं और वे सामाजिक जनवादियों से कैसे लड़ते हैं', सकलित रचनाएं, खंड 7, पृ० 179
2. लेनिन, 'राज्य और क्रांति' सकलित रचनाएं, खंड 25, पृ० 457-58

देखा जाय तो।"[1]

मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शक्ति इस बात में निहित है कि यह घटनाक्रियाओं को उनके विकास की प्रक्रिया में परीक्षित करता है। निम्नांकित उदाहरण इस प्रयास को यथेष्ट से अधिक रूप में चित्रित करता है। मार्क्स ने विश्वव्यापी पैमाने पर सर्वहारा क्रांति की बात कही, जो कि पूर्व-इजारेदारी पूंजीवाद की परिस्थितियों के अधीन पूर्णतया सही अवधारणा थी। किन्तु जब पूंजीवाद देश विकास की साम्राज्यवादी अवस्था मे प्रविष्ट हो गए तो एक नई सामाजिक प्रवृत्ति—उनके असमान विकास—ने स्वयमेव अपने-आपको प्रकट कर दिया। इसकी जाँच करने पर लेनिन ने बुलंदी के साथ यह भविष्यवाणी की: "असमान आर्थिक और राजनैतिक विकास पूंजीवाद का चरम नियम है। अतः पहली बार अनेक या किसी अकेले पूंजीवाद देश में समाजवाद की विजय सम्भव है।"[2]

इस प्रकार मार्क्सवाद-लेनिनवाद समाजशास्त्रीय पूर्वकथन की जटिल पद्धति को अपनाता है। इससे न केवल परिमाणात्मक संशोधन का पूर्व कथन ही सम्भव होता है अपितु एक या दूसरी घटनाक्रिया के गुणात्मक संशोधन के विषय मे भी पूर्वकथन सम्भव हो जाता है। परिणामस्वरूप किसी घटनाक्रिया को उसकी प्रगति के रूप में जांचा जाता है, जबकि वह अभी अपने सबसे ऊँचे बिन्दु की ओर बढ़ ही रही है, जब परिमाण गुण में बदल ही रहा है और सामाजिक घटनाक्रिया अपनी विपरीतता में बदल रही है। इस पद्धति को धन्यवाद कि इसके आधार पर नितांत नई सामाजिक घटनाक्रियाओ के विषय मे भी भविष्यवाणी की जा सकती है।

मार्क्सवादियों ने अपने-आपको कभी भी भविष्य मे उत्पादक शक्तियों के सामान्य बहिर्वेशन तक सीमित नही रखा। कुछ मर्यादाओं के साथ यही बात प्राविधिक प्रक्रियाओ और आर्थिक रुझानों के विषय में भी की जा सकती है, किन्तु सामाजिक घटनाक्रियाओं के बारे मे नही। उदाहरण के लिए, जब उत्पादक शक्तियों के विकास की विश्व-व्यापी और ऐतिहासिक दृष्टि से जाँच करते हुए, इसको अनंतता में नही डाल दिया जाता जैसा कि भविष्यविज्ञानी प्रायः करते हैं। विचारणीय बिन्दु यह है कि अपने विकास की प्रक्रिया में उत्पादक शक्तियाँ उत्पादक सम्बन्धों के साथ सामाजिक अंतःक्रिया करती रहती हैं जो उनकी प्रगति मे गतिरोध पैदा कर देता है या उसे एकदम रोक देती है।

इसीलिए, न तो मार्क्स-एंगेल्स ने और न लेनिन ने ही भविष्य—उसकी समस्त विशिष्टताओं के विस्तृत विवरण सहित—को जानने की आकांक्षा पाली और न

1. मार्क्स-एंगेल्स, वर्क, खंड 36, पृ॰ 429
2 लेनिन, 'यूरोप के संयुक्त राज्यों के नारे के सम्बन्ध में', संकलित रचनाएं, खंड 21, पृ॰ 342

तिथिवार भविष्यवाणियां करने का इरादा व्यक्त किया। मार्क्सवाद ने ऐतिहासिक विकास की सामान्य प्रवृत्तियों व मुख्य आकृतियों पर ही जोर दिया। मार्क्सवादियों के लिए कम्युनिस्ट समाज की विजय ऐतिहासिकतः पूर्वनिर्धारित है और उत्पादक शक्तियों के विकास की तर्कसंगत परिणति है। लेकिन जैसा कि लेनिन ने लिखा—"किन अवस्थाओं से गुजरकर व किन व्यावहारिक साधनों के जरिए मानवता इस सर्वोच्च लक्ष्य तक आगे बढ़ेगी हम नही जानते और जान भी नहीं सकते।[1] "एक अन्य स्थान पर लेनिन ने इस विचार को आगे बढाते हुए कहा—" हम यह दावा नही करते कि मार्क्स जानते थे या मार्क्सवादी जानते है कि 'अ' से 'ज्ञ' तक समाजवाद का यही रास्ता है। इस प्रकार का कोई दावा करना निरी मूर्खता होगा। जो कुछ हम जानते है वह है उस रास्ते की दिशा, और वे वर्ग शक्तियां जो इसका अनुसरण करती है; विशिष्ट व्यावहारिक विस्तार केवल लाखों लोगो के अनुभवों के बीच मे से होकर प्रकाश में आएगा जब वे सब कुछ अपने स्वयं के हाथों मे ले लेंगे।"[2]

जहां तक ऐतिहासिक प्रक्रिया की मुख्य दिशाओं का सम्बन्ध है, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की प्रस्थापनाओं ने, दुनिया को बदलने वाली बड़ी ऐतिहासिक घटनाओं के विषय में आश्चर्यजनक रूप से सही भविष्यवाणी की : जैसे—दुनिया के क्रांतिकारी आन्दोलन के केन्द्र को बदलकर उसे पूर्व की ओर कर देना, सर्वहारा क्रांति का रूस के द्वारा उद्घाटित किया जाना, प्रथम विश्वयुद्ध का चरित्र और उसके नतीजे, संक्रमण काल की आवश्यकता, और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही, पूंजीवाद का इजारेदारी के रूप में विकास विज्ञान का सीधे तौर पर उत्पादक शक्ति के रूप में रूपांतरण, समाजवाद में संक्रमण के स्वरूपों की विविधता, 'आणविक गतिरोध' की स्थिति आदि के बारे में।

ये सब पूर्वकथन किसी भविष्यवक्ता अथवा किसी प्रतिभा की कल्पना की उपज नही थे, किन्तु सामाजिक पूर्वानुमान की उस वैज्ञानिक पद्धति के परिणाम थे जिसे मार्क्सवाद के आदर ग्रन्थो ने प्रतिष्ठित किया था। बूर्ज्वा भविष्य विज्ञान भी वैज्ञानिक आधार रखने का दावा करता है। इसके पास बहुत शानदार गणक केन्द्र है जिनकी सेवाओं का वे उपयोग करते है तथा भविष्य वैज्ञानिको ने सामाजिक पूर्वानुमान की अनेक पद्धतियां विकसित कर ली हैं।

कुल मिलाकर, बूर्ज्वा वैज्ञानिको का अनुभव जो इन पद्धतियो के (जो निस्सन्देह

---

1. लेनिन, 'राज्य और क्रांति', पृ० 472
2. लेनिन, 'जनवादी की डायरी से', सकलित रचनाएं, खंड 25, पृ० 281

शुद्ध रूप से परिमाणात्मक है) लागू करने मे उन्हे मिला, आर्थिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक भविष्यकथन के रूप मे काफ़ी महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र मे भविष्य वैज्ञानिक बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध कराते है तथा वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रश्न प्रस्तुत करते हैं। किंतु इन पद्धतियों को अधिरचना के स्तर पर स्थानांतरित करने तथा सामाजिक सम्बन्धो के विकास को रूपायित करने के प्रयास समीक्षा की कसौटी पर खरे नही उतरते। कोई भी गुणात्मक पद्धतियाँ पूंजीवादी भविष्यवक्ताओ की कमजोरियों अर्थात उनके चिंतन की क्षुद्रता को जो पूंजीवाद की पक्षधरता से पैदा होती है, को दूर नही कर सकती हैं। फलस्वरूप, कोई भी उपकरण और कोई भी पद्धति विज्ञान चाहे उनको उसके सूक्ष्मतम विस्तारों के द्वारा कितना ही विस्तृत करके क्यों न रखा गया हो—सकारात्मक परिणाम नही दे सकता। निष्कर्षतः बूर्ज्वा भविष्य वैज्ञानिक अनिवार्यतः या तो 'दुनिया के अन्त' का योग बताकर, सामाजिक सम्भावनाओं की क्षति की घोषणा करके, अवैज्ञानिक एवं धूर्ततापूर्ण भविष्यवाणियाँ करके, या प्रकट रूप से प्रचारात्मक स्वभाव की पक्ष समर्थक भविष्यवाणियाँ करके अपने कार्य की इतिश्री कर देंगे।

पश्चिमी भविष्यज्ञानियो की वैज्ञानिको के रूप में यह त्रासदी है कि उनके प्रस्थान मार्ग पर ही उन्हें वर्गो की सामाजिक व्यवस्था को वरकरार रखना पडता है, और इसलिए उनकी भविष्यवाणियाँ जीवन के सम्पर्क मे आने पर ताश के पत्तो के मकान की तरह ढह पडती हैं। उनमे से बहुत-सी तो इसी क्षण ढह रही हैं, यानी सन् 1974-75 के संकट के सन्दर्भ मे भविष्यज्ञानियो ने जिसकी न तो 'पूर्व कल्पना की थी' और न भविष्यवाणी ही की थी। इस संकट के सामने वैल, काहन, गॉल्ब्रेथ, टॉफलर तथा अन्य विचारकों द्वारा चित्रित उज्ज्वल प्राविधिक सम्भावनाएँ हवाई किलो से अधिक सिद्ध नही हुई।

इन स्थितियो मे बूर्ज्वा भविष्यशास्त्र ने अपना अधिकाश आत्मविश्वास खो दिया, तथा यह कोई आश्चर्यजनक वात नही है कि इसके विशेषज्ञ अपनी कार्य-नीतियों में सुधार करने को विवश हुए है। आज उनके शकुन नाना प्रकार के अस्पष्ट वक्तव्यों से शुरू होते है। पहले जो आत्मविश्वास और सफ़ाई के साथ अभिव्यक्त किया जाता था, वही अव अधिक बारीक़ी से, पूर्व के कपटी भाग्य फल वताने वालो के तरीके को अपनाते हुए, प्रस्तुत किया जाता है।

इस दृष्टि से अमरीकी भविष्यशास्त्री हरमन काहन की ताजा पुस्तक, जिसका शीर्षक 'आगामी 200 वर्ष' है, बेहद दिलचस्प है। रैंड कर्पोरेशन के निदेशक तथा एक अन्य पुस्तक—'सन् 2000 का साल' के लेखक काहन वस्तुतः इस बात को जानते थे कि उनके पहले के पूर्व कथनों का क्या हस्र हुआ, तथा संभवतया इसीलिए उन्होंने अपने शकुनविचारों में एक रोचक नव-प्रयोग जोड़ दिया। उनके वैचारिक सिद्धांत वही रहे, तथा अमरीका के भविष्य के विषय में उनका आशावाद 1970

के दशक के संकट के बावजूद बना रहा। वह आश्वस्त करने की चेष्टा करते हैं कि आगामी 200 वर्षों में अमरीकी लोग 'समृद्धि' एवं दौलतमंदी प्राप्त कर लेंगे। किन्तु काहन काफी सतर्कता बरतते हुए कहते हैं कि उनकी भविष्यवाणी सच्ची साबित नहीं होगी, यदि मुद्रास्फीति पर नियंत्रण नहीं हासिल किया गया तो। -

फ्रांसीसी भविष्यशास्त्री एडमंड स्टिलमैन अपने भविष्य कथन में कि फ्रांस सन् 1980 तक आर्थिक क्षेत्र में यूरोप का नेतृत्व करेगा, इसी प्रकार की शर्त लगा देते हैं। और ब्रिटिश अर्थशास्त्री रिचर्ड बेली का कहना है कि सन् 2000 तक ऊर्जा उपभोग के सम्बन्ध मे उनकी भविष्यवाणी सही सिद्ध होगी यदि अगले दो दशकों मे रानैतिक स्थिति में स्थिरता रही और ब्रिटेन तथा दूसरे पूंजीवादी देशों की आर्थिक वृद्धि लगातार जारी रही।[1]

यह है भविष्यवाणी का एक सरल और भरोसेमंद तरीका जिसे अक्सर काम में लिया गया।

पश्चिमी भविष्यशास्त्रियों द्वारा किये गये असाधारण दावों से पाठक का प्राय: सामना होता है। जैसे अमरीकी राजनीतिवेत्ता वी० पी० वैकविद ने बहुत बड़ा निबंध लिखा जिसको उन्होंने एक अर्थगर्भित शीर्षक—"आगामी 500 वर्ष: प्रमुख सामाजिक प्रवृत्तियों की वैज्ञानिक भविष्यवाणियां" दिया। वह इस बात मे सुरक्षा अनुभव करते है कि वह अपने शकुनों के लिए जिम्मेवारी उठाने के वास्ते उपलब्ध नही होंगे, और इस तरह उनका सम्मान पूरे पाँच सौ वर्षों तक के लिए सुनिश्चित हो जाएगा।

अन्य अमरीकी भविष्यशास्त्रियों ने अपने पूर्वकथनों की अन्य प्रकार से 'गारंटी देने' के तरीके खोजे। उनकी भविष्यवाणियो के अनुसार सन् 1980 में मानवता के लिए कम-से-कम एक सौ विश्वविपत्तियों के आने के कारण उसके समाप्त होने का योग है। इनमें विश्व प्रलयप्रवाह, एक और हिमयुग का आगमन, ताप नाभिकीय युद्ध, जनसंख्या विस्फोट, परिस्थितिजन्य संकट, यंत्रमानवों (रोबोट) के द्वारा मानव का दासकरण और उसी प्रकार की अन्य प्रकार की महा-विपत्तियाँ शामिल हैं। और जब उनमें से प्रत्येक सौ में से एक की संभावना है, तथा जब वे कुल मिला कर सौ बतायी गयी हैं, तो यह तो माना ही जा सकता है कि उनमे से कम-से-कम एक तो निश्चित ही घटित होगी।[2]

पश्चिम के भविष्यज्ञानियों में अग्रणी एल्विन टॉफ़लर भी इन स्पष्टोक्त, नितांत

1. रिचर्ड बैले, 'ट्रैडिशनल इनर्जी रिसोर्सेज, प्रेजेंट स्टेट एण्ड फ्यूचर डिवेलपमेंट', फ्यूचर्स, खंड 4, सं० 2, जून 1972, पृ० 103-114
2 देखिए, ई० ए० अरब ओगली 'भविष्यवाणियो की भूल-भुलैया में', मास्को, 1975, पृ० 216

ठोस भविष्यवाणियों के औचित्य पर संदेह व्यक्त करते हैं और अपने सहयोगियों का अधिक सावधान और सतर्क बनने के लिए आह्वान करते हैं। वह लिखते है--"कोई भी गभीर भविष्यवादी 'भविष्यवाणियो', मे नही उलझता। वे दूरदर्शन की देववाणियों और समाचारपत्रों के ज्योतिषियों के लिए छोड़ दी जाती हैं। कोई भी, जो हल्के तौर पर भी पूर्वकथन की जटिलताओं से परिचित है, दावा नही कर सकता कि उसे आगामी कल का एकातिक ज्ञान है···।

"इसका मतलब है कि भविष्य के विषय में कोई भी वक्तव्य इस रूप में होना चाहिए कि उसमें उसकी विशेषक शर्तें—'अगर, मगर, और दूसरी ओर' आदि भी साथ में रहें।"[1]

अस्पष्ट तथा द्विअर्थी शर्तों की सहायता से अपने पूर्वकथनों की विश्वसनीयता एवं संभाव्यता में वृद्धि करने के बूर्ज्वा भविष्यवक्ताओं के प्रयास बूर्ज्वा भविष्य-विज्ञान के संकट तथा विश्वव्यापी ऐतिहासिक परिदृश्य को प्रमाणित करने की उसकी असमर्थता को ही उजागर करते है। 'देल्फी की देववाणियो' से नाम मात्र को अलग, भविष्य विज्ञान नीमहकीमी मे परिवर्तित हो रहा है।

बहुत से सीधे-सादे लोगों ने इन देववाणियों की द्विअर्थी भविष्यवाणियों को सही ढंग से न समझ पाने व उनकी आदिम तथा सपाट व्याख्या करने के कारण भारी मूल्य चुकाया है।

"क्या मैं पर्सियनों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दू ?" लीडिया के राजा क्रोसस ने देल्फी में अपोलो के मंदिर के पादरियों से पूछा और सीधा उत्तर प्राप्त किया : "यदि तुम हैलीज नदी को पार करोगे तो एक बड़ा साम्राज्य नष्ट हो जाएगा।" क्रोसस इस उत्तर से खुश था और उसने एक बड़े साम्राज्य को नष्ट कर दिया। यह दूसरी बात है कि वह उसका खुद का ही बड़ा साम्राज्य था। क्या कोई इस गलत समझ के लिए किसी देववाणी को लाछित कर सकता है ?

क्या पूंजीवाद और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति एक-दूसरे के अनुकूल हैं ?

पूंजीवादी भविष्यशास्त्र ने सामाजिक रूपांतरणों की अनिवार्यता से इन्कार करके अपने आपको एक बंद गली में फंसा दिया है; यद्यपि ये रूपांतरण निरंतर बढती हुई तीव्रता के साथ घटित होते जा रहे हैं। जॉन बर्नाल की मान्यता थी कि विज्ञान और कंप्यूटरों का युग अपरिहार्य रूप से समाजवाद का युग है।

समकालीन प्रगति के सबसे महत्वपूर्ण परिणामों मे से एक विज्ञान का प्रत्यक्ष उत्पादक शक्ति के रूप में रूपांतरण है। तो भी, निजी उद्योग की परिस्थितियों के

1. एल्विन टॉफलर, 'फ्यूचर शॉक', पृ० 6-7

अंतर्गत इस नयी विशेषता का मानवता के विशाल हितों में पूरी तरह से दोहन नही किया जा सकने का संवर्धन तथा व्यक्ति के उपयोग के लिए उपभोक्ता मालो का उत्पादन एक ही चीज़ नही हैं। अपने सामाजिक प्रयोजन एवं प्रकार्य की दृष्टि से ज्ञान सारे समाज से सम्बन्धित है, इसका कारगर संचय और इसकी क्रियान्विति केवल सामाजिक मानदंडों के आधार पर ही संभव है जो वस्तुतः उन मानदंडों से भिन्न है जो पूँजीवादी समाज द्वारा निर्धारित हैं।

जहाँ तक समाज का सम्बन्ध है विज्ञान पर किए जाने वाले खर्चे हमेशा अथवा लगभग हमेशा कारगर साबित होते है। वे आर्थिक दृष्टि से उस स्थिति में भी न्याय संगत है जबकि यह ज्ञात हो कि किसी पीढ़ी विशेष के जीवनकाल मे किसी प्रकार के व्यावहारिक शोध-परिणामों के निकलने की आशा नही की जा सकती। संभाव्य सामाजिक परिणाम के निकलने की स्थिति मे, तथा तात्कालिक निजी लाभ के न होने पर भी सत्य की खोज का अपना औचित्य है, चाहे उसकी संफलता की न्यूनतम सभावना ही क्यो न हो। पौधे (जो दूसरों को खाने के लिए फल उपलब्ध करेंगे) रोपते हुए बूढ़े आदमी की परंपरागत छवि विज्ञान की समकालीन प्रगति तथा इसके विकास की आवश्यकताओं के आवश्यक लक्षण की प्रतीक ही है।

वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के युग मे विज्ञान के प्रति रुख, पहले से कही अधिक, समाज के विकास को निर्धारित करता है और भविष्य के प्रति इसके दृष्टि-कोण को भी तय करता है। विज्ञान के लिए समाज का जितना अधिक सरोकार आज व्यक्त होगा, उतने ही अच्छे फल वह कल प्राप्त करेगा। इसलिए समाज की ओर से विज्ञान की तरक्की के लिए जो प्रयास आज किए जा रहे है वे एक प्रकार से सुरक्षित पूँजीनिवेश हैं जो कभी व्यर्थ नही होंगे तथा जो भविष्य मे लाभांशों की गारटी करते हैं।

पूँजी का दृष्टिकोण क्या है ? विनियोग के औचित्य के इसके अपने मानदंड हैं। सर्वाधिक सामान्य मापदंड है 'लागत-खपत' अर्थात् यथाशीघ्र खर्चों की पूर्ति जिसके साथ अधिकतम विश्वसनीय गारटियाँ हों। व्यापार इस सुनहरे नियम, जिसने बूर्ज्वा वर्ग को कभी निराश नही किया, को वैज्ञानिक विकास पर भी लागू करता है तथा ज्ञान को वह एक माल के रूप में समझता है जिसे उत्पादित किया जा सकता है, खरीदा जा सकता है और बेचा जा सकता है।

सामान्य विनियोजन की अपेक्षा वैज्ञानिक शोध में लगाये गये धन से लाभ-प्राप्ति देर से होती है। इसमें बहुत बड़ी जोखिम निहित है क्योकि कोई भी वैज्ञानिक अपने काम की भूल-चूक के विषय में कोई गारंटी नही देता। और यद्यपि सम-कालीन पूँजीवाद इस जोखिम को उठाने को विवश है, क्योंकि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति ने ज्ञान के संचय को किसी भी उत्पादन की आवश्यक कड़ी बना दिया है, इसका तात्कालिक लक्ष्य सदैव मुनाफ़ा कमाना है। विज्ञान एवं प्रविधि की

उपलब्धियों के प्रति—प्रतियोगितात्मक संघर्ष पर आधारित—नजरिया अन्ततः उनके विकास को अवरुद्ध कर देता है। यह खासतौर पर दीर्घकालिक वैज्ञानिक शोध के लिए सही है।

पूंजीवाद के अन्तर्गत विज्ञान एवं प्रविधि के विकास के लिए सैन्यवाद अपनी सारी शाखा-प्रशाखाओं के साथ सबसे अधिक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक है। किन्तु जैसा कि मार्क्स ने अपने समय में इंगित किया था कि हथियारों की दौड़ पर किये हुए खर्चे "आर्थिक दृष्टि से, राष्ट्र द्वारा अपनी पूंजी के एक हिस्से को पानी में बहाने के समान होते हैं।"[1] सैन्य प्रेरणा समाज को समृद्ध नही बनाती, बल्कि उसे लूटती है; अर्थव्यवस्था का सैनिकीकरण वैज्ञानिक विकास को एकपक्षीय तथा विरूपित कर देता है, कुछ अध्ययनों को प्रेरित करके व अन्य को बाधित करके, वैज्ञानिक शोध की प्रणाली मे असंतुलन का कारण बनता है। उत्पादन की अन्य शाखाओं की भांति, हथियारों के निर्माण के उद्योग मे भी व्यापक उद्देश्य मुनाफ़ाखोरी ही है।

"यह एक ऐसा युग है जिसमें मुनाफ़ाखोरी का उद्देश्य अक्सर प्रमुख होता है, दरअसल इस सीमा तक, कि दूसरे उद्देश्यों को ताक पर रख दिया जाता है", नॉर्बर्ट वीनर ने लिखा, "जनसमुदाय के लिए विचारों का मूल्य डॉलर और सेंट के आधार पर अनुमानित किया जाता है, तो भी डॉलर और सेंट नए विचारो की तुलना में अस्थायी मुद्रा है। कोई भी नई खोज, जो नए प्रयोग का मार्ग-दर्शन करने की स्थिति तक पहुँचने मे पचास साल लगा देती है, अक्सर उन लोगों को लाभ नही पहुँचा पाती जिन्होंने उसके लिए खर्च किया था, फिर भी यदि ये खोजें न की जाएँ, तथा हम उन्ही पर निर्भर करते रहे जो कि पहले ही की जा चुकी हैं तो इसका अर्थ यही होगा कि हम अपने बच्चों तथा उनके भी बच्चों (अगली दो पीढ़ियों) के भविष्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं।[2]

यह एक बहुत सही टिप्पणी है, फिर भी यह नोट किया जाना चाहिए कि समकालीन पूंजीवाद ने विज्ञान की प्रगति को अवरुद्ध नही किया है। इसके विपरीत, वह विभिन्न वैज्ञानिक शोधों को जोर-शोर से प्रेरित करता है। किन्तु एक तो यह विकास अत्यधिक असमान होता है तथा दूसरे यह है जो निजी उद्योग की प्रणाली से ही पैदा एक अन्य विरोधी प्रकृति का सामना करता है। बड़ा व्यापार वैज्ञानिक और तकनीकी क्रांति के परिणामों पर एकाधिकार कायम करने की फ़िराक में रहता है और मुनाफ़ों को एकत्रित करने के लिए ही उनका उपयोग

---

1. मार्क्स-एंगेल्स, आरकाइव्ज, खंड IV, पृ. 29 (रूसी मे)
2. नार्बर्ट वीनर, 'आइ एम ए मैथेमेटिशियन', न्यू यॉर्क, 1956, पृष्ठ 161-62

करता है। बहुत प्रायः इजारेदारियाँ वैज्ञानिक एवं प्राविधिक उपलब्धियों को संवारने व छिपाने की जीतोड़ कोशिश भी करती है उनसे जितना ज्यादा अतिरिक्त मूल्य बटोर सकती है बटोरती हैं और बाजार में अपने प्रतिद्वन्द्वी व्यापारियों को कुचलती है।

फिर भी, शोध और विकास में प्राप्त उपलब्धियों पर एकाधिकार केवल एक अल्पजीवी और स्थानीय आर्थिक प्रभाव ही पैदा करता है। विज्ञान की प्रगति और तदनुरूप सारे समाज की प्रगति को धीमा करके यह बाद वाली प्रकृति अनिवार्यतः क़ीमत वसूल करती है। पूंजीवाद विज्ञान के विकास और पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक मूल्य और प्रगति के मानदंडों के बीच की असमाधानीय विरोधमूलक भ्रांति की ओर तेज़ी से प्रवृत्त हो जाता है। पूंजीवादी प्रणाली स्वयमेव पुराने उत्पादन सम्बन्धों और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति द्वारा पैदा की गई नई उत्पादक शक्तियों के सतत विकास की आवश्यकता के बीच में फंस जाती है।

"जो निश्चित है वह सिर्फ एक बात है," अमरीकी विद्वान् रॉबर्ट हेलब्रॉनर अनुभव करते है, "वह है समाज के भीतर विज्ञान के सक्रिय उपयोग के नए विचार और सामाजिक प्रणाली के रूप मे पूंजीवाद के विचार के बीच गंभीर असामंजस्य का होना है"'। अंत मे पूंजीवाद को विज्ञान की तराज़ू मे तोला जाता है और उसे न केवल एक प्रणाली के रूप में किन्तु एक दर्शन के रूप में भी दरिद्र पाया जाता है।"[1]

विज्ञान का सीधे तौर पर उत्पादक शक्ति के रूप में रूपांतरण प्रक्रिया का केवल एक पक्ष है। व्यक्ति की नई माँगों के स्तर पर दूसरा पक्ष विकसित हो रहा है। वैज्ञानिक एव प्राविधिक क्रांति काम मे और अधिक प्रतिभा को समाहित कर देती है; आज का मजदूर अब केवल मशीन का पुर्जा मात्र नही रह सकता—एक विचारशून्य स्वचालन के रूप में। स्वचालित नियंत्रण प्रणालियों को चालना देने के लिए उसे एक उन्नत कुशल विशेषज्ञ के रूप में उपस्थित होना चाहिए, जो, इसके अतिरिक्त अपने काम के परिणामों के विषय में भी बढ़-चढ़ कर रुचि रखता हो।

अतः पूंजीवाद के सामने शिक्षा की समूची प्रणाली को आमूलचूल पुनर्गठित करने तथा कार्मिकों को प्रशिक्षित करने का चुनौती भरा काम उपस्थित हो जाता है। बहुत से पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने इस विषय मे लिखा है। अमरीकी विद्वान पीटर ड्रकर की राय में, तात्विक रूप से नया तथ्य यह है कि समाज और अर्थ-

---

1. रॉबर्ट एल० हेलब्रानर 'द लिमिट्स ऑफ अमेरिकन कैपिटलिज्म' न्यू यॉर्क, 1966, पृ० 132-133

व्यवस्था का विकास तब तक पूरी तरह प्रभावशाली नही होगा जब तक कि सभी को उनकी योग्यताओं व सामर्थ्य के अनुरूप शिक्षा न मिले। एक अशिक्षित व्यक्ति शीघ्र ही अनुत्पादक हो जाता है, और आज के समाज को 'शिक्षित समाज' होना चाहिए ताकि वह उन्नति एवं विकास कर सके तथा जीवित रह सके। लेकिन ड्रकर द्वारा निरूपित समय की यह माँग एक बार फिर पूँजीवाद के मूलतः मानवता-विरोधी सामाजिक मानदंडो से रू-ब-रू होती है। शिक्षा-प्रणाली परंपरागत पूँजीवादी समाज के साँचे मे प्रारंभिक जन शिक्षा के रूप में ढली है। 'जनशिक्षा', एल्विन टॉफलर लिखते है, "एक ऐसा उम्दा यत्र था जो औद्योगिकवाद के द्वारा अपनी आवश्यकता के अनुकूल प्रौढ़ों को ढालने के लिए पैदा किया था।"[1]

इसका मतलब है कि पूँजीवादी उत्पादन को आवश्यक जानकारी रखने वाले शिक्षित मज़दूरों की आवश्यकता थी। कुछ समय तक इससे अधिक और किसी बात की आवश्यकता नही। किन्तु अब अधिक बौद्धिक कार्य ने स्थिति को वस्तुतः बदल दिया है। एक आधुनिक मज़दूर को अब और अधिक माँसपेशियो की ताकत की आवश्यकता नही होती; किन्तु जटिल और कभी-कभी रचनात्मक उत्पादन समस्याओं को सुलझाने की योग्यता की आवश्यकता होती है। शारीरिक श्रम के स्थान पर एक खास तौर से प्रशिक्षित ऑपरेटर द्वारा नियंत्रित स्वचालित प्रणालियाँ तेज़ी से प्रवेश पा रही हैं। इसका तात्पर्य है कि प्रारंभिक शिक्षा की पुरानी प्रणाली अब इस काबिल नही है कि उत्पादक शक्तियों के आगे के विकास को आश्वस्त कर सके। 'शिक्षा में क्रांति' एक तात्कालिक आर्थिक आवश्यकता में बदल रही है और सामयिक उत्पादन की महत्वपूर्ण शर्त का रूप धारण कर रही है।

भविष्य मे व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी विकास, मनुष्य की क्षमताओ और बौद्धिक योग्यताओं के कार्यान्वियन की अपेक्षा रखेगा। पूँजीवाद के अधीन ऐसे श्रमिकों का उदय नितात समस्यामूलक है, क्योकि इसने न तो ऐसे हालात पैदा किए है और न ही वह ऐसा कर सकता है जिससे इस प्रकार. व्यक्तित्व का विकास हो। दर-असल, एक विरोधी प्रवृत्ति दिखाई दे रही है और इजारेदारियो की यह इच्छा कि हिंसा और क़त्ल के प्रचार के द्वारा व्यक्ति को नष्ट किया जाए और उसको अति तुच्छ सिद्ध किया जाए, उपभोक्ता मनोविज्ञान पैदा किया जाए और तथा-कथित लोक-संस्कृति को विकसित किया जाए। मानवी व्यक्तित्व के उसके आध्यात्मिक तत्व को जान-बूझकर नष्ट-भ्रष्ट करना एक प्रकार के संघर्ष का वह रूप है जिसे वर्तमान साम्राज्यवाद सामाजिक क्रांति के विरुद्ध जारी रखता है; यह मज़दूर वर्ग को बौद्धिक रूप से निहत्था करने का ही एक तरीका है। यदि पूँजी-वादी इस रुख को बदल देते और व्यक्ति के सर्वतोमुखी विकास को प्रोन्नत करने

1. एल्विन टॉफ़लर, 'फ्यूचर शाक' पृ॰ 354

की चेष्टा करते तो उनके लिए वह अपनी ही मौत की सजा पर दस्तख़त करने के समान होता। अतः ऐतिहासिक संदर्भ में श्रम का बौद्धिकीकरण पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के साथ नितांत असंगत ठहरता है। पूंजीवाद न केवल एक आर्थिक प्रणाली के रूप में अपनी उम्र से अधिक जीवित रह लिया है, अपितु आध्यात्मिक मूल्यों की प्रणाली के रूप में भी, जिसका दिवालियापन वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीकी क्रांति द्वारा लाये गए सामाजिक बदलावों की स्थिति में जिसका दिवालियापन प्रकट हो रहा है, व्यर्थ सिद्ध हो चुका है।

बौद्धिकीकृत श्रम के लिए परंपरागत पूंजीवादी प्रणाली में दिए जाने वाले प्रोत्साहनों की बजाय दूसरे प्रकार के अन्य प्रोत्साहनों को दिए जाने की आवश्यकता पैदा होती है। उदाहरण के लिए एक मशीन चालक का काम बड़े स्नायविक और मानसिक तनाव से जुड़ा होता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि गुणात्मक रूप से नए मनोवैज्ञानिक स्रोत का निर्माण किया जाए जो उत्पादन के दौर में स्नायविक प्रणाली में निरंतर होने वाली क्षतियों की पूर्ति करने में समर्थ हो। श्रमशक्ति के पुनरोत्पादन की समस्या अपने आपको एक नए आलोक में प्रस्तुत करती है, अतः श्रम के भौतिक और नैतिक प्रोत्साहनों से संबंधित प्रश्नों का एक नया समाधान ढूंढा जाना चाहिए।

सामाजिक मूल्य लोगों के क्रियाकलापों को प्रेरित करते हैं। किन्तु वे उत्पादक शक्तियों के विकास और मानवता के एक सामाजिक-आर्थिक स्वरूप से दूसरे में संक्रमण के साथ बदलते हैं तथा प्रत्येक ऐसा संक्रमण लोगों के बीच नए संबंध पैदा करता है। मार्क्स ने ऐसे संबंधों के तीन प्रकारों के बारे में लिखा—"व्यक्तिगत निर्भरता के संबंध, पहले नितांत आदिम—समाज के ये पहले रूप थे जब लोगों की उत्पादकता एक नगण्य सी सीमा तक और अलग-अलग स्थानों में विकसित थी। व्यक्तिगत निर्भरता जो भौतिक निर्भरता पर आधारित थी, वह समाज का दूसरा बड़ा ऐसा रूप है जिसके अंतर्गत सार्वभौम सामाजिक विनिमय की, सार्वभौम संबंधों, सामाजिक ज़रूरतों और सार्वभौम योग्यताओं की व्यवस्था निर्मित होती है। स्वतंत्र व्यक्तित्व जो व्यक्तित्वों के सार्वभौम विकास पर आधारित हो, सबकी सामूहिक सामाजिक उत्पादकता की अधीनता को सबकी सामाजिक संपदा के रूप में स्वीकार्य हो—ऐसी है तीसरी अवस्था।"[1]

इन तीनों में से प्रत्येक के [illegible] होते हैं जो [illegible] कार्य व्यापार के लिए उत्तरदायी होते [illegible] दबाव, भौ[illegible] तथा नैतिक प्रोत्साहन।

[illegible] भौतिक पारिश्रमिक, सामंत[illegible] पूंजीवाद

1. कार्ल मार्क्स [illegible] [illegible]स, [illegible] 89-91

भी काम में संलग्न हों, उनके काम की इतिश्री हथियारों के निर्माण में होती है"—बहुत समय से एक सूक्ति बन चुका है। मार्क्स ने लिखा—"हर वस्तु अपने में स्वयं का उलटा समाहित किए हुए दिखाई देती है, हम देखते है कि वे मशीनें जो आदमी की मेहनत को हल्का करने की आश्चर्यजनक शक्ति रखती है और उसे अधिक फलदायी बना सकती है, लोगो के लिए भूख और थकान लाती है। किसी विचित्र जादू की वजह से नए और अब तक न खोजे हुए धन के साधन भी गरीबी के साधनो मे बदल जाते हैं। यह ऐसा है मानो प्राविधिक ज्ञान की जीतें नैतिक पतन की कीमत पर हासिल की गई हों।"[1] यह टिप्पणी इतनी सामयिक है कि ऐसा लगता है जैसे यह आज ही व्यक्त की गई हो।

लेकिन जबकि अतीत मे ये रूपांतरण, चाहे वे लोगों को ढेर-सी तकलीफ़ देते थे, फिर भी उनके जीवन के लिए खतरा नही पैदा करते थे, आज उनके पास आत्मप्रचुर शक्ति आ चुकी है, वह अनियंत्रित बन चुकी है और सभ्यता के अस्तित्व को ही खतरा पैदा कर रही है। पहले पूंजीवाद की बीमारियों, जबकि वे लाखों-करोड़ों के लिए कष्टों, और गरीबी के अभिशाप का कारक हुआ करती थी, का स्वरूप स्थानीय हुआ करता था, वे आज ऐसी मारक बीमारियों मे परिवर्तित हो चुकी है तथा विशालकाय महामारियों का रूप धारण कर चुकी है कि पृथ्वी पर प्रत्येक जीवित प्राणी मृत्यु की आशंका से ग्रस्त है।

युद्ध और शांति की समस्या को लें। निरंतर बना हुआ नाभिकीय ख़तरा भी पूंजीवाद के पुराने नासूर के बहुत बढ़े हुए रूप को ही प्रकट करता है—उसकी आक्रामक प्रकृति को। नाभिकीय गतिरोध, जो कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक की क्रांति का ही परिणाम है। हथियारों की दौड़ की वह ऐतिहासिक सीमा है जिसके पर पूंजीवाद का आत्म विनाश मँडराता है। ऐसा लगता है कि फिर भी किसी जादुई गति की वजह से वह डानैड्स के बेपैंदे के पीपों को—युद्ध की भौतिक और तकनीकी तैयारी के रूप में भरता चला जाता है। और इसलिए जो निष्कर्ष निकलता है वह विरोधाभास पूर्ण तो है ही, एक उजागर तथ्य भी है : कि पूंजीवादी व्यवस्था हथियारो की दौड़ को बढ़ाती चली जा रही है, तथा इस प्रकार एक ओर तो मानवता को एक ताप-नाभिकीय महाविपत्ति की तरफ़ धकेल रहा है तथा दूसरी ओर आत्म-विनाश के रास्ते को साफ कर रही हैं।

विश्व-व्यापी महत्व की एक अन्य सामयिक समस्या, भौगोलिक वातावरण जन्य विपत्ति, को लें। प्राकृतिक ससाधनों का अनैतिक दोहन, सैन्यवाद की ही भांति, पूंजीवाद का एक अन्तर्निहित नियम है। प्रकृति के बारे मे, धरती को उजाड़ने की पूंजीवादी रणनीति ने पर्यावरण जन्य संकट को मानवता के असली

1. मार्क्स/एंगेल्स, वर्क, खंड 12, पृ० 3

खतरे के रूप में बदल दिया है। ऐसा कहने के पीछे एक तर्कसंगति है कि नियोजित वैज्ञानिक प्रयास के अभाव में और सर्वाधिक संकल्पवद्ध अंतर्राष्ट्रीय उपायों के लागू करने की कमी की वजह से इसे असमाधानीय समझा जा सकता है।

पश्चिम में इन दिनो इस बात की व्यापक चर्चा चल पड़ी है कि वातावरण की रक्षा करने की आवश्यकता है। यह उन शक्तियों के द्वारा प्रोत्साहित है जो प्राय: असली सामाजिक सारतत्त्व तथा समस्या के कारणों में मिलावट करने में संलग्न है अपनी सारी राजनीतिक सट्टेबाज़ी मे इसका उपयोग कर सकें। 22 जनवरी सन् 1970 के अपने सघीय सदेश में, सयुक्त राज्य अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति निक्सन ने (उनके देश पर जीवमडल के प्रदूषण के लिए सबसे बड़ी जिम्मेवारी आयत होती है) जनता के नाम एक अलकारिक अपील करते हुए कहा—"1970 के दशक की भीषण समस्या है—क्या हम प्रकृति के साथ शांति कायम करें तथा हमारे द्वारा अपनी हवा, धरती व पानी को पहुँचाई क्षति का प्रायश्चित करें?"[1]

समस्या के इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण के विरोध मे कुछ भी कहना कठिन ही होता यदि यह साफ़तौर पर इतना पाखंडपूर्ण न होता। निस्सदेह जिस क्षति की चर्चा निक्सन ने की है वह बड़ी है और महामारी की गति से बढ़ रही है। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि संयुक्त राज्य अमरीका जिसकी जनसंख्या 1970 के दशक के आरंभ में दुनिया की जनसंख्या सिर्फ 5.7 प्रतिशत थी, उसने दुनिया के प्राकृतिक ससाधनों के 40 प्रतिशत का उपयोग किया और पृथ्वी ग्रह के कुल 50 प्रतिशत को प्रदूषित किया। विशेषज्ञों के अनुसार अब तक संयुक्त राज्य अमरीका उस आलोच्य रेखा को पार कर चुका है जबकि उपभोगशुदा प्राकृतिक साधनो का पुनर्भरण स्वाभाविक प्रक्रिया मे नही होता तथा उसके लिए विशेष उपाय आवश्यक होते है।

कोई यह सोच सकता है कि इसने अमरीका के शासक तंत्र को इन वास्तविक कारणों को उद्घाटित करने के लिए तथा जीवमंडल की रक्षा के लिए प्रभावशाली संघर्ष छेड़ने को उत्साहित किया होगा।

तो भी, इस क्षेत्र मे वाछित परिणाम, जैसा कि सर्वत्र सभी स्वीकार करते है, अब तक असंतोषजनक है। पूंजीवादी देशों में प्राकृतिक वातावरण की रक्षा करने के निमित्त जो भावपूर्ण अपीलें की गईं वे मृतपत्र बनकर रह गईं। स्पष्ट है कि तब तक किसी प्रगति की आशा नही की जा सकती जब तक कि उन पूंजीवादी इजारेदारियों के विरुद्ध कोई संकल्पवद्ध उपाय नही किए जाते जो प्रकृति को खोखला करने और उसे प्रदूषित करने की आपराधिक सक्रियता के लिए सीधे तौर पर जिम्मेदार हैं। पूंजीवादी प्रचार तंत्र, किसी पर भी दोप मढ़ सकता है—जनसंख्या

1. यू॰ एस॰ न्यूज एंड वर्ल्ड रिपोर्ट', अक-5, 2 फ़रवरी 1970, पृ॰ 60

पर, औद्योगीकरण, विज्ञान और प्रविधि के विकास पर—ताकि वह इजारेदारी पूँजीवाद को अपराध से बरी कर सके। गाइ बायोलैंट, जिन्होंने इस समस्या का अध्ययन किया है, लिखते हैं : "हम हर वस्तु से प्रदूषण पैदा करते हैं—अपनी चिमनी के धुएँ से, अपनी कारों के धुएँ से, अपने भोजन की जूठन और बचे-खुचे से, अपने स्नानघरों के पानी से, अपनी लांड्री के धोवन से, अपने अखबारों के कागज से, प्लास्टिक बोतलों से, टिन के डिब्बों से—सभी लोगों को दोष दिया जाना चाहिए क्योंकि सब उपभोक्ता हैं—साथ ही सबसे बड़े प्रदूषक वही करते हैं जो औद्योगीकरण के हितों के अनुकूल होता है।"[1]

'घर' में पर्यावरण संबधी संकट की व्याख्या अधिकांशतः मिथ्या दुविधा के रूप में की जाती है : या तो सादगी भरे मितव्ययता के उपाय काम में लो या प्राकृतिक संसाधनों को नि.क्षेप कर दो; या तो आर्थिक विकास को धीमा कर दो या 'जीवन स्तर' को नीचा बना लो। साम्राज्यवादी सिद्धातकारों में से सर्वाधिक इस तथ्य के छिपाने के प्रति चिंतित हैं कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, जो साफ़तौर पर संकीर्ण कोटि के विशेष प्रयास पर आधारित है तथा जिसका आधार तत्काल मुनाफ़ा कमाना है, का सामना प्राकृतिक संपदा के वैज्ञानिक दोहन से ऐसा विरोध है जिसका समाधान सभव नही है। इसलिए भौगोलिक वातावरण के संकट का दोष औद्योगिक विकास के मत्थे मढ़ दिया जाता है। 'वैदेशिक' उपयोग के लिए वातावरण की रक्षा से सुबंधित सिद्धांत को अन्य अंतर्राष्ट्रीय मुद्दो के समाधान को स्थगित करने के लिए काम मे लिया जाता है तथा इस विश्वजनीन समस्या पर चिंतित होने का ये बहाना मूलभूत सामाजिक प्रश्नों से जनसमूह को काट दिया जाता है।

यहाँ कुछ और भी कहने की आवश्यकता है। यद्यपि ऊपरी तौर पर अमरीकी प्रचार तंत्र इस बात से चिंतित-सा लग रहा है कि आधुनिक औद्योगिक विकास के कारण वातावरण को नुकसान पहुँच रहा है, पेंटागन (ख़ासकर निक्सन के राष्ट्रपतित्व के दौर में) ने हिंदचीन में व्यापक तौर पर निष्पत्रकों और जड़मूल नाशकों को काम मे लिया। प्रोफ़ेसर मैथ्यू मिसेल्सन के नेतृत्व मे गठित जीववैज्ञानिकों के दल, जिसने मौके पर जाकर इस समस्या का अध्ययन किया, द्वारा तैयार किए गए प्रतिवेदन ने यह रहस्य उद्घाटित किया कि दक्षिणी वियतनाम की सीमा का 15 प्रतिशत क्षेत्रफल, जो संयुक्त राज्य अमरीका में मैसाचुसैट्स राज्य की अपेक्षा बड़ा क्षेत्र है—निष्पत्रको के भयंकर विनाशात्मक प्रभावों से ग्रस्त हो गया।

यह स्वाभाविक ही है कि, अमरीकी प्रचार तंत्र इन तथ्यों के विषय मे बिल्कुल चुप है और पर्यावरण की इस समस्या को वर्ग-संघर्ष मे बिजली के कोड़े के रूप में

---

1. गाइ बायोलैंट, "मार्क्सिज्म एट् एनविरनमेंट" पेरिस, 1973, पृ० 128

कैंप में ले रहा है। साम्राज्यवादी प्रचार सेवाएँ वातावरण प्रदूषण को एक ऐसी समस्या के रूप में प्रस्तुत करती हैं जो, उनकी योजना के अनुसार, सामाजिक विरोधों को पृष्ठभूमि में डाल देंगी।

यह इस तथ्य के बावजूद किया जाता है कि वातावरण संकट एक नई सामाजिक और राजनीतिक समस्या के रूप में विकसित हो रहा है जो अन्य राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं से घनिष्ठता के साथ गुंथा हुआ है। यह संकट—जो समस्त मानवता के विशाल क्रियाकलाप के लिए खतरा उत्पन्न करता है और जिसने अब तक लाखों श्रमिकों को नुकसान पहुंचाया है—पूंजीवादी प्रणाली की तर्कहीनता को ही और अधिक प्रमाणित करता है।

पश्चिम में इस तथ्य को तेज़ी से स्वीकारा जा रहा है। "तो हम एक निर्णायक प्रश्न की ओर आते हैं—आधुनिक प्रविधि का सोलोमन कौन होगा जो इस सारी अच्छाई को तराजू में तोल सके जो परिस्थिति विज्ञान और सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध इसमें से पैदा होती है?"[1] ब्रिटिश परिस्थिति वैज्ञानिक बेरी कॉमनर लिखते हैं और निम्नांकित निष्कर्ष निकालते हैं—"दरअसल, हम जानते हैं कि आधुनिक प्राविधिक ज्ञान, जिसे निजी तौर पर हथिया लिया गया है, यदि उस सामाजिक अच्छाई—परिस्थितिमंडल—को ही नष्ट कर देता है जिस पर यह आश्रित है तो यह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता।

"अतः एक ऐसी आर्थिक प्रणाली जो सामाजिक लेन-देन के मुकाबले मूलतः निजी लेन देन पर आधारित है अधिक समय तक उपयुक्त नहीं रहती और इस विशाल सामाजिक भलाई की व्यवस्था करने में तेज़ी से प्रभावहीन हो रही है। अतः इस प्रणाली के परिवर्तन की आवश्यकता है।"[2] महत्वपूर्ण भौगोलिक वातावरण के कारणों के द्वारा भी यह अनिवार्य बनाया जा रहा है कि मानवता का संक्रमण पूंजीवाद से साम्यवाद में हो।

हमने केवल दो विश्वव्यापी मुद्दों पर बहस की है। किंतु यदि हम अनेक अन्य समस्याओं को लें—असमान आर्थिक विकास, पुरानी चली आ रही बेरोजगारी, संस्कृति का पतन और व्यक्तित्व का विनाश, नागरिक संकट, विकासमान देशों की गरीबी और उनका पिछड़ापन, और इस सूची को और आगे तक ले जाने पर, हम उसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे, यानी कि उनमें से किसी बिंदु को पूंजीवाद से अलग नहीं किया जा सकता। उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति को समाप्त करना ही निस्संदेह एकमात्र प्रभावशाली तरीका है जिसके तहत जनसमुदाय के हितों और मानव प्रगति के हक में हम उन समस्याओं को सुलझा सकते हैं।

---

1. बेरी कॉमनर, 'द क्लोज़िंग सर्किल, नेचर, मैन एण्ड टेक्नोलॉजी', न्यूयार्क, 1972, पृ॰ 197
2. वही, पृ॰ 237

वर्तमान और भविष्य की विश्वव्यापी समस्याओं के सामने पूंजीवाद की नपुंसकता बूर्ज्वा विचारधारा के उस संकट की पुष्टि करती है जो उसकी अपनी नितांत असहायता और हताशा को अभिव्यक्ति देता है। बूर्ज्वा साहित्य, सिनेमा, रेडियो और टेलिविजन घोषणा करते है कि सामाजिक, साइबरनैटिक और आनुवंशिक अभियांत्रिकी के परिणामस्वरूप, ताप-नाभिकीय युद्ध के अनियंत्रित जीव-वैज्ञानिक कारकों के प्रभाव के कारण पर्यावरण से उत्पन्न घुटन और इसी प्रकार की अन्य स्थितियों आदि की वजह से मानवजाति का विनाश अवश्यंभावी है। संक्षेप मे, मानवजाति अपनी समस्याओं को काबू करने मे असमर्थ है, वह अंधी गली मे अटक गई है और उसका विनाश अवश्यंभावी है।

अमरीकी विद्वान डब्लू० वागर लिखते हैं कि प्रतीकात्मक अर्थ में बीसवी सदी का आदमी उस एक बच्चे के समान है जो टोकरी में अंतिम फ़ैसले की देहलीज पर पडा बिलबिला रहा है। अपनी आवेगपूर्ण निष्कपटता में वह ऐसी नियति की कृपा पर फेंक दिया गया है जो कल्पना से भी परे है।

ये निराशावादी भावनाएँ अभिशप्त एवं हताश पूंजीवादी दुनिया के विचारकों की खास भगिमाएँ हैं, जो इसके सन्निकट विनाश को सारी मानवता के लिए महा विपत्ति मानते है। जैसाकि लेनिन ने लिखा—"वे लोग हताश ही हो सकते हैं जो बुराई के कारणों को नही समझते, सुलझाव का कोई मार्ग नही देख पाते, और संघर्ष के लिए असमर्थ होते है।"[1]

कम्युनिस्ट भविष्य को भिन्न आलोक में देखते हैं। श्रमिक मानवता की खुशहाली के लिए संघर्ष के अनुभव पर विश्वास रखते हुए, और महान् अक्तूबर समाजवादी क्रांति के बाद के छः दशकों में प्राप्त अनुभव पर भरोसा करते हुए, वे जनकल्याण पर आधारित आशावाद के साथ भविष्य की ओर आगे देखते हैं। सोवियत लोग आगे के लिए विश्व-शांति की सुदृढता और स्वतंत्रता, लोकतंत्र और समाजवाद के लिए संघर्ष मे भावी प्रगति के लिए किए जाने वाले तेजस्वी ऐतिहासिक कामों को संपूर्ण आत्मविश्वास के साथ करते चले जा रहे है।

1. वी० आई० लेनिन, "एल० एन० तॉलस्तॉय एंड द माडर्न लेबर मूवमेंट" संकलित रचनाएं खड 16, पृ० 332

उपसंहार

आधुनिक विश्व अत्यधिक असमान है। हमारे समय और हमारे युग की मौलिक समस्याएं, भावी पीढियो की ऐतिहासिक नियति दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ पूंजीवाद और समाजवाद—और दो शत्रुतापूर्ण वर्गों—बूर्ज्वा और सर्वहारा के जटिल और विरोधपूर्ण संघर्ष मे निर्णीत होने जा रही हैं।

शांति, स्वतंत्रता और सामाजिक प्रगति के लिए महान् संघर्ष मे एक विशाल और लगातार बढती हुई भूमिका वैचारिक संघर्ष के द्वारा अदा की जा रही है। इसका नतीजा, कम्युनिस्ट विश्व-दृष्टिकोण की निर्णायक जीत इतिहास द्वारा पूर्व-निर्धारित है। मरणासन्न वर्गों की द्वेषपूर्ण प्रतिरोध तथा प्रत्याक्रमण के उनके अड़ियल किंतु निरर्थक प्रयासो का यही कारण है।

बौद्धिक क्रिया व्यापार हमेशा से ही मानव जीवन का सबसे जटिल और नाजुक क्षेत्र रहा है और रहेगा। प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: यह विविध प्रकार के, और अक्सर अन्तर्विरोधपूर्ण, सामाजिक, राजनैतिक, सैद्धातिक, राष्ट्रीय, सास्कृतिक और अन्य कारकों के प्रभाव मे आ जाता है। प्रत्येक व्यक्ति, सामाजिक समूह और स्तर के सैद्धातिक विचारों की जटिल सरगम में एक वर्ग द्वारा निर्धारित, समाज द्वारा अनुकूलित और स्वयं की आत्मपरकता के द्वारा भावात्मक क्षणों से उद्वेलित स्थितियों का एकांतिक सम्मिश्रण होता है। यह सब किसी अवधि विशेष के विशिष्ट सामाजिक जीवन को अनुपम संयोगों और वर्णों को पैदा करता है।

आज के समकालीन वैचारिक संघर्ष की विरोधात्मक प्रवृति का यही कारण है। फिर भी यह अपनी न उलटी जा सकने वाली तर्क संगति के अधीन होती है: विचारों के संघर्ष में अनिवार्यत: उन्ही की जीत होती है जो शब्दो मे ही नही लेकिन काम में भी जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं से सामंजस्य व सगति रखते है और जन-समुदायो की तात्कालिक समस्याओ के सुलझाने के ठोस तरीके अपनाते है। यह साधारण सत्य कम्युनिस्ट विचारधारा की सफलता और गति-शीलता को पूर्व-निर्धारित करता है।

यह निर्विवाद है कि इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना बाकी है जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के निर्णय किया गया है,

—"सैद्धांतिक और राजनैतिक शिक्षा के भावी सुधार के विषय में" (1979) में कहा गया है। देश के लगभग सभी लोगों ने इसे पढ़ लिया है और यह मूलभूत महत्त्व की बात है।

वैचारिक और शैक्षिक कार्य को आगे बढ़ाना इसलिए भी आवश्यक है ताकि इस अवधि के उन बड़े कामों को पूरा किया जा सके जिनको सोवियत संघ के नए संविधान में सुनिश्चित किया गया है और जो विकसित समाजवाद की अवधि तथा सोवियत जनवाद की स्थितियों से उत्पन्न हो रहे हैं।

लेनिन का यह सूत्र, कि राज्य जन-चेतना से ही अपनी शक्ति हासिल करता है, इतना प्रासंगिक पहले कभी नहीं रहा जितना कि आज है, जब जन-समुदाय हर चीज़ को समझता है और प्रत्येक का मूल्यांकन करने में समर्थ है, और हमेशा सचेतन और सतर्क होकर काम करता है। दूसरी ओर, वैचारिक और राजनैतिक शिक्षा को और अधिक ऊँचे स्तर तक ऊपर उठाना पड़ेगा क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर वैचारिक संघर्ष की पैनी तीव्रता पहले से कहीं अधिक बढ़ी है। यह एक तथ्य है कि साम्राज्यवादी प्रचारतंत्र खुलकर पेकिंग के आधिपत्यवादियों के सोवियत-विरोधवाद के साथ घुल मिल कर काम करता है। अपने प्रयत्नों का एकत्रीकरण करते हुए उन्होंने सोवियत लोगों के चिंतन पर एक दुष्ट आक्रमण कर दिया है और अपने आपे से बाहर होकर दुनिया के लोगों की आँखों में सोवियत यथार्थ को लांछित कर रहे हैं।

इन परिस्थितियों में लोगों की सैद्धांतिक शिक्षा कम्युनिस्ट निर्माण के कामों को पूरा करने के प्रयत्नों में तथा विश्व में शांति और प्रगति के लिए संघर्ष का एक प्रमुख तत्त्व है। सफल सैद्धांतिक कार्य सोवियत संघ के आर्थिक, सामाजिक-राजनैतिक और सांस्कृतिक विकास के मार्ग को एक बड़ी हद तक निर्धारित करता है। बहुत प्रकार से यह सोवियत संघ को इस बात में समर्थ बनाता है कि वह विकसित समाजवाद की अन्तर्निहित सम्भावनाओं का उपयोग कर सके और अपनी शांतिपूर्ण विदेश नीति का अनुसरण कर सके। इस प्रयास में समाजवादी समुदाय के देशों की भागीदारी है।

नए समाज की मौत के विषय में पूँजीवादी-भविष्यवाणियों के बावजूद समाजवाद क्यों ताकत हासिल करता चला जा रहा है? समाजवाद ही जनसाधारण के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उन समाधानों की खोज में इतना सफल क्यों हो रहा है मानवता जिन्हें अपने सारे इतिहास के दौरान खोज पाने में असफल रही? पूँजीवाद सभी राष्ट्रों और देशों को पिछड़ेपन और जड़तापूर्ण अस्तित्व में रहने को विवश क्यों करता है, जबकि समाजवाद समय की अल्प अवधि में ही उन्हें प्रगति पथ पर अग्रसर करता है? बूर्ज्वा वर्ग सदियों से चले आ रहे राष्ट्रीय विरोधों की तेज धार को कुंठित करने में असमर्थ क्यों रहा है जबकि

समाजवाद एक अल्प ऐतिहासिक अवधि मे ही जनगण का एक नया ऐतिहासिक समुदाय बनाने में सफल हो गया जो कि अब कम्युनिस्ट समाज का निर्माण कर रहे है ! और अंत में, यह ऐसा क्यों है कि समाजवाद की विदेश नीति ही हमलावर ताकतों के खिलाफ़ संघर्ष मे लोगों के लिए शांति और लाभदायक सहयोग के अवसर प्रदान करती है ?

ये प्रश्न, अपने सही स्वरूप मे पूंजीवाद के लिए चुनौती है, क्योंकि सामाजिक व्यवहार अकाट्यरूप से यह पुष्ट करता है कि हमारे इस युग के लिए मात्र वैज्ञानिक कम्युनिज्म का सिद्धांत ही मानवता के लिए सामाजिक और राजनैतिक मुक्ति का रास्ता प्रदर्शित करता है और केवल समाजवाद ही आज के समकालीन विश्व की मूलभूत समस्याओं का समाधान करने मे समर्थ है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के वैचारिक झडे के नीचे सोवियत लोगों ने साठ वर्षों में ही समस्त क्षेत्रों—आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक—के क्रिया-कलाप मे ऐतिहासिक जीतें हासिल की है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचार अनेक यूरोपीय, एशियाई और लेटिन अमरीकी देशो मे जिन्होंने समाजवाद का रास्ता अपनाया, राज्य विकास को प्रेरित करने वाले सैद्धांतिक आधार वन चुके है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद ही पूंजीवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियो की विचारधारा है, जो शांति, लोकतंत्र और सामाजिक प्रगति के लिए संघर्ष कर रही हैं। आज की वास्तविक वर्तमान कठिन परिस्थितियों मे केवल कम्युनिस्ट आन्दोलन ही इस सम्मान का हकदार है कि उसने ऐसी समस्याओं को उभारा है जिनका हल विलम्ब सहन नही कर सकता, अर्थात् द्वितीय विश्वयुद्ध के दुष्परिणामों का विलीनीकरण, विश्व शाति को सुदृढ़ करना और मजदूर वर्ग की आर्थिक, सामाजिक और लोकतांत्रिक उपलब्धियों का विस्तार करना। इस सूची मे वे मूलभूत मुद्दे भी है; जैसे, सभी लोकतान्त्रिक ताक़तों की एकजुटता, राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का आगे का विकास और इसी प्रकार के अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दु। यही वजह है कि विचारो के संघर्ष मे वैज्ञानिक कम्युनिज्म का सिद्धांत और व्यवहार दुनिया भर के लगातार बढ़ते हुए बहुसंख्यक मजदूर लोगों के दिलो-दिमाग को, पहले से कही ज्यादा, जीतता जा रहा है।

कम्युनिस्टों के पास, स्वभावतः, सारे प्रश्नो के कोई तैयारशुदा जवाब नही हैं। लेकिन उनके पास ऐतिहासिक विकास की मूलभूत प्रकृति के सम्बन्ध मे एक बहुत स्पष्ट विचारधारा है। वे अभिज्ञान की विज्ञान-आधारित पद्धति पर अपने क्रांतिकारी सिद्धात और एक नई दुनिया बनाने के साठ से अधिक सालों के प्राप्त अनुभव पर विश्वास करते हैं। उन्हे यह कहने का पूरा हक है कि वे जानते हैं कि मानवजाति का कहाँ और कैसे मार्गदर्शन किया जाता है और यह घोषणा करने की उनके पास हर प्रकार की तर्कसंगति है कि यह रास्ता श्रमिक जनगण को शाति

और सामाजिक न्याय की प्राप्ति की तरफ़ ले जायगा।

"कवियों की कल्पना ने प्रारम्भिक युगों के अज्ञान और भद्देपन में स्वर्णयुग को मानव जाति के झूले में रख दिया है; किन्तु इस युग को लौह युग के रूप में माना जाना चाहिए'''।" महान् फ्रेंच विचारक हेनरी द सेंट-साइमन ने लिखा। "मानव जाति का स्वर्णयुग हमारे पीछे नहीं है, वह आगे आने वाला है, भविष्य मे स्थित है; यह समाज व्यवस्था के पूर्ण होने में है; हमारे पूर्वजों ने इसे नहीं देखा; हमारे बच्चे एक दिन उसे प्राप्त करेंगे और यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनके लिए मार्ग प्रशस्त करें।"[1]

कम्युनिस्ट समस्त श्रमजीवियों का इस लक्ष्य की उपलब्धि के लिए सक्रियता से काम करने का आह्वान करते है।

1. हेनरी द सेंट-साइमन, 'ट्रैक्ट्स कोइसिस', पेरिस, 1975 पृ॰ 110।